

मेरा मन

THE NOISE WITHIN

HITESH KAUSHIK



BlueRoseONE.com
Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Hitesh Kaushik 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



BlueRoseONE^{.com}
S t o r i e s M a t t e r
New Delhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-6744-457-8

Cover design: Shariq Ansari
Typesetting: Simran Maurya

First Edition: September 2026

॥ -श्रीदेवसरवासिन्या: कुलदेव्या: सदैव जय: ॥



कैप्टन विक्रम बत्रा

परम वीर चक्र

09 सितम्बर 1974 - 07 जुलाई 1999

“ये दिल माँगे मोर!”

एक सूर्य, जो माँ भारती के नभ पर अवतरित हुआ था।
जिसके शौर्य की तपिश धरा के हर छोर तक पहुँची।
हिंद के शेरशाह को उनकी जयंती पर नमन रूप में सादर समर्पित—

“मेरा मन”



प्रकाशन तिथि: 09 सितम्बर 2026

मन के दर्पण में खुद से मिल रहा था... कि रूह के शोर से शीशा चकनाचूर हुआ।
खुद तो अधूरा रह गया, पर इन बिखरे टुकड़ों से “मेरा मन” पूरा हो गया।

अनुक्रमणिका

अध्याय – 1: “वह रात”	1
अध्याय – 2: “कृतज्ञता, सम्मान और कर्तव्य की शुरुआत”	3
अध्याय – 3: “एक आहट”	5
अध्याय – 4: स्पर्श (जो स्पर्श नहीं था)	7
अध्याय – 5: “जो नहीं बदला”	9
अध्याय – 6: उजाले की कीमत	10
अध्याय – 7: “जो कहा नहीं गया”	12
अध्याय – 8: अदृश्य आँखें और एक गणना	13
अध्याय – 9: “भीड़ के बीच”	15
अध्याय – 10: “जवाब”	17
अध्याय – 11: “मन की छुअन”	18
अध्याय – 12: “ठहराव” या “रफ्तार”	20
अध्याय – 13: “समानता से पहले”	21
अध्याय – 14: “परिवर्तन”	22
अध्याय – 15: “अनसुना संवाद”	23
अध्याय – 16: “उत्तर”	24
अध्याय – 17: “3 महीने बाहर”	26
अध्याय – 18: “नियम जो नहीं टूटा”	27
अध्याय – 19: “3 महीने बाद”	28
अध्याय – 20: “एक नंबर की दूरी”	29
अध्याय – 21: “एक छोटा-सा निर्णय”	31
अध्याय – 22: “एक कप चाय... और शुक्रिया”	32

अध्याय – 23: “मन - एक अनछुआ रहस्य”	33
अध्याय - 24: एक गहरा समुद्र: माही	34
अध्याय – 25: “पहली दस्तक, चाय और वो खामोश नज़रें”	36
अध्याय – 26: “बहाने, बातचीत... और पहली आमने-सामने की दूरी”	38
अध्याय – 27: “टूटी हुई सगाई का सच”	41
अध्याय – 28: “एक ऐसा साथ... जिसकी कल्पना भी नहीं थी”	44
अध्याय – 29: “दो रातें... दो द्वंद”	46
अध्याय – 30: “एक संदेश...और शुरू होती कहानी”	48
अध्याय – 31: “एक पैगाम....”	49
अध्याय – 32: “Contact me directly”	50
अध्याय – 33: “नई शुरुआत (पहली चैट)”	52
अध्याय – 34: “बारिश की रात और बेचैन मन”	54
अध्याय – 35: “थकान पर भारी एक जिम्मेदारी”	56
अध्याय – 36: “खुद से पहले”	58
अध्याय – 37: “आधी रात का सूरज	59
अध्याय – 38: 85 किलोमीटर का सफर और एक तस्वीर	62
अध्याय – 39: “एक अनसुलझी पहली और वो 'सिंगल टिक”	66
अध्याय – 40: “बेचैनी का दिन”	69
अध्याय – 41: “खामोशी भरे दिन”	70
अध्याय – 42: “एक और जिम्मेदारी”	72
अध्याय – 43: “एक अनजान सफर”	74
अध्याय – 44: “सच और एक छोटा सा झूठ”	76
अध्याय – 45: “एक पुकार”	78
अध्याय – 46: “एक खतरनाक फैसला”	80
अध्याय – 47: दिसंबर की वही ठंडी सुबह	82

अध्याय – 48: “अधूरी नींद”	87
अध्याय – 49: “सोमवार का दिन (और छोटी-छोटी खुशियां)”	88
अध्याय – 50: “नए साल का पहला दिन”	90
अध्याय – 51: “नई सुबह”	92
अध्याय – 52: “लौटती हुई शाम”	94
अध्याय – 53: “एक और इंकार”	96
अध्याय – 54: “चेहरा एक किताब”	99
अध्याय – 55: “धुंध के पार”	101
अध्याय – 56: “कोहरे की आँख से दिल का दृश्य”	103
अध्याय – 57: “सच की कड़वाहट और एक खामोश ईंधन”	105
अध्याय – 58: “कर्तव्यपथ”	107
अध्याय – 59: “प्रयोगशाला”	109
अध्याय – 60: “संकोच की दीवार”	111
अध्याय – 61: “बीते लम्हे”	113
अध्याय – 62: “सम्मान की वह खामोश रेखा”	115
अध्याय – 63: “हर असफलता एक चिंगारी”	117
अध्याय – 64: “जुनून की राहें”	119
अध्याय – 65: “दृश्य — दो तस्वीरें”	121
अध्याय – 66: “तेरे लिए (एक वादा)”	123
अध्याय – 67: “अदृश्य पहरेदार”	125
अध्याय – 68: “तन्हा रोशनी के नीचे”	127
अध्याय – 69: बिखराव के बीच तलाश	129
अध्याय – 70: “धूप, छांव और एक ठंडी आवाज”	131
अध्याय – 71: “एक अधूरी मंजिल”	133
अध्याय – 72: “मन की बात”	135

अध्याय – 73: “घुमड़ते बादल”	142
अध्याय – 74: “मेरा साथ मत छोड़ो”	144
अध्याय – 75: करवटें, ठंडी चाय और एक रतजगा	148
अध्याय – 76: “खुद के लिए”	150
अध्याय – 77: “बारिश, बेरुखी और नाडा साहब का सुकून”	152
अध्याय – 78: ट्रैफिक सिग्नल की वो प्रशंसक और “नितिन अंकल”	155
अध्याय – 79: “एक खामोश हफ्ता और बवंडर की आहट”	159
अध्याय – 80: खामोशी की मुलाकात	160
अध्याय – 81: फर्ज या दूरी... दिल किसकी सुने?	162
अध्याय – 82: “चाय की छुट्टी और एक टूटता तारा”	164
अध्याय – 83: रसोई का ताना और एक अनकहा इकरार	168
अध्याय – 84: “सच्चाई की ज़मीन पर... एक फैसला”	171
अध्याय – 85: एक चाल... जो सब बदल सकती है	173
अध्याय – 86: “... परछाइयों की चाल”	175
अध्याय – 87: “खुद से पहले उसकी मंजिल”	178
अध्याय – 88: “बिना मंजिल का मुसाफिर”	180
अध्याय – 89: कुछ तो है... जो दिखता नहीं	182
अध्याय – 90: “चाँद, तारे... और वो”	185
अध्याय – 91: “दो पाउच”	187
अध्याय – 92: “कचरे में रखी स्मृति”	189
अध्याय – 93: “पिघलती बर्फ... और एक नया रास्ता”	190
अध्याय – 94: “तलाश... जो खत्म ही नहीं होती”	192
अध्याय – 95: “रात, चाय और सिर्फ तुम”	194
अध्याय – 96: “कच्चे आम का सतू”	196
अध्याय – 97: “रात, रास्ते... और दो दिशाओं में बंटता मन”	198

अध्याय – 98: “सोता जंगल और जागता प्रेम”	201
अध्याय – 99: “मंजिल, सफ़र... और बीच में अटका एक आदमी”	205
अध्याय – 100: “47 डिग्री... की ठंड”	209
अध्याय – 101: “एक गर्म दिन का ठंडा अंत”	212
अध्याय – 102: “तलाश की तलब”	214
अध्याय – 103: “तू मेरी फिक्र है... तू मेरा डर...”	216
अध्याय – 104: “ठंडे शेक की गर्माहट”	219
अध्याय – 105: “हां....अब सुधार ही दो मुझे”	221
अध्याय – 106: “टॉवेल का राज”	225
अध्याय – 107: “पहाड़ के पार की चांदनी”	228
अध्याय – 108: “एक तस्वीर... और भीतर उठता हुआ डर”	233
अध्याय – 109: “जिसको तू ढूँढ़ रहा है...”	236
अध्याय – 110: “पत्थर पिघल गया”	238
अध्याय – 111: “बारिश, गलियाँ... और एक अधूरा सफ़र”	240
अध्याय – 112: “और आज इश्क का प्रश्नपत्र”	242
अध्याय – 113: “मेरा मन”	246
अध्याय – 114: “मन का मौसम”	250
अध्याय – 115: “यज्ञ, आहुति और एक खामोश जीत”	252
अध्याय – 116: “8:37 का नियम”	256
अध्याय – 117: “एक रोटी तुम्हारे लिए”	260
अध्याय – 118: “मन का दर्पण”	264
अध्याय – 119: “दो बतख और एक सवाल”	266
अध्याय – 120: “सुबह से पहले”	268
अध्याय – 121: “दर्द या सुकून”	273
अध्याय – 122: सायरन और सन्नाटा.....	275

अध्याय – 123: “खुद को भी खो दूंगी”	280
अध्याय – 124: “मन की धूल”	282
अध्याय – 125: “मन का कुरुक्षेत्र”	284
अध्याय – 126: “मन का सुकून”	286
अध्याय – 127: “मन खुश हुआ”	291
अध्याय – 128: “मन की चाह”	293
अध्याय – 129: “मन का बहाव”	296
अध्याय – 130: “सुबह नई... सफर वही”	298
अध्याय – 131: “मन का द्वंद”	299
अध्याय – 132: “मन की चिंता”	301
अध्याय – 133: “मन का चांद”	304
अध्याय – 134: “खाली आँगन”	306
अध्याय – 135: “आपके पापा जी”	308
अध्याय – 136: “मन की खुशी....मन से बढ़कर”	310
अध्याय – 137: “बिना पावती का सफर”	312
अध्याय – 138: “मन की अदला-बदली”	316
अध्याय – 139: “मन का सपना”	318
अध्याय – 140: “वापसी”	320
अध्याय – 141: “थार के उस पार”	322
अध्याय – 142: “निर्णय”	325
अध्याय – 143: “मन का सैलाब”	328
अध्याय – 144: “अपने मन से”	337
अध्याय – 145: “बहन का मन”	339
अध्याय – 146: “मन का विश्वास”	342
अध्याय – 147: मन की तरफ.....	344

अध्याय – 148: “मन से मन तक”	347
अध्याय – 149: “मन की खुशी”	349
अध्याय – 150: “संकल्प”	351
अध्याय – 151: “पहला पड़ाव”	353
अध्याय – 152: “दो राहें”	355
अध्याय – 153: मन की मन्नत	357
अध्याय – 154: “मन की धूप”	362
अध्याय – 155: “समय का चक्र”	365
अध्याय – 156: “दहलीज”	367
अध्याय – 157: आने वाला कल	371
अध्याय – 158: “एक अनजान कॉल”	378
अध्याय – 159: “तैयारियां”	379
अध्याय – 160: “रंग और रस”	381
अध्याय – 161: “दो राहों के बीच”	384
अध्याय – 162: “एक पुकार की दिशा में”	386
अध्याय – 163: “एक सही कदम”	388
अध्याय – 164: “भाई”	390
अध्याय – 165: “छोटे-छोटे सपने”	392
अध्याय – 166: “मेरे हो”	395
अध्याय – 167: “प्रथम प्रश्न?”	398
अध्याय – 168: “दर्पण के सामने”	400
अध्याय – 169: “एक लिफाफा, पचास लाख और एक प्रश्न”	402
अध्याय – 170: “दो मोर्चे”	404
अध्याय – 171: “अनकहे प्रश्न”	405
अध्याय – 172: “अनचाही चेतावनी”	407

अध्याय – 173: “उलझनों का जाल”	409
अध्याय – 174: “घर की चौखट तक”	411
अध्याय – 175: “टूटन की दहलीज़”	413
अध्याय – 176: “एक और सच”	415
अध्याय – 177: “एक कठिन निर्णय की तरफ”	417
अध्याय – 178: “आखिरी उम्मीद”	419
अध्याय – 179: “बेचैन दोपहर”	422
अध्याय – 180: “साथ रहना...”	424
अध्याय – 181: “माँ की पुकार”	426
अध्याय – 182: “अशांत मन”	429
अध्याय – 183: “निर्णय”	431
अध्याय – 184: “सपने का संदेश”	434
अध्याय – 185: “कत्ल की रात”	440
अध्याय – 186: “फोन का मौन”	442
अध्याय – 187: “मौन जारी. .”	444
अध्याय – 188: “विश्वास या जिद”	446
अध्याय – 189: अपराधबोध	450
अध्याय – 190: “आधा रास्ता”	455
अध्याय – 191: “धुंध का छटना”	457
अध्याय – 192: रेत का महल	459
अध्याय – 193: “शायद”(एक मृगतृष्णा)	462
अध्याय – 194: अचल पहाड़, विकल पुकार	465
अध्याय – 195: अंतिम 'हाँ'	469
अध्याय – 196: “एक पत्थर से पुकार”	475
अध्याय – 197: “आखिरी किश्त”	479

अध्याय – 198: “सुहाना प्रयास”	484
अध्याय – 199: पहचान पर परत	488
अध्याय – 200: “दो चेहरे”	491
अध्याय – 201: “चलती बस और एक रुका हुआ सच”	493
अध्याय – 202: अँधेरे का पहेरेदार	496
अध्याय – 203: रात का रखवाला	500
अध्याय – 204: “मन की आहुति”	503
अध्याय – 205: लौटता हुआ अँधेरा	506
अध्याय – 206: “रूह का शोर”	511
अध्याय – 207: “सच की महक”	513
अध्याय – 208: “मन की शादी”	515
अध्याय – 209: सच का शोर	519
अध्याय – 210: “मन”	529

अध्याय - 1

“वह रात”

रात का अंतिम प्रहर था।

गांव सो रहा था; सड़कें शांत थीं, आकाश स्थिर, और अस्तित्व अवाना (माही) मानो वर्षों की थकान अपने भीतर समेटे गहरी नींद में था। तभी, सिरहाने से सटी एक छोटी सी टेबल पर रखे मोबाइल में एक हल्की सी थरथराहट हुई, मेज मानो डरकर कांप उठी और कमरे का सूनापन एक पल में विदा हो गया। नींद के सफर को अधूरा छोड़ उसने हाथ आगे बढ़कर जैसे ही फोन उठाया, नींद से भारी पलकों के बीच, स्क्रीन पर झपके उस एक अनपेक्षित संदेश ने सुस्त नजरों को चौंका दिया।

"Congratulations... You are selected."

एक स्वाभाविक जड़ता ने उसे जकड़ लिया। वह बिना पलक झपकाए उन शब्दों को देखता रहा। आँखों ने अक्षरों को पढ़ तो लिया था, लेकिन मन अभी इस वास्तविकता को स्वीकार करने का हौसला नहीं जुटा पा रहा था। यह वह चयन था जिसके लिए उसने अपने यौवन के सुनहरे दिन किताबों के पन्नों के नाम कर दिए थे, बहुत कुछ अपने से दूर किया पर कहानी इतनी साधारण नहीं थी। भर्ती केवल परीक्षा तक सीमित नहीं रही थी; वह एक न्यायिक संकट में उलझ गई थी—अनिश्चितता, स्थगन और निराशा।

जहाँ अधिकांश प्रतियोगी भाग्य को कोसकर किनारे हो गए, वहीं माही ने अपने सपनों का अस्तित्व समाप्त नहीं होने दिया और अपने चंद सहयोगियों के साथ खड़ा रहा। उन्होंने दस्तावेज जुटाए, तर्क तैयार किए और युवाओं को संगठित किया। सरकार और न्यायालय के बीच वे सब एक संयमित, तार्किक और निर्भीक स्वर बनकर उभरे। वह उत्तेजना से नहीं, विवेक से लड़ा; आक्रोश से नहीं, संयम से जीता। धीरे-धीरे वह सिर्फ एक अभ्यर्थी नहीं रहा, बल्कि धैर्य, नेतृत्व और विश्वास का प्रतीक बन गया।

और आज, उसी संघर्ष का परिणाम रात की निस्तब्धता में एक छोटे-से संदेश के रूप में उसके सामने था। माही ने आँखें बंद कीं। उसने छत को नहीं देखा, बल्कि भीतर झाँका। वर्षों की तपस्या आज फल में बदल चुकी थी।

“आशीर्वाद”

फोन को एक तरफ रख कर कुछ पल बिस्तर पर बैठा रहा। यह उत्साह का क्षण था, पर उसने उसे शोर में नहीं बदला। वह धीरे से उठा और कमरे से बाहर आया। सबसे पहले माता-पिता के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा। हल्की दस्तक हुई, और फिर जब उन्होंने नींद भरी आँखों से उसे देखा, तो माही ने कुछ नहीं कहा। बस झुक गया और चरण स्पर्श किए। उसकी जुबां से पहले शब्द निकले—“चयन हो गया...”

माँ की आँखें भर आईं। पिता का हाथ उसके सिर पर कुछ क्षणों तक स्थिर रहा, जैसे वर्षों का मौन आशीर्वाद उसी स्पर्श में उतर रहा हो। घर में शोर नहीं हुआ, लेकिन माता-पिता की खुशी किसी उत्सव से बड़ी थी—वह उनके त्याग की स्वीकृति थी।

माही अंतर्मुखी था। लोगों के काम आता था, पर लोगों में नहीं रहता था। उसने कुछ निजी लोगों को सूचना दी—औपचारिकता में नहीं, स्नेह में। न सोशल मीडिया पर घोषणा, न स्वयं की प्रशंसा। वह जानता था कि परिश्रम का फल बोलता है, मनुष्य को नहीं बोलना चाहिए। ईश्वर के सामने खड़ा होकर उसने सिर्फ गर्दन झुकाई—मानो कृतज्ञता स्वरूप खुद को समर्पित कर दिया हो।

सुबह का सूरज आज कुछ अलग था। रास्ते भी जैसे सम्मान से खुले थे। माही मुख्यालय की ओर निकल पड़ा, जहाँ से उसे कार्यस्थल आवंटित होना था। वह सिर्फ एक छोटी सी नौकरी जॉइन करने नहीं जा रहा था, बल्कि अपने संघर्ष के प्रमाणपत्र को औपचारिक रूप देने जा रहा था।

अध्याय - 2

“कृतज्ञता, सम्मान और कर्तव्य की शुरुआत”

मुख्यालय का प्रांगण उस दिन वैसा ही था। पर वातावरण बदल चुका था। वहाँ वे सभी चेहरे मौजूद थे जो कभी प्रतियोगी थे और फिर संघर्ष के साथी बने। जब भर्ती की वह लड़ाई केवल नियुक्ति की नहीं थी, आत्मसम्मान की थी। और उस संघर्ष में माही एक संयत स्वर बनकर उभरा था। ग्रामीण अंचल से आए वे युवा सरकारी सेवा को सिर्फ वेतन नहीं, परिवार की पीढ़ियों का सहारा मानते थे। उनकी आँखों की चमक माही को बताने के लिए काफी थी कि वह केवल चयनित अभ्यर्थी नहीं, एक सम्मान का प्रतीक बन चुका है। पर उस के भीतर कोई शोर नहीं था।

****नियुक्ति:****

औपचारिकताएँ पूर्ण हुईं दस्तावेज़ जमा हुए। हस्ताक्षर हुए। उसके बाद कार्य स्थल दिए गए, उसे गृह जिला हिसार शहर में जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी कार्यालय आवंटित किया गया जो उसके गाँव से 30 किमी की दूरी पर था, रात होते-होते वह घर के लिए निकल पड़ा। सड़क पर हल्की रोशनी थी, हवा में सुकून। उसके पास अब एक नौकरी थी और उसकी वजह से सम्मान था। लेकिन ये अंतिम इम्तिहान नहीं था कि अब उसके जीवन में एक ऐसा अध्याय - प्रवेश करेगा जहाँ विवेक से नहीं, हृदय से परीक्षा होगी।

****कर्तव्य का आरम्भ:****

सुबह का सूरज आज केवल साधारण प्रकाश नहीं था, कर्तव्य का संकेत था। माता-पिता के चरण स्पर्श कर, अपने इष्ट को प्रणाम कर माही कार्यस्थल की ओर निकल पड़ा।

सहयोगी कर्मचारियों को मिठाई खिला कर “प्रशासनिक सहायक” के पद पर विधिवत कार्यभार ग्रहण किया गया। फाइलें उसके सामने थी, ईमानदारी के साथ अपना कार्य शुरू किया। पीछे का हर रुका हुआ कार्य उसने एक-एक कर पूरा किया। नई प्रक्रियाएँ शुरू कीं। वरिष्ठ अधिकारियों के सहयोग से व्यवस्था ऐसी बनाई कि आमजन को अनावश्यक

चक्कर न काटने पड़ें। लोगों ने फर्क महसूस किया। कार्यालय में उसकी छवि केवल कर्मचारी की नहीं, एक उत्तरदायी व्यक्ति की बनने लगी।

****व्यवस्थित जीवन:****

कुछ ही महीनों में उसकी दिनचर्या संतुलित हो गई। सुबह कर्तव्य, शाम अध्ययन या परिवार, और रात शांति। पहली तनख्वाह आई। उसने उसे केवल स्वयं पर खर्च नहीं किया। कुछ अभावग्रस्त लोगों की सहायता की। कुछ छोटे शौक पूरे किए—पर सीमा में। वह फैशन और दिखावे से दूर था। अपव्यय उसे स्वीकार नहीं था। पैसा उसके लिए साधन था, प्रदर्शन नहीं। धीरे-धीरे उसकी जिंदगी व्यवस्थित हो चुकी थी। सम्मान था, स्थिरता थी, संतोष था। और जीवन हँसी-खुशी बीतने लगा।

अध्याय - 3

“एक आइट”

कुछ महीने बीत चुके थे। सुबह का समय था और घड़ी ने दस बजाए थे। खिड़की से आती धूप फाइलों को सहला रही थी। माही कागजों पर झुका उन्हें पलट रहा था, शायद कुछ ढूँढ़ रहा था।

तभी, पीछे से आई एक मधुर, शालीन आवाज़ ने उसकी एकाग्रता तोड़ दी। स्वर कोमल था, पर उसमें एक गूँज थी, जैसे वह केवल कानों तक नहीं, सीधे स्मृति तक पहुँचा हो। माही थोड़ा-सा चौंका।

उसने मुड़कर देखा। सामने एक युवा लड़की खड़ी थी—सौम्य, संयत, हाथों में कुछ कागज़। चेहरे पर वह संस्कारयुक्त सरलता जो बनावटी नहीं लगती। पर जैसे ही उनकी नज़रें मिलीं, क्षण भर के लिए वह भी चौंकी। उसकी आँखों में पहचान की चमक थी।

“अरे... माही सर...”

फिर तुरंत स्वयं को सँभालते हुए उसने कहा:

“सर...”

माही के भीतर क्षणिक हलचल हुई। पहली नज़र में वह प्रभावित तो था, पर स्मृतियाँ धुँधली थीं। चेहरा जाना-पहचाना-सा था, पर समय ने उसके किनारे धुँधला दिए थे। लड़की ने मुस्कुराते हुए पूछा:

“नहीं पहचाना?”

फिर धीमे से बोली:

“मैं... मानवी शर्मा (‘मन’).”

सिर्फ नाम नहीं—एक शब्द। और शब्द भी ऐसा जो साधारण लगता है, पर अपने भीतर असंख्य भाव समेटे होता है। “मन”... यह सुनते ही माही के भीतर कुछ पुरानी ब्लैक-एंड-व्हाइट तस्वीरें घूमने लगीं। कॉलेज का प्रांगण, भूगोल की कक्षा, गेस्ट फैकल्टी के रूप में खड़ा वह। ‘मन’ उसी कॉलेज की छात्रा थी जहाँ माही कभी पढ़ाया करता था।

अब संयोग देखिए—इसी महीने, मन ने उसी विभाग में, दूसरे उपमंडल में, कनिष्ठ कर्मचारी के रूप में ज्वाइन किया था।

कमरे में सिर्फ मौन था। वर्तमान और अतीत एक ही क्षण में खड़े थे। माही को अभी पता नहीं था—यह केवल पुनर्मिलन नहीं, एक ऐसी कहानी का द्वार है जिसमें रूहानी आकर्षण भी होगा, समर्पण भी, और शायद वही परीक्षा जिसके लिए नियति अब तक प्रतीक्षा कर रही थी।

अध्याय - 4

स्पर्श (जो स्पर्श नहीं था)

शहर का पुराना और प्रतिष्ठित जाट कॉलेज। बी.एससी. अंतिम वर्ष की छात्रा ‘मन’—चंचल, आत्मविश्वासी, थोड़ी पारंपरिक और थोड़ी आधुनिक। कक्षा के बाद सहेलियों संग हँसी-मजाक और गलियारों में अटखेलियाँ, यही उसका जीवन था। उधर उसी परिसर में एक शांत, गंभीर युवक—माही। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के बीच अपना खर्च निकालने के लिए भूगोल विभाग में अतिथि प्राध्यापक। कम बोलने वाला, सीधा चलने वाला और अपनी ही दुनिया में सीमित।

वह सुबह, बस रुकी। भीड़ उतरी, जल्दबाज़ी, धक्का-मुक्की और हलचल का माहौल था। उसी अफरा-तफरी में मन की चुन्नी बस के दरवाज़े में अटक गई। संतुलन बिगड़ा, पैर फिसले और शायद वह गिर ही जाती, अगर उसी बस में मौजूद युवक ने आगे बढ़कर उसे थाम न लिया होता। उसने बिना सोचे, अपने संतुलन की परवाह किए बिना उसे पकड़ लिया।

कुछ सेकंड, भीड़ की आवाज़ें पीछे छूट गईं। वह लगभग उसके हाथों में थी—पर उस स्पर्श में कोई असभ्यता नहीं थी, कोई अवसरवाद नहीं था, सिर्फ संरक्षण था। उसने हल्के से आवेश में कहा—“संभालो... खयाल करो खुद का।” बस इतना। पर वह वाक्य सिर्फ चेतावनी नहीं था, वह एक देखभाल थी, जिम्मेदारी का संकेत था। वह संभल गई, चुन्नी छूटी और वो आगे बढ़ गई। पर भीतर कुछ थम गया था।

— औपचारिकता का आवरण

कुछ पल स्मृतियों के कोहरे में खड़े रहने के बाद माही ने स्वयं को संयत किया। वर्तमान ने उसे वापस बुलाया। उसने सामने रखी पानी की बोतल उठाई और सहज स्वर में पूछा:

“पानी पिएँगी?”

मन ने हल्के से सिर हिलाकर मना किया। माही ने बोतल होंठों से लगाई और लगभग एक ही घूँट में सारा पानी पी गया, फिर प्रचलित दफ़्तर लहजे में पूछा:

“बताइए?”

मन ने हाथ में पकड़े कागज़ आगे बढ़ाए:

“साहब ने दिए हैं... चेक कर लीजिए।”

स्वर में पूरी तरह औपचारिकता थी—ना कॉलेज की चंचलता, ना बस वाले दिन की असहजता। बस एक कर्मचारी से कर्मचारी का संवाद। इतना कहकर वह मुड़ी और कमरे से बाहर निकल गई। दरवाज़ा धीरे से बंद हुआ। वो फिर से फाइलों पर झुक गया। चेहरा शांत, हाव-भाव स्थिर, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पर भीतर धूल जमी कुछ तस्वीरें साफ़ हो चुकी थीं। बस इतना ही। ना उसे कोई विशेष उत्साह था, ना कोई बेचैनी। बस स्मृति की एक हल्की परत फिर से जीवित हुई थी। और शायद... कहानी अभी सच में शुरू भी नहीं हुई थी।

अध्याय - 5

"जो नहीं बदला"

एक दिन दफ्तर में एक छोटा-सा दृश्य घटा, पर उसका असर बड़ा था। सफाई कर्मचारी—साधारण, चुप रहने वाला, जिसकी तनख्वाह कई महीनों से अटकी हुई थी—अचानक दफ्तर के बीचोंबीच रो पड़ा। उसकी आँखों में बेबसी थी और आवाज़ काँप रही थी। उसने कहा:

****सफाई कर्मचारी:**** “साहब... घर में त्योहार है... बच्चे इंतज़ार कर रहे हैं...”

वह नियम नहीं जानता था, वह प्रक्रिया नहीं समझता था। उसे बस अपने घर की जरूरत दिख रही थी। सबने सुना। कुछ ने नज़रें फेर लीं, कुछ ने सरकारी प्रावधानों का हवाला दिया, किसी ने फाइल की मजबूरी बताई, तो किसी ने ‘प्रक्रिया चल रही है’ कहकर बात टाल दी। वह रोते-रोते ही चला गया और अपना दर्द साथ ले गया। पर वह दर्द वहीं नहीं रुका। कोई और भी था जिसे उस रात नींद ठीक से नहीं आई।

अगली सुबह उसने पुरानी फाइलें निकालीं, नियमों की किताबें खोलीं और कागज़ों की कमियाँ ढूँढ़ीं। जहाँ प्रक्रिया अटकी थी, उसे सुधारा। जहाँ हस्ताक्षर चाहिए थे, करवाए। किसी ने कहा— “इतनी मेहनत की क्या जरूरत?” किसी ने असंतोष जताया— “नज़ीर गलत जाएगी।” पर माही शांत रहा। दोपहर तक कागज़ भुगतान शाखा पहुँचे, और कुछ ही दिनों में उस सफाई कर्मचारी की तनख्वाह निकल गई। उसके घर में त्योहार आया।

कई लोगों को यह अच्छा नहीं लगा, उन्हें व्यवस्था में हलचल पसंद नहीं थी। पर एक चेहरा था जो चुपचाप मुस्करा रहा था—‘मन’। उसने दूर से सब देखा। किसी से कुछ कहा नहीं, बस मन ही मन बोली:

“ये नहीं बदलेगा...”

उसे लगा वह वही है जो कॉलेज में था—संयमी, संवेदनशील, दूसरों के लिए खड़ा होने वाला।

अध्याय - 6

उजाले की कीमत

उस घटना के बाद वो दफ़्तर में चर्चा का विषय बन गया। कुछ लोगों के लिए वह सम्मान का कारण था, तो कुछ के लिए वही बात भीतर-ही-भीतर जलन बन चुकी थी।

"बहुत ईमानदारी दिखा रहा है..."

समय बीतता गया, लेकिन वो नहीं बदला। वह रोज़ की तरह समय पर दफ़्तर पहुँचता, अपने हिस्से के काम को पूरी निष्ठा से करता और जो भी व्यक्ति किसी काम से उसके पास आता, उसे पहले बैठने के लिए कहता।

दफ़्तर में आने वाली बुजुर्ग महिलाओं को वह हमेशा "माता जी" कहकर संबोधित करता, जबकि युवतियों से "बहन जी" कहकर बात करता। उसके व्यवहार में विनम्रता थी, पर उतनी ही मर्यादा भी। वह अनावश्यक बातचीत से बचता और आवश्यक बात भी सम्मानपूर्वक करता।

धीरे-धीरे उसने दफ़्तर की छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देना शुरू कर दिया। कहीं साफ़-सफ़ाई की कमी दिखती, तो उसे ठीक करवाता। बेवजह जलती लाइट या पंखा चलता दिखता, तो स्वयं बंद कर देता। किसी कर्मचारी को मूलभूत सुविधा की आवश्यकता होती, तो उसके लिए भी प्रयास करता। रुके हुए कार्यों को यथाशीघ्र निपटाने की कोशिश उसकी आदत बन चुकी थी।

इन छोटी-छोटी बातों का असर दिखाई देने लगा। कुछ लोगों को उसमें एक कर्मठ और ईमानदार कर्मचारी दिखाई देता था, जबकि कुछ लोगों को वही स्वभाव असहज करने लगा।

क्योंकि हर व्यवस्था में एक सीमा होती है। उस सीमा तक ईमानदारी प्रशंसा पाती है, लेकिन जब वही ईमानदारी दूसरों की लापरवाही पर प्रश्नचिह्न बनने लगे, तो प्रेरणा नहीं, असुविधा बन जाती है।

माही को इसका आभास नहीं था। जो लोग उसके सामने मुस्कराते थे, उनमें से कुछ के भीतर उसकी बढ़ती छवि चुपचाप खटकने लगी थी।

और त्रासदी कभी अचानक नहीं आती...

वह पहले वातावरण बदलती है।

उसे यह भी नहीं पता था कि उसके यही सिद्धांत बहुत जल्द अपनी कीमत मांगने वाले हैं। जल्द ही एक धोखाधड़ी के झूठे मामले में उसकी शांत और निष्कलंक छवि का ही लाभ उठाकर उसे फँसाने का प्रयास किया गया। कई दिनों तक उसने मानसिक यातनाएँ सही, लेकिन धैर्य, सूझबूझ और सत्य के बल पर वह न केवल स्वयं उस संकट से पाक-साफ बाहर निकल आया, बल्कि अपने कुछ सहयोगियों को भी उस झूठे प्रकरण से मुक्त कराने में सफल रहा।

विडंबना यह रही कि जो षड्यंत्र उसकी छवि धूमिल करने के लिए रचा गया था, वही अंततः उसकी ईमानदारी और विश्वसनीयता को पहले से कहीं अधिक दृढ़ता से स्थापित कर गया।

अध्याय - 7

"जो कहा नहीं गया"

दफ़्तर की एक कामकाजी सुबह थी। मन कागज़ लेकर आती, टेबल पर रखती और कुछ कहे बिना लौट जाती। दिन भर यही क्रम चलता रहा। उसकी चंचलता जैसे कहीं खो गई थी और आँखों में एक दबा हुआ तनाव था। माही संवेदनशील था; वह लोगों के शब्दों से अधिक उनकी चुप्पियों को पढ़ता था। अगले दिन उसने उसे रोक ही लिया:

****माही:**** “आप ठीक नहीं लग रहीं... क्या हुआ?”

****मन:**** “नहीं... कुछ नहीं।”

****माही:**** “आप छुप नहीं सकतीं।”

मन जानती थी कि उसके चेहरे की लकीरें उससे छूट नहीं सकतीं। थोड़ी असहजता और झिझक के साथ उसने कहा:

****मन:**** “सर... वो मेरी ब्रांच बदलने की बात कर रहे हैं...”

****माही:**** “आप इस बदलाव के पक्ष में नहीं हैं?”

मन ने धीरे से सिर हिलाकर ‘ना’ कहा। कुछ पल सब शांत रहा, फिर माही बोला:

****माही:**** “आप जा सकती हैं। आप यहीं रहेंगी। मैं प्रयास करूँगा।”

उसके स्वर में आश्वासन था—ना कोई वादा, ना कोई भावना, सिर्फ एक संकल्प। माही सामान्यतः लड़कियों के सामने असहज रहता था और दूरी बनाए रखता था, पर आज एक परेशान सहकर्मी के सामने उसने अपनी असहजता किनारे रख दी थी।

कुछ दिनों बाद, आदेश रुक गए और शाखा परिवर्तन स्थगित हो गया। दफ़्तर में इसे प्रभाव कहा गया; कुछ ने इसे पक्षपात समझा, तो कुछ ने साहस। पर माही के लिए यह सिर्फ एक मानवीय सहयोग था। मन भी यह जानती थी, पर फिर भी किसी के लिए खड़ा होना सिर्फ प्रशासनिक निर्णय नहीं होता, वह स्मृति बन जाता है। और स्मृतियाँ धीरे-धीरे भावनाओं का आकार लेने लगती हैं।

अध्याय - 8

अटश्य ऑखें और एक गणना

एक सुबह अपने काम में व्यस्त था, तभी उसे अहसास हुआ कि कोई उसे देख रहा है। सिर्फ देख नहीं रहा, बल्कि ठहरकर देख रहा है। उसने नज़र उठाई, एक क्षण के लिए स्थिर हुआ, फिर वापस फाइल में लग गया। उसने सोचा, “नहीं... शायद वहम है।”

लेकिन दिन में दो बार उसे फिर वही अहसास हुआ। दोपहर के बाद गलियारे में चलते हुए पीछे कदमों की आहट सुनाई दी। उसने मुड़कर नहीं देखा, बस मन में आया— “मैं अभी-अभी एक आफत से निकला हूँ... अब ये नई नज़र क्या चाहती है?”

किसी अगले दिन, काम करते-करते माहौल थोड़ा हंसी-मज़ाक का हुआ, फिर से कुछ ठहरता सा दिखा। दिल में एक शंका उठी— क्या हो सकता है और क्यों? लेकिन कुछ तो है, जिसे नज़रे दिखा रही हैं पर दिल नहीं समझ पा रहा। खैर, पाँच बज गए और ऑफिस का समय समाप्त हो गया।

गणना और धड़कन अगले दिन सीनियर के सामने, “अस्तित्व! Raw Water की स्टेटमेंट, पूरी कैलकुलेशन के साथ तैयार कर दो।”

माही ठिठका और बोला, “सर, ये काम मैंने पहले नहीं किया... तुरंत तो शायद न कर पाऊँ। लेकिन एक बार कोई समझा दे तो कर दूँगा।”

सीनियर ने हल्की गंभीरता दिखाते हुए कहा, “देखो, करोड़ों का पैसा दूसरे विभागों में अटका पड़ा है, ये प्राथमिकता का काम है।”

एक क्षण की चुप्पी के बाद माही ने कहा, “Ok sir. I will try and assure you.”

“Good.”

बाहर आकर वह अपनी सीट पर बैठा तो सोचा, ‘कह तो दिया... पर आता तो नहीं है।’ उसने सिर झुकाकर सोचा कि राहुल यह काम करता है, उसी से सीख लेता हूँ। वह उठने ही वाला था कि उसे फिर वही अहसास हुआ—जैसे किसी की नज़रें उस पर टिक गई हों। उसने हल्का-सा इधर-उधर देखा, पर कुछ नहीं था। ‘भ्रम... खैर छोड़ो। काम ज़रूरी है।’

वह राहुल के कमरे की ओर गया, “राहुल, Raw Water कैलकुलेशन के बारे में थोड़ा समझा दो।”

राहुल व्यस्त था, “Sure... but I’m busy. Can you wait?”

“मुझे अभी करना है।”

राहुल ने ‘मन’ को आवाज़ लगाई, “मानवी!”

मन अंदर आई, “Yes sir.”

“अस्तित्व सर को Raw Water calculation समझा दो।”

मन ने कहा, “Ok sir.”

मन समझा रही थी—प्रक्रिया, आँकड़े, क्रम। माही समझ भी रहा था, पर माही के भीतर कुछ और भी चल रहा था। धड़कन सामान्य सीमा को पार कर रही थी और आवाज़ में कंपन था।

मन ने पूछा, “समझ आया, सर?”

माही ने धीमी आवाज़ में कहा, “हाँ...” यह ‘हाँ’ बोलने में जितनी ताकत लगी, उतनी शायद वरिष्ठ अधिकारी को “ना” कहने में नहीं लगती। माही के मन में उधेड़बुन शुरू हो गई—क्यों? क्यों लड़कियों के सामने मुझे ऐसा होता है, या फिर किसी एक ही लड़की के सामने?

मन ने अपनी बात पूरी की, “ठीक है सर, आपका Raw Water account नए तरीके से open हो जाएगा। अगर जरूरत पड़े तो बुला लीजिएगा।”

“Ok.”

वह चली गई, पर माही कुर्सी पर बैठा रहा। भीतर एक कशमकश थी—क्या यह सिर्फ काम था या कुछ और? क्या किसी के नाम का कोई अकाउंट किसी के दिल में भी खुलने वाला था? वह उठकर बाहर आया, गलियारे में चलते हुए फिर वही नज़रें महसूस हुईं। इस बार स्पष्ट। उफ़। उसने सोचा, “खैर छोड़ो... अभी मुझे पानी की जरूरत है।”

वह वॉटर कूलर की ओर बढ़ गया। पीछे, किसी की निगाहें अब भी उसका हिसाब लगा रही थीं।

अध्याय - 9

"भीड़ के बीच"

अगले दिन। माही अपनी सीट पर था। “Peon से, राहुल को बुलाना।” “जी।”

कुछ देर बाद राहुल— हां।

“राहुल भाई, फील्ड स्टाफ को बुला लो। उनसे डिटेल भरवाकर मेरे पास भेज दो। बहुत जरूरी है।”

“ठीक है।” राहुल ने कहा

कुछ देर बाद राहुल के कमरे में भीड़ थी। फील्ड स्टाफ। रजिस्ट्रार। फाइलें। गर्मी से सब पसीने में भीगे हुए। उनके बीच वह भी थी — man. माही को देखते ही चेहरे पर मुस्कान उभरी। बहुत छोटी। पर स्पष्ट। माही ने पूछा — “राहुल नहीं है क्या?” “नहीं सर, वो बाहर गए हैं किसी काम से।”

“तो आप अकेली?”

“जी... अभी के लिए।”

“ठीक है, सबको मेरे कमरे में भेज दो। मैं कर कर देता हू।”

वह कुछ कहना चाहती थी — “नहीं सर, मैं...”

“अरे कोई नहीं।” माही ने खुद ही सबको इशारा किया — “चलो, मेरे कमरे में।” मन भीतर से और बाहर से “थैंक यू” कहकर आभार जताती है। उसके स्वर में औपचारिकता थी, पर आँखों में कुछ और।

विवरण लेना शुरू हुआ। काम पूरी गंभीरता से चल रहा था। पर बीच-बीच में — वही अहसास। जैसे कोई देख नहीं रहा... घूर रहा है। माही ने सिर उठाया। सब लोग अपने काम में लगे थे। फिर भी — वातावरण में कुछ बदल गया था। अब यह सिर्फ आकर्षण नहीं लग रहा था। न ही सिर्फ जिज्ञासा। यह नजर या तो अधिकार चाहती थी या निर्णय ले चुकी थी।

माही ने काम बंद किया। “ठीक है, बाकी डिटेल्स कल पूरी कर लेंगे।” भीड़ छँट गई, कमरे ने सांस ली। पर एहसास खाली नहीं हुआ। उसे लगा — यह कहानी सिर्फ नज़र की नहीं है। यह इरादे की है।

अध्याय - 10

"जवाब"

दो दिन किसी वजह से ऑफिस से बाहर रहने के बाद माही सीधे साहब के कमरे में गया। काम की समीक्षा। कुछ दिशा निर्देश हल्का-सा संतोष। वापस लौटते हुए — फिर वही नजरें। अब भ्रम नहीं था। पहचान थी। अपनी सीट पर पहुँचा तो दो दिन की फाइलों का ढेर टेबल पर रखा था।

“उफ़... दो दिन में ही इतना काम बढ़ जाता है।” वह तेजी से सब निपटाने लगा। कागज़, ड्राफ्टिंग, साइना। तभी सामने से आवाज आई — “पहले पानी पी लीजिए।”

उसने सिर उठाया। नजरें मिलीं। एक की आँखों में सवाल था। दूसरे की आँखों में जवाब। गिलास टेबल पर रखा गया। पर हाथ अभी भी गिलास पर था। मौन लंबा हो गया। माही ने सीधे पूछा — “आप का मकसद क्या है?”

कुछ क्षण की चुप्पी। फिर धीमी आवाज — “आपका साथ।”

कमरे का मानो दम घुट गया। माही की आँखों में न आश्चर्य था, न उत्तेजना। बस स्पष्टता। “देखिए... मुझे ये सब पसंद नहीं है। मैं यहाँ काम करने आता हूँ। कृपया मुझे मेरा काम करने दीजिए... बहन जी।”

बहन जी। एक शब्द। पर उस शब्द ने सारी संभावना समाप्त कर दी।

आकांक्षा — ऑफिस की स्टेनो टाइपिस्ट — जिसकी नजरें इतने दिनों से कुछ खोज रही थीं, आज पहली बार खाली हो गई। वह कुछ कहना चाहती थी। शायद बहुत कुछ। पर शब्द अब उसके पास नहीं थे। जिस उम्मीद को उसने बोलने से पहले ही दिल में आकार दिया था, वह मिलने से पहले ही ओझल हो गई। वह मुड़ी। धीरे से चली गई।

माही ने पानी का गिलास उठाया। एक गहरी साँस ली। “हर नज़र मोहब्बत नहीं होती। कुछ सिर्फ आकर्षण होती है। और आकर्षण... को हर बार जवाब की जरूरत नहीं।” टेबल पर फाइलें अभी भी पड़ी थीं। पर आज एक और फाइल बंद हो चुकी थी।

अध्याय - 11

“मन की छुअन”

अगले दिन,

“उदय सिंह...” माही ने आवाज़ दी। दरवाज़े पर अजय आ खड़ा हुआ।

****अजय:**** “जी सर?”

****माही:**** “राहुल sir से कहो फील्ड वाला डेटा submit करो।”

****अजय:**** “जी।”

काफी देर हो गई, कोई नहीं आया। माही ने फिर पुकारा, “अजय...”

****अजय:**** “जी सर?”

****माही:**** “राहुल को दोबारा बोलो।”

****अजय:**** “Ok सर।”

कोई प्रभाव ना होता देखा अब वो खुद उठ खड़ा हुआ और राहुल के कमरे की ओर बढ़ा। दरवाज़ा आधा खुला था। अंदर राहुल नहीं था, उसकी सीट पर “मन” अकेली बैठी थी। एक क्षण को वह ठिठका और वापस मुड़ने ही वाला था कि तभी आवाज़ आई—

****मन:**** “सर... बताइए।”

उसकी आवाज़ में नरमी थी।

****माही:**** “नहीं... वो... कुछ नहीं...”

उसकी आवाज़ में हड़बड़ाहट साफ़ थी। मन मुस्कराई।

****मन:**** “अरे बताइए ना...”

माही ने खुद को संयत किया, “वो... डेटा...”

****मन:**** “हाँ, ready है। One minutel”

वह झुकी और कागज़ पलटे। माही की नज़र उसके चेहरे पर नहीं, सामने पड़े कागज़ों पर थी, पेन ढूँढ़ते हुए उसने माही के हाथ की ओर देखा। उसकी उँगलियाँ काँप रही थीं और तभी मन ने झटके से पेन उसके हाथ से ले लिया।

****मन:**** “इतना भी कोई डरता है क्या?”

उसकी आवाज़ धीमी थी, पर सीधी दिल तक जाती हुई। उसने कागज़ पर कुछ निशान बनाए। फिर, पेन को होंठों के बीच हल्के से दबाया। क्षण भर के लिए समय आगे बढ़ना भूल गया। मंद-मंद मुस्कान। नज़रें सीधी उसकी आँखों में। न शरम पूरी, न शरारत पूरी।

माही के लिए यह बिल्कुल अप्रत्याशित था। यह कोई साधारण दफ्तरी व्यवहार नहीं था। वह समझ नहीं पा रहा था—क्या यह शरारत है? या चंचलता है? मन ने पेन वापस उसकी ओर बढ़ाया।

****मन:**** “अब तो हाथ नहीं काँपेंगे... सर?”

यह “सर” सम्मान नहीं, संकेत था। माही ने पेन लिया। इस बार हाथ नहीं काँपा, पर हृदय की लय ज़रूर बिगड़ गई। कमरे में सिर्फ दो लोग थे, पर हवा में जैसे तीसरा कोई उपस्थित था—माही बाहर निकला। गलियारे में चलते हुए उसे लगा कि अब कुछ नज़रें पीछा नहीं कर रहीं, बल्कि उसके साथ चल रही हैं।

अध्याय - 12

“ठहराव” या “रफ़्तार”

दिन और रात का चक्र अपनी तयशुदा खामोशी के साथ घूम रहा था, घड़ी की सुइयाँ रोज़ की तरह घूमती थीं, फाइलें रोज़ की तरह खुलती थीं, लोग रोज़ की तरह आते-जाते थे। माही भी अब अपने काम में पहले से अधिक डूबने लगा था। कार्य में स्पष्टता, निर्णयों में सटीकता, और व्यवहार में संतुलन। उच्च अधिकारी संतुष्ट थे, आने-जाने वाली जनता भी। वह अब केवल काम नहीं कर रहा था, काम को साध रहा था। दैनिक कार्यों का एक अनुशासित क्रम बन गया था — सुबह की समीक्षा, दोपहर को क्रियान्वयन, शाम का समापन। सब कुछ व्यवस्थित, संतुलित, नियंत्रित।

लेकिन हर स्थिर सतह के नीचे हल्की-सी तरंग होती ही है। बीच-बीच में वही वक्त याद आ जाता। पेना हल्का-सा झटका। वो मंद मुस्कान। एक देर के लिए मस्तिष्क ठहर जाता। वह खुद से पूछता — “क्या सच में कुछ था उसमें?” फिर तुरंत खुद को संयत करता — “सामान्य घटना थी।” परंतु मनुष्य का मन इतना सरल कहाँ होता है। कभी किसी दस्तावेज़ पर साइन करते समय उसे अपनी उँगलियों की कंपन याद आ जाती। कभी गलियारे से गुजरते हुए बिना देखे भी उसे एहसास हो जाता कि कोई आस-पास है। वह मुस्कुरा देता, अपने ऊपर। “बेवजह...” और फिर काम में लग जाता।

धीरे-धीरे उसने एक आदत बना ली — भावनाओं को काम की मेज के बाहर छोड़ देने की। वह जानता था — रूटीन आदमी को सुरक्षित रखता है। और वह फिलहाल सुरक्षित रहना चाहता था। परंतु रूटीन का एक स्वभाव होता है — वह स्थिर दिखता है, पर भीतर-ही-भीतर कुछ पका रहा होता है। माही को अभी इसका अंदाज़ा नहीं था। वह समझ रहा था कि उसने उस घटना को एक तरफ़ रख दिया है। जबकि सच यह था — उसने उसे भुलाया नहीं था, बस तह लगा कर दिल की किसी दराज़ में रख दिया था।

अध्याय - 13

"समानता से पहले"

कुछ दिनों से कुछ भी अलग नहीं घटित हुआ। सब कुछ पहले जैसा था, सब कुछ इतना सामान्य था कि भीतर एक अजीब सा संशय जगाने लगा था। “वो” सामने से निकलती और जाते-जाते चुराती हुई नज़र से उसे देख जाती। बस एक क्षण, और फिर जैसे कुछ हुआ ही न हो। कभी ऑफिस के काम से दोनों का औपचारिक आमना-सामना हो जाता—शब्द सीमित, स्वर संतुलित, उससे ज्यादा कुछ नहीं।

लेकिन हर चीज़ शब्दों से नहीं होती। कभी माही देखता—धूप तेज़ है और गर्मी में मन बाहर कूलर में पानी डाल रही है। वह बिना कुछ कहे, सिर्फ़ देख और कुछ महसूस कर के किसी peon को भेज देता— “जाकर पानी भरवा दो।” कभी मन का पानी का कैम्पर वह खुद उठा लेता, या किसी से उठवा देता। बिना बताए, बिना जताए। यह देखभाल थी, पर घोषित नहीं। शायद यह पुरानी जान-पहचान का सहज व्यवहार था, या फिर कुछ और। माही खुद भी इसका उत्तर नहीं खोजता था। वह अपने भीतर हर भावना को “सहकर्मी का कर्तव्य” कहकर वर्गीकृत कर देता और वहीं बात खत्म।

परंतु हर बार जब वह गैलरी से निकलता, उसे हल्का-सा आभास होता—कोई नज़र नीचे झुककर उसे देख रही है। सीधे नहीं, सामने से नहीं, पर छिपकर भी नहीं। जैसे देखने वाला चाहता हो कि देखा भी जाए बिना किसी को दिखे। कभी वह अपनी सीट पर बैठा होता और उसे लगता—गैलरी की किसी आइट ने वक्त को रोक दिया है, फिर कदमों की ताल आगे बढ़ जाती। यह क्रम लगभग हर दिन दोहराया जा रहा था। दिन एक जैसे लगने लगे थे—नियमित, संयम, संकेत और मौन। लेकिन जीवन में हर समानता स्थायी नहीं होती। कभी-कभी सब कुछ इसलिए शांत होता है क्योंकि भीतर कुछ बदल रहा होता है। और वह बदलाव धीरे-धीरे दिखने लगा। माही ने महसूस किया—मन की दिनचर्या बदल रही है।

अध्याय - 14

“परिवर्तन”

ऑफिस में मन अक्सर कागज़ों और कार्यों में डूबी रहती थी। उसकी दुनिया सीमित और व्यवस्थित थी। थोड़ा समय मिलता तो आगामी परीक्षाओं की तैयारी के लिए कुछ पढ़ लेती, या फिर मोबाइल पर धीमे स्वर में अपना पसंदीदा संगीत सुन लेती। उसकी दिनचर्या में एक लय थी, एक सादगी। लेकिन... कुछ दिनों से वह लय टूटने लगी थी। अब वह पहले की तरह कागज़ों में पस्त नहीं दिखती थी। मोबाइल उसकी उँगलियों में अधिक देर ठहरने लगा था। और फिर — दफ्तर के बाहर पार्क। लंबी-लंबी बातें। धीमी आवाज़। कभी मुस्कान। कभी गंभीरता। पहले यह संयोग था। फिर यह क्रम बन गया। और जब कोई बात क्रम बन जाए, तो वह अनदेखी नहीं रहती।

किसी ने उसे notice करना शुरू किया। हालाँकि माही का कोई सीधा वास्ता नहीं था। न कोई नैतिक अधिकार। न कोई औपचारिक संबंध। फिर भी — वह इस बदलाव को गंभीरता से देख रहा था। क्यों? इस प्रश्न का उत्तर वह खुद भी नहीं दे पा रहा था। एक ओवरथिंकर होने के नाते उसके भीतर अनेक विचार जन्म लेते। “क्या वह किसी परेशानी में है?” “घर में सब ठीक है?” और फिर — एक अचानक, तीखा विचार। “कहीं... किसी लड़के से तो नहीं...?”

यह सोचते ही उसका चेहरा हल्का - लाल पड़ जाता। धड़कन अनायास तेज़ हो जाती। वह खुद पर झुंझलाता। “मुझे क्या?” अगले ही पल दूसरा विचार आता — “किसी की निजता पर नज़र रखना... असम्मान है।” वह हमेशा सिद्धांतों पर चलने वाला रहा था। हर किसी के जीवन में झांकना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। वो हर किसी की स्वतंत्रता में विश्वास करता था.. तो क्या वो जिसके बारे में सोच रहा है वो दूसरे जैसा नहीं था ? तो फिर यह बेचैनी क्यों? क्या वह सच में चिंतित था? या भीतर कोई और विचार आकार ले रहा था? क्या यह किसी अपने का ख्याल था? या बस एक जिम्मेदार सहकर्मी की सतर्कता?

वह स्वयं स्पष्ट नहीं था। पर इतना तय था — मन की दिनचर्या में आया यह परिवर्तन उसके भीतर भी कुछ बदल रहा था। और फिर उसे अपने ही मन से प्रश्न करना पड़ रहा था, पर जवाब... शायद “कल” में छिपा था।

अध्याय - 15

"अनसुना संवाद"

अब यह संयोग नहीं था। हर दिन लगभग एक ही समय — मन अपनी सीट से उठती। मोबाइल हाथ में। और धीरे-धीरे पार्क की ओर चली जाती। पहले माही ने ध्यान नहीं दिया। फिर उसने समय नोटिस किया। आज उसने खुद को रोकने की कोशिश की। “मुझे इससे क्या?” लेकिन मनुष्य का मन तर्क से नहीं चलता। उस दिन फाइल लेकर वह उसी समय बाहर निकला।

पार्क ज्यादा दूर नहीं था। कुछ कदमों की दूरी। मन पीठ किए खड़ी थी। आवाज़ धीमी थी। “...नहीं, ऐसा नहीं है...” माही के कदम एकदम से धीमे हो गए। वह सुनना नहीं चाहता था। पर शब्द हवा में तैरते हुए उस तक पहुँच ही गए।

“मैंने ऐसा सोचा भी नहीं...”

फिर एक चुप्पी। मन की आवाज़ इस बार भारी थी। “आप समझ क्यों नहीं रहे?”

माही का दिल तेज़ हो गया। “आपा” यह शब्द उसके भीतर कहीं चुभ गया। वह आगे नहीं बढ़ा। पास भी नहीं गया। बस उतनी दूरी पर ठहर गया जहाँ शब्द साफ़ न सुनाई दें, पर भाव महसूस हों। अचानक मन ने पलटकर देखा। दोनों की नज़र मिली। सेकंड भर। मन ने तुरंत चेहरा दूसरी ओर मोड़ लिया। और बात समाप्त कर दी। फोन नीचे। चेहरा संयत। आँखों में हल्की नमी, वह बिना कुछ कहे अंदर चली गई।

माही वहीं खड़ा रह गया। उसने इस बार अपने भीतर एक तीखी बेचैनी महसूस की। यह जिज्ञासा थी? असुरक्षा? या... अधिकार की चाह? वह खुद से घबराया। क्योंकि उसे एहसास हुआ — अब यह सिर्फ “सहकर्मी” वाली चिंता नहीं रही। उस शाम मन ने उसकी ओर देखा भी नहीं। और माही ने भी काम में डूबने की कोशिश नहीं की। वह सिर्फ सोचता रहा — फोन पर कौन था? क्यों आवाज़ भारी थी? और... “आप” कौन था? अगले दिन मन की सीट खाली थी। टेबल पर एक फाइल रखी थी। ऊपर सिर्फ इतना लिखा था — “कर्मचारी अवकाश पर।” कारण नहीं। माही ने दस्तावेज़ बंद किए। पर उसके भीतर एक नया प्रश्न खुल चुका था।

अध्याय - 16

"उत्तर"

अगली सुबह माही सीधे ऑफिस नहीं गया। महकमे के एक मामले की पैरवी के लिए उसे न्यायालय पहुँचना था। दो घंटे की भागदौड़ के बाद वह सीधे ऑफिस लौटा। सबसे पहले साहब को आज की कार्रवाई से अवगत कराया—संक्षेप, स्पष्ट, तथ्यात्मक। फिर अपनी सीट पर आकर बैठ गया। कैम्पर से पानी निकाला। माही हमेशा अपना पानी स्वयं पीता था, कभी भी किसी चपरासी को अनावश्यक काम नहीं देता था। आज पैदल आने के कारण थोड़ा थक गया था। उसने peon से कहा— “चाय वाले को फोन कर दो।” और कुर्सी पर पीछे टिककर मोबाइल में कुछ देखने लगा।

तभी बाहर से हँसने की सी आवाज़ आई। फिर कुछ फुसफुसाहट। उसके बाद सामूहिक बधाई के स्वर। कुछ ही क्षणों में उसके कमरे का दरवाज़ा खुला। कोई भीतर आया। “Sir... मिठाई!” माही ने सिर उठाया। सामने मन खड़ी थी। हाथ में मिठाई का डिब्बा। चेहरे पर मुस्कान। वह कुछ पूछ पाता, उससे पहले ही उसने कहा — “Sir... मेरी engagement हुई है।”

शब्द छोटे थे, पर भीतर कहीं एक झटका सा लगा। जैसे नसों में एक क्षण के लिए झनझनाहट दौड़ गई हो। कारण? वह हमेशा की तरह स्पष्ट नहीं था। लेकिन यह वाक्य उन सारे प्रश्नों का उत्तर था जो कुछ दिनों से उसके भीतर घूम रहे थे। पार्क की लंबी बातों। गैलरी की झुकी हुई नज़रों। मोबाइल पर बढ़ता समय। सबका अर्थ एक ही शब्द में सिमट आया — “Engagement.”

माही ने स्वयं को संभाला। चेहरा और स्वर संतुलित। डिब्बे से एक मिठाई उठाई। “Congratulations, Ma’am.” मन ने भी “Thanks” कहा और बाहर चली गई। पर मुस्कान... वह परिचित नहीं थी। कुछ अलग था उसमें। जैसे औपचारिकता अधिक हो, उत्साह कम।

माही वहीं बैठा रहा। उसने महसूस किया — उसके सवालियों का प्रश्नपत्र अब हल हो चुका था। गैलरी में झुकी नज़रें। अचानक बदली दिनचर्या। फोन पर “आपा।” यह सब अब स्पष्ट था। वह अपने ऊपर मुस्कुराया। “पता नहीं मैं भी क्या सोच गया था...” अब सब ठीक

था। सब स्पष्ट। लेकिन... क्या सच में? प्रश्न हल हो चुके थे, या किसी और कठिन प्रश्नपत्र की छपाई अभी बाकी थी? माही ने चाय का कप उठाया। चाय साधारण थी, स्वाद भी, लेकिन आज कप की गर्माहट उसकी उंगलियों को ठंडा कर रही थी।

अध्याय - 17

“3 महीने बाहर”

सुबह जब माही तैयार होकर ऑफिस पहुँचा तो रूटीन की तरह उसने मेल खोली। एक नया मेल था — *Departmental Training Program – 3 Months (Mandatory)*। वो कुछ सेकंड देखने के बाद “अच्छा... तो अब 3 महीने बाहर।”

शाम को घर पहुँचा। बैग निकाला। जरूरी चीजें और कपड़े डाले। और फिर सुबह माता - पिता ने हिदायत दी — ध्यान से रहना। माता रानी के सामने माथा टेका। मन ही मन बोला — “सब ठीक रखना।” उसे क्या पता था क्या ठीक रहेगा... क्या नहीं।

नया शहर, ट्रेनिंग स्थल से चार-पाँच किलोमीटर दूर एक छोटा-सा कमरा। तीन लड़के। तीन अलग आदतें। एक ही लक्ष्य। कभी पैदल, कभी ऑटो से वे रोज़ ट्रेनिंग स्थल पहुँचते। दोस्त खुले स्वभाव के थे। मज़ाक, हँसी, हल्की शरारत — ट्रेनिंग पर एक लड़की आती थी। साफ़-सुथरा व्यक्तित्व। संतुलित चाल। चेहरे पर आत्मविश्वास। दोस्तों ने एक दिन कुहनी मारी— “चल तेरी इससे बात करवाते हैं।” “शादी की बात पक्की कर देते हैं।” “अरे वो भी गुर्जर है...” माही बड़ा-सा शर्माया। उसे ये सब अच्छा नहीं लगता था। लेकिन दोस्ती निभाने के लिए मुस्कुराकर सुन लेता था।

ट्रेनिंग स्थल के आसपास कोई ढाबा नहीं था। एक दिन उसे पास के खेतों में एक बुजुर्ग किसान दिखा जो ईंटों के छोटे चूल्हे पर चाय बना रहा था। माही वहीं बैठ गया। धीरे-धीरे दोस्ती हो गई। अब जब भी चाय की तलब लगती, वो वहीं चला जाता। ईंटों के चूल्हे पर उबलती चाय, लकड़ी की हल्की गंध, खुला आसमान। बदले में किसान उसे जंगल के किस्से सुनाता, पुराने ज़माने की मेहनत, बारिश की दगाबाज़ी, और खेतों की सच्चाई। ये सब सुनकर माही को अपने खेती वाले दिन याद आते।

अध्याय - 18

“नियम जो नहीं टूटा”

एक दोपहर दोस्तों ने सिनेमा जाने का प्लान बनाया। “चल अस्तित्व उर्फ माही... आज तो चलेगा।” दूसरा हँसते हुए बोला — “गुर्जर गर्ल के साथ तेरी टिकट करवाते हैं।” माही ने शांत स्वर में कहा — “मैं आज तक सिनेमा देखने नहीं गया... आज भी ये नियम नहीं तोड़ूँगा।” दोस्त हँस पड़े। “ये नियम किसी दिन टूटेगा। कोई आएगी... हाथ पकड़कर तुझे खुद सिनेमा तक ले जाएगी।” धीमी मुस्कराहट के बीच मन में एक सवाल उठा — कौन होगी वो? उसने उस सवाल को वहीं छोड़ दिया।

ट्रेनिंग स्थल के रास्ते में एक निर्माण कार्य चल रहा था। वहीं एक बुजुर्ग मजदूर से उसकी जान-पहचान हो गई थी। कभी नमस्ते, कभी दो शब्द। तीन दिन से वो दिखा नहीं। माही ने पूछा — “बाबा नहीं दिख रहे?” किसी ने कंधे उचका दिए — “पता नहीं।” रास्ते से थोड़ी दूरी पर उनका घर था। माही चला गया। चारपाई पर बाबा लेटे थे। चेहरा पीला। पास में माता जी बैठी थीं। “तीन दिन से काम पर नहीं गए। दवाई के पैसे भी नहीं हैं। सोच रही हूँ मैं चली जाऊँ काम पर। और अगर दो दिन और नहीं गए तो ठेकेदार किसी और को रख लेगा।” ये सुनकर माही चुप हो गया। उसने कुछ नहीं कहा। बस उठा।

अगले दिन शनिवार था। फिर रविवार। अगले दो दिन सरकारी अवकाश। चार दिन की छुट्टी। वो सीधे निर्माण स्थल पहुँचा। ठेकेदार से बोला — “चार दिन का काम मैं कर दूँ? मजदूरी इन्हीं के नाम कर देना।” ठेकेदार ने ऊपर से नीचे तक देखा। फिर हँसकर बोला — “भाई कर ले अगर कर सकता है।” चार दिन। माही ने छुट्टियों का सदुपयोग किया। चौथे दिन पैसे लेकर सीधे बाबा के घर गया। दवाई के लिए पैसे दिए और कहा — “ठीक होकर आराम से काम पर आना। ठेकेदार से बात हो गई है।” बाबा की आँखें भर आईं। माही ज्यादा देर रुका नहीं। उसे धन्यवाद सुनने की आदत नहीं थी।

इस तरह दिन निकलते गए। ट्रेनिंग। दोस्तों की हँसी। किसान की चाय, खेतों की याद और धीरे-धीरे... 3 महीने पूरे हो गए।

अध्याय - 19

“3 महीने बाद”...

3 महीने की ट्रेनिंग खत्म हो चुकी थी। बस की खिड़की से बाहर देखते हुए माही के मन में कोई खास हलचल नहीं थी... केवल एक साधारण सा संतोष था कि अब वह फिर से अपने पुराने गांव.. शहर... अपने उसी दफ्तर में लौटेगा... जहाँ सब कुछ परिचित था। वही गलियारे... बस शायद एक चीज़ बदली होगी... वक्रता। उसे नहीं पता था कि इन तीन महीनों में वक्रत ने कुछ रिश्तों के अर्थ बदल दिए हैं।

अब फिर से वही पहले जैसी दिनचर्या शुरू होने वाली थी। और इस की शुरुआत हुई... एक कप चाय के साथ। चाय की चुस्कियों के साथ ही फिर वही काम का सिलसिला शुरू हो गया। अधिकारियों से मुलाकात... और निर्देश पालना। माही का दिमाग इस सब के अलावा कहीं और जाता भी नहीं था। मन की सगाई के बाद उसने लगभग उसके बारे में सोचना बंद ही कर दिया था। पूरा एक हफ्ता ऐसे ही निकल गया... फिर अगला हफ्ता भी लगभग इसी तरह शुरू हुआ।

लेकिन क्या ये हफ्ता भी ऐसे ही खत्म हो जाएगा...? एक बात जरूर थी... मन पिछले सप्ताह भी नहीं दिखी थी... और इस समय भी वो कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। अब दिमाग में सवाल आना स्वाभाविक था। क्या उसने घर बसा लिया...? खैर... उसके पास संभावना जताने के अलावा कुछ था भी नहीं। और वैसे भी... ये उसका विषय भी नहीं था। जो था वो एक सामान्य मानवीय सोच का परिणाम भर था।

अध्याय - 20

“एक नंबर की दूरी”

ऑफिस का अगला दिन। आज माही फिर से अपने कामों में व्यस्त था। तभी फोन बजा। स्क्रीन पर नाम उभरा — राहुल।

“हां राहुल?”

“माही... एक बार मेरे रूम में आ जाओ।”

“क्यों?”

“यार काम थोड़ा ज्यादा है... थोड़ी help कर देना।”

माही ने फाइल से नजर हटाए बिना कहा— “मैं भी व्यस्त हूं। तुम ऐसा करो... यहीं आ जाओ। मैं अपने काम के साथ ही तुम्हारी भी help कर दूंगा।”

“ठीक है... थोड़ी देर में आता हूं।”

फोन कट गया। माही कुर्सी पर थोड़ा पीछे झुक गया। कमर सीधी की... और कुछ क्षण के लिए आंखें बंद कर लीं। ख्यालों में एक नई बात तैर रही थी। घर में अब उसके रिश्ते की बातें शुरू हो चुकी थीं। पापा किसी से बात कर रहे थे... हालांकि माही ने अभी साफ मना कर दिया था। लेकिन कब तक? इसी सोच में डूबा हुआ था कि दरवाजे पर एक दस्तक हुई।

“आ जाऊं?”

राहुल था।

“आओ।”

कुछ औपचारिकताओं के बाद राहुल बोला— “यार काम बहुत बढ़ गया है। ब्रांच में अभी अकेला ही हूं।”

माही ने सहजता से पूछा— “क्यों?”

राहुल बोला— “मन एक महीने की छुट्टी पर है।”

“क्यों?” माही के मुंह से एकदम निकला।

“हां... उसका CGL का पेपर है। अगले हफ्ते से आएगी।”

“मतलब... अभी उसकी शादी नहीं हुई है।” न जाने क्यों... पर ये उसके जेहन में आया। लेकिन अगले ही क्षण उसने खुद को अलग किया—

“हां तो... काम बताओ।”

दोनों ने थोड़ा उसका और थोड़ा राहुल का काम मिलकर निपटाया। कुछ देर बाद दोनों चाय पी रहे थे। तभी राहुल के फोन पर कॉल आई। स्क्रीन पर नाम चमका — मना। चूंकि फोन मेज पर था इसलिए उस की नजर चली गई। फिर तुरंत ही उसने नजरें हटा लीं। “ये फोन मेरा नहीं है...” उसने मन ही मन खुद को टोक दिया। राहुल ने फोन उठाया।

“हां बोलो मना।”

“सर... आपने वो notes भेजे नहीं।”

“मैं try कर रहा हूं... जैसे ही arrange होंगे तुरंत भेज दूंगा।”

“Ok sir... थोड़ा जल्दी करना... दो दिन बाद मेरा paper है।”

“ठीक है... I will try।”

फोन कट गया। राहुल ने चाय का घूंट लेते हुए कहा— “उसको HitThoughts के notes चाहिए... लेकिन मेरे पास नहीं है। मैंने उसको बोल दिया है कि कहीं से arrange कर दूंगा।”

यह सुनते ही माही थोड़ा चौंका। “HitThoughts...” एक क्षण के लिए वो कुछ सोचने लगा। फिर बोला— “मेरे laptop में उसकी PDF है। घर जाकर तुम्हारे फोन पर भेज दूंगा... तुम उसको दे देना।”

राहुल तुरंत बोला— “अरे ऐसा है तो तुम direct उसको भेज देना।”

माही ने बिना उसकी तरफ देखे कहा— “नहीं... मेरे पास उसका नंबर नहीं है।”

“अरे ले लो।”

“नहीं यार... तुम ही भेज देना बसा।”

बात वहीं खत्म हो गई। कुछ देर बाद माही उठकर साहब के कमरे की ओर चला गया। क्या नंबर लेने में कुछ गलत था? फिर भी उसने क्यों नहीं लिया? शायद... कुछ दूरी कई बार इंसान खुद बनाए रखता है।

अध्याय - 21

“एक छोटा-सा निर्णय”

दिवाली के अगले दिन की दोपहर थी, माही घर की छत पर अकेला बैठा था। हल्की धूप दीवारों पर फैल रही थी और दूर कहीं बच्चों की आवाजें आ रही थीं। थोड़ी देर पहले ही किसी जानकार से फोन पर बात हुई थी... वह अपने रिश्तेदारी के किसी भाई जो कि अभी नौकरी लगा था की शादी के लिए किसी अच्छी लड़की की तलाश जैसी कुछ बात कर रहा था... वो यूँ ही आसमान की ओर देख रहा था... तभी उसे याद आया... कुछ दिन पहले जब राहुल ने उससे Notes मांगे थे... तब राहुल ने जाते-जाते एक और बात कही थी। “यार माही... मन की एक छोटी बहन भी है। घर वाले सोच रहे हैं कि अगर उसके लिए भी कोई लड़का मिल जाए... तो दोनों बहनों की शादी साथ कर देंगे। इससे खर्च भी संभल जाएगा।” उस समय माही ने उस बात को ज्यादा गंभीरता से नहीं लिया था। बस साधारण बातचीत समझ कर छोड़ दिया था। और अब... वो उसके दिमाग में फिर से घूम रही थी।

इतने में उसके मन में एक विचार आया— तो क्या... मेरे को...? लेकिन अगले ही पल उसने खुद को टोक दिया। “क्यों फिजूल का बोझ लिया जाए दिमाग पर...” वो उठने ही वाला था कि अचानक उसका विचार फिर बदल गया। “अगर मेरे इस छोटे से प्रयास से किसी की मदद हो जाए... तो इसमें दिक्कत भी क्या है?” शायद यह कोई भावनात्मक निर्णय नहीं था... बस एक सामान्य मानवीय सहायता। उसने तुरंत उस संपर्क के जरिए लड़के और उसके परिवार की जानकारी मंगवाई। मोबाइल स्क्रीन पर आई डिटेल को उसने एक बार ध्यान से पढ़ा। फिर बिना ज्यादा सोचे... उसने वही जानकारी राहुल को व्हाट्सएप पर भेज दी। और साथ में बस एक छोटी-सी लाइन लिखी— “उनके पास भेज देना।” इतना लिखकर उसने मोबाइल एक तरफ रख दिया।

उसके लिए शायद यह बस एक छोटा-सा काम था... लेकिन कभी-कभी जिंदगी में सबसे बड़े घटनाक्रम इसी तरह की छोटी-सी क्रियाओं से शुरू होते हैं। उसने तो समझ लिया था कि उसका काम यहीं खत्म हो गया।

लेकिन क्या सच में ऐसा था?

अध्याय - 22

“एक कप चाय... और शुक्रिया”

एक हफ्ते बाद... ऑफिस में माही अपनी सीट पर बैठा लैपटॉप में उलझा हुआ था। साथ ही कलम भी चल रही थी... कागज बदल रहे थे... लेकिन मन में कहीं एक बड़ी - सी बेचैनी थी। शायद चाय की तलब। उसने सोचा— “ये entry चढ़ा दूँ... फिर peon को बोलकर चाय मंगवा लूंगा।” सोचकर वह फिर से काम में लग गया।

कुछ ही मिनट बीते होंगे कि तभी एक अचानक आई आवाज़ ने उसकी एकाग्रता को तोड़ दिया। “नमस्ते sir... कैसे हो?”

ये आवाज़...

उसने धीरे से नजर ऊपर उठाई। सामने मन खड़ी थी। उसके हाथ में चाय की केतली और कप थे। बिना कुछ कहे उसने कप में चाय डाल दी।

माही ने कप उठाया। मन हल्के से मुस्कुराई। फिर धीरे से बोली— “Thank you...” और उतनी ही सहजता से मुड़कर चली गई। उसने चाय की पहली चुस्की ली। उसने महसूस किया जैसे सिर्फ चाय नहीं... कोई अहसास भी उस कप में मिला हुआ था।

लेकिन तभी उसके मन में एक सवाल उठा— Thank you...? “मेरे को बोलना चाहिए था...” “क्योंकि चाय तो उसने पिलाई...” “लेकिन बोला भी उसी ने...” वो कुछ देर कप को देखता रहा। फिर एक मुस्कान उसके चेहरे पर आ गई। क्यों...? इस सवाल का जवाब शायद चाय में नहीं था... लेकिन शायद अगले किसी पल में जरूर छिपा हुआ था।

अध्याय - 23

“मन - एक अनछुआ रहस्य”

दफ्तर की उस नीरस और फाइलों से भरी दुनिया में, 'मन' का होना किसी सूखी ज़मीन पर गिरी पहली बारिश की बूँद जैसा था। भिवानी के देवीपुर गांव(तोशाम क्षेत्र) की वो लड़की, जिसकी सुंदरता कोई साधारण सुंदरता नहीं थी। वह उस उच्च स्तर की खूबसूरत थी जहाँ रूप को निखारने के लिए किसी आभूषण या रंग-रोगन की दरकार नहीं होती। वह अक्सर सादे सूती सूट में ऑफिस आती थी। कपड़ों के रंग हमेशा हल्के और सौम्य होते। लेकिन उन सादे कपड़ों में भी उसका रूप इतना निखर कर आता था कि गलियारे से गुजरते वक्त नज़रें बरबस ही उसकी तरफ उठ जाती थीं।

चेहरे पर कोई कृत्रिम सजावट नहीं थी—ना कोई भारी मेकअप, ना ही आँखों में काजल का कोई गहरा घेरा। उसका चेहरा बिल्कुल एक कोरे कागज़ की तरह उजला और बेदाग था।

लेकिन मन की सबसे बड़ी ताकत उसकी आँखें थीं। बड़ी, गहरी और हमेशा थोड़ी झुकी हुई आँखें। उन आँखों में एक अजीब सी कशिश थी—एक ऐसा आकर्षण जो बिना बुलाए ही सामने वाले को अपनी गहराई में खींच लेता था। जब वह बात करती, तो उसकी पलकें एक खास नज़ाकत के साथ उठतीं और गिरती थीं। उसकी आवाज़ में एक ऐसा रेशमी ठहराव था जो शोर-शराबे वाले उस दफ्तर में किसी मधुर संगीत की तरह गूँजता था। वह हर किसी को एक तय दूरी से "Sir" या "Ma'am" कहकर बुलाती, लेकिन उस 'दूरी' में भी एक गज़ब का खिंचाव था।

वह अपनी मेज़ पर सिमटी हुई, चुपचाप अपना काम करती रहती। लेकिन उसका वह 'मौन' और उसका 'एकांत' ही उसकी सुंदरता को और भी रहस्यमयी और मारक बना देता था।

उसकी चाल में एक गज़ब का संतुलन और शालीनता थी। जब वह चलती, तो पायल या सैंडल की कोई खनक नहीं होती, बस हवा में एक बहुत ही हल्की, जानी-पहचानी सी खुशबू तैर जाती—वही खुशबू जो माही के पाषाण जैसे वजूद में भी हलचल पैदा कर देती थी। मन की वह 'सादी और अछूती सुंदरता' ही उसकी शान और पहचान थी।

अध्याय - 24

एक गहरा समुद्र: माही

दफ्तर की उस दुनिया में जहाँ लोग काम के बीच हँसी-मज़ाक, गपशप और कैटीन की चाय पर रिश्ते बनाते थे, माही एक बिल्कुल अलग ही मिट्टी का बना इंसान था। उसका परिवार मूल रूप से फरीदाबाद का रहने वाला था, लेकिन पिछले कई वर्षों से वो हिसार जिले के अंबागढ़ गांव में रह रहे थे। दफ्तर की लड़कियों के लिए वह किसी 'पत्थर' (पाषाण) से कम नहीं था, जिसके इर्द-गिर्द एक अदृश्य लेकिन बेहद मजबूत चारदीवारी खिंची हुई थी।

बाहर से देखने वालों को वह रूखा, नीरस या शायद “भाव - विहीन” लगता था। लेकिन सच तो यह था कि वह कोई संन्यासी नहीं था। उसके सीने में भी एक धड़कता हुआ दिल था और उसके भीतर भी भावनाओं का एक गहरा समंदर था। बस फर्क इतना था कि उसकी वो सारी भावनाएं उसकी अपनी ही बनाई हुई 'मर्यादाओं की बंधक' थीं।

उसने अपने उसूलों और शराफ़त का एक ऐसा ताला अपने दिल पर जड़ रखा था, जिसे खोलने की इजाज़त उसने आज तक किसी को नहीं दी थी। या फिर सच कहें तो... अब तक उसे दफ्तर या बाहर कोई ऐसा मिला ही नहीं था जिसके वजूद में वो 'ताकत' या वो 'ठहराव' हो, जो माही की इन मर्यादाओं के बंधनों को खोल सके। दफ्तर की बाकी लड़कियां जहाँ अपने पहनावे, हँसी या नज़ाकत से ध्यान खींचना चाहती थीं, माही के लिए वो सब बहुत उथला और बनावटी था। उथलापन इस गहरे समंदर में हलचल पैदा नहीं कर सकता था।

उसे उथले रिश्ते, दिखावे की बातें और 'छिछोरापन' सख्त नापसंद था। वह अपनी मेज़ को अपनी दुनिया मानता था और अपनी मर्यादाओं को अपना सबसे बड़ा रक्षक। सबको पता था कि माही के सामने किसी भी तरह का 'आकर्षण' काम नहीं आने वाला। वह एक ऐसा किला था जिसके दरवाज़े अंदर से बंद थे।

लेकिन कहते हैं ना कि जिस ताले को कोई चाबी नहीं खोल पाती, उसे एक खामोश और ठहरी हुई नमी धीरे-धीरे गला देती है। माही को खुद भी अंदाज़ा नहीं था कि जिन भावनाओं को उसने इतने सालों से मर्यादा की बेड़ियों में जकड़ कर रखा था, वो बेड़ियाँ अब टूटने वाली थीं।

अध्याय - 25

“पहली दस्तक, चाय और वो खामोश नज़रें”

माही के लिए दफ्तर की नई महिला कर्मचारियों से बात करना हमेशा एक औपचारिक मजबूरी भर होता था। लेकिन 'मन' के साथ उसका पहला परिचय कुछ अलग था। उसकी झुकी हुई नज़र में एक ऐसा 'ठहराव' था, जो माही की अपनी ही 'मर्यादाओं की दुनिया' से बहुत मेल खाता था।

लेकिन उस दस्तक को एक 'एहसास' में बदलने का काम किया दफ्तर की एक बहुत ही मामूली सी चीज़ ने— चाय।

माही के भीतर भले ही भावनाओं पर कड़ा पहरा था, लेकिन उसकी एक बहुत छोटी और अनकही कमज़ोरी थी— चाय की तलब। एक दिन दफ्तर में काम का दबाव बहुत ज्यादा था। चपरासी छुट्टी पर था। माही हल्के सिरदर्द के साथ सर को सहला रहा था उसे चाय की सख्त ज़रूरत थी, लेकिन उसने किसी से कहा नहीं।

तभी उसकी मेज़ के किनारे पर एक आवाज़ हुई। एक सफेद कप, जिसमें से चाय की गर्म भाप और इलायची की हल्की महक उठ रही थी, उसकी मेज़ पर रखा गया।

सामने 'मन' खड़ी थी। उसने कुछ नहीं कहा, बस एक तनिक सी नज़र माही की तरफ डाली, एक अनजाने भाव से सिर हिलाया और चुपचाप अपने केबिन की तरफ लौट गई।

माही उस चाय के कप को देखता रह गया। मन ने उसकी इस अनकही कमज़ोरी, इस अनकही ज़रूरत को उस खामोशी में भी पढ़ लिया था। माही ने कप उठाया और पहली चुस्की ली। वह सिर्फ चाय नहीं थी... वह एक एहसास था कि इस स्वार्थी दुनिया में कोई है, जो बिना आपके कहे आपकी थकान को महसूस कर सकता है।

और बात सिर्फ उस एक कप चाय तक सीमित नहीं थी।

अक्सर जब माही अपने कंप्यूटर स्क्रीन पर नज़रें गड़ाए गहराई से कुछ काम कर रहा होता, तो उसे एहसास होता कि कोई उसे देख रहा है। जब वह अचानक अपनी नज़रें उठाता, तो सामने आंगंतुकों की डेस्क जहां मन खाली समय में बैठ जाया करती थी वहां से वो झुकी

हुई आँखें तीव्रता से दूसरी तरफ मुड़ जातीं। उस हड़बड़ाहट में मन का वो मासूम सा छिपना माही के भीतर एक अजीब सी हलचल पैदा कर देता था।

जब भी वो किसी काम से साहब के कमरे में जाता, तो वापसी में अक्सर देखता कि मन किसी रजिस्टर का बहाना लेकर अपनी जगह से उठी है, और उसकी नज़रें पूरे गलियारे में इधर-उधर भटक रही हैं। और जैसे ही मन की वो भटकती हुई नज़रें लौटते हुए माही पर पड़तीं, उसके चेहरे की बेचैनी तुरंत एक गहरे सुकून में बदल जाती।

इन छोटी-छोटी बातों ने माही के उस मजबूत किले की दीवारों में दरारें डाल दी थीं। मन अपनी उन खामोश नज़रों और परवाह से, माही के भीतर बरसों से सोई हुई उन 'बंदिनी भावनाओं' को झकझोर कर जगाने में आंशिक ही सही पर कामयाब हो रही थी।

अध्याय - 26

“बहाने, बातचीत... और पहली आमने-सामने की दूरी”

अगले दिन, 26 अक्टूबर 2022, सुबह का समय था। माही अपनी सीट पर बैठा कुछ फाइलें देख रहा था कि सामने से एक परिचित आवाज आई—

“Sir...”

उसने सिर उठाया। सामने मन खड़ी थी।

“Sir, मैंने एक form apply किया है... तो क्या उसकी intimation department को देना जरूरी है?”

माही ने सहज स्वर में कहा— “हाँ, जरूरी है।”

“कब किया apply?”

“अभी... दो दिन पहले।”

“तो आप लिखित में दे दीजिए।”

“ठीक है sir... मैं तैयार करके भेजती हूँ।”

“Ok.”

मन चली गई। लेकिन उसके जाते ही माही कुछ पल तक उसी दिशा में देखता रहा। फिर उसके मन में एक सवाल उठा। क्या इतनी सामान्य जानकारी एक कर्मचारी को नहीं होती... जो इतने समय से ऑफिस में काम कर रहा हो? उसे लगा— वो उससे वही पूछ कर गई है... जिसे पूछने की उसे शायद जरूरत ही नहीं थी। तो फिर इसका मतलब...? शायद सच में नहीं पता होगा। उसने खुद को तसल्ली दी।

दोपहर का समय। माही अपनी सीट से उठा। टेबल पर रखी एक फाइल देख कर बोला— “अरे... ये Subdivision-1 की diary यहाँ कैसे रह गई...?” “शायद ढूँढ़ रहे होंगे।” “दे कर आता हूँ” वह diary लेकर मन के कमरे की ओर चल पड़ा। दरवाजा खुला था।

अंदर शांत वातावरण था। और उसी शांति में घुली हुई थी— एक जानी-पहचानी खुशबू। कमरे में कदम रखते ही उसने देखा— सामने मन बैठी थी। हाथ में सेब था। माही थोड़ा असहज सा हो गया। और उसको देख कर वो भी, उसने सेब को मेज पर रखी प्लेट में रखा, और तभी माही...

अरे... कुछ नहीं... मैं तो... ये diary देने..." उसने diary मेज पर रख दी और मुड़ने लगा। तभी पीछे से आवाज आई—

“Sir...”

माही रुक गया।

“हाँ...?”

“बैठिए।”

“क्या...?” उसकी आवाज में घबराहट साफ थी।

मन ने फिर कहा— “मैंने कहा... बैठ जाइए।”

ना चाहते हुए भी माही सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। क्योंकि पहली बार... वो मन के बिल्कुल सामने बैठा था। पेन वाली घटना में तो सिर्फ मन बैठी थी... वो खुद खड़ा था। लेकिन आज— दोनों आमने-सामने थे। कुछ पल की खामोशी के बाद मन बोली—

“Sir... पहले तो फिर से thank you।”

“दो बार।”

माही ने आश्चर्य से पूछा— “दो बार?”

मन मुस्कुराई।

“पहला तो इस diary के लिए... जो आप खुद देने आए।” “और दूसरा... notes के लिए।” “बहुत अच्छे थे... मेरी बहुत help हुई।”

माही ने तुरंत कहा— “वो मेरे नहीं... राहुल के...”

” मन ने धीरे से सिर हिलाया।

“Sir... मुझे पता है।” “Rahul sir ने सब बता दिया।” एक पल को माही चुप हो गया।
“कहते हैं... जब भावनाएँ सच्ची होती हैं... तो परिस्थितियाँ भी अनजाने में मददगार बन जाती हैं।” शायद राहुल भी वही अनजाना माध्यम था।

“Ok...” माही बस इतना ही कह पाया। फिर माही ने धीमे स्वर में कहा— “और आपकी चाय भी बहुत अच्छी थी।” मन थोड़ा मुस्कराकर। “Thanks...”

फिर जैसे माही को कुछ याद आया।

“और paper... कैसा हुआ?”

“बहुत अच्छा।”

अध्याय - 27

“टूटी हुई सगाई का सच”

कमरे में वही दृश्य था... माही और मन आमने-सामने बैठे थे। पेपर के बारे में पूछने के बाद दोनों के बीच कुछ मिनटों की चुप्पी छा गई। खामोशी और ज्यादा गहराती, उससे पहले ही मन ने इसे तोड़ा।

“क्या सोच रहे हो सर?”

थोड़ा चौंक कर। “कुछ नहीं...” मन ने सामने रखी प्लेट से एक सेब उठाया और उसकी तरफ बढ़ाते हुए बोली—

“सेब खा लो।”

“नहीं... नहीं...”

माही ने विनम्र मुस्कान के साथ मना कर दिया।

कुछ क्षण बाद उसने धीरे से पूछा— “अच्छा... राहुल ने बता दिया था कि वो Notes मैंने भेजे थे?”

मन ने सिर हिलाया। “जी।”

“Ok”

फिर उसने थोड़ा झिझकते हुए पूछा— “तो... वो जो लड़के का बायोडाटा था...

मन ने उसकी बात पूरी होने से पहले ही मुस्कान के साथ उसकी जिज्ञासा शांत कर दी।

“जी... राहुल सर ने बता दिया था कि वो भी आपने ही भेजा था।”

“ओह... अच्छा...”

“तो... आपकी बहन को लड़के की डिटेल् ठीक लगी?” यह सुनते ही मन के चेहरे के भाव परिवर्तित हो गए। अब तक जो मासूमियत थी वो धीरे-धीरे गंभीरता में बदलने लगी। वो कुछ क्षण चुप रही... जैसे किसी गहरी सोच में डूब गई हो। फिर धीरे से बोली—

“सर...”

“हाँ?”

“एक बात बोलूँ?”

“हाँ... बोलिए।”

मन कुछ पल फिर चुप रही। फिर धीरे से बोली— “देखिए... ये बात मैं सिर्फ आपको बता रही हूँ। आप प्रॉमिस करो कि इसे किसी से नहीं बताओगो।” माही थोड़ा संभलकर बोला— “देखिए... अगर आपको लगता है कि ये बहुत निजी बात है तो आप मुझे भी मत बताइए।” मन ने सिर हिलाया।

“नहीं सर... कुछ बातें किसी को बताने से... उनसे पैदा हुआ बोझ थोड़ा हल्का हो जाता है।” माही ने गंभीर स्वर में कहा— “ठीक है... मैं वादा करता हूँ कि ये बात हमारे बीच ही रहेगी। कम से कम ये विश्वास मैं नहीं तोड़ूँगा।”

ये सुन कर मन के चेहरे पर राहत आई। “थैंक यू सर...”

फिर उसने धीरे से कहा— “मेरा रिश्ता टूट चुका है।”

“क्या...?” माही के मुंह से अनायास ही निकल गया। “जो आपने सुना...”

कमरे का वातावरण इस कदर स्तब्ध हो गया कि मानो कुछ पल के लिए दीवारें भी सांसें लेना भूल गई हों।

“पर... क्यों?”

मन ने नज़रें झुका लीं।

“बस... शायद मेरा और उस लड़के का भविष्य सुखद नहीं था।”

फिर उसने कहा— “प्लीज़ सर... ये बात अपने तक ही रखना।” “आप एक अच्छे इंसान हो... और यहाँ मेरे पुराने जानकार भी... इसलिए आपको ही बताया।”

माही इस समय कुछ भी बोलने की स्थिति में नहीं था। जो कुछ उसने सुना... वो उसे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। उसके मन में कई सवाल एक साथ उठे— सहानुभूति, अचंभा, और असहजता। वह नहीं चाहता था कि उसकी प्रतिक्रिया में कोई अनुचित जिज्ञासा झलके। कमरे में दो नज़रें झुकी हुई थीं। जुबान खामोश... और बीच में पसरा हुआ एक गहरा सन्नाटा। कुछ देर बाद फिर से मन ने ही उस खामोश सिलसिले को तोड़ा। “सर... जो हुआ उसे छोड़ो अब।” फिर उसने माही की तरफ देखते हुए कहा—

“क्या आप मेरा एक काम करोगे?”

माही चुप रहा।

मन ने फिर कहा— “क्या मैं उस काम के लिए आप पर विश्वास कर सकती हूँ?” उसने फिर से दोहराया— “सर... मैं वादा नहीं... सिर्फ विश्वास मांग रही हूँ” “बताइए... क्या आप मेरी बात मानोगे? दोगे आप मेरा साथ?”

वो बस उसे देख रहा था। जैसे उसके सामने कोई मूवी चल रही हो... और वो खुद भी नहीं समझ पा रहा हो कि वो इस कहानी का दर्शक है... या पात्र। अब यक्ष प्रश्न यह था— कि मन आखिर उससे चाहती क्या थी? वह किस तरह के साथ की आकांक्षा कर रही थी? इस अनुत्तरित सवाल का जवाब जानने के लिए माही जितना व्यग्र था, उससे कहीं अधिक उतावलापन उस समय बाहर बहती हवा में व्याप्त था। वह हवा उत्सुकता से उपजे उस अदृश्य आवेश में बाहर खड़े वृक्ष के पत्तों को जोर-जोर से इधर उधर पटक रही थी। परंतु, मन के उस शांत और निश्छल चेहरे के पीछे, उसके अंतर्मन के अतल में क्या चल रहा था—यह रहस्य खुलना अभी बाकी था।

“एक ऐसा साथ... जिसकी कल्पना भी नहीं थी”

माही बिल्कुल खामोश था... या कहें कि लगभग सुन्ना। कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद मन ने धीरे से कहा— “Sir...?” जैसे किसी को नींद से जगाया जाता है, उसी तरह उसकी आवाज़ ने माही को ख्यालों से बाहर निकाला।

“हाँ...”

“आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया।”

माही कभी मन की तरफ देखता... कभी मेज की ओर... कभी दीवार पर टंगी घड़ी की तरफ।

“देखिए... मैं आपसे वादा तो नहीं कर सकता। क्योंकि मैं इंसान हूँ... भगवान नहीं। लेकिन एक इंसान जितना साथ दे सकता है... उतना मैं आपका जरूर दूँगा।” मन शायद यही सुनना चाहती थी। उसे पता था कि यह वादा नहीं था... लेकिन वादे से भी बड़ा भरोसा था। और माही को भी पता था कि अनायास ही सही... वो एक तरह से एक वचन दे चुका है।

मन ने धीरे से कहा— “Sir... मेरी शादी की उम्र हो चुकी है। आपको पता है कि मेरे पापा नहीं हैं इस दुनिया में... मम्मी घर तक ही सीमित हैं... भाई अभी छोटा है।” वो थोड़ा रुकी। “ताऊ, चाचा और रिश्तेदारों से कोई उम्मीद नहीं है... उन्हें फर्क ही नहीं पड़ता कि घर में जवान बेटी भी है।” उसने सीधे माही की आँखों में देखते हुए कहा—

“तो आप बताइए... मैं इसमें आपकी क्या सहायता करूँ?”

माही ने सहजता से पूछा।

मन थोड़ी झिझकी... संकोच भी था... और कुछ शर्म भी। फिर धीमे से बोली— “क्या... आप मेरी शादी करवाने में मेरी सहायता करेंगे?” माही थोड़ा चौंका। “कैसी सहायता?”

मन ने नजरे झुका लीं। “क्या आप... मेरे लिए कोई अच्छा सा लड़का ढूँढ़ कर लाओगे?”

ये शब्द सुनकर माही बिल्कुल स्तब्ध रह गया। उसने इस बात की कल्पना तक नहीं की थी। वो एक नौकरी करने वाला युवक था... उसे ऐसे मामलों का कोई अनुभव नहीं था। और सच कहें तो उसकी उम्र भी शायद अभी ऐसी जिम्मेदारी लेने की अनुमति नहीं देती थी। वो बस खामोश बैठा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसने क्या सुन लिया... ये उस के लिए बिल्कुल अकल्पनीय था... साथ ही अचंभित करने वाला भी... वो अब भी इसे स्वीकार करने के लिए भीतर के द्वंद से जूझ रहा था। वो हैरान था, निशब्द था।

कुछ देर बाद मन ने फिर से बात शुरू की— “देखो sir... मुझे पता है कि ये आपके लिए आसान नहीं होगा। इस उम्र और इस माहौल में.. इसलिए मैं आप पर कोई दबाव नहीं डालूँगी। बस... आप में एक भरोसेमंद इंसान दिखा... इसलिए कह दिया।” थोड़ी देर रुककर उसने कहा— “अगर आपको कुछ अजीब लगा हो तो... sorry!”

माही तुरंत बोला— “नहीं... नहीं...” लेकिन उसके बाद भी वो कुछ कह नहीं पाया। जब जाने के लिए वो उठा तो उसे डर था कि कहीं किसी ने उन्हें इस तरह बैठे देख लिया तो लोग कुछ गलत मतलब ना निकाल लें।

यही सोचकर वो कमरे से बाहर निकल गया। कमरे में अब मन अकेली थी। उसके भीतर विचारों की एक श्रृंखला चल रही थी। उनमें से एक विचार यह भी था— “शायद... मुझे यह नहीं कहना चाहिए था।”

अध्याय - 29

“दो रातें... दो ढ़ंद”

उस रात माही की आँखों में नींद नहीं थी। बिस्तर पर लेटा हुआ वह छत को देख रहा था... लेकिन उसकी आँखों के सामने छत नहीं थी। उसके सामने पूरे दिन का घटनाक्रम एक-एक कर उतर रहा था। मन का सामने बैठना... उसका झिझकना... उसका धीरे-धीरे बात कहना... और फिर वो एक वाक्य— “क्या आप मेरे लिए कोई अच्छा सा लड़का ढ़ूँढ कर लाओगे?” यह वाक्य जैसे बार-बार उसके कानों में टक्कर मार रहा था। माही करवट बदलता। लेकिन विचार वहीं खड़े रहते।

अब उसके मन में एक के बाद एक संभावनाओं की श्रृंखला बन रही थी। सबसे पहला प्रश्न— क्या मैं वो काम कर पाऊँगा? और उससे भी बड़ा प्रश्न— क्या मुझे यह करना चाहिए? और सबसे बड़ा प्रश्न

क्यों करूँ? मेरा घर... मेरी नौकरी... मेरा परिवार... क्या इन सबके साथ यह जिम्मेदारी कहीं टकरा तो नहीं जाएगी? और फिर एक और सवाल उठता— उसने मुझे ही क्यों कहा? अपने जीवन की इतनी बड़ी सच्चाई उसने मुझे ही क्यों बताई? ऑफिस में और भी लोग थे... पुराने जानकार भी थे... फिर मैं ही क्यों? उसका देखना, चाय पिलाना, बात करने के बहाने ढ़ूँढना, ये सब मेरे भीतर का वहम था जैसा हमेशा हुआ है... यह भी सिर्फ एक भ्रम ही था? पहले उसकी सगाई ने उस भ्रम को तोड़ दिया था। और आज... अपने लिए नया लड़का ढ़ूँढने की बात कहकर शायद उसने उस भ्रम की आखिरी संभावना भी खत्म कर दी थी।

शायद उसका पहले का व्यवहार मेरे भीतर की नई संभावना के लिए एक भूमिका था।

माही ने गहरी सांस ली। “शायद... हाँ...” लेकिन फिर उसके भीतर से एक और आवाज आई— लेकिन वो एक जरूरतमंद इंसान है। अगर कोई लड़की इतनी मजबूरी में इतना बड़ा भरोसा लेकर किसी के पास आती है... तो क्या एक इंसान होने के नाते मुझे उसका साथ नहीं देना चाहिए? यहीं से माही का मन एक द्वंद में फँस गया। वो अपने ही विचारों से लड़ रहा था। और इस लड़ाई में सिर्फ प्रश्न निकल रहे थे... उत्तर फिलहाल कहीं नहीं थे।

उधर... मन की आँखों से भी नींद गायब थी। वो भी बिस्तर पर लेटी हुई बंद आँखों से दोपहर के दृश्य को देख रही थी। लेकिन उसके भीतर एक ही विचार बार-बार उठ रहा था— “शायद मैंने गलत कर दिया।” क्या उसे माही से यह बात कहनी चाहिए थी? क्या उसने एक इंसान को अजीब सी स्थिति में डाल दिया? अगर उसने मना कर दिया तो...? और अगर उसने आज का दृश्य किसी को बता दिया तो...? इन सब सवालियों के बीच मन का दिल भी बेचैन था। उस रात... अलग अलग गांव में दो अलग-अलग कमरों में दो लोग एक ही चिंता में जाग रहे थे। दोनों के बीच दूरी थी... लेकिन उनके भीतर एक जैसा द्वंद चल रहा था।

“एक संदेश...और शुरू होती कहानी”

एक दिन रविवार की सुबह... राहुल का घर। सुबह के करीब 8 बजे का समय था। नींद से उठते ही राहुल ने आदत के मुताबिक अपना मोबाइल उठाया और व्हाट्सएप खोल लिया। सबसे ऊपर एक मैसेज था — Mahi का। मैसेज रात देर से भेजा गया था। उसने मैसेज खोला। ऊपर एक Biodata था। नीचे कुछ सामान्य जानकारी लिखी हुई थी— लड़का, Doctor, पिता, Army से रिटायर। और अंत में फिर एक छोटी-सी पंक्ति लिखी थी— “मन के पास भेज देना...” राहुल ने जो पढ़ा उसका अर्थ समझने के लिए वो लगातार संदेश को देखे जा रहा था। उसकी आंखों में एक सवाल था

उधर... माही अपने घर की बालकनी में बैठा था। सुबह की धीमी ठंडी हवा के साथ वो चाय की चुस्कियां लेते हुए अखबार के पन्ने पलट रहा था। लेकिन अजीब बात थी... अखबार के शब्दों में भी उसे अपने ही ख्याल दिखाई देने लगते। उसने मन ही मन तय कर लिया था— कि वो अपने दिए हुए वचन को निभाएगा। वो इस रास्ते को इंसानियत का रास्ता मान चुका था। कभी वो खुद को समझाता— बस एक-दो अच्छे प्रयास करने हैं। उसके बाद... उसे वो मिल जाएगा जो वो चाहती है। और मुझे... आराम। और सुकून।

लेकिन... शायद वो गलत था। हाँ... गलत ही था। क्योंकि— किसी के कहने से वो एक कहानी लिखने चला पड़ा... और उसे खुद को भी पता नहीं चला कि कब वो खुद ही उस कहानी का एक सशक्त चरित्र बन जाएगा। उसी जगह बैठा माही अखबार के एक ही पन्ने पर रुका हुआ था जहाँ उसकी नजरें कई मिनटों से टिकी थीं। लेकिन सच तो ये था— वो अखबार नहीं पढ़ रहा था। वो बस... अपनी ही लिखी जाने वाली कहानी का पहला पन्ना देख रहा था।

अध्याय - 31

"एक पैगाम...."

उसी दिन... दोपहर का समय। मन का घर, मन अपने कमरे में लेटी थी... तभी फोन पर एक मैसेज की बीप हुई। राहुल का मैसेज था। उसमें 1 बायोडाटा था। और उसके ठीक नीचे सिर्फ एक छोटी सी लाइन लिखी थी— "माही ने भेजा है।" राहुल ने अपने हिस्से का काम कर दिया।

पंक्ति को देखते ही मन का चेहरा एकदम से खिल उठा जैसे उसमें से कोई प्रकाश तरंग निकली हो, सच तो यह था कि वो उस बायोडाटा को पढ़ने से पहले, बार-बार उस एक लाइन को देख रही थी— "माही ने भेजा है।" दफ्तर के उस बंद कमरे में अपनी बात कहे हुए पूरा 1 सप्ताह बीत चुका था। इन सात दिनों की भारी खामोशी के बाद मन ने लगभग सोच ही लिया था कि शायद माही का जवाब "ना" है। लेकिन आज... यह सब देखकर उसे अपने विश्वास पर गर्व और फख्र हो रहा था। आज उसे सचमुच अहसास हो रहा था कि पिता के जाने के बाद भी, इस दुनिया में कोई तो है जो बिल्कुल उनके जैसी फिक्र करने वाला है।

फिर भी वो मन ही मन हैरान थी और सोच रही थी कि... इतनी जल्दी? इतनी जल्दी उसने फैसला भी कर लिया और मेरे लिए इतना अच्छा लड़का ढूँढ़ भी लिया? यह सोचते हुए उसके होठों पर वही चिरपरिचित, लड़कियों वाली एक मासूम सी मुस्कान फैल गई।

उधर... दूसरी तरफ माही था। मन सोच रही थी कि उसने 'इतनी जल्दी' ढूँढ़ लिया। लेकिन माही सोच रहा था कि इस 1 लड़के को ढूँढ़ने के लिए, इस एक हफ्ते की रातों में उसे अपने ही दिल और दिमाग के साथ कितनी भयानक मशक्कत करनी पड़ी है... यह सिर्फ और सिर्फ वो ही जानता था। पर कोई नहीं... माही ने एक ठंडी साँस ली। उसने खुद को समझाया— "चलो... अब शायद किसी की मंज़िल तो नज़दीक हुई।"

अध्याय - 32

“Contact me directly”

अगले दो-तीन वही रोज़ का रूटीन चलता रहा। ऑफिस का काम... और फिर वापस घर। मन और माही का आमना-सामना तो होता था, लेकिन दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं होती थी। अब माही को थोड़ा अजीब लगने लगा था। क्योंकि वह मन की तरफ से भेजे गए बायोडाटा के बारे में किसी प्रतिक्रिया का इंतज़ार कर रहा था। लेकिन उसकी तरफ से तो जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। मन का यह व्यवहार माही को हैरान भी कर रहा था... और उसके भीतर एक अजीब-सी बेचैनी भी पैदा कर रहा था।

वो ही जानता था कि उसने कितनी मुश्किल से वह डिटेल मंगवाई थी। कितने लोगों से बात की थी... और यहाँ तो ऐसा लग रहा था कि शायद उसकी कोई ज़रूरत ही नहीं थी। फिर हमेशा की तरह वो दिमाग चलाने लगा— क्या उसे लड़का पसंद नहीं आया? या फिर राहुल ने भेजा ही नहीं? या फिर कोई और बात है? या शायद... वह संकोच की वजह से कुछ कह नहीं पा रही। तो क्या मुझे ही पूछ लेना चाहिए? पर नहीं... मेरा पूछना शायद ठीक नहीं होगा। लेकिन जिसने लड़के की डिटेल दी है... उसे भी तो जवाब देना है। उसके फोन भी आ रहे हैं। करूँ तो क्या करूँ... वह इन्हीं विचारों में उलझा हुआ था कि तभी अधिकारी का बुलावा आ गया।

साहब से मिलकर जैसे ही वह वापस लौटा तो गैलरी में उसका सामना मन से हो गया। माही ने बस एक नज़र उसकी तरफ देखा... लेकिन कुछ कहा नहीं। तभी मन ने धीरे से कहा— “Sir... आपके पास मेरा नंबर है?”

माही ने संक्षेप में जवाब दिया— “नहीं।”

“तो ले लीजिए... और आगे से आप मुझसे सीधा contact कीजिए... राहुल सर के through नहीं।”

“ठीक है।”

थोड़ा रुक कर माही ने पूछा— “वो.. उस दिन जो भेजा था...”

मन ने उसकी बात पूरी होने से पहले ही कहा— “हाँ... अभी मेरा एक exam है। उसके बाद... उस बारे में बात करते हैं।”

“चलो... कुछ तो शांति मिली।”

वह अपनी कुर्सी पर बैठा। अचानक उसे चाय की इच्छा महसूस हुई। उसने चपरासी को आवाज़ दी— “चाय भिजवा देना।” लेकिन जवाब आया एक जानी-पहचानी मासूम आवाज़ में— “Yes Sir...”

माही ने नज़र ऊपर करी। सामने मन खड़ी थी... हाथ में केतली और कप। वह चुपचाप चाय डालने लगी। माही ने क्षणिक मुस्कान के साथ पूछा— “आपको पता था?” मन ने भी मुस्कराते हुए कहा— “हाँ... हाँ... अब आपके बारे में थोड़ा-थोड़ा पता चलने लगा है।” बस इतना कहकर मन बाहर निकल गई। माही ने चाय की पहली चुस्की ली... और होंठों पर मिठास लिए फिर से अपने काम में लग गया।

"नई शुरुआत (पहली चैट)"

उसी दिन दोपहर को मन ने माही के फोन में अपना नंबर सेव कर दिया था। लेकिन अजीब बात यह रही कि उसके बाद लगभग छह-सात दिनों तक दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई, आमना-सामना तो रोज हो जाता... हल्की सी नज़र मिल जाती... लेकिन बात फिर भी नहीं होती, दोनों अब भी किसी अनकहे संकोच की ठंड में असहज थे

इसी बीच माही की ड्यूटी पंचायत चुनाव में लग गई। चुनाव के समय लगभग हर पुरुष कर्मचारी की ड्यूटी लग ही जाती है। लेकिन उसी दौरान मुख्यालय से एक court case update का मैसेज आ गया। माही समझ गया कि यह काम जरूरी है। उसने तुरंत राहुल को फोन लगाया, क्योंकि ऑफिस के वही केस राहुल के पास लंबित थे। लेकिन राहुल भी इलेक्शन ड्यूटी पर था। फोन पर उसने साफ कह दिया— “भाई... मैं तो अभी फील्ड में हूँ, ऑफिस में कोई नहीं है।” फोन कट गया।

माही कुछ देर तक सोचता रहा। कोई भी जिम्मेदार कर्मचारी अपने ऑफिस का काम सिर्फ इस बहाने नहीं छोड़ सकता था कि उसकी इलेक्शन ड्यूटी लगी है।

ये ही सोच माही की थी, पर सवाल था— करवाएं कैसे? तभी अचानक उसके दिमाग में एक नाम कौंधा— मन। शायद वह ऑफिस में होगी। वह उससे कह सकता है। लेकिन ये भी इतना आसान नहीं था, एक झिझक ने उसको रोक दिया। आज तक उसने मन से फोन पर बात ही नहीं की थी। “ये मेरे से नहीं होगा...” उसने मन ही मन सोचा। लेकिन काम करवाना भी जरूरी था। एक दो नाकाम कोशिश और कई देर तक सोचने के बाद आखिर उसने मोबाइल उठाया। व्हाट्सएप खोला। मन का प्रोफाइल सामने आ गया। प्रोफाइल पर कोई DP नहीं थी। बस About में एक हल्की-सी romantic line लिखी थी। पंक्तियों से बाहर निकल कर उसने एक छोटा-सा मैसेज टाइप किया... लेकिन भेजने से पहले ही रुक गया। उंगलियाँ फिर स्क्रीन पर आईं... फिर वापस चली गईं। काफी देर तक स्क्रीन और उंगलियों के बीच एक छोटी-सी जद्दोजहद चलती रही। आखिरकार... उंगलियाँ जीत गईं। उसने कहानी का पहला मैसेज भेज दिया था—



“Mam...”

सेकंडों के अंतराल में दूसरी तरफ से जवाब आया— “Han Sir.”

माही ने अगला मैसेज लिखा— “Office me ho..?”

“Han.”

माही ने लिखा— “Court case update kar dena...”

“Ok Sir.”

बस... यही उनकी पहली चैट थी। बहुत छोटी... और बेहद औपचारिक। लेकिन इसके बाद भी दोनों कुछ देर तक अपनी-अपनी स्क्रीन को देखते रहे। शायद इस उम्मीद में कि कोई अगला मैसेज आएगा। या शायद... यह सिर्फ पहली बातचीत की नई अनुभूति थी। जो भी था... लेकिन वह क्षण अजीब तरह से रोमांचित करने वाला था। उधर चुनाव ड्यूटी वाली जगह पर सब कर्मचारियों को टेंट में इकट्ठा होने की घोषणा हो रही थी। और इधर... ऑफिस में बैठी मन चुपचाप court case portal पर update कर रही थी।

“बारिश की रात और बेचैन मन”

रात को... खाना खाने के बाद माही और उसका स्टाफ अगले दिन होने वाली वोटिंग की तैयारी में लगे हुए थे। शाम तक कागजी कार्यवाही पूरी करते-करते सब थक चुके थे। रात गहराने लगी थी। माही अपने साथियों के साथ सोने के लिए लेटा ही था कि तभी फोन पर एक नोटिफिकेशन चमका। उसने तुरंत खोलकर देखा। मैसेज मन का था।

Sir... कैसे हो? खाना खा लिया?"

"Haan, मैं ठीक हूँ। आप कैसे हो?"

मैं भी ठीक हूँ।"

थोड़ी देर बाद मन ने लिखा— "Sir... मम्मी एक लड़के के साथ रिश्ते की जिद्द कर रही है। मुझे पसंद नहीं है।"

माही ने तनिक विचार किया। फिर उसने जवाब दिया— "आप लोग उस डॉक्टर के घर वालों से बात कर लो।"

मन ने तुरंत लिखा— "आप ही कर लो ना sir..."

माही ने धीरे से टाइप किया— "अभी तो संभव नहीं है। कल वोटिंग है... फिर रात को machine जमा करवाते-करवाते देर हो जाएगी। उससे अगले दिन बात करता हूँ।"

मन का छोटा-सा जवाब आया— "Thik hai sir. खुद का ख्याल रखिएगा।"

माही ने भी लिखा— "Haan... आप भी।"

बस... इसके बाद दोनों offline हो गए। लेकिन पता नहीं क्यों... माही अचानक उठकर बाहर चला आया। बाहर हल्की बारिश अभी-अभी थमी थी। हवा में शीतलता थी। धीमी-धीमी हवा जैसे रात को और भी सुहावना बना रही थी। लेकिन माही के भीतर उठ रहा ख्यालों का ज्वार उस ठंडक पर भारी पड़ रहा था। कुछ देर पहले ही उससे गलती से मन का WhatsApp profile खुल गया था। तब वह online थी। और अब... उसके मैसेज पढ़कर माही को लग रहा था कि शायद वह सच में परेशान है। बस... इतना ही काफी था।

उसके दिमाग को सक्रिय करने के लिए। वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचने लगा— क्या सच में मन पर जल्दी शादी का दबाव है? अगर ऐसा है तो मुझे क्या करना चाहिए? कहानी तो चल रही है... लेकिन समस्या यह है कि अनजाने में ही सही... मैं भी उस कहानी को आगे बढ़ा रहा हूँ पर क्यों?

तभी पीछे से आवाज आई— “अस्तित्व... अस्तित्व...” यह पीठासीन अधिकारी की आवाज थी। वो एकदम से ख्यालों के सागर से निकलकर वास्तविकता के धरातल पर लौट आया। “जी... आया।” अंदर जाकर उसने कहा— “जी सर।” अधिकारी ने प्यार से कहा— “भाई... अब सो जाओ। सुबह जल्दी उठना है।” “जी सर।” माही चुपचाप जाकर लेट गया। लेकिन... उसके दिमाग में ख्यालों का कारवाँ फिर से चल पड़ा। हालाँकि... इस बार नींद ने जल्दी ही उस कारवाँ को रोक लिया।

“थकान पर भारी एक जिम्मेदारी”

सुबह... सभी कर्मचारी जल्दी उठ गए थे। नहा-धोकर सब अपने-अपने काम में लग गए। कुछ ही देर में मतदान शुरू हो गया। भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती रही। मतदाता आते रहे... नामों की जांच ... मशीन का संचालन... कागजी कार्यवाही... दिन भर ऐसा लगा जैसे सांस लेने तक की फुर्सत नहीं थी। बीच-बीच में माही के मन में यह विचार आता कि उसे लड़के के घर वालों से बात करनी है। लेकिन फोन करना तो दूर... उसे मोबाइल देखने तक का समय नहीं मिला।

शाम होते-होते मतदान समाप्त हुआ। अब असली काम शुरू हुआ— EVM मशीनों को सील करना, कागज पूरे करना और सब कुछ जिला मुख्यालय पर जमा करवाना। इस भागदौड़ में रात के बारह बज गए। काम खत्म होते-होते शरीर पूरी तरह थक चुका था। माही जब घर पहुंचा तो रात के दो बज रहे थे। चुपचाप नहाया... और बिना किसी से कुछ कहे बिस्तर पर गिर पड़ा। कुछ ही पलों में नींद ने उसे अपने कब्जे में ले लिया।

सुबह... जब उसकी आँख खुली तो नौ बज चुके थे। उसने मोबाइल उठाया। मन का संदेश आया हुआ था— “पहुंच गए घर?” माही ने छोटा-सा जवाब लिखा— “हाँ” और फोन साइड में रख दिया। लेकिन कुछ ही क्षण बाद वह फिर सोच में पड़ गया। यह सवाल... फिक्र था? या फिर... कोई जरूरत? वह कुछ पल तक इस सवाल में उलझा रहा। फिर खुद को समझाया— खैर... जो भी हो। उसने जो काम दिया है, अब उसी पर ध्यान देना चाहिए।

वह पिछले दो दिनों से लड़के के घर फोन करने के लिए बेचैन था। पहले उसने उस बिचौलिए को फोन किया जिसके माध्यम से जानकारी मिली थी। उसने कहा— “आप खुद ही बात कर लो... मैं अभी बाहर हूँ” कुछ देर विचार करने के बाद उसने लड़के के पिता का नंबर मिलाया।

“नमस्ते जी... अस्तित्व बोल रहा हूँ”

“जी... कहिए।”

“असल में... आपके बेटे का बायोडाटा किसी परिचित से मिला था। तो पूछना चाहता हूँ कि आगे की बात करने और लड़के को देखने के लिए क्या हम आपके घर आ सकते हैं?”

“देखिए... लड़का तो कल ही ड्यूटी चला गया है। अब लगभग एक महीने बाद ही आएगा। तब आप देख लीजिएगा।”

“ठीक है जी शुक्रिया... राम-रामा।”

फोन कट गया। उसे थोड़ा क्षोभ हुआ। उसे लगा— पिछले हफ्ते मन ने ही बात आगे नहीं बढ़ाई... और अब लड़का ही बाहर चला गया। लेकिन अगले ही पल उसने खुद को समझाया— “कोई नहीं...” उसने मन को मैसेज किया और पूरी यथास्थिति बता दी। साथ ही यह सलाह भी दी— “घर वालों को एक महीने तक रोक लो।” लेकिन मन का जवाब आया— “नहीं... यह बहुत लंबा वक्त है। तब तक घर वाले कोई फैसला ले लेंगे। आप और ट्राई करो।”

उसके मन में आया— इतनी जल्दी कैसे करूँ? अभी तो रात को ही आया हूँ... इतनी थकावट भरी ड्यूटी करके। लेकिन फिर... उसे मन का वही मजबूर चेहरा याद आ गया। कुछ सोचकर उसने एक पुराने जानकार को फोन किया। लेकिन फोन नहीं उठा। शाम तक उसने दो बार और फोन किया। फिर भी कोई जवाब नहीं मिला। आखिरकार शाम को उसने किराए की गाड़ी की। हालाँकि उसके घर में गाड़ी थी लेकिन उसे चलानी नहीं आती थी। वह लगभग 15 किलोमीटर दूर एक जानकार के घर पहुंच गया। दरवाजा खुला। माही ने कहा— “आपने फोन नहीं उठाया...” अंकल मुस्कराए— “अरे... फोन तो खराब है बेटा। इसलिए पता ही नहीं चला।” “बताओ... क्या बात है?” माही ने संकोच से कहा— “वो... आपसे किसी अच्छे लड़के के बारे में कहा था ना...” “हाँ बेटा याद है मुझे। सुबह तुम्हें एक डिटेल भेजता हूँ।” “ठीक है अंकल जी।” माही उठने लगा। अंकल बोले— “अरे... चाय तो पीते जाओ।” “नहीं... फिर कभी।” उसने शालीनता के साथ मना किया और धीरे से वहाँ से निकल आया। हमेशा की तरह उसे चाय की इच्छा तो थी... लेकिन उस तलब पर एक दूसरा ही नशा भारी पड़ चुका था। ये था कुछ... निभाने का नशा।

अध्याय - 36

“खुद से पहले”

अगले दिन ऑफिस में काम करते वक्त Peon आया— “Sir, आप से कोई मिलने आया है।” “ठीक है, यहीं ले आओ।” एक 55-60 साल के व्यक्ति अंदर आए। औपचारिक अभिवादन के बाद उसने Peon से पानी के लिए बोला। थोड़ी देर बात करने के बाद वो चले गए। असल में वो माही के अपने रिश्ते के लिए आए थे, लेकिन फिलहाल उसने घर वालों से बात करने के लिए कहकर उन्हें विदा कर दिया था।

“कितने हैरत की बात है कि अपने रिश्ते के लिए अभिभावकों से मिलने की कहने वाला लड़का खुद किसी लड़की के रिश्ते के लिए सरपरस्त बना घूम रहा था।”

जिसकी बानगी देखिए, फोन पर एक मैसेज आया कल रात वाले अंकल का, उन्होंने एक बायोडाटा भेजा था। माही ने डिटेल खोली, देखा और सीधा मन के द्वार यानी उसके मोबाइल पर भेज दिया। 1 घंटे बाद रिप्लाई आता है— “Sir, Not-interested.”

माही हैरानी के साथ पूछता है— “Why?”

“क्योंकि मुझे आर्मी वाले पसंद नहीं।”

लेकिन क्यों ?

बस ऐसे ही..

“अच्छा... कोई बात नहीं।”

माही फिर से अपने काम पर लग गया। कुछ देर बाद एक और बायोडाटा। किसी और से कह रखा था, इसलिए उन्होंने भी भेज दिया था। उसने वह भी सीधा उसके पास भेज दिया। 5 मिनट बाद जवाब आया— “Sir, प्राइवेट वाले नहीं।”

माही कुर्सी पर सर टिकाए, एक लंबी सांस लेते हुए मन ही मन बोला— “तो क्या पसंद है?” खैर कोई नहीं, लड़की सरकारी है तो लड़का भी सरकारी होना चाहिए। हालांकि पैकेज अच्छा था, इसलिए उसने भेज दिया था। लेकिन अब शायद उसे लगने लगा था कि ये सफर इतनी आसानी से पूरा होने वाला नहीं है, जितना कि उसने सोचा था।

अध्याय - 37

“आधी रात का सूरज

(एक नई स्फूर्ति)

सांझ की खानगी के साथ ही सन्नाटा अब रात की परतों में और गहरा उतर चुका था। खाना खाने के बाद माही अपने बिस्तर पर लेटा था, लेकिन अभी नींद उस से कुछ मील की दूरी पर थी। वह आज दिन भर की घटनाओं को एक-एक करके अपने ज़ेहन में टटोल रहा था।

कितनी अजीब विडंबना थी! एक तरफ रिश्ते वाले खुद उसे देखने आ रहे थे, और दूसरी तरफ, उसने 'मन' के लिए 2 अच्छे बायोडाटा भेजे थे, और दोनों ही खारिज हो गए।

"खैर..." माही ने मन ही मन सोचा, "किसी भी लड़की को अपनी पसंद और नापसंद का पूरा हक है। और मुझे उसकी इस भावना का पूरा सम्मान करना चाहिए।"

लेकिन फिर उसके भीतर एक अजीब सी कश्मकश शुरू हो गई। जो वचन उसने मन को और खुद को दिया था, क्या उससे पीछे हट जाना चाहिए? खुद के सुकून और अपनी रातों की नींद के लिए क्या उसे यह सब छोड़ देना चाहिए?

नहीं! ऐसा करना तो कायरता होगी। और माही के शब्दकोश में कायरता के लिए कोई जगह नहीं थी, वहाँ तो पहला शब्द ही 'शिद्दत' था। इसी सोच के जाल में उलझते हुए रात के 12 बज गए। जब विचारों का बोझ बर्दाश्त से बाहर होने लगा, तो माही चुपचाप बिस्तर से उठा और सीधा रसोई में चला गया।

उसने अपने लिए एक कप चाय बनाई। चाय का गर्म कप हाथों में लिए वह वापस बिस्तर पर आकर बैठ गया। पहली चुस्की लेते ही जैसे ख्यालों की धुंध छँटने लगी। उसने खुद को समझाया— "मान लो... अगर मेरे इन छोटे-छोटे प्रयासों से उसे कोई अच्छा घर मिल जाता है, तो क्या यह मेरे प्रयासों की सबसे बड़ी सफलता नहीं होगी? क्या मुझे उम्र भर का सुकून नहीं मिल जाएगा?"

चाय के उस कप ने जैसे उसके भीतर एक नई स्फूर्ति, एक नई ऊर्जा का संचार कर दिया था। उस सुकून के साथ ही उसकी आँख लग गई।

अगला दिन उसी तरह पूरा हो गया जैसे हर रोज होता है— ऑफिस का काम और फिर वापस घर।

लेकिन रात को खाना खाने के बाद, माही के भीतर की वो जवाबदेहिता फिर जाग उठी। उसने अपने एक अन्य दफ्तर के सहकर्मी को फोन मिलाया।

हाल-चाल की चंद औपचारिकताओं के बाद माही सीधे मुख्य विषय पर आ गया।

"भाई... कोई अच्छा सा लड़का हो तो बताना अपनी ही जाति में।"

माही का लहजा बिल्कुल एक अनुभवी और फिक्रमंद पिता जैसा था। उसने आगे कहा— "देखो भाई, लड़का कमाने वाला हो, कोई व्यसन (बुरी आदत) ना हो, और परिवार सीधा और शरीफ हो। क्योंकि... लड़की बहुत सुंदर, शरीफ और सरकारी नौकरी वाली है। उसके सिर पर पिता जी का साया नहीं है... फिलहाल पूरे घर की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर है।"

माही के इन शब्दों में जो गहराई और सम्मान था, उसका असर दूसरी तरफ भी हुआ। सहकर्मी ने तुरंत सकारात्मक प्रतिक्रिया दी— "हाँ भाई, बिल्कुल है मेरी नज़र में एका लड़का पुलिस में सब-इंस्पेक्टर है। पढ़ा-लिखा है, परिवार बहुत सीधा है और लड़के में कोई बुरी आदत नहीं है। कहो तो मैं डिटेल भेज दूँ?"

"हाँ, हाँ, बिल्कुल भेजो!" माही ने शब्दों में उतावलापन छलकाते हुए कहा।

कुछ ही देर बाद फोन पर एक मैसेज के साथ लड़के की डिटेल आ चुकी थी, लेकिन वह बहुत ही टूटी-फूटी और बेतरतीब थी।

रात के 11 बज चुके थे, लेकिन माही की थकान ऊर्जा में बदल चुकी थी। वह बैठ गया और एक-एक शब्द को सुधारने लगा। उसने उस कच्चे बायोडाटा को ऐसे सजाया और संवारा जैसे किसी चित्रकारी कि प्रदर्शनी में रखना हो, ताकि देखने वाले पर अच्छा प्रभाव पड़े।

जब बायोडाटा पूरी तरह से तैयार हो गया, तो माही का हाथ 'Send' बटन की तरफ बढ़ा। लेकिन तभी उसकी अंतरात्मा ने उसे रोक लिया।

"रात के 11 बज रहे हैं... इतनी रात को किसी लड़की को मैसेज करना ठीक नहीं।" उसने सोचा और फोन को किनारे रख दिया।

उसने तय किया कि वह यह शुभ समाचार सुबह ही भेजेगा। यह सोचकर ही उसकी पलकों में एक सुकून भरी खुशी तैर गई। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

लेकिन ताज्जुब की बात थी... नींद आज उसकी आँखों से नदारद थी।

पर आज रात यह बेकरारी दर्द की नहीं थी। आज शायद इसलिए नींद नहीं आ रही थी क्योंकि उसे लग रहा था कि उसने मन की पसंद के बहुत करीब का कोई रिश्ता ढूँढ़ लिया है। रात की कालिख में, बंद पलकों के पीछे, सफलता की वह मीठी खुशबू धीरे-धीरे महक रही थी।

अध्याय - 38

85 किलोमीटर का सफ़र और एक तस्वीर

अगली सुबह...

उठते ही माही ने सबसे पहला काम उस 'सब-इंस्पेक्टर' वाले बायोडाटा को मन के पास भेजने का किया। एक उम्मीद भरा मैसेज भेजकर वह दफ्तर के काम पर निकल गया। इत्तेफाक से उस दिन मन भी छुट्टी पर थी।

माही इस नए रिश्ते पर मन की प्रतिक्रिया जानने के लिए इतना उत्सुक था कि उसका हाथ बार-बार फोन की स्क्रीन की तरफ चला जाता। लेकिन शाम हो गई... उस तरफ से कोई जवाब नहीं आया। ना हाँ, ना ही कोई ना।

यह खामोशी माही को बहुत अजीब लग रही थी। वह सोच रहा था— "लड़का सरकारी भी है और संस्कारी भी। अब ऐसा क्या रह गया जो उस घर को संपूर्ण कर सके?" इसी उधेड़बुन के साथ वह घर लौटा। अगली सुबह फिर दफ्तर और फिर घर... लेकिन बीच का वो रास्ता (मन का इनबॉक्स) अभी भी खाली था। यह सब माही को सच में हैरत में डाल रहा था।

आखिरकार, उसी रात 7 बजे माही के सब्र का बाँध टूटा और उसने मैसेज कर ही दिया—

"बताओ... कुछ?"

जवाब में मन ने सिर्फ दो शब्द लिखे—

"Sir... Photo"

यह पढ़कर माही को थोड़ा अजीब लगा।

"अरे, तो पहले डिटेल की तो बता देते कि ठीक लगी या नहीं?"

"हाँ, ठीक है। फोटो हो तो भेज दो।"

माही ने मैसेज तो पढ़ लिया, लेकिन पता नहीं क्यों उसे इस 'ठीक है' में कुछ "ठीक" नहीं लग रहा था। उसे इस शब्द में एक भिन्न सी बनावट और मजबूरी प्रतीत हो रही थी। वह मन को जितना समझने की कोशिश कर रहा था, वह उतनी ही उलझती जा रही थी।

खैर, उसने फोटो के लिए अपने उस जानकार को फोन लगाया। उसने 'कल' का आश्वासन दे दिया।

अगले दिन माही को फोटो का इंतज़ार था, लेकिन वो नहीं आई। उसने दोस्त को फोन किया, पर उसने उठाया नहीं। अगला दिन भी ऐसे ही इंतज़ार में निकल गया।

रात को माही के माथे पर चिंता की लकीरें गहरी हो गईं। मन को फोटो चाहिए थी, जानकार फोन नहीं उठा रहा था।

"अब क्या करूँ? मैंने मन को फोटो के लिए हाँ बोल दिया है। अब अगर मना करूँगा तो उसके भीतर से मेरा विश्वास कमजोर हो जाएगा..."

एक और बेबस सी स्थिति पैदा हो गई थी। नींद का तो अब कोई मतलब ही नहीं था। जैसे-तैसे रात काटी और सुबह होते ही उसने एक फैसला कर लिया।

अगली सुबह वह तैयार तो हुआ, लेकिन दफ्तर के लिए नहीं... बल्कि उस थानेदार लड़के के गाँव जाने के लिए।

वह गाँव माही के गाँव से 80 किलोमीटर दूर था। 2-3 बसें बदलकर वह किसी तरह निकटवर्ती कस्बे तक पहुँचा। वहां से उस सुदूरवर्ती गाँव की दूरी अभी भी 4-5 किलोमीटर थी और आवागमन का कोई साधन नहीं था।

माही ने कुछ देर सोचा और फिर पैदल ही अपनी मंज़िल की तरफ निकल पड़ा। नवंबर के शुरुआती दिनों की वह गर्म दोपहर थी, ठंड की शुरुआत के महीने में भी गर्मी अच्छी-खासी थी। पसीने से तर-बतर माही बस आगे बढ़ता जा रहा था। इस शारीरिक थकान के साथ-साथ उसके भीतर एक शंका भी चल रही थी— जिस खुशी भरी प्रतिक्रिया की उम्मीद उसे बायोडाटा भेजने के बाद थी, वह तो मन में बिल्कुल भी नहीं दिखी थी। एक सोच में से 10 सोच निकालते हुए माही आखिरकार उस गाँव की सीमा में प्रविष्ट हुआ।

उसने तय किया कि जब गाँव आ ही गया है, तो लड़के और परिवार की पूरी जानकारी भी निकाल लेगा।

गाँव में घुसते ही एक वृद्ध बाबा मिले। माही ने उनसे लड़के के परिवार के बारे में पूछा।

बाबा ने इत्मीनान से कहा— "अच्छा लड़का है बेटा, और परिवार भी बहुत शरीफ है।"

माही को थोड़ी संतुष्टि हुई। उसने झिझकते हुए पूछा— "देखने में कैसा है वो?"

बूढ़े बाबा ने माही को ऊपर से नीचे तक देखा और एक ऐसी बात कह दी जो सीधे माही के दिल में उतर गई—

"बिल्कुल तुम्हारे जैसा... जवान और सुंदर।"

लेकिन तभी बाबा ने पूछ लिया— "पर तुम किसके लिए आए हो?"

उस पल माही को पहली बार अपनी उम्र और इस "भूमिका" के बीच के फर्क का गहरा आभास हुआ।

खैर, वह आगे बढ़ा। गाँव के एक पीपल के पेड़ के नीचे संयोग से लड़के के चाचा जी मिल गए। बहुत मना करने के बावजूद भी वो माही को अपने घर ले गए।

माही को वहां वही चाय पिलाई गई, जिसकी उसे हमेशा से तलाश रहती थी। वहां उसकी मुलाकात लड़के के परिवार और उसके भाई से हुई। माही ने उनसे लड़के की फोटो ले ली।

बातों-बातों में उन्होंने पूछ लिया— "आप लड़की के क्या लगते हैं?"

माही की जुबान से बिना किसी लाग-लपेट के सच्चाई निकल गई— "सहकर्मी।"

हालांकि बाहर निकलने के बाद उसे अहसास हुआ कि ऐसे मामलों में यह 'सहकर्मी' शब्द उल्टा पड़ सकता है। उसने खुद को समझाया कि आगे से कोई और ही रिश्ता बताना पड़ेगा। लड़के के भाई ने इंसानियत दिखाते हुए माही को मोटरसाइकिल पर वहां छोड़ दिया, जहाँ से वह 5 किलोमीटर का सफर पैदल तय करके आया था।

रात के 8 बज चुके थे जब माही अपने घर पहुँचा।

खाना खाकर वह सीधे बिस्तर पर लेट गया। थकान से पोर-पोर टूट रहा था।

उसने सबसे पहले मन का नंबर खोला, उसे वह तस्वीर भेजी... और बिना उसकी प्रतिक्रिया का इंतजार किए, अपना फोन 'स्विच ऑफ' कर दिया। वह अब और नहीं टूट सकता था। अपनी मानसिक शांति के लिए उसने उस स्क्रीन को बंद कर दिया था। वह बिस्तर पर पड़ा यही सोच रहा था कि मन की चाहे जो भी प्रतिक्रिया आए, उसने अपना वादा निभा दिया था।

रात के 11 बज गए।

माही धीरे से उठा और हमेशा की तरह चाय बनाने के लिए रसोई में गया।

चाय की उड़ती हुई भीनी महक को साँसों में समेटते हुए जैसे ही उसने पहली चुस्की भरी, उसके अधरों पर एक बेसाख्ता, मीठी सी लचक दौड़ गई। रात की उस ठहरी हुई खामोशी के साए में, वह अपनी तन्हाई से गुफ्तगू करता हुआ मानो उसे से कह रहा हो—

"चाह है नींद की और तलब है चाय की...

पर कमबख्त एक है कि आती नहीं... और दूसरी है कि कहीं जाती नहीं।"

“एक अनसुलझी पहेली और वो 'सिंगल टिक'”

अगली सुबह...

थकान और रात वाली उस चाय की वजह से माही को देर से ही सही, लेकिन कई दिनों बाद एक गहरी और इत्मीनान भरी नींद आई थी। सुबह जब उसकी आँख खुली, तो भीतर एक नई स्फूर्ति थी। फ्रेश होने के बाद उसने सोचा— "पहले तसल्ली से चाय पीता हूँ, उसके बाद ही मन का रिप्लाय देखूँगा।" शायद वह उस सुकून को कुछ पल और थाम कर रखना चाहता था।

चाय खत्म करने के बाद, एक उम्मीद के साथ उसने अपना व्हाट्सएप खोला।

लेकिन स्क्रीन देखते ही वह फिर से हैरान रह गया। फोटो देखे जाने का 'ब्लू टिक' तो आ चुका था, लेकिन जवाब में कोई रिप्लाय नहीं था! यह खामोश और सर्द व्यवहार माही को अंदर तक हिला गया।

उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि आखिर मन के दिमाग में चल क्या रहा है। उसने बिल्कुल वैसा ही लड़का खोजा था जैसी मन की हसरत थी, लेकिन अब यह खामोशी उसकी समझ से परे थी। माही की अब और कुछ पूछने की ना तो हिम्मत बची थी और ना ही रुचि।

लेकिन तभी... लड़के के भाई का मैसेज आ गया। वह लड़की (मन) की डिटेल् और फोटो मांग रहा था।

अब माही के पास बात करने के अलावा कोई चारा नहीं था। उसने बिना मन के, भारी उंगलियों से मन को मैसेज टाइप किया—

"कुछ कमी रह गई क्या?"

उसकी तरफ से जवाब आया— "नहीं।"

माही ने पूछा— "तो क्या बात है फिर?"

मन— "कुछ नहीं।"

माही की झुंझलाहट अब बढ़ने लगी थी। उसने लिखा— "देखो, मैं आपकी डिटेल उनके पास भेज चुका हूँ... और उनको वो पसंद है।"

मन का अगला मैसेज स्क्रीन पर था— "लेकिन Sir... आप मना कर दो उनको।"

यह पढ़कर माही अवाक् रह गया। उसके मुँह से बस इतना ही निकल पाया— "पर क्यों?"

मन— "वो मैं आपको बाद में बताऊँगी... बस आप ना मना कर दो।"

माही ने हार नहीं मानी— "कारण तो बता दो..."

मन— "वो मैं टाइम आने पर बताऊँगी। पर... Please अभी के लिए..." इससे पहले कि माही कुछ और पूछता, मन का एक और मैसेज आया, जिसने माही को जड़ कर दिया—

"और हाँ... आप अच्छे इंसान हो। मेरा साथ मत छोड़ना... मुझे ज़रूरत है आपकी। और अभी ये कारण जानने की ज़िद मत करो।"

बस, इतना कहकर वह ऑफलाइन हो गई।

माही ने उसकी परेशानी पूछने के लिए कई मैसेज किए, लेकिन स्क्रीन पर सिर्फ 'सिंगल टिक' ही आता रहा।

उसके पास भी अब बोलने और सोचने के अलावा कुछ नहीं बचा था। जब कोई इंसान इतना कह दे कि "मेरे साथ रहना, पर अभी के लिए मुझे माफ़ करो", तो इसका सीधा सा मतलब था कि कुछ ना कुछ ऐसा है जो सही नहीं है।

पता नहीं क्यों, माही अब बुरी तरह बेचैन हो उठा था। उसका मन कर रहा था कि वह अभी भागकर उसके पास पहुँच जाए और पूछे कि आखिर बात क्या है।

क्या ग़ज़ब की फितरत थी माही की उस रूहानियत की! पिछले दो दिनों की 85 किलोमीटर की वो थका देने वाली तकलीफ़, वो पैरों के छाले, वो धूप... सब कुछ वो अगले 2 पल में भूल गया था। मन की उस एक कमज़ोर पुकार ने उसके सारे क्षोभ को धो दिया था।

लेकिन मन वास्तव में उसके लिए एक अनसुलझी पहेली बनती जा रही थी। पर अब वह कर भी क्या सकता था?

ना चाहते हुए भी, माही ने एक भारी साँस ली और लड़के वालों को फोन मिलाकर कोई झूठा बहाना बनाने लगा

लेकिन चैट बंद होते ही माही के दिमाग में एक ऐसा सवाल उपजा जिसने उसकी बची-खुची नींद भी उड़ा दी—

क्या मन सच में किसी परेशानी में थी?

या फिर वो खुद को माही के सामने जानबूझ कर परेशान दिखा रही थी?

फिलहाल... इस सवाल का जवाब सिर्फ एक व्यक्ति के पास था, और वो थी— "मन"।

अध्याय - 40

“बेचैनी का दिन”

इस के बाद माही कुछ देर तक कुर्सी पर चुपचाप बैठा रहा। उसके इर्द गिर्द भले ही खामोशी थी... लेकिन उसके दिमाग में जैसे सौ सवाल एक साथ घूम रहे थे। उसने एक बार फिर व्हाट्सएप खोला। मन की चैट ऊपर ही थी। स्क्रीन पर वही आखिरी मैसेज चमक रहा था— "आप अच्छे इंसान हो... मेरा साथ मत छोड़ना। मुझे ज़रूरत है आपकी..." और उसके बाद... बस सिंगल टिक।

माही ने फोन मेज़ पर रख दिया और खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। बाहर सड़क पर रोज की तरह लोगों की आवाजाही थी। दुनिया की गति तो उस रोज भी वैसी ही थी... लेकिन उसके भीतर जैसे कुछ उलझ गया था। वो खुद से बुदबुदाया— "अगर कोई परेशानी है... तो बता क्यों नहीं देती?" माही को सबसे ज्यादा यही बात खाए जा रही थी कि मन ने उसे रोक तो लिया था, लेकिन सच नहीं बताया था।

कुछ देर बाद उसने खुद को समझाया— "शायद सच में कोई मजबूरी होगी... तभी तो उसने इतना कहा।" लेकिन उसका दिमाग मानने को तैयार नहीं था। उसी बेचैनी में उसने फिर फोन उठाया और एक छोटा सा मैसेज भेज दिया— "सब ठीक है ना?" मैसेज भेजते ही स्क्रीन पर फिर वही सिंगल टिक आ गया। माही ने मुस्कराने की कोशिश की... लेकिन उस मुस्कान में थकान थी। "लगता है आज भी जवाब नहीं आएगा..." उसने फोन जेब में रखा और बाहर निकल गया।

कमरे में बैठकर सोचते रहने से बेहतर था कि वह थोड़ा काम में लग जाए। लेकिन उस पूरे दिन एक अजीब सी बात हुई। जहाँ भी वह जाता... जिससे भी बात करता... उसके दिमाग के किसी कोने में हमेशा वही सवाल घूमता रहता— आखिर मन ने ऐसा क्यों कहा? और उससे भी बड़ा सवाल... क्या सच में उसे माही की ज़रूरत थी...?

अध्याय - 41

“खामोशी भरे दिन”

मन से हुई उस आखिरी बातचीत के बाद जैसे समय की चाल थोड़ी बदल गई थी। अगले तीन-चार दिन ऐसे बीते कि न तो दोनों के बीच कोई बात हुई... और न ही कहीं आमना-सामना। मन ऑफिस भी नहीं आई। पहले दिन माही ने सोचा— शायद छुट्टी ले ली होगी... दूसरे दिन उसे थोड़ा अजीब लगा। तीसरे दिन तक आते-आते उसे कुछ बेचैनी होने लगी। कभी-कभी उसकी नजर अपने आप ही उस दिशा में चली जाती जहाँ मन बैठा करती है। कुर्सी खाली थी। माही ने खुद को कई बार समझाया— "हो सकता है घर में कोई काम आ गया हो... या तबीयत ठीक न हो..." लेकिन मन के लिए उठ रही यह फिफ्ट सिर्फ मानवीय संवेदना थी... या फिर उसके पीछे कुछ और भी था... ये वो खुद भी बताने में असमर्थ था।

उस दिन शाम को माही रोज की तरह ऑफिस से लौटकर कमरे में बैठा था। दिन भर की थकान के बाद उसने अपने लिए चाय बना ली थी। खिड़की के पास रखी कुर्सी पर बैठकर वह धीरे-धीरे चाय की चुस्कियाँ ले रहा था। शाम की सुहावनी हवा कमरे में आ रही थी। तभी मेज़ पर रखा उसका फोन हल्का सा हिला। माही ने अनमने ढंग से फोन उठाया। स्क्रीन पर नज़र पड़ते ही उसकी उंगलियाँ एक ठहराव के वशीभूत हो गईं। मैसेज मन का था। उसने बिना देर किए चैट खोली। मन ने लिखा था— "सॉरी... इतने दिनों बाद जवाब दे रही हूँ। थोड़ी परेशानी में थी, इसलिए फोन भी नहीं देख पाई।"

माही ने कुछ देर तक तो उस मैसेज को चुपचाप देखा। फिर जैसे उसके भीतर जमा हुई सारी बेचैनी शब्दों में उतर आई। उसने जल्दी जवाब टाइप किया— "सब ठीक तो है? ऑफिस भी नहीं आ रहे हो... क्या हुआ?" कुछ सेकंड... फिर कुछ मिनट... स्क्रीन पर 'typing...' का छोटा सा संकेत उभरा और गायब हो गया। जैसे मन कुछ लिखती... फिर मिटा देती हो। आखिरकार उसका जवाब आया— "कुछ खास नहीं... बस थोड़ी दिक्कत थी। अब ठीक है।"

लेकिन इस बार माही चुप रहने वाला नहीं था। उसने फिर लिखा— "मेम... मेरे को पता है कि सब ठीक नहीं है... लेकिन आप बताना नहीं चाहते?" कुछ देर तक फिर एक ठहरावा जैसे शब्दों के उस पार कोई गहरी सांसें ले रहा हो। और फिर... मन का अगला मैसेज आया। जिसमें उसने धीरे-धीरे अपनी उस परेशानी का जिक्र करना शुरू किया... वही परेशानी जिसकी वजह से वह इतने दिनों से गायब थी।

अध्याय - 42

“एक और जिम्मेदारी”

"Sir..." बस इतना लिखकर मन रुक गई। सामने उसका 'online' दिख रहा था... लेकिन चैट विंडो में कोई हलचल नहीं थी। माही ने कुछ क्षण इंतज़ार किया। फिर उसने लिखा— "क्या हुआ?" लेकिन फिर भी कोई जवाब नहीं। अभी कुछ देर पहले ही वह गर्म चाय की चुस्कियाँ ले रहा था। शायद उसी की गरमी... और इस अचानक उपजी बेचैनी के कारण माही के माथे पर पसीने की हल्की लकीरें उभर आई थीं। उसी में से एक छोटी सी बूंद फोन की स्क्रीन पर आकर गिर पड़ी। एक पल के लिए उसे लगा— यह शायद पसीने की नहीं... मन के आँसूओं की बूंद है। क्योंकि इस लंबी खामोशी में माही के मन ने अनायास ही “मन” की एक रूलासी छवि बना ली थी। और शायद... दूसरी तरफ मन की हालत भी कुछ ऐसी ही हो। कहते हैं न— अगर दो तरफ की भावनाएँ सच्ची हों... तो बिना कहे भी बहुत कुछ समझ में आ जाता है।

माही ने फिर मैसेज किया— "Hello?" इस बार कुछ ही सेकंड बाद जैसे मैसेजों की आंधी आ गई। मानो उससे पहले की खामोशी किसी तूफ़ान से पहले की शांति रही हो। "Sir... मेरे मामा और मम्मी मेरा रिश्ता कहीं और पक्का कर रहे हैं।" माही बड़े ही ध्यान से मैसेज नहीं मन को पढ़ रहा था। फिर उसने जवाब दिया— "अरे... तो यह तो अच्छी बात है।"

सच कहें तो यह सुनकर माही को भीतर ही भीतर ऐसा लगा जैसे उसके कंधों से कोई अनदेखा बोझ हल्का हो गया हो। जिस जिम्मेदारी को वह इतने दिनों से अपने ऊपर लिए घूम रहा था... अब शायद वही जिम्मेदारी उसके असली हकदार कंधे उठाने के लिए आगे आ गए थे। दूसरी तरफ... माही खुद भी अपने स्तर पर दो-तीन रिश्तों की कोशिश कर चुका था। उसे लगा— शायद उसका वचन भी किसी हद तक पूरा हो गया है। एक तरह की आत्मिक संतुष्टि उसके भीतर उतर आई। वह लगभग खुद को इस एक खबर से ही कर्तव्य-मुक्त समझ बैठा। लेकिन... उसकी यह आत्ममुग्धता ज़्यादा देर टिकने वाली नहीं थी।

उसने लिखा— "अच्छी बात है। आपकी मम्मी और मामा जी आपके लिए अच्छा ही सोचेंगे। आपको उन पर विश्वास रखना चाहिए।"

"लेकिन sir... मुझे कुछ सही नहीं लग रहा।" माही ने पूछा— "तो आप खुश नहीं हैं?" "हाँ... ऐसा ही समझ लीजिए।" "तो मैं क्या मदद कर सकता हूँ?" "Sir... मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा।" माही ने जवाब दिया— "देखिए... अगर आपको पसंद नहीं है तो मना कर दीजिए। लेकिन मैं फिर भी आपको एक बार पुनर्विचार करने की सलाह दूँगा।" "लेकिन sir... मैं सही और गलत का फैसला नहीं कर पा रही।" कुछ पल बाद उसने फिर लिखा— "बस मेरी अंतरात्मा कह रही है कि मेरी माँ और मामा सही नहीं कर रहे..." वह फिर रुक गई।

माही ने लिखा— "रुक क्यों गए?" इस बार जवाब आया— "Sir... मुझे आपकी help चाहिए।" माही ने पूछा— "कैसी help?" इस बार उसके शब्द थोड़े भारी थे। "Sir... क्या आप एक बार लड़के वालों के बारे में पता कर सकते हैं? उनके गाँव जाकर..." यह पढ़ने के बाद उसके अगले पल खामोशी के हवाले हो गए। उसने ऐसी मदद की उम्मीद नहीं की थी। वह बस स्क्रीन पर चमकते उस मैसेज को चुपचाप देखता रहा। दूसरी तरफ से फिर मैसेज आया— "कहाँ गए?" माही ने छोटा सा जवाब दिया— "यहीं हूँ।" मन ने लिखा— "आप मेरे लिए इतना करेंगे?" फिर जैसे उसे अपनी ही बात का अहसास हुआ— "लेकिन sir... अगर आपकी इच्छा नहीं है तो मैं ज़ोर नहीं दूँगी। जो मेरे मुकद्दर में होगा... उसे मैं स्वीकार कर लूँगी।"

यह पढ़ते ही माही के सामने फिर वही मजबूर चेहरा घूम गया। एक ऐसा चेहरा जो उसे ज्यादा देर सोचने की मोहलत नहीं देता था। उसकी उंगलियाँ कीपैड पर ठहरती... और अंततः बस दो शब्द टाइप कर पाया— "ठीक है।" वह शायद खुद भी नहीं चाहता था कि यह जिम्मेदारी फिर उसके हिस्से आए। पर ना चाहते हुए भी... लेकिन इन दो शब्दों का मतलब मन अच्छी तरह समझ चुकी थी। माही के व्हाट्सएप 'About' में एक वाक्य लिखा था— "बैठना कभी फुर्सत में... मुझे पढ़ने के लिए।" मन उसे अक्सर पढ़ा करती थी। और शायद उस पल वह मन ही मन मुस्करा कर खुद से कह रही थी— "फुर्सत में बैठने की ज़रूरत नहीं... मैं तुम्हें बिना बैठे ही पूरा पढ़ चुकी हूँ।"

“एक अनजान सफर”

रात को माही फिर वही कर रहा था जो वह अक्सर करता था— चाय के कप के साथ खामोशी को पीना। उसके सामने मेज़ पर रखा फोन शांत पड़ा था, लेकिन उसके भीतर सवालियों का शोर जारी थी। वह खुद से पूछ रहा था— “मैंने ‘ठीक है’ क्यों कह दिया?” क्या सिर्फ इंसानियत के लिए किसी और की ज़िंदगी में इतना शामिल होना सही था? या फिर... यह सिर्फ इंसानियत नहीं थी। शायद उससे भी कुछ ज़्यादा। लेकिन उस “ज्यादा” का नाम क्या था— इसका जवाब वो नहीं जानता था। और शायद... वह इस जवाब को खुद से बाहर, दुनिया के सामने लाना भी नहीं चाहता था। इन्हीं सब में डूबे हुए उसने समय देखने के लिए मोबाइल उठाया। स्क्रीन पर उसके दोस्त नवीन का मैसेज था जो कि राजस्थान में टीचर लगा हुआ था, उसका गांव भी माही के नजदीक ही था। नोटिफिकेशन में ही उसने पढ़ लिया— “भाई, कैसी चल रही है तैयारी?” दरअसल वह लोक सेवा आयोग की असिस्टेंट प्रोफेसर परीक्षा की तैयारी के बारे में पूछ रहा था। दोनों ही इस परीक्षा के अभ्यर्थी थे। माही ने जवाब में वही लिखा जो कुछ देर पहले मन को लिखा था— “ठीक है।” लेकिन सच यह था कि कुछ भी ठीक नहीं था। ना पहले वाला “ठीक है”... और ना यह वाला। दोनों ही बनावटी थे। और यह बात माही खुद भी जानता था।

खैर... रात के ग्यारह बज चुके थे। अब वह सोना चाहता था। अगली सुबह माही ऑफिस पहुँचा। थोड़ा बहुत काम निपटाने के बाद उसने अपने एक जानकार को फोन किया। उसे घर से गाड़ी मंगवानी थी। उसने सोचा— बसों में सफर करना थोड़ा मुश्किल हो जाता है। इस बार गाड़ी से जाना बेहतर रहेगा। लेकिन उसके साथ एक छोटी सी दिक्कत हमेशा रहती थी। घर में गाड़ी होते हुए भी उसे गाड़ी चलानी नहीं आती थी। इसलिए हर बार उसे किसी ड्राइवर की ज़रूरत पड़ती थी। उसे खुद तो परेशानी होती ही थी, साथ ही वह इस बात से भी असहज रहता था कि उसकी वजह से किसी और को तकलीफ उठानी पड़ रही है। हालाँकि उसकी फितरत ऐसी नहीं थी कि अपने कारण किसी और को परेशानी में डाले। वह लड़का शायद दुनियादारी की तेज़ दौड़ में अब भी थोड़ा पीछे था। यह बात अलग थी कि... किसी एक इंसान के लिए वह मैराथन दौड़ने को तैयार था। कुछ देर बाद उसका दोस्त गाड़ी लेकर आ गया। और दोनों निकल पड़े एक अनजान सफर पर।

रास्ते भर माही का मन अजीब सी उथल-पुथल से भरा रहा। कभी उसके ख्यालों में मन की तस्वीर उभर आती... तो कभी वह खुद पर ही झुंझला जाता। क्योंकि उसे यह भी पता था कि अगर रात को देर से घर पहुँचा तो पापा की डाँट भी तय है। रास्ते में वह मन ही मन भगवान से प्रार्थना करता रहा— "बस सब कुछ सही निकले... सब कुछ अच्छा हो..." ताकि वह मन को संतुष्ट कर सके और वह अपने जीवन का फैसला संतुलित मन से ले सके। हालाँकि उसने मन को अपने इस सफर के बारे में कोई संदेश नहीं भेजा था। कई घंटों के सफर के बाद वे नारनौल के समीप एक सुदूरवर्ती गाँव में पहुँचे। सड़कें भी कुछ खास अच्छी नहीं थीं। जैसे-तैसे वे शाम करीब छह बजे गाँव तक पहुँच पाए।

वहाँ पहुँचकर माही ने उस लड़के, उसके परिवार और उनके घर के बारे में पूरी तसल्ली से जानकारी जुटाई। वह एक ही सवाल लगभग दस लोगों से पूछता रहा। लेकिन लोगों की प्रतिक्रियाएँ सुनकर माही के चेहरे पर जो भाव उभरे, वे साफ बता रहे थे— कि वह खुश नहीं था। अपना काम पूरा करने के बाद वह उसी गाँव में स्थित गुर्जर समाज के एक बड़े धार्मिक स्थल पर गया। वहाँ चुपचाप सिर झुकाया... और फिर वापसी की राह पकड़ ली। रास्ते में एक पेट्रोल पंप पर गाड़ी रुकी। उसने एक कप चाय ली और कुछ देर वहीं खड़ा रहा। रात अपने रूप में आने लगी थी। करीब साढ़े 11 बजे वह घर पहुँचा। लेकिन घर में उसका स्वागत खाने से नहीं... पापा की डाँट से हुआ। और मम्मी की देर से आने की नाराज़गी से भी। पर वह क्या करता? जो कुछ हो रहा था उस पर उसका खुद का भी ज्यादा नियंत्रण नहीं था। खाना खाकर वह चुपचाप अपने कमरे में गया। और बिना किसी से कुछ कहे सीधा बिस्तर पर लेट गया। और नींद का इंतजार करने लगा।

“सच और एक छोटा सा झूठ”

अगले दिन माही ऑफिस में बैठा था। लेकिन उसका ध्यान काम से ज्यादा पिछली शाम की घटना और उसके निष्कर्ष पर था। वह जल्दी-जल्दी उन सब बातों को शब्दों में ढाल रहा था, ताकि उन्हें चैट बॉक्स की स्क्रीन पर उतार सके। जैसे ही उसने मैसेज पूरा किया, उसने बिना ज्यादा सोचे तुरंत 'send' कर दिया। यहाँ एक दिलचस्प बात और थी। अब तक माही और मन के बीच जो भी संवाद हुआ था... उसकी इकलौती गवाह सिर्फ व्हाट्सएप चैट थी। उन्होंने अभी तक कभी भी फोन कॉल पर बात नहीं की थी। इसके अलावा ना ही ऑफिस के बाहर कहीं पर आमने सामने बैठे थे। शायद दोनों ही उस अनकही दूरी को अभी बनाए रखना चाहते थे।

दूसरी तरफ मन के मैसेज पढ़ने की गति माही के लिखने से भी तेज थी। माही का मैसेज स्क्रीन पर था— "देखिए... जितनी जानकारी मैंने निकाली है, उसके आधार पर मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप यह रिश्ता साफ़ मना कर दीजिए। लड़के का परिवार दहेज लोभी बताया जा रहा है। और उसकी माँ का व्यवहार भी परिपक्व नहीं है। शायद ही आपके विचार उनसे मिल पाएँ। सबसे जरूरी बात... लड़के की पढ़ाई और उसके व्यवहार के बारे में भी कोई खास अच्छी बात सुनने को नहीं मिली।" इसके अलावा भी बहुत सी नकारात्मक बातें हैं जो मैं नहीं बताऊँगा। थोड़ा रुककर उसने आखिरी पंक्ति लिखी— "यह मेरी एक सलाह है... अंतिम फैसला आप अपने विवेक से लीजिए।"

कुछ ही क्षण बाद मन का जवाब आया— "आप कब हो आए?" माही कुछ पल सोचता रहा। फिर उसने लिखा— "मैं गया नहीं... किसी से पता करवाया है।" मैसेज भेजते ही माही के भीतर एक हल्की सी कसक उठी। झूठ बोलना उसकी फितरत नहीं था। लेकिन उसे लगा— अगर वह अपनी लंबी और परेशान कर देने वाली यात्रा के बारे में बता देगा, तो शायद मन खुद को ही कोसने लगे। इसलिए उसने सच छिपा लिया।

मन ने मैसेज पढ़ा। और फिर लिखा— "अच्छा... तो तुम मतलब आप गए नहीं?" फिर दूसरा मैसेज आया— "Sir, मैंने तो आपको खुद जाकर देखने के लिए कहा था। अब किसी दूसरे की बात पर कैसे विश्वास करूँ?" और फिर एक और— "खैर... कोई बात नहीं। मेरा तो पहले से ही कोई दबाव नहीं था।"

यह पढ़कर माही कुछ देर तक चुप रहा। उसे अचानक महसूस हुआ— अगर मन को यह लगे कि वह खुद गया ही नहीं... तो फिर उसका जाना और न जाना दोनों बराबर हो जाएंगे। और शायद इस अधूरी जानकारी के आधार पर मन कोई फैसला भी नहीं ले पाएगी। आखिरकार... माही ने सच बताने का फैसला किया। उसने लिखा— "असल में... मैं खुद ही गया था वहाँ। कल शाम। और जानकारी भी मैंने खुद ही जुटाई है।" फिर हल्के अंदाज़ में उसने जोड़ा— "और बदले में घर पहुँचकर पापा की डाँट भी खा चुका हूँ।"

कुछ सेकंड तक स्क्रीन पर 'typing...' दिखाई देता रहा। फिर मन का मैसेज आया— "Thank you sir... आपने मेरे लिए इतना किया..." फिर जैसे माहौल थोड़ा हल्का करने के लिए उसने अचानक पूछा— "अच्छा ये बताइए... कल चाय मिली थी कि नहीं?" अधरों पर खिली लकीरों के साथ उसने जवाब लिखा— "हाँ... बिल्कुल मिली थी।" लेकिन उसने यह नहीं बताया कि सफर वाली चाय में सिर्फ चाय ही नहीं साथ में थी... थोड़ी थकान, थोड़ी चिंता, और घर वाली में पापा की फटकार।

अध्याय - 45

“एक पुकार”

आज दिन भर का काम लगभग खत्म हो चुका था। अब वह कुर्सी पर थोड़ा पीछे झुककर आराम की अवस्था में बैठा हुआ था। उसके सामने दीवार पर एक तस्वीर लगी थी— कारगिल युद्ध के नायक कैप्टन विक्रम बत्रा की। माही शुरू से ही उनसे बेहद प्रभावित रहा था। इसलिए उनके फोटो उसके घर और ऑफिस—दोनों जगह लगे थे। वह कुछ देर तक बस चुपचाप उस तस्वीर को निहारता रहा। जैसे किसी से मौन संवाद कर रहा हो।

उस दिन की बातचीत के बाद न तो मन का कोई मैसेज आया था... और न ही माही ने खुद कुछ पूछा था। उसने मन ही मन तय कर लिया था— “मैंने अपना फर्ज निभा दिया है। अब आगे पूछना मेरा काम नहीं।” शायद अपने अस्तित्व को बचाने के लिए वो वजूद का सौदा नहीं करना चाहता था। इसलिए थोड़ा सा स्वार्थी बनने की कोशिश कर रहा था। हालाँकि वह इस कोशिश में कितना सफल होगा— यह तो आने वाला समय ही बताएगा।

शाम के करीब सात बजे उसके फोन में हल्का सा कंपन हुआ। मैसेज मन का था। “कैसे हो?” माही ने जवाब दिया— “मैं ठीक हूँ। आप कैसे हो?”

“Sir... मैं बहुत परेशान हूँ।” “क्या हुआ?”

“Mummy नहीं मान रही।” माही ने पूर्वाभास रूप में पूछा—

मन— “हाँ।”

माही ने छोटा सा जवाब दिया— “उन्हें बताओ कि रिश्ता ठीक नहीं है।”

“बताया था... लेकिन वो नहीं मान रही।”

“तो इसमें तो अब मैं भी कुछ नहीं कर सकता। आप खुद ही कोई रास्ता निकालिए।” इस बार मन ने कोई जवाब नहीं दिया। मैसेज बस 'seen' होकर रह गया। शायद उसे माही से ऐसे जवाब की उम्मीद नहीं थी। रात करीब ग्यारह बजे फिर उसका मैसेज आया। “Sir...” अक्सर मन के लगभग हर मैसेज की शुरुआत इसी शब्द से होती थी— “Sir” और सच कहें तो यह शब्द अपने आप में एक जादू सरीखा था। कैसे? यह कहानी आगे

बताएगी। आगे उसने लिखा— "सच में... मैं आपको परेशान नहीं करना चाहती। लेकिन मेरी जिंदगी का सवाल है। हम दोनों मिलकर कुछ सोच तो सकते हैं ना?"

माही ने थोड़ा सख्त होकर जवाब दिया— "कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। आप अपनी मम्मी को विश्वास में लेकर सीधा मना कर दीजिए। इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है।" और यहीं उस रात की चैट खत्म हो गई। अगले दिन ऑफिस में मन आई। लेकिन आज वह पहले जैसी नहीं लग रही थी। उसका चेहरा उतरा हुआ था। जब वह माही को चाय देने आई तो उसकी आँखों में उदासी साफ दिखाई दे रही थी। माही ने देखा... लेकिन उसने खुद को ज्यादा दिलचस्पी दिखाने से रोक लिया। शायद वह सच में अब खुद पर ध्यान देने की कोशिश कर रहा था।

अगली सुबह जब माही नींद से उठा तो फोन में मन के पाँच-छह मैसेज पड़े थे। हर मैसेज में दर्द की एक नई परत थी। उन शब्दों में ऐसी भावना थी कि माही पूरे दिन उन्हें सोचता रहा। उसकी खुद पर ध्यान देने की कोशिश अब जैसे बार-बार डगमगा रही थी। और फिर... आखिरी मैसेज। बस चार शब्द— "मुझे बचा लो..."

यह वाक्य बार-बार माही के मन को झकझोर रहा था। रात को माही फिर उसी वाक्य को सोच रहा था। "मुझे बचा लो..." वह खुद से पूछ रहा था— "बचा लूँ... लेकिन कैसे?" कुछ देर बाद अचानक उसके दिमाग में एक विचार आया। उसके होंठों से अनायास निकला— "हाँ... यह हो सकता है।" लेकिन अगले ही पल उसका चेहरा गंभीर हो गया। "नहीं... यह तो मेरे व्यक्तित्व... मेरे सिद्धांतों के खिलाफ है।" तभी जैसे भीतर से एक आवाज आई— "क्या तेरे सिद्धांत किसी लड़की की जिंदगी से भी बड़े हैं?" माही चुप हो गया। फिर उसके मन में सवाल उठा— "क्या सच में यही रास्ता बचा है? क्या मुझे इस रास्ते पर चलना चाहिए?" उसने गहरी सांस ली। और फिर खुद से कहा— यह निर्णय... आज की रात पर छोड़ देता हूँ।

“एक खतरनाक फैसला”

अगले दिन दिसंबर की शरद भरी सुबह थी। मंद ठंडी बयार बह रही थी। माही किसी से फोन पर बात कर रहा था। फोन के दूसरी तरफ से आवाज आई— "देखो भाई... दोस्ती के लिए तो जान भी हाज़िर है। तो चार लड़के और एक गाड़ी का क्या है..." एक शांत चिंतन के बाद माही धीरे से बोला— "भाई... दोस्ती से आगे किसी लड़की की जिंदगी का सवाल है।" उसकी आवाज में हिचकिचाहट थी। "लेकिन मुझे डर भी लग रहा है... और अपने ऊपर शर्म भी आ रही है।" सामने वाले ने समझाते हुए कहा— "अगर सच में किसी की जिंदगी का सवाल है तो इस डर और शर्म को एक साइड रखा और मैं हूँ... सब संभालने के लिए।" माही ने सुकून की सांस ली। "ठीक है भाई... शुक्रिया। ये एहसान मैं कभी नहीं भूलूंगा।"

थोड़ी देर बाद माही के घर से कुछ दूर एक स्कॉर्पियो गाड़ी आकर रुकी। उसमें पहले से चार लड़के बैठे हुए थे। माही चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी चल पड़ी। और कुछ घंटों बाद वह फिर से उसी नारनौल के पास वाले गाँव में पहुँची... जहाँ वह चार-पाँच दिन पहले जा चुका था। ये राजस्थान सीमा से सटा नांगल चौधरी के आसपास का इलाका था, गाड़ी सीधे एक घर के सामने रुकी। वहाँ से थोड़ी देर बाद वे सब पास के एक खेल के मैदान की तरफ चले गए। अचानक पाँच अनजान युवकों को एक साथ मैदान में आते देख वहाँ मौजूद लोग थोड़ा अचंभित हो गए।

तभी उनमें से एक मोटे से लड़के को अलग से एक साइड बुलाया गया। उसे गाड़ी में बैठा लिया गया। गाड़ी के अंदर माही ने उससे सीधे पूछा— "तुम्हारी शादी की बात चल रही है ना?" लड़का पहले थोड़ा अकड़कर बोला— "तुम्हें क्यों बताऊँ?" लेकिन माही के साथ बैठे एक लड़के के डरावने अंदाज़ ने उसकी सारी अकड़ कुछ ही सेकंड में निकाल दी। अब उसने धीरे-धीरे पूरी बात बता दी।

माही कुछ देर उस को एकटक देखने के बाद फिर थोड़ा सख्त बनने की कोशिश करते हुए बोला— "देख भाई... हमारी बस एक रिक्वेस्ट है। यह रिश्ता... तू खुद ही मना कर दे। चुपचाप।" फिर उसने थोड़ा झुककर कहा— "और उस लड़की के साथ हमारे किसी रिश्ते की कल्पना कर के अपने दिमाग पर फिजूल जोर मत डालना। और आज जो यहाँ

हुआ है... वह बात किसी के सामने नहीं आनी चाहिए।" लड़का चुप बैठा रहा। वो एक शरीफ और शांत चेहरे वाले लड़के से ऐसे सवालों की कल्पना से ही हैरान था।

माही ने आखिरी बात कही— "मना कैसे करना है... यह तू सोचा लेकिन मैं बस इतना जानता हूँ कि कल तक यह काम हो जाना चाहिए।" इसके बाद कुछ दूर जाकर उन्होंने उस लड़के को वहीं उतार दिया जहाँ से उसे बैठाया था। माही भी अपने ठिकाने पर गाड़ी से उतरा। उसी समय उसके मोबाइल पर एक नोटिफिकेशन आया। उसने स्क्रीन देखी। लिखा था— "Absent from duty." यह उसके कार्यकाल का पहला अनुशासनहीनता का स्पष्टीकरण था। पहला... लेकिन शायद आखिरी नहीं।

अपलक संदेश को निहारने के पश्चात थोड़ा सा मुरझाया। आज उसके पास शर्मिंदा होने के दो कारण थे। एक— अपने सिद्धांतों के खिलाफ जाकर यह सब करना। दूसरा— अपने कर्तव्य से अनुपस्थित रहना। लेकिन फिर वही विचार उसके मन में आया— "किसी लड़की की जिंदगी... इन सब से बड़ी है।" उसने खुद को यही कहकर तसल्ली दी।

दूसरे दिन ऑफिस से घर आने के बाद रात करीब नौ बजे मन का मैसेज आया— "Sir..." "हाँ..." फिर एक खुशी वाली इमोजी के साथ उसने लिखा— "लड़के ने खुद ही मना कर दिया।" माही ने छोटा सा जवाब दिया— "अच्छा... यह तो बहुत अच्छी बात है।" उसने ऐसे प्रतिक्रिया दी जैसे उसे इस बारे में कुछ भी पता न हो। जैसे उसने कुछ किया ही न हो। फिर उसने लिखा— "अब आपकी टेंशन खत्म। अब अपने पेपर पर ध्यान दीजिए। आपको असिस्टेंट कमांडेंट बनना है।" फिर थोड़ा सख्त होकर उसने जोड़ा— "और हाँ... आगे से इतनी रात को मैसेज मत किया करो। Good night." इतना लिखकर माही ने फोन एक साइड रख दिया।

माही ने उस दिन की पूरी घटना के बारे में मन को कुछ नहीं बताया। लेकिन... कहीं न कहीं मन शायद सब समझ रही थी। क्योंकि वह माही को बहुत पहले ही पूरा पढ़ चुकी थी।

दिसंबर की वही ठंडी सुबह

दिसंबर की हल्की ठंड अब अपना असर दिखाने लगी थी।

सुबह की धूप खिड़की से कमरे में आ तो रही थी, पर उसमें गर्माहट कम और एक अजीब सी निस्तब्धता ज्यादा थी।

माही रोज़ की तरह जल्दी उठ गया था, लेकिन आज उसके भीतर वैसी जल्दबाज़ी नहीं थी जैसी आम दिनों में हुआ करती थी।

उसने चाय का कप हाथ में लिया और खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया।

कप से उठती भाप कुछ क्षण हवा में ठहरती और फिर धीरे-धीरे गायब हो जाती...

ठीक वैसे ही जैसे कुछ ख्याल मन में आते हैं और बिना किसी निष्कर्ष के कहीं खो जाते हैं।

कल रात की घटना उसके भीतर कहीं गहराई में बैठ गई थी।

एक तरफ़ उसे संतोष था कि शायद उसने एक लड़की की ज़िंदगी को गलत दिशा में जाने से रोक दिया...

लेकिन दूसरी तरफ़ उसके भीतर एक अजीब सी बेचैनी भी थी।

वो बार-बार खुद से यही पूछ रहा था—

“क्या सच में मैंने सही किया...?”

या फिर...

“मैंने अपने ही बनाए सिद्धांतों के खिलाफ़ एक कदम उठा लिया...?”

कमरे में रखी दीवार घड़ी की टिक-टिक इस सवाल का कोई जवाब नहीं दे रही थी।

आज छुट्टी का दिन था।

चाय की चुस्कियों के साथ वह सोच रहा था—ऑफिस जाने पर इस बार तो लिखित में अपना पक्ष भी रखना पड़ेगा... बिना सूचना अनुपस्थित रहने के लिए।

उसके चेहरे पर छोटी सी मुस्कान तैर गई और मन ही मन खुद से बोला—

“क्या यार अस्तित्व...

किस लाइन पर चल पड़ा है तू”

फिर खुद ही अपने सवाल का जवाब भी दे दिया—

“कोई बात नहीं...

कुछ अच्छा ही किया है।”

उसने तय किया—आज थोड़ा घर की सफाई करेगा, फिर कपड़े धोकर नहाएगा और उसके बाद सीधे पढ़ने बैठ जाएगा।

वह यह सोचकर मुड़ा ही था कि फोन की स्क्रीन हल्के से चमकी।

किसी का मैसेज था।

फोन खोला तो देखा—उसके एक दोस्त, जो सरकारी स्कूल में टीचर था, उसने किसी लड़के की टूटी-फूटी सी जानकारी भेज रखी थी।

माही को याद आया कि उसने उससे भी किसी लड़के के बारे में पूछने को कहा था।

उसने ज्यादा ध्यान नहीं दिया और अपने काम में लग गया।

घर की सफाई, कपड़े धोना और नहाने के बाद जब वह किताब लेकर पढ़ने बैठा ही था कि...

फोन फिर से चमका।

इस बार स्क्रीन पर नाम था—

“मन”

माही ने कुछ सोचते हुए फोन को एक तरफ रख दिया।

जैसे उसने तय कर लिया हो कि आज वह इस मैसेज से ज्यादा अपनी पढ़ाई को महत्व देगा।

करीब एक घंटे तक उसने सचमुच वही किया।

किताब पर नजरें टिकी रहीं।

लेकिन उसी नाम से आए दूसरे मैसेज ने उसकी एकाग्रता तोड़ दी।

उसने फोन उठाया और मैसेज पढ़ा।

हमेशा की तरह पहला शब्द वही था—

“Sir...”

क्या कर रहे हो?

चाय पी ली?

माही ने सिर्फ चाय वाले सवाल का जवाब दिया—

“हाँ।”

उसके बाद मन का दूसरा मैसेज आया—

“Sir, भगवान का शुक्र है... कल उस वाली आफत से तो पीछा छूट गया।

लेकिन मुझे समझ नहीं आया कि ये अपने आप कैसे हो गया।”

माही ने मंद मुस्कान के साथ जवाब लिखा—

“भगवान ने सुन ली आपकी।”

“चलो, अब मुझे विश्वास हो गया कि

मेरा भगवान मेरे साथ है।”

साथ में एक छोटी सी मुस्कराती हुई इमोजी भी थी।

“अच्छा?” माही ने लिखा।

“जी...” मन ने जवाब दिया।

“चलो ठीक है, अब आप भी कोई काम कर लो... या पढ़ लो।”

दरअसल माही किसी लड़की के साथ बिना वजह लंबी बातचीत करना अपने उसूलों के खिलाफ समझता था।

उसे लगता था कि अनावश्यक बातचीत कभी-कभी लड़की की गरिमा के खिलाफ भी जा सकती है।

शायद वह थोड़ा ज्यादा ही आदर्शवादी था...

पर था तो था।

अपने-अपने फंडे होते हैं।

तभी उधर से जल्दी-जल्दी मैसेज आया—

“रुको... रुको Sir,

एक मिनट।”

फिर मन ने लिखा—

“कल मैं मॉल गई थी। वहाँ जूतों पर डिस्काउंट चल रहा था।

तो मैं आपके लिए एक कूपन ले आई हूँ।

आप अपनी पसंद के जूते ले लेना।”

माही ने लिखा—

“पर मेरे पास तो जूते...”

उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि उधर से जवाब आ गया—

“देख लेना... फिर भी ले लेना।”

Extra

इसके बाद मन ने लिखा—

“ठीक है, बाया।

फिर बात करती हूँ।”

और उसके बाद एक और लाइन आई—

“वैसे भी...

मैं आपका पीछा इतनी आसानी से नहीं छोड़ूँगी।”

साथ में हँसने वाली इमोजी थी।

लेकिन उस आखिरी लाइन ने माही को कुछ पल के लिए चुप कर दिया।

“मैं आपका पीछा इतनी आसानी से नहीं छोड़ूँगी...”

इसका मतलब क्या था?

क्या वह लड़की फिर से...?

कुछ देर तक वह उसी बारे में सोचता रहा।

फिर उसने गहरी सांस छोड़ी और किताब की तरफ नज़रें मोड़ लीं।

लेकिन पता नहीं कब पढ़ते-पढ़ते उसकी आँख लग गई।

क्योंकि इन दिनों उसकी रातों की नींद तो वैसे भी चाँद-तारों के नाम हो चुकी थी।

“अधूरी नींद”

पता नहीं कितनी देर तक वह उसी तरह किताब हाथ में लिए सोता रहा। जब उसकी आँख खुली तो कमरे की खिड़की से आती धूप का रंग बदल चुका था। सुबह की हल्की सुनहरी रोशनी अब ढलती दोपहर की फीकी चमक में बदल गई थी। माही ने घड़ी की तरफ देखा— करीब तीन बज चुके थे। “लगता है पढ़ाई अच्छी चल रही है...” उबासी लेते हुए उसने खुद से ही मज़ाक किया। असल में पढ़ाई कम और थकान ज्यादा थी। पिछले कुछ दिनों से उसकी रातें वैसे भी ठीक से नहीं गुजर रही थीं। कभी किसी फैसले की उलझन, कभी किसी चेहरे की याद... और कभी बिना वजह की बेचैनी।

उसने उठकर फिर से चाय बना ली। कप हाथ में लेकर वह कमरे के उस कोने में आकर बैठ गया जहाँ से बाहर की सड़क साफ दिखाई देती थी। सड़क पर लोग अपने-अपने काम में व्यस्त थे। किसी के चेहरे पर जल्दी थी, किसी के चेहरे पर चिंता... और कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें शायद कहीं पहुँचने की कोई जल्दी नहीं थी। माही कुछ देर तक यूँ ही उन्हें देखता रहा। अचानक उसके दिमाग में एक ख्याल आया— “अजीब है ये जिंदगी भी...” कुछ लोग किसी के साथ पूरी जिंदगी बिताते हैं और फिर भी एक-दूसरे को समझ नहीं पाते... और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो बस कुछ महीनों में ही किसी को पूरा पढ़ लेते हैं।

यह सोचते ही उसके दिमाग में अनायास एक नाम उभरा— मन। उसने तुरंत अपने ख्यालों को रोकने की कोशिश की। “नहीं माही... ज्यादा मत सोचा” उसने खुद को समझाया। लेकिन इंसान अपने ख्यालों पर कब तक पहरा दे सकता है। फोन मेज पर रखा हुआ था। उसकी स्क्रीन शांत थी... लेकिन माही के मन में जैसे कोई अनदेखा नोटिफिकेशन बार-बार चमक रहा था।

कुछ देर बाद उसने किताब फिर से उठाई। इस बार उसने सच में पढ़ने की कोशिश की। पर आज शब्दों के अर्थ समझने से ज्यादा मुश्किल काम था— अपने ही मन को समझना। और शायद इसी वजह से... उस दिन किताब के कई पन्ने पलटे जरूर गए, लेकिन पढ़े बहुत कम गए।

“सोमवार का दिन (और छोटी-छोटी खुशियां)”

सोमवार को ऑफिस पहुँचते ही माही ने सबसे पहले वही काम किया जिसे वह पूरे रास्ते सोचता आया था। उसने अपनी अनुपस्थिति के बारे में एक संक्षिप्त सा स्पष्टीकरण लिखा और सीधा साहब के कमरे में जाकर उन्हें दे आया। साथ ही उसने जुबानी माफी भी माँगी और भविष्य में ऐसा न दोहराने का आश्वासन दिया। हालाँकि यह सिर्फ एक आश्वासन था... कोई वचन नहीं। सच तो यह था कि अब वह दुनिया में सभी को सिर्फ आश्वासन ही दे सकता था, क्योंकि वचन तो वह किसी एक को दे चुका था। उच्च अधिकारी भी उसकी छवि और स्वभाव की गहराई को जानते थे। उन्होंने ज्यादा बात बढ़ाना उचित नहीं समझा और वहीं उस बात को समाप्त कर दिया।

माही अपने काम में लग गया। तभी मेज पर कप रखे जाने की हल्की सी आवाज ने उसका ध्यान भटकाया। उसने नजर उठाई। सामने केतली लिए मन खड़ी थी। उसने बिना कुछ कहे हल्के से हाथ के इशारे से अभिवादन किया। यह उसका अपना तरीका था— बिना शब्दों के भी बहुत कुछ कह देने वाला। माही को उसका यही तरीका अच्छा लगता था। कुछ देर बाद वह वैसे ही चुपचाप वापस चली गई। थोड़ी देर बाद व्हाट्सएप पर उसका मैसेज आया— “Sir... JE Room की ड्रॉवर में कूपन रखे हैं।” माही तो उस कूपन के बारे में लगभग भूल ही चुका था... लेकिन मन नहीं भूली थी। JE Room वह कमरा था जहाँ माही अक्सर अकेले बैठकर अपनी तन्हाइयों से बातें किया करता था। मन को उसके इस ठिकाने का भी पता था। माही ने उसके मैसेज का बस छोटा सा जवाब दिया— “Ok.” और फिर अपने काम में लग गया।

अगले दिन मन का फिर मैसेज आया— “Sir, कूपन ले लिए क्या?” असल में माही को तो याद भी नहीं था। उसने जवाब दिया— “नहीं... अभी ले आता हूँ।” लेकिन वह फिर भी नहीं लाया। अगले दिन मन ने फिर वही सवाल पूछा। इस बार माही पहले JE Room में गया, ड्रॉवर से कूपन निकाला... और फिर जवाब दिया— “हाँ, ले लिए।”

दो-चार दिन बाद जब मन को यह पता चला कि माही ने अभी तक जूते नहीं खरीदे हैं, तो उसके चेहरे पर हल्की सी नाराजगी साफ दिखाई देने लगी। उसे लगा कि माही उसकी बात को गंभीरता से नहीं ले रहा। माही ने जब उसे उस तरह देखा तो आखिरकार उसका मन पसीज गया। हालाँकि उसे जूतों की कोई खास जरूरत नहीं थी... फिर भी वह एक दिन जाकर जूते खरीद लाया। मॉल से निकलते ही उसने जूतों की फोटो खींची और मन को भेज दी। उधर से खुशियों भरा जवाब आया। मन सचमुच उस बात से बहुत खुश लग रही थी। लेकिन इधर माही के मन में एक अलग ही विचार चल रहा था। उसे लग रहा था कि एक लड़की की छोटी सी जिद के कारण उसने बिना जरूरत 2500 रुपये खर्च कर दिए। उसे यह बात थोड़ी अजीब लगी। वह खुद से ही पूछने लगा— “हर बार... एक लड़की मुझे झुका कैसे लेती है?”

इस सवाल का जवाब वह अपने ही भीतर ढूँढने की कोशिश करता रहा। इसी तरह धीरे-धीरे दिसंबर का महीना बीत गया। कोई बहुत बड़ी घटना नहीं हुई। मन दो-तीन दिन के अंतराल पर उसे मैसेज कर लेती... और बातचीत भी बस हल्की-फुल्की और औपचारिक ही रहती। इस बीच माही उसके कुछ छोटे-मोटे काम भी करता रहा। और देखते ही देखते दिसंबर खत्म हो गया। और इसी के साथ नया साल भी दस्तक दे चुका था। ये दस्तक कैसी रहेगी... ये तो वक्त ही बताएगा।

अध्याय - 50

“नए साल का पहला दिन”

नए साल की शुरुआत माही के लिए कुछ खास नहीं रही। उसकी सुबह हुई बुखार और जुकाम के साथ। दिन के करीब ग्यारह बजे उसकी नींद खुली। दरअसल रात भर तबीयत ठीक न होने के कारण उसे ठीक से नींद नहीं आई थी, इसलिए सुबह देर तक सोता रहा। खराब तबीयत की वजह से उस दिन उसे ऑफिस से भी छुट्टी लेनी पड़ी। उठते ही उसने सबसे पहले अपना फोन उठाया। व्हाट्सएप नए साल की शुभकामनाओं से भरा पड़ा था। दोस्तों, रिश्तेदारों और परिचितों के अनगिनत संदेश स्क्रीन पर दिखाई दे रहे थे। वह एक-एक करके मैसेज देख ही रहा था कि तभी एक नया संदेश आया।

“नए साल की शुभकामनाएँ...” साथ में समुद्र के किनारे रेत पर बनी एक दिल की आकृति की तस्वीर थी। तस्वीर देखते ही उसके भीतर जैसे हल्की सी सिरहन दौड़ गई। असल में यह मैसेज “मन” का था। नए साल पर उसकी शुभकामनाएँ आना तो स्वाभाविक था... लेकिन इस तरह की तस्वीर के साथ आना उसके लिए बिल्कुल अप्रत्याशित था। थोड़ी देर तक वह उस इमेज को देखता रहा। फिर उसने बाकी सब लोगों के साथ-साथ मन को भी जवाब में नए साल की शुभकामनाएँ भेज दीं। लेकिन... मन का वह मैसेज उसके ख्यालों में कहीं गहराई से बैठ गया था। उसके भीतर जैसे कोई नई भावना धीरे-धीरे अंकुरित होने लगी थी। दरअसल वह अच्छी तरह समझता था कि किसी लड़की की तरफ से दिल की आकृति भेजने का क्या अर्थ हो सकता है। लेकिन सब कुछ समझते हुए भी वह इस बात को अपने भीतर एक सामान्य घटना साबित करने की कोशिश कर रहा था।

दो-तीन दिन बाद जब उसकी तबीयत ठीक हुई तो उसने अपनी रोजमर्रा की दिनचर्या फिर से शुरू कर दी। एक दिन दोपहर के समय अचानक उसके फोन पर कॉल आया।

सामने से आवाज आई— “मैं डॉक्टर साहब का पिता बोल रहा हूँ...” उन्होंने बताया कि लड़का इन दिनों घर आया हुआ है। अगर वे लोग चाहें तो आकर उससे मिल सकते हैं। यह संदेश माही के लिए बिल्कुल अप्रत्याशित था। असल में वह डॉक्टर वाले रिश्ते का अध्याय - अपनी तरफ से पहले ही बंद कर चुका था। और मन की तरफ से भी अब तक इस विषय में कोई बात नहीं आई थी। इसलिए वह मान बैठा था कि यह मामला अब खत्म हो चुका है।

अब उसके सामने एक अजीब सी दुविधा खड़ी हो गई। क्या वह यह बात मन को बताए... या नहीं बताए? अगर बताता है... तो कहीं फिर से वही परेशानियों का सिलसिला शुरू न हो जाए। और अगर नहीं बताता... तो कहीं कल को मन की तरफ से यह शिकायत न सुननी पड़े कि उसने बात छिपाई। इस दुविधा ने उसे पूरे दिन उलझाए रखा। एक बार तो उसके मन में आया कि लड़के वालों को ही मना कर दे कि अब कोई आने वाला नहीं है। लेकिन अगले ही पल उसे लगा— बिना वजह झूठ बोलना भी ठीक नहीं है। शाम तक वह इसी ऊहापोह में उलझा रहा। आखिरकार रात को उसने मन के भविष्य के बारे में सोचते हुए एक छोटा सा मैसेज टाइप किया— “डॉक्टर के पापा का फोन आया था। अगर आप लोग लड़का देखने के इच्छुक हों तो 10 तारीख तक उनके घर जा सकते हो।”

मैसेज भेजने के बाद उसने फोन साइलेंट कर दिया। इसमें उसका मकसद बिल्कुल साफ था। उसका काम सिर्फ सूचना देना था... उससे ज्यादा इस मामले में उसका कोई लेना-देना नहीं था। मन क्या जवाब देगी... यह पढ़ने का काम उसने कल पर छोड़ दिया।

अध्याय - 51

“नई सुबह”

अगली सुबह माही की आँख रोज़ की तुलना में थोड़ी जल्दी खुल गई। कमरे में हल्की ठंड अब भी बनी हुई थी। थोड़ी देर वह वैसे ही बिस्तर पर लेटा रहा। फिर अचानक उसे याद आया— कल रात उसने मन को एक मैसेज भेजा था। उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर मेज पर रखा मोबाइल उठाया। स्क्रीन ऑन की। व्हाट्सएप खोला। मन का मैसेज सबसे ऊपर दिखाई दे रहा था। अगले कुछ मिनट तक वह उसे खोले बिना ही स्क्रीन को देखता रहा... जैसे किसी किताब का ऐसा पन्ना हो जिसे पढ़ने से पहले इंसान थोड़ा ठहरना चाहता हो। फिर उसने मैसेज खोल लिया।

मन ने लिखा था— “Sir... पहले लड़के की pic मंगवा दीजिए।” मैसेज पढ़ते ही माही के मुँह से हल्की सी साँस निकली— “उफ़...” उसे तुरंत एहसास हो गया था कि नए साल के साथ पुराना अध्याय - फिर से खुल गया है। और वह चाहकर भी इससे पीछे नहीं हट सकता। उसे साफ़ समझ आ रहा था कि इस परेशानी से निकलने का एक ही रास्ता है— मन की सगाई जल्द से जल्द हो जाए। अब उसके प्रयास ही उसका बचाव थे। उसने तुरंत फोन उठाया और लड़के के पिता को मैसेज किया— “Sir, लड़के की फोटो भेज दीजिए।”

सिर्फ जवाब आया— “Ok.”

लेकिन अगले दिन तक भी फोटो नहीं आई। माही ने फिर से याद दिलाया। तब जाकर फोटो आई। उसने बिना देर किए वह तस्वीर मन को फॉरवर्ड कर दी। लड़का देखने में ठीक था। कम से कम इस आधार पर मना करने का कोई कारण नहीं बनता था। अब वह मन के जवाब का इंतजार करने लगा।

लेकिन इस बार मैसेज नहीं आया... मन की कॉल आई। यह पहली बार था जब मन ने उसे फोन किया था। और उन दोनों की ही पहली फोन कॉल, अन्यथा अब तक तो व्हाट्सएप ही शब्दों के बहाव का दरिया था। माही ने काँपते हुए फोन उठाया। उसकी आवाज जैसे गले में ही अटक गई थी। “हेलो...” पहली बार स्पीकर पर मन की आवाज

आई— “अरे... इतना क्यों शरमा रहे हो?” माही कुछ कहना चाहता था, पर शब्द जैसे साथ छोड़ रहे थे। “वो... मैं...”

उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि मन ने कहा— “अच्छा सुनो... लड़का ठीक लग रहा है। मैं मेरे दूर के रिश्ते के ताऊ जी और एक भाई को भेजूंगी... और साथ में आपको।” “मुझे... क्यों?” उसने धीमे से पूछा। मन ने तपाक से कहा— “क्योंकि लड़के वालों से जानकारी आपकी है।”

माही ने हिचकते हुए कहा— “देखिए... मैं...” मन ने उसकी बात बीच में ही काट दी— “देखिए, मैं कुछ नहीं सुनना चाहती।” फिर थोड़ी देर बाद उसने धीरे से कहा— “क्या आप मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकते?” उसकी आवाज में हल्की सी बेबसी और भावुकता थी। यही कारण था कि वो कुछ देर के लिए चुप हो गया। “नहीं... वो बात नहीं है।” “तो क्या बात है?” मन ने पूछा। फिर उसने धीमे से कहा— “देखिए Sir... हो सकता है कि ये आपकी last try हो...” अब माही के पास मना करने के लिए कोई शब्द नहीं बचे थे। और फिर आखिरकार उसे कहना पड़ा— “ठीक है...”

छुट्टी वाले दिन उसने फिर किसी तरह एक ड्राइवर का इंतज़ाम किया और गाड़ी लेकर लड़के वालों के घर पहुँच गया। कुछ देर बाद मन के ताऊ जी और उसका भाई भी वहाँ आ गए। उसके ताऊ और भाई से माही की पहले कोई मुलाकात नहीं हुई थी, इसलिए उसके ताऊ जी माही को ही लड़का समझ कर उस से बात करने लग गए, फिर स्थिति स्पष्ट होने के बाद उनको अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने हंसते हुए सॉरी बोला फिर सभी ने बैठकर आपस में बातें करी। घर-परिवार, काम-काज और बाकी बातों। कुल मिलाकर मन के ताऊ और भाई को लड़के का काम और परिवार ठीक लगा। थोड़ी देर बाद वे लोग वापस चले गए। उनके जाने के काफी देर तक माही वहीं खड़ा रहा। फिर उसने धीरे से आगे बढ़कर लड़के के पिता के सामने हाथ जोड़ दिए। और बहुत विनम्रता से इस रिश्ते को आगे बढ़ाने का आग्रह किया। उसके ऐसा करने के पीछे दो वजहें थीं— पहली... मन का सुखद भविष्य। और दूसरी... खुद को इस उलझन से मुक्त कर लेना। लेकिन... क्या सच में उसके "मन" की चाह पूरी हो पाएगी? या फिर यह कहानी अभी और उलझने वाली थी...

अध्याय - 52

“लौटती हुई शाम”

लड़के के घर से लौटते समय तक शाम सोने की तैयारी में थी। हवा में ठंडक बढ़ गई थी। गाड़ी की खिड़की से बाहर खेतों और सुनसान रास्तों की लकीरें पीछे छूटती जा रही थीं। मन के ताऊ और उसका भाई पहले ही जा चुके थे। अब गाड़ी में सिर्फ माही और ड्राइवर थे। माही पूरे रास्ते चुप बैठा रहा। ड्राइवर ने एक-दो बार रेडियो चलाने की कोशिश की, लेकिन फिर माही की चुप्पी देखकर उसे भी बंद कर दिया। घर पर पहुँचकर माही ने “ड्राइवर को धन्यवाद दिया। वो ड्राइवर चला गया।

पहुँचते ही उसने कपड़े कुर्सी पर रखे और कुछ देर चुपचाप बैठा रहा। आज का दिन जैसे थोड़ा भारी था। उसने फोन उठाया। कुछ देर बाद व्हाट्सएप पर मैसेज आया—

मन: “Sir, घर पहुँच गए?”

माही: “हाँ”

माही ने छोटा सा जवाब लिखा।

मन: “ताऊ जी और भैया कह रहे थे कि लड़का ठीक है।”

माही: “अच्छी बात है।”

कुछ देर तक कोई मैसेज नहीं आया। फिर मन का एक और संदेश आया— “Sir... आपने कुछ बोला तो नहीं वहाँ?” “नहीं...”

बस जरूरी और काम की बातें।” उधर कुछ देर तक टाइपिंग का निशान आता-जाता रहा। फिर मन का मैसेज आया— “आप अजीब हो।”

माही थोड़ा चौंका। “क्यों?”

मन ने लिखा— “क्योंकि आप हर काम ऐसे करते हो... जैसे आपको उससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता।”

फिर एक और मैसेज आया— “लेकिन फिर भी आप हर काम सबसे ज्यादा करते हो।”

माही के पास इसका कोई जवाब नहीं था। उसने फोन मेज पर रख दिया। उधर... मन भी फोन की स्क्रीन को देख रही थी। उसे पहली बार हल्का सा एहसास हुआ— यह आदमी सिर्फ औपचारिक मदद नहीं कर रहा। लेकिन अगर ऐसा है... तो फिर यह इतना सामान्य बनने की कोशिश क्यों करता है? यही सवाल उसके मन में अब जन्म ले चुका था।

अध्याय - 53

“एक और इंकार”

उस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद की बात थी। उस सुबह माही रोज़ की तरह जल्दी तो उठ गया था, लेकिन वह एक्सरसाइज़ नहीं कर पाया, इसलिए ऑफिस से आकर आज छत पर ही थोड़ी कसरत कर रहा था। जनवरी की कंपा देने वाली शाम थी। सूरज छिप चुका था, अब रात की शैशवास्था पर चांदनी का पहरा था... कुछ देर एक्सरसाइज़ करने के बाद माही छत की मुंडेर के पास खड़ा हो गया। उसने तौलिये से चेहरे का पसीना पोंछा और मुंडेर से फोन उठाया। जैसे ही उसने स्क्रीन ऑन की, व्हाट्सएप पर एक नया मैसेज दिखाई दिया। बस एक ही शब्द था— “Sir”

माही ने भी वो चिरपरिचित जवाब दिया— “Han”

उधर से भी बिना देर किए जवाब आ गया— “लड़के वालों ने मना कर दिया है।”

“कब?”

मन ने लिखा— “कल ही।”

“कारण?” माही ने पूछा।

“लड़के की height 6 feet है... और मेरी 5'3। उन्हें मेरी height कम लगी।”

“अच्छा...”

मन ने फिर लिखा— “बस ये ही बताने के लिए मैसेज किया था।”

माही ने जवाब दिया— “कोई बात नहीं... और कोशिश करेंगे।”

“Ok.”

मैसेज यहीं खत्म हो गया। लेकिन माही के मन में विचारों का सिलसिला शुरू हो चुका था। वह मन ही मन सोचने लगा— “अब क्या किया जाए...?” वह तो लगभग यह मान ही चुका था कि शायद इस बार बात बन जाएगी। लेकिन जिंदगी में कुछ शब्द ऐसे होते हैं

जो इंसान को सबसे ज्यादा परेशान करते हैं— “काश...” और “शायद...” और आज माही फिर उन्हीं दो शब्दों के बीच खड़ा था।

अगले दो दिनों में माही ने एक बात गौर की। मन में पहले वाली बात नहीं लग रही थी। वह अपने काम में तो लगी रहती, लेकिन उसके चेहरे पर वही हल्की सी उदासी साफ दिखाई देती थी जो अक्सर किसी अधूरी उम्मीद के बाद आ जाती है। माही ने दो-तीन बार सोचा कि उससे बात करे... लेकिन हर बार खुद को रोक लिया। फिर एक दिन उसने आखिरकार व्हाट्सएप पर मैसेज भेज ही दिया— “सब ठीक है?”

बहुत देर तक कोई जवाब नहीं आया। फिर अचानक फोन बज उठा। मन की कॉल थी। माही ने कॉल उठाई— “हैलो...”

मन की धीमी आवाज सुनाई दी— “Sir...” “हाँ, बोलो।” उसकी आवाज में एक घबराहट थी। मन ने धीरे से कहा— “मुझे लगा था शायद इस बार हो जाएगा...” फिर थोड़ी देर चुप रही। उसके बाद उसने जैसे अपने मन की बात कह दी— “अब मम्मी फिर से परेशान करेगी.. मेरी किस्मत ही खराब है। कहीं भी रिश्ता बता देती हैं... कभी-कभी डर लगता है कि कहीं गलत जगह ना फँसा दें।” उसकी आवाज अब थोड़ी भर्रा गई थी।

माही को महसूस हो रहा था कि मन सच में परेशान है। मन ने फिर धीरे से कहा— “मैं आपको ज्यादा परेशान नहीं करना चाहती...” यह सुनकर माही के भीतर अचानक एक अलग ही भाव जागा। उसे इस बार उस पर सच में सच्चा तरस आया। उसने थोड़ा दृढ़ होकर कहा— “ऐसी बात मत सोचो।” थोड़ा रुक कर उसने आगे कहा— “पहले भी कोशिश कर रहा था... अब थोड़ी और शिद्दत से करेंगे।” उसने ये शब्द उसको दिलासा देने के लिए कहे थे।

लेकिन मन ने धीरे से कहा— “सच में...?”

“हाँ।” माही ने कहा।

अच्छ! ये बताओ कब तक करोगे?

“जब तक अच्छा रिश्ता नहीं मिल जाता... कोशिश बंद नहीं होगी।” अब पता नहीं उसने फ्लो में कही या सच में ही वो मन की हालत को देख कर इस काम को करने की ठान चुका था।

फोन के उस पार से एक लंबी साँस की आवाज आई। जैसे किसी ने थोड़ी देर के लिए अपने मन का बोझ हल्का कर दिया हो। फिर मन ने हल्की सी मुस्कान वाली आवाज में कहा— “Thank you, Sir...” माही ने बस इतना कहा— “बस अब परेशान मत हुआ करो।” कुछ काम की बातें हुईं और फिर कॉल कट गई। फोन रखने के बाद माही कुछ देर तक चुप बैठा रहा। उसे अचानक महसूस हुआ— कभी-कभी इंसान किसी की मदद करते-करते अनजाने में ही उसकी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ले लेता है। और शायद... माही अब उसी रास्ते पर बढ़ चुका था।

अध्याय - 54

“चेहरा एक किताब”

अगले दिन ऑफिस में लोग अपनी-अपनी मेजों पर फाइलों में व्यस्त थे। कहीं टाइपिंग की आवाज आ रही थी, कहीं कागजों की सरसराहट। माही भी अपनी मेज पर बैठा काम कर रहा था। फोन वाली बात के बाद उसने मन के पास फिर कोई मैसेज नहीं किया था। वह जानता था कि कभी-कभी इंसान को अपने विचारों के साथ थोड़ा अकेला छोड़ देना ही बेहतर होता है। लगभग आधे घंटे बाद उसकी मेज पर हल्की सी आवाज हुई। उसने नजर उठाई। सामने मन खड़ी थी। हाथ में केतली और दो कप थे। उसने बिना कुछ कहे एक कप माही की मेज पर रख दिया। फिर हल्के से सिर हिलाकर अभिवादन किया। माही ने भी हल्की मुस्कान के साथ सिर हिला दिया। दोनों के बीच कोई शब्द नहीं बोले गए। लेकिन दोनों को कल की फोन वाली बात याद थी। मन वही खड़ी थी, फिर उसने धीरे से कहा— “चाय ठंडी हो जाएगी।” माही ने कप उठाया। “थैंक यू।” बस इतना ही कहा। मन मुस्कान के साथ वापस अपनी सीट की तरफ चली गई।

माही चाय की चुस्की लेते हुए कुछ देर तक फाइल पर नजरें टिकाए बैठा रहा। लेकिन उसका ध्यान पूरी तरह काम में नहीं था। उसे महसूस हो रहा था कि आज मन पहले की तुलना में थोड़ी शांत है। शायद कल की बातों के बाद उसके मन का बोझ थोड़ा हल्का हुआ था। थोड़ी देर बाद मन फिर अपनी सीट से उठी। इस बार वह किसी फाइल के सिलसिले में आई थी। माही के सामने खड़ी होकर उसने कहा— “Sir, ये डाक ले लीजिए।” माही ने डाक लेकर साइन कर दिए। फाइल वापस लेते हुए मन ने हल्की मुस्कान के साथ कहा— “वैसे...”

माही ने नजर उठाई— “हाँ?”

मन ने धीरे से कहा— “आप इतना सीरियस मत हुआ करो।”

माही थोड़ा चौंका। “क्यों?”

मन के चेहरे पर एक बेसाख्ता तबस्सुम की मीठी सी लहर दौड़ गई।— “क्योंकि जब आप सीरियस होते हो ना... तो लगता है जैसे पूरी दुनिया की जिम्मेदारी आपके ऊपर है।”

चेहरे को उसके सामने करते हुए उसने कहा— “ऐसी कोई बात नहीं है।”

मन ने डाक बुक हाथ में ली और जाते-जाते कहा— “मुझे तो लगती है।”

और फिर वह अपनी सीट की तरफ लौट गई। माही उसे जाते हुए देखता रहा। फिर उसने चुपचाप चाय का आखिरी घूंट लिया और फाइलों में नजरें लगा दीं। लेकिन उसके मन में एक बात धीरे-धीरे साफ होने लगी थी— कभी-कभी इंसान किसी के लिए कोशिश करते-करते उसकी जिंदगी का अनकहा हिस्सा बन जाता है, ना चाहते हुए भी।

अध्याय - 55

“धुंध के पार”

दोपहर का समय था। माही अपने JE Room में अकेला बैठा था। माही और दीवारों के बीच एक खामोश दुनिया थी — वही खामोशी जो अक्सर तब जन्म लेती है जब इंसान अपने ही विचारों के सामने बैठा होता है। उस कमरे में उसके आगे फाइलें नहीं होती थीं, यह उसके खुद से मुलाकात का समय होता था। उसके भीतर एक सवाल बार-बार उठ रहा था। उसने मन से कह तो दिया था— “अब पहले से भी ज्यादा कोशिश करूंगा।” लेकिन कैसे? क्या यह सच में इतना आसान था? वह कुर्सी पर थोड़ा पीछे झुक गया। अब तक वह यह सब काम एक बोझ की तरह कर रहा था— जैसे किसी जिम्मेदारी को निभाना पड़ रहा हो। लेकिन अब... शायद वह इसे फर्ज की तरह देखने लगा था। फिर भी एक चीज अब भी गायब थी— जुनून। और जुनून ही तो वह ईंधन होता है जो प्रेम को ऊँचाई तक ले जाता है। वह अभी भी “क्यों” और “कैसे” के बीच उलझा हुआ था।

इसी सोच में अचानक उसे एक बात याद आई। कुछ दिन पहले उसके एक शिक्षक मित्र ने एक Assistant Commandant लड़के की अधूरी सी जानकारी भेजी थी। माही ने तुरंत फोन उठाया। चैट बॉक्स खोला। उसने पहले कागज़ पर सारी डिटेल्स लिखी, फिर उसी आधार पर एक छोटा सा बायोडाटा तैयार किया। कुछ मिनट बाद उसने वह बायोडाटा मन को भेज दिया।

उधर से — “ठीक है।”

माही ने अपने शिक्षक मित्र से बात की।

जवाब मिला— “लड़का इन दिनों घर आया हुआ है, अगर देखना चाहो तो आ जाओ।” माही ने यह बात मन को बता दी। साथ ही लिखा— “ताऊ और भाई को भेज दो।” मन ने मना किया— “नहीं... वो लोग इतनी आसानी से नहीं जाते। बड़ी मुश्किल से तैयार करना पड़ता है।” फिर उसने लिखा— “आप जाकर देख आओ पहले।”

उसने लिखा— “मैं अकेला... लड़का देखने?”

“तो क्या हुआ?” फिर उसने हँसते हुए लिखा— “आप एक्सपर्ट हो... और नहीं हुए हो तो हो जाओगे” माही - “ठीक है... देखते हैं” यह लिखकर उसने चैट बंद कर दी। दो दिन बीत गए। फिर मन का मैसेज आया— “Sir... आप हो आओ ना कमांडेंट के घर।” माही ने जवाब दिया— “छुट्टी वाले दिन देखता हूँ।”

— “नहीं... कल जाकर आओ।”

माही ने लिखा— “अरे... कल कैसे?” मन— “वो मैं नहीं जानती। पर कल मतलब कला।”

मन को जल्दी की आदत थी। और शायद उसकी इस आदत को माही ने ही उसकी हर जिद पूरी करके और बढ़ा दिया था। “देखो... कल मुश्किल है। और वैसे भी बहुत कोहरा पड़ रहा है।”

“मतलब आप नहीं जाओगे?” और उसके बाद मन ऑफलाइन हो गई।

शाम को माही घर लौटा। खाना खाया। लेकिन नींद अभी आधी छुट्टी पर थी। तभी भीतर से एक फैसला आया— वह नहीं जाएगा। और तब तक नींद की भी आधी छुट्टी पूरी हो चुकी थी। सुबह हुई। भयंकर कोहरा था। सर्द हवा शरीर को भीतर तक कंपा रही थी। माही ऑफिस जाने के लिए तैयार होकर घर से निकला। लेकिन... आज उसने जो बस पकड़ी वह गुरुग्राम की थी। क्योंकि सुबह की ठंड में उसने एक तपता हुआ फैसला ले लिया था। रोज-रोज किसी ड्राइवर से कहना भी ठीक नहीं लगता था। इसलिए उसने तय किया कि आज वह बस से ही जाएगा।

धुंध की घनी परतों के बीच से रास्ता बनाती हुई बस लगातार आगे बढ़ रही थी। माही खिड़की के पास बैठा बाहर देख रहा था। उसके मन में बार-बार वही सवाल घूम रहा था— कोई लड़की इतनी जिद क्यों करती है? उसकी जिद में एक हक झलक रहा था। ऐसा हक जो नजरो नहीं देख पा रही थी लेकिन वजूद महसूस कर पा रहा था। मानो वह उसे भेज नहीं रही थी... जैसे यह उसका अधिकार हो। और माही भी... ना... ना... करते हुए आखिरकार मान ही गया। वह अचानक सोचने लगा— क्या यह अधिकार सिर्फ उसकी तरफ से है... या फिर दोनों तरफ से? वह अपने भीतर उठती कोमल भावनाओं को कहीं न कहीं स्वीकार कर रहा था। बस धुंध को पीछे करती हुई आगे बढ़ रही थी। लेकिन... उस धुंध को कोई बहुत ध्यान से देख रहा था। क्योंकि शायद उसकी अपनी जिंदगी भी अब एक धुंधले सफर की तरफ बढ़ रही थी।

“कोहरे की आँख से दिल का दृश्य”

गुरुग्राम की सर्द सुबह अब भी कोहरे में लिपटी हुई थी। बस से उतरने के बाद माही ने जेब से कागज़ निकाला, जिस पर पता लिखा हुआ था। शहर उससे अनजाना नहीं था फिर भी पहुंचने में दिक्कत तो आ रही थी। कभी वह किसी ऑटो वाले से पूछता, कभी किसी राह चलते आदमी से। कोई दाएं भेज देता, कोई बाएं। सर्द हवा चेहरे को काट रही थी। काफी देर भटकने के बाद आखिरकार उसे वह मकान दिखाई दिया। एक बड़ा सा गेट... अंदर साफ-सुथरा लॉन... और सामने खड़ा दो मंजिला सलीकेदार घर। घर को देखते ही साफ महसूस हो जाता था— यह एक अपर क्लास परिवार का घर है। माही ने कुछ क्षण गेट के बाहर खड़े होकर घर को देखा। फिर धीरे से बेल दबा दी।

कुछ देर बाद दरवाज़ा खुला। अंदर से एक सलीके से कपड़े पहने मध्यम आयु के व्यक्ति बाहर आए। वो उस लड़के के पिता थे। माही ने विनम्रता से नमस्ते की और अपना परिचय दिया। उन्होंने माही को अंदर बैठने का इशारा किया। ड्राइंग रूम में सब कुछ व्यवस्थित था। दीवारों पर फ्रेम में लगी तस्वीरें... टेबल पर करीने से रखी मैगजीन... और कमरे में एक हल्की सी औपचारिकता तैर रही थी। कुछ ही देर में वह लड़का भी सामने आकर बैठ गया। लंबा कद, सधा हुआ व्यक्तित्व। बातचीत सामान्य सवाल-जवाब से शुरू हुई। लड़के के पिता कभी माही से पूछते, कभी लड़के की ओर देखते। माही ने भी जितनी जानकारी उसे थी, उतनी साफ-साफ बता दी। कुछ देर की बातचीत के बाद कमरे में एक हल्की सी खामोशी उतर आई। फिर लड़के के पिता ने धीमे स्वर में कहा— “देखिए... हम लोग लड़की के बारे में आपकी बात समझते हैं।” उन्होंने कुछ क्षण रुककर आगे कहा— “लेकिन हमारी एक छोटी सी अपेक्षा है... हम चाहते हैं कि बहू अधिकारी वर्ग से हो।” उनकी आवाज़ में विनम्रता थी। लेकिन शब्दों में साफ इंकार छिपा हुआ था।

माही ने हल्का सा सिर हिला दिया। वह समझ गया था। कुछ बातें बिना ज्यादा शब्दों के भी साफ हो जाती हैं। लेकिन बातचीत के दौरान माही को एक और बात महसूस हुई। लड़का... और उसके पिता... दोनों ही उसे बीच-बीच में थोड़ा अलग नजरों से देख रहे थे। जैसे उनके मन में कोई छोटा सा सवाल जवाब चाह रहा हो। शायद यह सवाल था— एक सुंदर नौजवान... जो उस लड़की का रिश्ते में भी कुछ नहीं है... वह क्यों उस के लिए

इस तरह घूम रहा है? उनमें से किसी ने यह सवाल पूछा नहीं। लेकिन उनकी नजरों में वह प्रश्न कहीं न कहीं मौजूद था। माही को यह बात महसूस हो गई थी। और उस क्षण उसे दूसरी बार हल्की सी असहजता हुई। कुछ देर बाद वह उठ खड़ा हुआ। नमस्ते करके बाहर निकल आया।

घर से बाहर आते ही उसने गहरी सांस ली। कोहरा अब भी फैला हुआ था। सड़क पर चलते हुए अचानक उसे लगा— आज सिर्फ एक रिश्ता नहीं टूटा है। आज पहली बार किसी और की नजरों ने उसके और मन के बीच मौजूद उस अनकहे रिश्ते को पहचानने की कोशिश की है... जिसे अब तक वे दोनों खुद भी पूरी तरह समझ नहीं पाए थे। और शायद... यही बात उसे भीतर तक छू गई थी। कोहरे में चलते हुए माही को लगा— कुछ रास्ते ऐसे होते हैं जहाँ इंसान किसी और की मंजिल खोजते-खोजते अनजाने में अपनी ही कहानी के अंदर उतरने लगता है।

“सच की कड़वाहट और एक स्वामोश ईंधन”

गुरुग्राम से लौटने के बाद अगला दिन ऑफिस में काफी भारी था। माही अपनी मेज पर बैठा अपना काम निपटा रहा था, लेकिन उसका ध्यान बार-बार फोन की स्क्रीन पर जा रहा था। वह जानता था कि आज नहीं तो कल, जवाब देना ही होगा। और दोपहर होते-होते, स्क्रीन पर वह मैसेज आ ही गया— “Sir... क्या बात हुई कल?”

माही कुछ क्षण उस छोटे से मैसेज को देखता रहा। उसके दिमाग में एक अजीब सी कशमकश चल रही थी। एक रास्ता था— कोई झूठी कहानी गढ़ने का। वह कह सकता था कि परिवार ठीक नहीं लगा, या लड़के का स्वभाव अच्छा नहीं था। इससे उस पार बैठी लड़की का दिल नहीं टूटता और बात वहीं खत्म हो जाती। दूसरा रास्ता था— एकदम नंगा और कड़वा सच। लेकिन सच बताने में उसे एक डर था। कहीं उसे यह न लगे कि उसकी नौकरी छोटी है या उसकी हैसियत को कम आंका गया है। पर फिर माही ने सोचा— झूठ बोलना... क्या यह खुद उसके उसूलों और इस अनकहे रिश्ते के साथ बेईमानी नहीं है? तभी उसके दिमाग में एक और विचार कौंधा। वह उसे पहले से ही असिस्टेंट कमांडेंट बनने के लिए प्रेरित करता आ रहा था। शायद यह कड़वा सच उस पुरानी प्रेरणा के लिए एक नए ईंधन का काम करेगा। यह सोचकर उसने तय किया कि वह सच ही बोलेगा।

उसने रिप्लाई टाइप किया— “उन्होंने मना कर दिया है।”

“क्यों? क्या कमी लगी उन्हें?”

माही की उंगलियां कीपैड पर थोड़ी देर के लिए रुकीं। फिर उसने बिना किसी मिलावट के सच लिख दिया— “उन्हें कोई कमी नहीं लगी। बस उनकी एक शर्त थी... उन्हें घर की बहू अधिकारी वर्ग से चाहिए।”

मैसेज सेंड हो गया। माही की नज़रें स्क्रीन पर टिकी थीं। ऊपर ‘Online’ लिखा आ रहा था... लेकिन ‘Typing...’ का निशान गायब था। एक मिनट बीता... दो मिनट बीते...

वह डिजिटल खामोशी किसी भी चीख से ज्यादा भारी थी। माही जानता था कि उस पार क्या बीत रही होगी। किसी को उसकी सूरत या कद के लिए खारिज करना अलग बात है, लेकिन उसकी हैसियत और पद के लिए खारिज कर देना... यह इंसान को भीतर तक जला देता है। माही के पास सांत्वना देने के लिए बहुत से शब्द थे। वह चाहता तो एक लंबा-चौड़ा मैसेज लिख सकता था, हिम्मत बंधा सकता था। लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह जानता था कि जो आग अभी उस तरफ लगी है, उसे किसी मोटिवेशनल स्पीच की जरूरत नहीं है। यह रिजेक्शन खुद अपना काम करेगा।

करीब 5 मिनट की उस भारी चुप्पी के बाद, उधर से सिर्फ एक छोटा सा मैसेज आया— “Ok.” माही ने इसके जवाब में कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। उसने बस एक सीधा सा सवाल पूछा— “पढ़ाई कैसी चल रही है?” और थोड़ी देर बाद उतना ही सीधा जवाब आया— “अब और अच्छी चलेगी।”

माही ने फोन मेज पर रख दिया। एक मंद बयार सी मुस्कान उसके होंठों को छूकर गुजर गई। उसे जिस ईंधन की उम्मीद थी, वह आग पकड़ चुका था।

अध्याय - 58

“कर्तव्यपथ”

कमांडेंट के घर से लौटते समय माही के कदम थोड़े भारी जरूर थे। इंकार सुनना हमेशा आसान नहीं होता। भले ही वह इंकार अपने लिए ना हो... फिर भी कहीं न कहीं मन को छू ही जाता है। कुछ पल के लिए उसके भीतर हल्की सी मायूसी जरूर उठी। लेकिन इस बार वह टूटा नहीं। शायद इसलिए... क्योंकि अब यह सिर्फ एक औपचारिक कोशिश नहीं रह गई थी। घर लौटते हुए रास्ते भर उसने यही सोचा कि मन को क्या बताएगा। लेकिन ये चिंता दूर हो चुकी थी... वह मन को बता भी चुका था और उसे कुछ समझा भी चुका था। उसे जीवन में आगे बढ़ने की यह सलाह किसी औपचारिक सांत्वना की तरह नहीं थी। उसके शब्दों में एक सच्ची चिंता थी। उसने खुद भी इस घटना को हार की तरह नहीं, बल्कि प्रेरणा की तरह लेना शुरू कर दिया।

पहले वह इस पूरे काम को एक बोझ की तरह देखता था। जैसे किसी जिम्मेदारी से पीछा छुड़ाना हो। वह कोशिश तो करता था... लेकिन भीतर से हमेशा चाहता था कि किसी तरह यह अध्याय - जल्दी खत्म हो जाए। लेकिन अब... पता नहीं कब और कैसे, उसी काम को उसने अपने भीतर फर्ज की तरह महसूस करना शुरू कर दिया था। जैसे यह अब सिर्फ मन की मदद नहीं रह गई थी... यह उसके अपने कर्तव्य का हिस्सा बन गया था। और धीरे-धीरे उस कर्तव्य में एक हल्का सा चाव भी घुलने लगा था। बस अब जरूरत थी कर्तव्य पथ पर बढ़ती उस गाड़ी में जुनून रूपी ईंधन भर जाने की। और शायद वह दिन भी दूर नहीं था।

माही उन उसूलों की बात अक्सर करता था जिन्हें वह जिंदगी का आधार मानता था। और अब वही उसूल चुपचाप उसके सामने खड़े थे। मानो कह रहे हों— “अगर रास्ता चुना है तो अब पीछे मत मुड़ना।” माही ने मन ही मन उन्हीं उसूलों को साक्षी मानकर अपने भीतर एक शांत-सी कसम उठा ली। अब वह पीछे नहीं हटेगा। धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगा था कि मन की मासूमियत... उसकी मजबूरियाँ... उसका बेझिझक व्यवहार... और सबसे बढ़कर उसका उस पर हक जताना— ये सारी बातें अनजाने में ही उसे मन के थोड़ा और करीब लाती जा रही थीं।

कभी-कभी उसे लगता— मन उसे आदेश नहीं देती थी... जैसे वह अधिकार से कहती थी। और अजीब बात यह थी कि माही को भी अब वह अधिकार असहज नहीं लगता था। बल्कि कहीं न कहीं उसे अच्छा लगने लगा था। शायद इसलिए क्योंकि उसके भीतर भी अब एक कोमल स्वीकृति जन्म लेने लगी थी। एक ऐसी स्वीकृति जिसे उसने अभी शब्द नहीं दिए थे... लेकिन जो धीरे-धीरे उसके भीतर जगह बना रही थी।

शाम ढल रही थी। आसमान धुंध की चादर धरती की गोद में उतारने को तैयार था। माही छत पर खड़ा दूर तक फैले आकाश को देख रहा था। उसके मन में अब भी बहुत सारे सवाल थे। आज साफ आकाश की तरह शांत था। जैसे उसने अपने जीवन के एक रास्ते को चुपचाप स्वीकार कर लिया हो। और शायद... अब वह उस रास्ते पर सिर्फ चलने के लिए नहीं, बल्कि पूरी तरह समर्पित होकर चलने के लिए तैयार था। क्योंकि कभी-कभी इंसान किसी के लिए कुछ करते-करते एक दिन अचानक यह महसूस करता है— कि वह सिर्फ कर्तव्य नहीं निभा रहा... वह दिल से जुड़ चुका है। और शायद माही भी अब उसी मोड़ पर खड़ा था।

अध्याय - 59

“प्रयोगशाला”

धरती धुंधले आसमान में चांद को ढूंढ रही थी और माही को उसकी नींद ढूंढ रही थी... लेकिन मानो उसने खुद को उससे छुपा लिया हो। आजकल उसका और नींद का लगभग हर रात यही खेल चलता था... जैसा कि उसका और मन का। दोनों को एक-दूसरे की चाह तो थी... लेकिन जब पास आने का समय आता, तो जैसे कोई अनदेखी दूरी उनके बीच खड़ी हो जाती। नींद भी माही के पास तक आती... और फिर लौट जाती। और इस अजीब से खेल में माही का एक सच्चा हमसफ़र हमेशा की तरह उसका साथ निभा रहा था— चाया। कप से उठती भाप कमरे की शीतलता को को गर्मी दे रही थी। माही खिड़की के पास बैठा था। आज की रात सिर्फ जागने की नहीं थी... यह रात रणनीति बनाने की थी। वह अब यह समझ चुका था कि मन के लिए रिश्ते तलाशने का काम सिर्फ परंपरागत तरीकों से नहीं चलेगा। कुछ नया सोचना पड़ेगा। कुछ ऐसा जो सीधे रास्तों से थोड़ा अलग हो। लेकिन ऐसे रास्तों के अपने जोखिम भी होते हैं। फिर भी... मन की खुशी के लिए वह अब शायद कोई भी रिस्क उठाने को तैयार था। उसे अचानक एक पंक्ति याद आई— “एक का अधिकार... दूसरे का कर्तव्य बन जाता है।” शायद यही भाव इस समय उसके भीतर काम कर रहा था। मन का अधिकार... और माही का कर्तव्य। दोनों कहीं न कहीं एक-दूसरे में समाने लगे थे।

अगली सुबह एक नई शुरुआत लेकर आई। दफ्तर पहुँचते ही माही ने अपने रोज़मर्रा के काम जल्दी-जल्दी निपटा दिए। और फिर आकर बैठ गया अपने JE Room में। यह कमरा अब उसके लिए सिर्फ दफ्तर का कमरा नहीं रहा था। यह एक प्रयोगशाला बन चुका था— जहाँ वह अब कुछ नए प्रयोग करने वाला था। उसने अपनी डायरी खोली। फोन उठाया। और एक-एक करके अपने सभी पुराने संपर्क खंगालने लगा। उस दिन उसने कम से कम पचास जगह फोन किए। कहीं से जानकारी ली... कहीं किसी से सलाह... कभी कोई उम्मीद की किरण मिलती... कभी बातचीत वहीं खत्म हो जाती। इसके साथ-साथ वह इंटरनेट पर भी देर तक खोज करता रहा। नए रास्ते... नई संभावनाएँ... नई जानकारी... वह हर दिशा में कोशिश कर रहा था।

उसकी यह निरंतरता तब टूटी जब अचानक एक कप उसकी मेज पर आकर रखा गया। उसने सिर उठाया। सामने मन खड़ी थी। वह अपना काम निपटा कर आई थी। चेहरे पर वही जानी-पहचानी चिरपरिचित मुस्कराहट खेल रही थी। उसकी अंगूठी कमरे के कृत्रिम प्रकाश में चमक रही थी, माही कई दिन से उसकी अंगुली में वो विशेष तरह का छल्ला नोटिस कर रहा था, जो उसकी नजर में अंधविश्वास का एक प्रकार था, मेज पर फैले कागजों को देख कर वो मजाकिया अंदाज़ में बोली— “अरे... आज यहाँ भी ऑफिस लगा लिया क्या?” माही ने कुछ कागज जानकारी नोट करने के लिए फैला रखे थे। लेकिन मन की नजर में यह सब बस दफ्तर की कोई साधारण प्रक्रिया थी। उसे क्या पता था कि इन कागजों में उसकी अपनी जिंदगी के रास्ते खोजे जा रहे थे।

मन की उस मासूमियत में कोई बनावट नहीं थी। और शायद... यही मासूमियत माही को बार-बार उसकी तरफ खींच लेती थी। मन जो चीज देने आई थी, उसे रखकर चली गई। लेकिन कमरे में अब भी उसकी मधुरता की थोड़ी सी गर्माहट रह गई थी। माही ने कप उठाया। एक घूंट लिया... और फिर अपने सामने रखे कागजों की तरफ देखने लगा। क्योंकि अब यह सिर्फ एक कोशिश नहीं थी। यह एक प्रयोग था— जिसका परिणाम शायद आने वाले समय में किसी की पूरी जिंदगी बदल सकता था। लेकिन किसकी? माही या मन? ये वक्त बताएगा।

अध्याय - 60

“संकोच की दीवार”

माही धीरे-धीरे इस काम में इतना डूब गया था कि उसे अपने जीवन की बाकी प्राथमिकताएँ धुंधली पड़ती हुई महसूस होने लगी थीं। नौकरी... घर-परिवार... अपना करियर... सब जैसे कहीं पीछे छूटते जा रहे थे। अब उसकी पूरी ऊर्जा सिर्फ एक दिशा में बह रही थी। दफ्तर के उस छोटे से JE Room में उसकी मेज पर अक्सर कुछ कागज़ बिखरे रहते। कभी वह किसी को फोन करता... कभी किसी की जानकारी नोट करता... फिर उन सूचनाओं को बड़ी सावधानी से एक बायोडाटा में ढालता। और अंत में उसे मन को भेज देता। धीरे-धीरे यह काम उसके दिन का सबसे जरूरी हिस्सा बन गया था।

इसी क्रम में एक दिन उसे एक और नया रिश्ता मिला। लड़का CISE में इंस्पेक्टर था। माही ने उसकी पूरी जानकारी जुटाई, एक व्यवस्थित बायोडाटा तैयार किया और मन को भेज दिया। बात कुछ आगे बढ़ी। थोड़ी ही देर बाद संदेश आया कि उनको लड़की की फोटो चाहिए। माही वहीं ठिठक गया। उसे एक गहरा संकोच महसूस हुआ। आज तक उसने मन से उसकी फोटो नहीं मांगी थी। यह एक ऐसी सीमा थी जिसे उसने कभी पार नहीं किया था। आज अचानक कैसे मांगे? लेकिन अगर फोटो नहीं भेजेगा, तो बात आगे कैसे बढ़ेगी?

उधर से लड़के वालों के लगातार संदेश आ रहे थे। थोड़ा विचार करने के बाद फिर उसने एक लंबी और गहरी साँस ली और धीरे-धीरे टाइप किया— “Mam, लड़के वालों को आपकी pic चाहिए।” संदेश भेजते ही जैसे उसने अपना सारा संकोच भी उस छोटे से नीले टिक (Blue Tick) के हवाले कर दिया। लेकिन आने वाली प्रतिक्रिया बिल्कुल सहज थी। मन ने बिना किसी देरी के तुरंत अपनी एक फोटो भेज दी। जैसे उसके लिए यह कोई साधारण सी बात हो।

माही ने फोटो डाउनलोड की। मन उस तस्वीर में बहुत सरल और सौम्य लग रही थी। माही ने जल्दी से वह फोटो लड़के वालों को फॉरवर्ड कर दी। काम पूरा हो गया। कुछ ही देर बाद मन का संदेश आया— “भेज दी?”

माही ने जवाब दिया— “जी, भेज दी।”

मन का अगला संदेश आया— “कैसी लग रही है फोटो? मतलब... मैं?”

माही ने थोड़ा संभलकर लिखा— “अच्छी है। सादगी हमेशा अच्छी लगती है।”

उसने एक हँसने वाली इमोजी भेजी। साथ में लिखा— “सिर्फ अच्छी? चलिए ठीक है... एक्सपर्ट साहब ने कहा है तो मान लेती हूँ।” मन का एक और संदेश स्क्रीन पर पहुंचा— “अच्छा सुनिए... अब आप एक फोटो ढूँढ कर लाओ।”

माही ने थोड़ा हैरान होकर पूछा— “किस की?”

मन ने लिखा— “किसी गुर्जर लड़की की।”

उसे लगा शायद मन किसी और रिश्ते की बात कर रही है। उसने पूछा— “क्यों? किसके लिए?”

“अरे... है कोई लड़का। अच्छा सा... थोड़ा समझदार... थोड़ा पागल।”

अब माही समझ चुका था कि वह किसकी तरफ इशारा कर रही है। उसके दिल की धड़कन थोड़ी तेज हो गई, पर उसने खुद को संभालते हुए सिर्फ इतना लिखा— “Ohh...”

“तो ढूँढ कर भेजो... अस्तित्व अवाना जी।” साथ में फिर से वही हँसने वाली इमोजी चमकी।

माही ने उस संदेश को दो-तीन बार पढ़ा। मन ने पहली बार उसके नाम के साथ उसकी पहचान जोड़कर उसे चुनौती दी थी। माही ने भी हार मानते हुए हाथ जोड़ने वाली इमोजी भेज दी। वह हल्की-सी शरारत भरी बातचीत वहीं शांत हो गई। लेकिन फोन मेज पर रखने के बाद भी माही काफी देर तक 'अस्तित्व अवाना जी' वाले उस संदेश को देखता रहा। उसे महसूस हो रहा था कि जिस संकोच की दीवार को वह खड़ा कर रहा है, मन उसे अपनी मासूम शरारतों से रोज थोड़ा-थोड़ा गिराती जा रही है।

अध्याय - 61

“बीते लम्हे”

माही एक बार फिर अपने ही विचारों की दुनिया में खो गया। मेज पर रखे कागज़ अभी भी फैले पड़े थे, लेकिन उसका ध्यान अब उन पर नहीं था। आज सच में मन की बातें उसके भीतर हल्की-हल्की गुदगुदी जगा रही थीं। अब तक वह लड़कियों के मामले में हमेशा थोड़ा सख्त, थोड़ा संयमी और मर्यादित रहा था। उसने अपने व्यवहार के चारों ओर एक अदृश्य सीमा खींच रखी थी। लेकिन सच तो यह भी था कि वह आखिर एक पुरुष ही था। मनुष्य चाहे अपने ऊपर कितना भी अनुशासन क्यों न थोप ले, अपने स्वभाव के मूल तत्व को पूरी तरह नकार नहीं सकता। और जब कोई लड़की लगातार किसी के भीतर सोई संवेदनाओं को धीरे-धीरे जगाने लगे... तो फिर कब तक कोई अपने मन को पूरी तरह बाँध कर रख सकता है? फिर भी माही का वर्षों से साधा हुआ कठोर आत्मसंयम उसे अब तक संभाले हुए था।

कुछ देर बाद उसका मन अचानक अतीत की गलियों में भटकने लगा। पुरानी यादों का दरवाज़ा खुला। नस्तिर्यों के उस ढेर के पार, उसकी आँखों के सामने अचानक जाट कॉलेज के वे पुराने दिन एक जीवंत चलचित्र की भाँति चलने लगे। वो विशाल कैपस... वही भीड़... कुछ पहचाने और कुछ अनजाने चेहरे... और उन्हीं चेहरों के बीच एक चेहरा ऐसा भी था जिसे वह कभी याद कर के फिर भूल चुका था। क्या यह वही लड़की है...? जिसे उसने कभी बस एक साधारण परिचय की तरह देखा था। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि एक दिन वही लड़की उसकी जिंदगी के इतने करीब आ जाएगी... इतनी करीब कि उसकी छोटी-छोटी बातें भी दिल के भीतर हल्की लहरें पैदा करने लगें। यह खयाल आते ही उसके होंठों पर मुस्कान बन कर फैल गया।

लेकिन इन सब भावनाओं से परे एक और बात थी जो उसे भीतर से गहराई तक छू रही थी। वह थी मन का जीवन। पिता के जाने के बाद घर की बड़ी बेटी बनकर उसने जिस तरह जिम्मेदारियों का भार उठाया था... वह बात माही के मन पर गहरी छाप छोड़ चुकी थी। उसकी मजबूरियाँ... उसकी सरलता... और हर परिस्थिति में संभल कर खड़े रहने का उसका साहस... इन सबने मिलकर माही के भीतर उसके लिए एक अलग ही छवि बना दी थी। एक ऐसी छवि जिसमें आकर्षण से ज्यादा सम्मान था। आजकल के समय में

जहाँ बहुत लोग नारी को केवल बाहरी रूप से देखने के आदी हो चुके थे... वहीं शायद ही कभी माही ने मन को उस दृष्टि से देखा हो।

सच तो यह था कि उसे याद भी नहीं था कि उसने मन का चेहरा आखिरी बार ध्यान से कब देखा था। उसकी यह भावना सिर्फ मन तक सीमित नहीं थी। स्त्रियों के प्रति सम्मान उसके स्वभाव का हिस्सा था। लेकिन मन के लिए यह भावना कुछ और ही गहरी हो गई थी। शायद इसी कारण वह चाहकर भी उसका साथ छोड़ने की कल्पना नहीं कर पाता था। जैसे किसी अनकहे रिश्ते ने धीरे-धीरे दोनों के जीवन को एक अदृश्य धागे से बाँध दिया हो। और उस धागे की मजबूती अब हर दिन थोड़ी और बढ़ती जा रही थी।

“सम्मान की वह खामोश रेखा”

दोपहर में दफ्तर की खिड़की से आती हल्की धूप कमरे के भीतर एक सुहाना-सा वातावरण बना रही थी। तभी मोबाइल स्क्रीन धूप की तरह चमकी। संदेश मन का था— “Sir, आप अपना फोन किसी को मत देना।” वाक्य छोटा था, लेकिन उसके भीतर कई अर्थ छिपे थे। वह समझ रहा था कि उसके फोन में मन की वह फोटो है जो दो दिन पहले उसने भेजी थी। शायद वह यह चाहती थी कि वह तस्वीर किसी और की नज़र में न आए। लेकिन माही के मन में एक हल्का सा प्रश्न भी उठा— क्या यह सिर्फ सुरक्षा की भावना थी? अपनी गरिमा और निजता को बचाने की चिंता? या फिर इसमें कहीं न कहीं वह अपनापन भी छिपा था, जैसे कोई कह रहा हो— “यह तस्वीर मैंने तुम्हें भेजी है... इसे संभाल कर रखना।” सोच का सिलसिला थमते ही उसने सिर्फ इतना लिखा— “आप मुझ पर विश्वास कर सकते हो।”

“Sir, विश्वास है।” इतना सरल, इतना सीधा उत्तर। लेकिन उस एक वाक्य ने माही के भीतर एक गहरी जिम्मेदारी का एहसास जगा दिया। और उसी क्षण उसके मन में एक पुरानी घटना की याद धीरे-धीरे उभर आई। कुछ समय पहले की बात थी। दफ्तर में एक महिला सहकर्मी का जन्मदिन था। लंच ब्रेक के समय सब लोग एक कमरे में बैठे उसी की तैयारी पर चर्चा कर रहे थे। कोई कह रहा था— “समोसे ले आते हैं।” दूसरा बोला— “नहीं, पकौड़े अच्छे रहेंगे।” तीसरा कुछ और सुझा रहा था। कमरे में हल्की-हल्की बहस चल रही थी। हर कोई अपनी पसंद बता रहा था। माही गैलरी में से निकल रहा था तभी पास वाले कमरे से मन की आवाज़ आई— “Sir... समोसे मुझे पसंद नहीं।” उसने बहुत सहजता से कहा था। फिर उसने मुस्कराते हुए अपनी पसंद भी बता दी। बस... उसी क्षण माही ने उसी को अंतिम मान लिया। अब वह चीज़ बाकी लोगों को पसंद है या नहीं— यह सवाल ही मायने नहीं रखता था। क्योंकि उस दिन किसी १०० व्यक्तियों पर, सिर्फ एक व्यक्ति की पसंद महत्वपूर्ण थी। और वह एक व्यक्ति थी— मन।

थोड़ी देर बाद जब छोटा सा जन्मदिन समारोह शुरू हुआ तो कमरे में हल्की-हल्की हँसी और बातचीत गूँजने लगी। केक काटा गया। सब लोग एक-दूसरे को खिलाने लगे। कुछ सहकर्मी मोबाइल निकाल कर फोटो और वीडियो बनाने लगे। आजकल हर छोटी-सी

घटना कैमरे में कैद कर लेने की आदत हो चुकी थी। लेकिन तभी माही की नजर उस तरफ गई। उसने बहुत शांत, शालीन लेकिन दृढ़ स्वर में कहा— “ज़रूरत नहीं है फोटो या वीडियो की।” लोगों ने थोड़ा आश्चर्य से उसकी ओर देखा। लेकिन उसके स्वर में ऐसी स्पष्टता थी कि किसी ने ज़्यादा सवाल नहीं किया। जेबों ने मोबाइलों का वापिस बुला लिया। उस छोटी-सी पार्टी की याद बस वहीं तक सीमित रह गई। किसी के फोन में नहीं। किसी की गैलरी में नहीं। और शायद यही माही चाहता भी था।

क्योंकि वह नहीं चाहता था कि मन की तस्वीरें या उसकी झलकियाँ बिना वजह किसी और के फोन में कैद हो जाएँ। अब जब वह आज की बातचीत को याद कर रहा था, तो उसे अचानक एहसास हुआ— शायद मन को पता भी नहीं था कि वह पहले से ही उसकी गरिमा का कितना ख्याल रखता आया है। उसने कभी यह बात जताने की कोशिश नहीं की। बस चुपचाप एक अदृश्य रेखा बनाए रखी। सम्मान की एक ऐसी सरहद जिसे उसने कभी पार नहीं होने दिया। और शायद यही कारण था कि आज मन ने इतनी सहजता से कहा था— “Sir, विश्वास है।” क्योंकि कुछ रिश्तों में विश्वास शब्दों से नहीं बनता। वह बनता है उन छोटे-छोटे व्यवहारों से जो बिना शोर किए दिल में अपनी जगह बना लेते हैं।

“हर असफलता एक चिंगारी”

दो दिन पहले जिस लड़के के पास माही ने मन की तस्वीर और बायोडाटा भेजा था, आज उसी का जवाब आया। एक पंक्ति में — “नहीं बनेगी बाता” बस... इतना ही। न कोई कारण, न कोई विस्तार। जवाब में उसने भी बहुत साधारण-सा उत्तर टाइप किया— “कोई बात नहीं।” संदेश भेजने के बाद उसने फोन मेज पर रख दिया। एक सूक्ष्म-सी मायूसी जरूर उसके चेहरे से गुजरी, लेकिन वह टूटा नहीं। अब तक इतनी कोशिशों के बाद उसने यह सीख लिया था कि हर जवाब “हाँ” नहीं होता। और सच तो यह था कि अब हर “न” उसके भीतर एक नई चिंगारी जगा देता था। जैसे कोई कह रहा हो— “अभी नहीं... लेकिन शायद अगली बारा।”

धीरे-धीरे यह उसका रोज़ का सिलसिला बन गया था। हर दूसरे या तीसरे दिन माही मन को एक नया बायोडाटा भेज देता। कभी किसी बैंक में काम करने वाला लड़का, कभी किसी विभाग में अधिकारी, कभी किसी प्राइवेट कंपनी का इंजीनियर। अधिकतर मामलों में बात आगे नहीं बढ़ती थी। कहीं से जवाब नहीं आता, कहीं से सीधे मना हो जाता। लेकिन माही की कोशिशें रुकती नहीं थीं।

मन अब सचमुच हैरान होने लगी थी। उसे याद था कि जब यह सब शुरू हुआ था तब माही ने खुद कहा था— “मुझे इस काम का कोई अनुभव नहीं है।” फिर भी... इतने कम समय में वह इतने लोगों तक कैसे पहुँच गया? उसके अपने घर वाले, रिश्तेदार, परिचित— सब मिलकर भी कभी-कभी महीनों में एक अच्छा लड़का नहीं ढूँढ़ पाते। और यह आदमी... इतनी सहजता से लगातार नए-नए विकल्प सामने रख देता था।

एक दिन शाम को मन ने आखिर पूछ ही लिया। फोन पर हल्की-सी हँसी के साथ उसने कहा— “Sir...”

“हां, बोलो।”

“एक बात पूछूँ?”

“पूछो।”

“Sir... कैसे कर लेते हो इतना?”

“क्या?”

“यही... इतने लड़कों के बारे में जानकारी... इतने बायोडाटा... इतनी जल्दी।” फिर वह थोड़ा हँसते हुए बोली— “मेरे अपने घर वाले भी इतनी जल्दी कुछ नहीं ढूँढ़ पाते... और आप...” उसने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

बोलने से पहले वो चुप रहा। अगर वह सच बताता तो शायद यह बातचीत इतनी सहज न रहती। उसे फिर से याद आया— कितनी रातें उसने मोबाइल हाथ में लेकर बिताई थीं। कितने लोगों को फोन किए हैं। कितनी बार किसी ने बात आधे में काट दी थी। कितनी बार अजनबी आवाज़ों ने कहा था— “भाई, अभी व्यस्त हूँ।” “बाद में बात करेंगे।” “हमें रुचि नहीं है।” और फिर भी वह अगले नंबर पर कॉल कर देता था। यह सब मेहनत शायद ही किसी को दिखाई देती थी। और सच तो ये है किसी को दिखानी भी नहीं थी।

माही ने आखिर सिर्फ इतना कहा— “बस... लगातार कोशिश का परिणाम है।”

“लेकिन Sir... इतनी कोशिश कौन करता है?”

माही हँस पड़ा। “शायद वही... जिसे लगता हो कि यह काम पूरा होना चाहिए।”

फिर मन ने बहुत धीरे से कहा— “Thank you, Sir...” उसके स्वर में एक गंभीरता थी। एक एहसास कि कोई व्यक्ति उसके लिए सचमुच इतनी दूर तक जा रहा है। फोन कटने के बाद माही कुछ देर तक खिड़की के बाहर देखता रहा। घना अंधेरा धुंधली रोशनी को “शुभ संध्या” कह कर विदा कर रहा था। उसने मोबाइल उठाया, नोटबुक खोली और एक नया नंबर ढूँढ़ने लगा। क्योंकि उसके लिए हर असफलता का मतलब था— एक और कोशिश।

अध्याय - 64

“जुनून की राहें”

अब सिर्फ नोटबुक में लिखे नंबरों को पलटना काफी नहीं रह गया था। माही को महसूस होने लगा था कि उसने लगभग अपने सभी पुराने संपर्क इस्तेमाल कर लिए हैं। जिनसे बात हो सकती थी, उनसे बात हो चुकी थी। जिनसे उम्मीद थी, उनसे उम्मीद भी टूट चुकी थी। अब अगर आगे बढ़ना था तो कुछ नया करना पड़ेगा। और यही सोचकर माही ने दो तरीके निकाले।

पहला रास्ता — खामोश कोशिश: एक रात उसने चुपचाप मन का एक प्रोफाइल तैयार किया। उसने बहुत सावधानी से उसकी शिक्षा, नौकरी, परिवार, स्वभाव सब कुछ लिखा। फिर वह प्रोफाइल कुछ प्रसिद्ध मैट्रिमोनियल साइट्स पर अपलोड कर दिया। लेकिन इस बारे में उसने मन को कुछ नहीं बताया। क्योंकि वह जानता था— अगर उसने पहले ही बता दिया तो शायद मन मना कर देगी या फिर अनावश्यक संकोच में पड़ जाएगी। इसलिए उसने सोचा— “पहले कोशिश कर लेते हैं... अगर कुछ अच्छा मिला तब बताऊंगा।”

दूसरा रास्ता — बिल्कुल अलग, लेकिन असली और अजीब तरीका: उसने तय किया कि अब वह नए लोगों से मिलेगा। ऐसे लोगों से जिनसे उसका पहले कोई परिचय नहीं था। और इसके लिए उसने अपने सप्ताहांत चुन लिए। हर शनिवार... हर रविवार... माही किसी न किसी गांव की ओर निकल जाता। कभी बस से, कभी किसी परिचित को ड्राइवर बना कर खुद की गाड़ी से, लेकिन अधिकतर सार्वजनिक परिवहन के सहारे। गांव पहुँचकर वह सीधे किसी चौपाल, किसी चाय की दुकान, या गांव के अड़्डे पर जा बैठता। पहले परंपरागत बातें होतीं— खेती की, मौसम की, गांव की राजनीति की। फिर धीरे-धीरे जब माहौल थोड़ा खुल जाता तो वह मुख्य विषय पर आ जाता और सहजता से पूछ लेता— “कोई अच्छा लड़का है निगाह में?” बस... यहीं से बातचीत का असली सिलसिला शुरू होता। कभी कोई नाम मिल जाता, कभी कोई गांव बता देता, कभी कोई कह देता— “अरे, हमारे पड़ोस में एक लड़का है...” और माही तुरंत अपनी नोटबुक निकाल कर सारी जानकारी लिख लेता।

एक ही दिन में वह तीन-चार गांव घूम आता। कई-कई किलोमीटर पैदल चलता। कभी पथरीले पहाड़ी रास्ते, कभी रेतीले मैदान, कभी तपती दोपहर, कभी अचानक बरसती

बारिश। लेकिन इन सब में से कोई भी चीज उसे रोक नहीं पा रही थी। क्योंकि अब यह सिर्फ एक फर्ज नहीं रहा था। यह धीरे-धीरे एक जुनून बन चुका था। कई बार तो वह सीधे उस जाति के गांवों में पहुँच जाता जहाँ उसे उम्मीद होती कि शायद कोई योग्य लड़का मिल जाए। वह गांव के बुजुर्गों की हुक्का टोली के पास जाकर बैठ जाता। बुजुर्ग हुक्का गुड़गुड़ा रहे होते, और धीमी आवाज़ में बातें कर रहे होते। माही भी वहीं अदब से बैठ जाता। दिलचस्प बात यह थी कि उसने अपने जीवन में कभी हुक्के को हाथ तक नहीं लगाया था। लेकिन वहां... बात शुरू करने के लिए उसे मजबूरन दो-चार कश लेने पड़ते। “जिस चीज़ को कभी छुआ भी नहीं... आज उसी के सहारे चर्चा शुरू करनी पड़ रही है।” लेकिन जब बुजुर्ग खुलकर बातें करने लगते तो वही हुक्का उसे किसी लड़के की पूरी जानकारी दिला देता।

एक बार कुछ ऐसा हुआ। एक गांव से दूसरे गांव का रास्ता सीधा पहाड़ियों के बीच से जाता था। माही ने सोचा “चलो पैदल ही निकल चलते हैं।” चलते-चलते वह लगभग दस किलोमीटर पैदल चल गया। जब तक घर पहुँचा उसकी हालत खराब हो चुकी थी। पैर जवाब दे रहे थे, सांस तेज चल रही थी। लेकिन अजीब बात यह थी कि उसके चेहरे पर फिर भी एक “अहसास” था जिसका नाम “सुकून” था। इस तरह वह अपनी छुट्टियों का उपयोग करता था। लेकिन यह सदुपयोग सिर्फ उसकी नजर में था। दूसरों की नजर में यह सब बेवकूफी थी, लेकिन उसके लिए ये इबादत थी क्योंकि वह जानता था— प्यार में की गई बेवकूफी भी इश्क की एक परीक्षा होती है। और वह यह परीक्षा पूरे मन से दे रहा था। लेकिन इस सारी भागदौड़ के बीच एक सच धीरे-धीरे चुपके से जन्म ले रहा था। वह किसी को ढूँढ़ने की कोशिश में इतना आगे निकल आया था कि अब वह उस खोज में खुद को ही खोने लगा था।

अध्याय - 65

“दृश्य — दो तस्वीरें”

माही के पास शायद ही कभी किसी लड़के का तैयार बायोडाटा आता था। ज्यादातर लोग फोन पर ही सब कुछ बता देते थे— “नाम ...”, “ये पढ़ाई की है...”, “ये नौकरी है...”, “फलाँ गांव है...”, “गोत्र” वगैरह-वगैरह। और अक्सर यह सब जानकारी भी पूरी नहीं होती थी, बल्कि टूटी-फूटी होती थी। वह उस जानकारी को लिख लेता— कभी कागज़ के टुकड़े पर, कभी डायरी के किनारे पर। कई बार तो ऐसा होता कि तीन अलग-अलग लोगों से पूछने के बाद कहीं जाकर एक लड़के की पूरी जानकारी बन पाती। इन सबको जोड़कर माही एक ठीक-ठाक बायोडाटा तैयार करता। फिर उसे मन के पास भेज देता। उस दिन भी इसी प्रक्रिया से तैयार एक बायोडाटा उसने मन के पास भेजा। मन का बायोडाटा आगे लड़के वालों को भेज दिया। थोड़ी ही देर में लड़की की तस्वीर का अनुरोध आया—

मैसेज पढ़कर माही कुछ पल के लिए रुक गया। उसे अचानक याद आया— मन ने जो फोटो पहले भेजी थीं, उसे उसने सावधानी के लिए डिलीट कर दिया था। अब... फिर से फोटो माँगनी पड़ेगी। पहले के दिनों में वह शायद इतना सहज होकर नहीं पूछ पाता। लेकिन अब बातचीत में थोड़ी खुली हवा आ गई थी। फिर भी एक लकीर उसके भीतर हमेशा साफ रहती थी। उसने छोटा-सा मैसेज लिखा— “मैम... लड़के वालों ने फोटो माँगी है।” जल्दी ही दो तस्वीरें आ गईं। माही ने पहली तस्वीर खोली। साधारण... शांत... रिश्ते के लिए बिल्कुल उपयुक्त। फिर उसने दूसरी तस्वीर खोली। उस तस्वीर ने कुछ पल के लिए उसे तस्वीर बना दिया। फोटो बिल्कुल अशिष्ट नहीं थी... लेकिन उसमें एक हल्की-सी आधुनिकता थी। जैसे कोई लड़की अपने किसी बेहद करीबी दोस्त को कभी-कभी भेज देती है। लेकिन माही को ये हरकत थोड़ी पसंद नहीं आई... हालाँकि उसने ज़ाहिर कुछ नहीं किया। फिर उसने पहली तस्वीर लड़के वालों को भेज दी।

कुछ देर बाद मन का मैसेज आया— “भेज दी?”

माही ने लिखा— “हाँ।” फिर उसने जोड़ा— “लेकिन एक ही भेजी है।”

एक हँसती हुई इमोजी आई। “हाँ हाँ... पता है मुझे।”

माही थोड़ा चौंका। “आपको कैसे पता?”

मन का जवाब आया— “अरे... पढ़ने जो लगे हो आप को।”

“अच्छा...” फिर थोड़ा झिझकते हुए उसने पूछा— “एक बात पूछूँ?”

“पूछो।”

“ये दूसरी फोटो... ऐसी क्यों भेजी?”

“ऐसी? कैसी?”

माही ने सावधानी से लिखा— “मतलब... थोड़ी मॉडर्न टाइप है।”

“तो?”

“अच्छी तो है...” माही ने लिखा— “लेकिन... रिश्ते के लिए...”

उसका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि मन का मैसेज आ गया— “मेरा मना।”

पहले तो माही संदेश को देखता रहा। फिर उसने लिखा— “वो तो ठीक है... लेकिन फिर भी...”

“फिर भी-वीर भी कुछ नहीं।” फिर एक नया मैसेज आया— “ये बताओ... कैसी लगी पिक?”

अंगुलियों ने शर्म की पट्टी औढ़ ली, और उसी के साथ लिखा— “अच्छी है।”

दुबारा से वही हँसती हुई इमोजी आ गई। जैसे मन को पहले से ही उसके जवाब की सादगी पता थी। माही ने फोन धीरे से मेज पर रख दिया। लेकिन एक शर्मीली मुस्कराहट उसके चेहरे पर काफी देर तक बनी रही।

अध्याय - 66

“तैरे लिए (एक वादा)”

शुरुआत में माही सिर्फ शनिवार और रविवार को ही गांवों की तरफ निकलता था। बसों की खिड़कियों से गुजरते खेत, धूल भरे रस्ते— यही उसके सप्ताहांत की दुनिया बन गई थी। चौपालों में बैठे बुजुर्गों के बीच चुपचाप बैठकर वह धीरे-धीरे बात छोड़ देता— लेकिन माही को जल्दी ही समझ में आ गया था कि सिर्फ चौपालों से हर घर की सच्ची जानकारी नहीं मिल सकती। तब उसने एक अजीब-सा तरीका सोचा।

पहला भेष — चैन लगाने वाला: कुछ दिन वह एक विशेष जाति के गांवों में बैग की चैन लगाने वाले फेरीवाले के साथ जाने लगा। उस फेरी वाले को वो उसे साथ रखने के लिए पैसे देता और फिर गांव और घर खुद निर्धारित करता। लोग दरवाजा खोलते, वह भीतर जाते, मिस्त्री अपना काम करता और वो अपना... मिस्त्री का सहायक बन कर.. वो उस घर की स्थिति भी देख लेता— कितने सदस्य हैं, कितने जवान लड़के हैं, किसका क्या काम है। लेकिन यह काम आसान नहीं था। कई बार चैन लगाने का नाटक भी करना पड़ता, उसे चैन लगाना ठीक से आता ही नहीं था। कई बार पेचकस हाथ से फिसल जाता, कभी स्कू ठीक से नहीं बैठता। फिर भी किसी तरह वह काम पूरा कर देता। एक बार तो वह फँसते-फँसते बचा। चैन लगाते-लगाते उसने सहजता से कह दिया— “अगर इस समाज में कोई अच्छा लड़का हो तो बताना...” तुरंत सामने बैठे आदमी ने पूछा— “कहाँ के हो तुम?” माही ने सावधानी से एक दूसरे गांव का नाम बता दिया। लेकिन वे लोग उस इलाके के जानकार थे। उनमें से एक ने तुरंत कहा— “अरे उस गांव में तो इस गोत्र के घर हैं ही नहीं।” एक पल को माहील भारी हो गया। लेकिन माही घबराया नहीं। उसने तुरंत फोन जेब से निकाला और ऐसे बोला जैसे किसी से बात कर रहा हो— “हाँ... ज़रा कन्फर्म करना... उस गांव में फलाँ गोत्र के घर हैं कि नहीं?” कुछ सेकंड बाद उसने सिर हिलाया और बोला— “अच्छा... ठीक... समझ गया।” फिर उसने सामने वालों की तरफ देखकर कहा— “आप सही कह रहे थे... मैंने अभी कन्फर्म किया, वो दूसरा गांव था... नाम मिलते-जुलते हैं।” माहील हल्का हो गया।

दूसरा भेष — रिसर्चर: उस दिन के बाद माही ने एक बड़ा फैसला लिया। उसे लगा कि चैन लगाने वाला तरीका ज्यादा दिन तक नहीं चल सकता। फिर उसने एक नया रास्ता

निकाला। अब वह गांवों में सोशियोलॉजी का रिसर्चर बनकर जाने लगा। हाथ में एक डायरी, चेहरे पर गंभीरता। वह घर-घर जाकर पूछता— “हम गांवों की पारिवारिक संरचना पर रिसर्च कर रहे हैं... परिवार में कितने सदस्य हैं? कौन क्या करता है?” लोग सहजता से सब कुछ बता देते। कभी-कभी तो वे खुद ही अपने बेटों की पढ़ाई और नौकरी के बारे में बताने लगते। यह तरीका ज्यादा कारगर था। क्योंकि अब उसे सिर्फ एक लड़के की नहीं, बल्कि पूरे गांव के हर घर की जानकारी मिल जाती थी। लेकिन इस रास्ते के भी अपने खतरे थे। अगर कोई गहराई से पूछ ले— “कौन-सी यूनिवर्सिटी से हो?”, “आईडी कार्ड दिखाओ...” तो उसके पास खुद को साबित करने का कोई तरीका नहीं था। फिर भी वह बड़ी चतुराई और आत्मविश्वास से बात करता और स्थिति संभाल लेता।

अब उसकी दिनचर्या भी बदल गई थी। पहले वह सिर्फ शनिवार-रविवार को जाता था। लेकिन अब वह वर्किंग डे पर भी गांवों में दिखने लगा। क्योंकि उसे लगा— छुट्टी वाले दिन अगर कोई पूछ ले “आज छुट्टी है... आज कौन-सा रिसर्च कर रहे हो?” तो जवाब देना मुश्किल हो जाएगा। इस वजह से वह कई बार ऑफिस से अनुपस्थित रहने लगा। इन सबके बीच शनिवार और रविवार फिर भी तय थे। उन दिनों वह चौपालों में बैठता, बुजुर्गों के साथ हुक्का गुड़गुड़ाता और धीरे-धीरे बातचीत का रुख उसी दिशा में मोड़ देता— “कोई अच्छा लड़का हो तो बताना...” सुरक्षा के लिए उसने एक और काम किया। उसने आसपास के गांवों के लगभग सभी समुदायों और गोत्रों की जानकारी जुटा ली। ब्राह्मण समाज के तो करीब सौ गोत्र उसने याद कर लिए थे। अब अगर कोई अचानक पूछ भी ले— “फलाँ गोत्र कहाँ मिलता है?” तो वह बिना झिझक जवाब दे सकता था।

धीरे-धीरे यह सब एक अजीब-सा सिस्टम बन गया था। भेष बदलना, जानकारी जुटाना, नाम नोट करना, और फिर उन्हीं नामों से बायोडाटा तैयार करना। कई बार वह खुद सोचता— यह सब वह क्यों कर रहा है? किसके लिए? लेकिन हर बार एक ही जवाब भीतर से आता— “उसके लिए, जिससे एक वादा किया है।”

अध्याय - 67

“अटश्य पहरेदार”

दिन चुपचाप बीतते गए... और उन दिनों के पीछे छिपे हुए महीने भी। लेकिन माही... वो जैसे किसी और ही गति में जी रहा था।

पहले उसका सफर सिर्फ शनिवार और रविवार तक सीमित था। वो दिन उसके थे—गांव, चौपाल, कठिन रास्ते और अनजान चेहरे। लेकिन धीरे-धीरे... ये सीमाएँ टूटने लगीं। अब लोग अपनी सुविधा से समय देने लगे, और माही ने अपनी सुविधा छोड़ दी।

कार्यालय के दिन अब केवल कागजों के लिए रह गए थे, और माही... वो खुद एक “चलता-फिरता प्रयास” बन चुका था।... अब वो छुट्टी पर नहीं होता था— वो बस अनुपस्थित होता था।

दफ्तर की फाइलों पर धूल जमती, और माही के व्हाट्सएप पर अक्सर पत्र आता जिसमें सबसे ऊपर लिखा होता— “स्पष्टीकरण।”

लेकिन माही के लिए अब कोई स्पष्टीकरण जरूरी नहीं था। क्योंकि उसके भीतर जो चल रहा था, वो किसी नियम, किसी दफ्तर... किसी तर्क से बड़ा हो चुका था।

पर दुनिया जिसे 'कामचोरी' समझ रही थी, वह माही की 'तपस्या' का एक हिस्सा थी। जब सारा शहर सो जाता, तब माही का दफ्तर जागता। वह आधी रात को चुपचाप दफ्तर पहुँचता या घर की मेज पर कागजों का अंबार लगा लेता। वह नहीं चाहता था कि उसकी 'इबादत' का बोझ उसके 'कर्तव्य' पर पड़े। लाल आँखों और थकी हुई उंगलियों से वह सुबह के 4 बजे तक दफ्तर का सारा काम निपटाता। वह गैरहाजिर ज़रूर था, पर गद्दार नहीं।

धीरे-धीरे बदलाव सिर्फ उसकी दिनचर्या में नहीं, उसके स्वभाव में भी उतरने लगा। वो जो पहले शांत था... संयमित था... अब भीतर कहीं सतर्क और कठोर हो गया था। कारण... सिर्फ एक था— मन।

अगर कभी उसे ये महसूस होता कि किसी की नजर मन की तरफ “साफ” नहीं है... तो उसके भीतर तीव्र ज्वाला जल उठती। वो किसी न किसी बहाने से टकराव पैदा कर देता।

बिना नाम लिए... बिना कारण जाहिर किए... वो उस व्यक्ति को उसकी “हद” याद दिला देता।

अजीब बात ये थी कि इन झगड़ों के बाद माही खुद अपनी नज़रों में गिर जाता। वह घंटों आईने के सामने खड़ा होकर खुद से पूछता— तू क्या बनता जा रहा है?" उसे पछतावा होता कि जिस शराफत को उसने उम्र भर कमाया, वह उसे खुद अपने हाथों से जला रहा था। पर फिर उसे अपना बचपन याद आता, अपनी बहन के पीछे स्कूल तक साये की तरह चलना याद आता। वह समझ जाता कि यह उग्रता 'प्रेमी का अधिकार' नहीं, बल्कि एक 'भाई जैसा संरक्षण' है। वह लड़ता नहीं था, वह तो बस मन की पवित्रता के चारों ओर एक लक्ष्मण-रेखा खींच रहा था।

उसने धीरे-धीरे एक अनदेखी व्यवस्था बना दी थी। मन के कमरे के सामने पड़ी बेंच... अब हमेशा खाली रहती थी। वहां बैठना अब सुरक्षित नहीं था।

कुछ दिन से उसकी नजर ने कुछ महसूस किया। दूसरी शाखा का एक अधिकारी... जो बिना कारण, बिना काम बार-बार मन की शाखा में दिखाई देने लगा था। माही सब समझ रहा था। लेकिन इस बार उसने टकराव नहीं चुना। क्योंकि हर बार की तरह मामला सिर्फ गुस्से का नहीं था— इज्जत का था।

और इज्जत... हर बार शोर से नहीं, सिस्टम से भी बचाई जाती है।

कुछ ही दिनों में एक आदेश जारी हुआ— “कोई भी अधिकारी या कर्मचारी, कार्यालय समय में अपनी शाखा के अलावा किसी अन्य शाखा में बिना अनुमति और ठोस वजह के नहीं जाएगा।”

बस... इतना ही। न कोई नाम, न कोई आरोप। लेकिन असर सीधा था। वो अधिकारी अब कभी वहां दिखाई नहीं दिया। उस दिन माही ने पहली बार चुपचाप एक गहरी सांस ली। कोई शोर नहीं हुआ, कोई धन्यवाद नहीं मिला... लेकिन उसके भीतर एक सुकून था— मन अब कम से कम उस एक नजर से तो सुरक्षित थी।

शायद यही उसका प्रेम था... न जताने वाला, न पाने वाला... बस चुपचाप... निगरानी करने वाला। एक ऐसा पहरेदार, जिसका अस्तित्व किसी को दिखता नहीं था... लेकिन जिसकी मौजूदगी हर खतरे को खामोशी से रोक देती थी।

“तन्हा रोशनी के नीचे”

माही भले ही कार्यालय से बिना बताए गैरहाजिर रहने लगा था... लेकिन उसे अपने उस कर्तव्य का पूरा बोध था, जो उसकी रोजी-रोटी का जरिया था। यही वजह थी कि दिन भर गांवों की गलियां नापने के बाद... घर जाने की बजाय वो अक्सर रात को सीधा दफ्तर आ जाता। दफ्तर... जो दिन में शोर से भरा रहता था... रात को बिल्कुल खामोश हो जाता था। उसी खामोशी में एक ट्यूबलाइट की हल्की रोशनी के नीचे माही बैठा होता। देर रात तक पेंडिंग फाइलों को निपटाता... कंप्यूटर पर काम करता... बिना कुछ खाए। उसका साथ देती थी सिर्फ एक चीज— चाय। वही चाय... जो उसकी तन्हाइयों की हमसफर बन चुकी थी। कप से उठती भाप... और उसके भीतर उठती थकान... दोनों एक साथ धीरे-धीरे कम होती जातीं। ये सब वो करता था... एक “गैरहाजिर कर्मचारी” होते हुए। बीच-बीच में कुर्सी पर ही सिर टिकाकर थोड़ी झपकी ले लेता... फिर उठकर फिर से उसी काम में जुट जाता। हालांकि ये रोज नहीं होता था... लेकिन हफ्ते में एक रात उसकी ऐसी जरूर होती थी।

इसी तरह की एक रात... जब वो अपने काम में पूरी तरह मुस्तैद था... तभी अचानक पूरे शहर की बिजली चली गई। कमरा अंधेरे में डूब गया। कुछ देर तो वो वहीं बैठा रहा... फिर धीरे से उठा और छत पर चला गया। जाड़े की साफ रात थी। आसमान तारों से भरा हुआ... और नीचे— अंधेरे में डूबा हुआ शहर। माही छत पर खड़ा उस अंधेरे शहर को निहारता रहा... लेकिन देख वो शहर को नहीं रहा था— खुद को देख रहा था। अपनी भूतकाल और वर्तमान की छवि को एक साथ रखकर सोचने लगा— “क्या मेरी ये नई... गुस्सैल छवि मेरे असली चरित्र के साथ न्याय कर रही है?” “क्या सहयोगियों से इस तरह झगड़ना सही है...?” ये सवाल धीरे-धीरे उसे एक अपराधबोध और पश्चाताप से भरने लगे। उसकी नजरें झुक गईं... और उस क्षण वो खुद के सामने ही छोटा पड़ गया।

लेकिन तभी... उसने अपनी नजरें उठाईं और उस क्षितिज की ओर देखा, जहाँ से 25 किलोमीटर दूर मन का गाँव बसा था। उस घनघोर अंधेरे में डूबे शहर के बीच, उसे अपने मन के भीतर एक खिड़की जगमगाती हुई दिखाई दी। वहाँ से मीलों दूर... उसके “मन” की खिड़की। उस एक दमकती खिड़की के ख्याल ने माही के भीतर फिर से एक चट्टान

जैसी मजबूती भर दी। अगले ही पल... उसकी पूरी सोच बदल गई। “अगर मेरी इस छवि से वो सुरक्षित है... तो ये छवि भी मुझे स्वीकार है।” मन का ख्याल उसके भीतर फिर से वफादारी भर गया। उसकी इज्जत... उसकी फिक्र... सब कुछ एक बार फिर सही लगने लगा।

इसी क्रम में उसे अचानक याद आया— कैसे वो अपनी छोटी बहन को स्कूल जाते वक्त ऐसे ही बुरी नजरों से बचाता था। हर राह पर नजर रखता था... हर अजनबी को परखता था... उसके चेहरे पर हल्की सी शांति आई। “ये गलत नहीं है...” उसने मन ही मन कहा। लेकिन एक सच वो खुद से भी छुपा नहीं पाया— कि इस समय वो “भाई” नहीं था... हां, भाई का साया जरूर था। इतने में ही शहर का अंधियारा टूटने लगा। एक-एक करके रोशनी वापस लौट आई अंधकार की मार से करहाता शहर फिर से जीवित हो कर जगमगा उठा... और साथ ही उसकी सोच का सफर भी वहीं थम गया। माही ने एक गहरी सांस ली... और धीरे-धीरे नीचे उतर आया। कमरे में आकर वो फिर से उसी कुर्सी पर बैठा... और बिना कुछ सोचे एक बार फिर कागजों में खो गया।

अध्याय - 69

बिखराव के बीच तलाश

माही के इस बदले हुए रूप से... सिर्फ उसकी नौकरी ही नहीं, उसके साथी कर्मचारी, दफ्तर का कामकाज... और यहाँ तक कि खुद माही भी प्रभावित था। लेकिन सबसे ज्यादा परेशान— उसके घर वाले थे।

उसका देर रात तक घर लौटना... और कभी-कभार तो पूरी रात ही गायब रहना... उसके मम्मी-पापा के बूढ़े मन में एक ही सवाल पैदा करता— “कहीं ये गलत दिशा में तो नहीं जा रहा...?” उन्हें क्या पता था कि उनका बेटा गलत दिशा में नहीं, बल्कि 'समर्पण' की उस दिशा में जा रहा था जहाँ से वापसी का कोई रास्ता नहीं था।

घर का माहौल अब पहले जैसा नहीं रहा था। दरवाजा खुलते ही सवाल मिलते... और जवाब देने से पहले ही डांट। धीरे-धीरे ये डांट-डपट उसकी रोजमर्रा की आदत बन गई थी। वो चुप रहता... क्योंकि उसके पास जवाब थे— लेकिन ऐसे जवाब, जो वो दे नहीं सकता था। वह अपनी इबादत को घर की कलह का हिस्सा नहीं बनाना चाहता था।

एक समाज विशेष के रंग में:

एक और बदलाव भी साफ दिखने लगा था— एक समाज विशेष (पंडित बिरादरी) के लोगों में ही उसका उठना-बैठना होने लगा था। वो उनके बीच बैठता, उनकी बातें करता, उनकी परंपराएं समझता... और धीरे-धीरे उसी रंग में रंगता जा रहा था। उसे अपनी जाति, अपना कुल याद रहे न रहे, उसे 'मन' के समाज की हर रंग का पता था।

इतना कि... एक दिन जब उसके खुद के रिश्ते के लिए फोन आया, और सामने से गोत्र पूछा गया— तो उसने जल्दबाजी में अपना नहीं... “मन” का गोत्र बता दिया।

सामने वाला हतप्रभ रह गया, फिर आवाज़ आई— “ये किस का गोत्र है भाई!...”

उस पल माही जैसे किसी गहरी नींद से झटके के साथ वास्तविक दुनिया में वापस आ गया। उसे अपनी गलती का अहसास हुआ... लेकिन ये सिर्फ एक जुबान की गलती नहीं थी— ये इस बात का सबूत था कि वो खुद को भूलता जा रहा था। उसकी अपनी पहचान धुंधली पड़ रही थी और 'मन' का वजूद उसके भीतर गहरा होता जा रहा था।

जिद और समय की जंग:

घर में उसकी शादी को लेकर दबाव बढ़ता जा रहा था। रोज़ की बहस... रोज़ की खींचतान... उसकी उम्र भी अब 30 के आसपास पहुंच चुकी थी। लेकिन पता नहीं क्यों... उसने जैसे अपने भीतर एक अटल प्रण कर लिया था— “पहले मन की विदाई... फिर मेरा जीवना”

इसी जिद के साथ दिन बीतते जा रहे थे। वो लड़के ढूंढता... उनकी पूरी डिटेल निकालता... और फिर मन तक पहुंचाता। लेकिन— ज्यादातर को मन एक ही शब्द में खत्म कर देती— “नहीं” और जिनके लिए वो “हां” कहती... वहां कोई न कोई अड़चन अपने आप खड़ी हो जाती। जैसे नियति भी माही की परीक्षा ले रही हो।

विशेषज्ञ और विदूषक:

धीरे-धीरे आस-पास के गांवों और उसी समाज के लोग उसे पहचानने लगे थे। उसका नाम... उसका काम... अब छुपा नहीं था। कभी-कभी इतना सब करने के बाद भी कुछ न बन पाने का गुस्सा उसके भीतर उठता था। वो खुद से सवाल करता— “आखिर कब तक...?” लेकिन अगले ही पल... वो खुद को संभाल लेता। बिना विचलित हुए... फिर से उसी रास्ते पर चल पड़ता।

मन भी जैसे उसे लगातार नई-नई दिशाएं देती रहती— कभी कहती— “प्राइवेट वाला देखो...”, कभी— “सरकारी होना चाहिए...”, कभी— “लड़का सुंदर होना चाहिए...”, और कभी... कुछ और।

और माही... अब इस सब में इतना निपुण हो चुका था जैसे कोई विशेषज्ञ हो। लोगों के घर, उनके हालात, परिवार, गोत्र, नौकरी, स्वभाव... सब कुछ जैसे उसकी स्मृति में किसी कंप्यूटर की तरह दर्ज होता जा रहा था।

लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में... अपना “अस्तित्व” खो रहा था।

“धूप, छांव और एक ठंडी आवाज”

एक दिन... दोपहर का समय था। मार्च का महीना... अप्रैल की शुरुआती दस्तक— यानि गर्मी का आरम्भ। दो-तीन गांवों में पैदल घूमने के बाद, आखिरी गांव में किसी से मुलाकात करके... माही अब मुख्य सड़क की तरफ लौट रहा था— जहां से उसे बस मिलनी थी। दूरी... लगभग 2 किलोमीटर। उसकी एक आदत थी— वो कभी किसी दुपहिया को हाथ देकर नहीं रुकवाता था। अगर कोई खुद रुक जाए तो ठीक... नहीं तो— चलना ही उसका काम था। लेकिन उस दिन... धूप कुछ ज्यादा ही तेज थी। गर्मी सीधे शरीर को नहीं, जैसे भीतर तक उतर रही थी। सिर्फ 1 किलोमीटर चलते-चलते ही उसका शरीर पसीने से तर-बतर हो चुका था। गला सूख चुका था... प्यास जैसे जान को हलक से बाहर खींच लेना चाहती हो। उसकी हिम्मत जवाब देने लगी थी... तभी दूर दाईं तरफ थोड़ी ऊंचाई पर एक हैंडपंप नजर आया। वो तेज कदमों से लगभग भागते हुए वहां पहुंचा। और बिना रुके— एक ही सांस में कई लीटर पानी गटक गया।

पानी... जो सिर्फ शरीर नहीं, जैसे उसकी रूह को भी ठंडक दे रहा था। फिर उसने अपने चेहरे पर पानी डाला... हाथों से गर्दन भिगोई... और कुछ देर वहीं खड़ा रहा। पास ही एक घना बरगद का पेड़ था। उसकी ठंडी छांव जैसे उसे अपने पास बुला रही थी। माही वहीं जाकर बैठ गया। एक लंबी... गहरी ठंडी सांस ली। चारों तरफ एक अजीब सी शांति थी। दूर कहीं से कोयल की मधुर “कूह-कूह”... और साथ ही बटेर की इंसानी लहजे में निकलती आवाज— “सुभान तेरी कुदरत...” ये सब मिलकर उसके भीतर एक अलग ही सुकून भर रहे थे। कुछ पल के लिए वो सब भूल गया— थकान... दबाव... और वो लगातार चलती हुई तलाश।

तभी... फोन की घंटी बजी। उसने फोन उठाया। सामने से एक रोबीली, आत्मविश्वास से भरी आवाज थी। माही ने ध्यान से बात सुनी... और जवाब दिया— “ठीक है जी, मैं बात करके बताता हूं... और शायद कल हर हाल में मिलेंगे आपको।” “राम-राम” कहकर उसने फोन काट दिया। उसके चेहरे पर हल्का सा उत्साह था। जैसे किसी चीज ने उम्मीद जगाई हो। तुरंत उसने एक दूसरा नंबर डायल किया। पूरी बात बताई... और उत्साह के साथ कहा— “वो कल आने को बोल रहे हैं...”

लेकिन... दूसरी तरफ जैसे सब कुछ ठंडा पड़ा था। न कोई खुशी... न कोई उत्साह... बस एक सीधी, औपचारिक सी आवाज— “ठीक है... जैसा आपको सही लगे।” और वार्तालाप खत्मा। माही एक अचरज अनुभूति के साथ फोन को देखता रह गया। ये उसकी उम्मीद के बिल्कुल उलट था। वो भी उसी उत्साह की उम्मीद कर रहा था... जो उसके भीतर था। लेकिन वहां... कुछ भी नहीं था। “खैर... कोई नहीं...” उसने धीरे से खुद से कहा। वो उठा... और फिर से मुख्य सड़क की ओर चल पड़ा। लेकिन... उस ठंडी आवाज की सुस्ती उसके साथ चल पड़ी थी। एक सवाल बनकर... एक रहस्य बनकर... वही रहस्यता— जिसे ना वो समझ पा रहा था... और ना ही सुलझा पा रहा था।

अध्याय - 71

“एक अधूरी मंज़िल”

अगले दिन शनिवार था... माही अपनी नींद से उठा। नित्य कर्म से निवृत्त होकर जैसे ही बाहर आया— फोन की घंटी बज उठी। उसने फोन उठाया। सामने से सीधा सवाल आया— “आ रहे हो?” “हां जी... आ रहे हैं। १० बजे तक पहुंच जाएंगे।” “Ok” फोन कट गया। फोन कटते ही माही बिना एक पल गंवाए सीधा नहाने के लिए घुस गया। स्नान के बाद उसने ड्राइवर को फोन किया... और जल्दी आने को कहा। इतने में मम्मी की आवाज आई— “कहां जा रहा है?” माही ने बिना ज्यादा सोचे जवाब दिया— “यहीं पास में... एक दोस्त छुट्टी आया हुआ है, उससे मिलकर आता हूं।” “खाना बना देती हूं...” “नहीं... मैं देख लूंगा कहीं पर।” इतना कहकर वो जल्दी से निकल गया। रास्ते में “मन” के गांव के पास वाले कस्बे से उसके छोटे भाई को बैठाया... और गाड़ी मंज़िल की तरफ बढ़ चली। घर पर आज पहली बार मां ने उसके इस बदलते व्यवहार की बात उसकी छोटी बहन से की— जो बहन कम, दोस्त ज्यादा थी। “मां ने उसमें दिख रहे बदलाव को बेटी के सांझा किया...” उन की आवाज में चिंता थी। बहन ने शांत स्वर में कहा— “मैं बात करूंगी उससे...”

उधर... माही गाड़ी में बैठा आगे बढ़ रहा था। रास्ते भर वो भीतर ही भीतर ड्राइवर का आभार मान रहा था— क्योंकि वो अपने काम आने वाले का अहसान कभी नहीं भूलता था। साथ ही खुद के गाड़ी ना चला पाने की कमी पर खुद को कोस भी रहा था। लेकिन इन सबके बीच एक उम्मीद बार-बार सिर उठा रही थी— “शायद आज... बात बन जाए।” “लड़का पुलिस में है... अच्छा परिवार है...” वो खुद को समझा रहा था। तभी— फोन की घंटी बजी। “पहुंच गए?” “नहीं... बस पहुंचने वाले हैं।” “अच्छा सुनो...” “हां बोलो...” “सर वहां जाकर ‘अनु’ (मेरी छोटी बहन) के बारे में बात करनी है... मेरे लिए नहीं।” माही एकदम चुपा। “क्या...?” “मेरा पुलिस वाले के लिए मन नहीं है।” “अरे... पर—” “पर-वर कुछ नहीं... जो मैंने कहा वो करो।”

माही ने कांपते स्वर में पूछा — “मैंने तो... आपके बारे में बात की है... और आपके लिए ही उन्होंने हां की है...” “वो मुझे नहीं पता।” इतना कह कर उसने फोन रख दिया। रोड पर चलती गाड़ी के भीतर मानो सब रुक गया हो, माही के भीतर एक साथ कई

भावनाएं उठीं— गुस्सा... ग्लानि... डर... “अब क्या करूं...?” छोटी बहन का जिक्र करना— गलत। अगले का अपमान, खुद की बातों से फिरना। और बीच में— खुद की स्थिति। “कोई और रास्ता निकालना पड़ेगा...” उसने मन ही मन तय किया। मंजिल आ चुकी थी। बाते शुरू हुई। माही ने वही सब कहा जो वो हमेशा कहता था— लड़की सुंदर है... संस्कारी है... पढ़ी-लिखी है... नौकरी करती है... चरित्रवान है... सच तो ये था— वो “मन” के चरित्र का खुद भी प्रशंसक था। और आज भी उसे थोड़ा ज्यादा ही बड़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा था। औपचारिकताएं पूरी हुईं।

अब उसे पता था— पेंच कहां फंस सकता है। उसने धीरे से बात आगे बढ़ाई— “देखो जी... सारी बातें ठीक हैं... लेकिन लड़की शहर में रहने की इच्छुक है...” लड़के वालों ने उसकी तरफ हैरान नजरों से देखते हुए जवाब दिया— “आपने पहले तो नहीं बताया...” माही ने संयम रखते हुए कहा— “सोचा... आमने-सामने बैठकर बता देंगे...” “ना साहब... ये संभव नहीं है। हम गांव के आदमी हैं... सारी सुविधाएं देंगे... लेकिन शहर में नहीं।” “आप एक बार फिर सोच लेना...” “जी...” बस... यहीं बात खत्म हो गई। माही ने अनुमति ली... और बाहर आ गया।

गाड़ी में बैठते ही उसके भीतर गुस्सा उबलने लगा। मन पर... दिल करता था— उसके भाई को सब सुना दे। लेकिन... कुछ सोचकर वो चुप रह गया। कैसी विडंबना थी... जिस रिश्ते की सफलता के लिए वो थोड़ी देर पहले तक दुआ कर रहा था... उसी को खुद अपने हाथों से बिगाड़कर वापस लौट रहा था। इसी उधेड़बुन में... 80 किलोमीटर का सफर... और 2 घंटे का वक्त... कब बीत गया— उसे पता ही नहीं चला। तभी... मन का गांव आ गया। उसका भाई गाड़ी से उतरा— “सर... घर चलिए...” माही ने मुस्कान के साथ मना किया— “नहीं... फिर कभी।” गाड़ी आगे बढ़ गई। और आज... एक मंजिल फिर रास्ते में ही खो गई थी।

अध्याय - 72

“मन की बात”

(जुबां पर)

घर पहुंचने के बाद वो चाय पी कर के अपने बिस्तर पर लेटा था, पर दिमाग में एक भयंकर उथल-पुथल मची थी। भीतर का गुस्सा अब भी धधक रहा था। आज वह उस गुस्से को शांत करना भी नहीं चाहता था।

खुद से बुदबुदाता रहा— "उसने कितनी आसानी से विषय बदल दिया... कोई व्यक्ति किस तरह से उसके लिए प्रयास कर रहा है... अपना आराम, अपनी साख, अपना समय, सब कुछ दांव पर लगाकर। और वो...? वो कितनी आसानी से एक शब्द, एक पंक्ति में फैसला सुना देती है। मैंने किसी के लिए अपने आपको क्या बना लिया है?"

तभी मैसेज आने की ध्वनि हुई। माही ने सुना, देखा पर जानबूझकर खोला नहीं। उसने जैसे खुद से वादा कर लिया था कि अब कोई बात नहीं करनी, बस फिर से अपनी उसी पुरानी, शांत और सुकून वाली दुनिया में लौटना है। इसी जद्दोजहद में उसने एक और चाय पी ली। रात को खाना खाने के बाद, जब वह सोने के लिए बिस्तर पर गया, स्क्रीन जगमगाई। उसने फिर नज़र अंदाज़ किया। कुछ देर बाद, एक नया मैसेज आया— हाथ जोड़ने वाली इमोजी (🙏) के साथ।

काफी देर सोचने के बाद, माही के भीतर के उस सख्त इंसान ने हार मान ली। उसने मैसेज खोला। उसका गुस्सा कुछ हद तक पिघलने लगा था। माही के

'सीन' (Seen) करते ही वहां से एक शब्द उभरा— "Sir"

माही ने रूखेपन से टाइप किया— "हाँ बोलो।"

"Sorry"

माही की उंगलियों ने अपनी भड़ास निकाल दी— "देखिए, आपका व्यवहार पूर्णतया मेरी समझ से बाहर है। आप कल भी कह सकती थीं... तो कम से कम आज मैं इतना परेशान और अपमानित तो नहीं होता।"

"Sir, I am really sorry. आज के बाद नहीं होगा।"

"आज के बाद? मतलब आपको अभी भी मेरे से उम्मीदें हैं? माफ़ करिएगा, मैं थक चुका हूँ।"

"नहीं Sir... सुनिए..." लेकिन माही ने फोन एक तरफ रख दिया। वह और कुछ नहीं सुनना चाहता था। करवटें बदलते हुए उसने जैसे-तैसे सोने की कोशिश की।

अगले दिन रविवार था और सुबह का समय था। माही अपने कमरे में बैठा, सूरज की लालिमा को निहार रहा था। पर दिमाग में कल का घटनाक्रम अब भी किसी अटकी हुई फिल्म की तरह घूम रहा था।

तभी स्क्रीन की रंगीन दीप्ति ने सूरज की सुनहरी रश्मियों को छुआ। लेकिन माही ने इस मिलन को इग्नोर किया।

फिर एक और मैसेज आया— "एक सहकर्मी की हैसियत से तो बात कर लो।"

वह चैट बॉक्स खोलता है— "बताओ।"

"आपने चाय पी ली?"

"हाँ।"

"ठीक हो?"

"हाँ ठीक हूँ।"

"Sir कल के लिए..."

"कोई नहीं, आप आज की बताइए।" माही ने जानबूझकर बात की दिशा बदलनी चाही। उसे कल के घाव नहीं कुरेदने थे।

लेकिन उधर, 'मन' जैसे इसी पल के इंतज़ार में थी।

"सच?"

"क्या सच?" माही ने पूछा।

"आपने कहा ना कि आज की बताऊँ।"

"हाँ तो?"

"सच में बताऊँ?" 'मन' एक बेहद चतुर और सुलझी हुई लड़की थी। उसे बखूबी पता था कि परिस्थितियों को अपने पक्ष में कैसे नियंत्रित किया जाता है, जबकि माही एक सीधा, पारदर्शी और स्पष्ट व्यक्ति था।

उसने अपना पत्ता फेंका— "तो सुनो, कल मेरा दिल्ली पुलिस का फिजिकल एफिशियंसी टेस्ट है।"

माही — "अच्छा?"

हाँ...

चलो अच्छी बात है।"

"अरे बस? अच्छी बात है? आगे कुछ नहीं पूछोगे?"

"क्या पूछूँ?" माही को लग रहा था कि बात अब किसी और ही दिशा में जा रही है। फिर भी उसने पूछा— "कल कितने बजे है?"

"सुबह 6 बजे।"

"इसका मतलब आज ही जाना पड़ेगा?"

"जी, सही समझा आपने।"

"तो कैसे जाओगे? साथ कौन होगा?"

"शाम को जाऊँगी... और अकेले।"

"अकेले?"

"हाँ।"

माही के भीतर की फिक्र फिर से जाग उठी। वह अपनी सारी नाराज़गी भूल गया। उसके शब्दों में अचानक एक गंभीरता और चिंता तैरने लगी— "नहीं, एक लड़की के लिए दिल्ली जैसे शहर में अकेले जाना ठीक नहीं है।"

"तो क्या करूँ?"

"आप अपने भाई को ले जाओ।"

"Sir मैं चली जाऊँगी।"

"अरे नहीं, ठीक नहीं है। आप वियान को ले जाओ।"

"Sir मैं चली जाऊँगी, मुझे अभ्यास है। देखो... आप फिक्र ना करें। और मेरा विश्वास करें।"

उस शब्द 'विश्वास' ने माही को निरस्त्र कर दिया। ना चाहते हुए भी उसे कहना पड़ा—
"ठीक है तो।" लेकिन उसका अंतर्मन गवाही नहीं दे रहा था। खैर, उसने कहा— "अच्छा तो आराम से और ध्यान से जाना... कोई दिक्कत हो तो मुझे फोन करना। मेरे काफी सारे जानकार हैं दिल्ली पुलिस में।"

"जी, मैं देख लूँगी।"

"Ok. All the best."

"Thank u Sir."

वह लड़की एक छूटती हुई डोर को फिर से पूरी तरह काबू में कर चुकी थी। माही ने बेशक अनुमति दे दी थी, लेकिन पूरा रविवार वह सिर्फ उसी की चिंता में घुलता रहा।

एक दिन बाद।

माही आज भी घर पर ही था। दफ्तर से गैरहाज़िर।

तभी 'मन' का मैसेज आया। शायद इस बार माही भी उसी के इंतज़ार में था।

"Sir, क्या कर रहे हो?"

"कुछ नहीं, बैठा था। आप बताओ, कब आए? कैसा रहा टेस्ट? अभी कहाँ हो?" माही ने एक ही झटके में अपनी सारी फिक्र सवालियों में उंडेल दी।

जवाब में 'मन' का फोन आ गया।

"कल देर रात को आई। टेस्ट क्वालिफाई हो गया। अभी ऑफिस में ही हूँ।"

"ये तो अच्छी बात है," माही ने सुकून की सांस लेते हुए कहा।

"आप तो शायद नहीं आए ऑफिस?"

"नहीं... घर हूँ।"

"Ok... Sir," उसकी आवाज़ में एक उतावला सा ठहराव था। "एक बात कहूँ?"

"हाँ कहो।"

"वो..."

"क्या?"

"मैं..."

"अरे बोलो तो..." माही को कुछ समझ नहीं आ रहा था।

और फिर वो शब्द गूँजे, जिन्होंने उसकी धड़कनों की भाषा बदल दी हो।" उसके वजूद की जड़े एक झटके में उखड़ गई।

"मेरा ऐसा मन करता है कि मैं... Love marriage कर लूँ।"

"ए....." माही के मुँह से बस एक आधी-अधूरी आवाज़ निकली।

"क्.....या? कहा आपने?"

बड़ी सहजता से जवाब मिला— "जो आपने सुना।"

"क्.....यों क....हा?" माही की आवाज़ कांप रही थी।

उसके पैरों तले की ज़मीन आसमान हो चुकी थी। यह बिल्कुल अकल्पनीय था। उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। कुछ पल के लिए वो बिल्कुल जड़ और शून्य अवस्था में चला गया। उसे यकीन ही नहीं हो रहा था कि वह वास्तविक दुनिया में है, या अभिनय करते सपनों के रंगमंच पर।

जिस लड़की के लिए वह इतने दिन से दुनिया खंगाल रहा था, एक आदर्श लड़के की तलाश में।

वह अचानक अपनी 'लव मैरिज' की बात कर रही थी?

कुछ देर बाद, उसने किसी तरह खुद को इस आभासी परिधी सेबाहर निकाला और पूरी हिम्मत जुटाकर पूछा—

"कोई है?"

"हाँ, है।"

ये शब्द उस के ऊपर एक बहुत बड़े बोझ की तरह गिरा पर उसने अपनी आवाज़ को नहीं टूटने दिया। उसने अपनी सारी परिपक्वता समेटी

और कहा— "देखो, ये सब हमारे समाज में इतना आसान तो नहीं है... एक लड़की के पूरे परिवार की प्रतिष्ठा इस पर टिकी होती है। लेकिन फिर भी आप अपने घर वालों से इस विषय में बात करिए। मेरी निजी सलाह ये है कि कभी कोई भी ऐसा काम मत करना... जिससे परिवार के सम्मान को ठेस पहुंचे।"

"Ok sir."

यह कहकर 'मन' ने फोन रख दिया। लेकिन उस एक 'Ok sir' ने माही की कई रातों की नींदों का हमेशा के लिए काम तमाम कर दिया था।

अब उसके दिमाग में प्रश्नों की एक अंतहीन श्रृंखला चल रही थी।

कौन है वो? अगर कोई था, तो फिर मेरे को क्यों इतने दिन परेशान किया? मेरे से ये फिल्म क्यों बनवाई जबकि नायक पहले से मौजूद था?

और सबसे बड़ी, सबसे रहस्यमयी बात जो उसे अंदर से खाए जा रही थी— ये सब ये मेरे से क्यों पूछ रही है?

इस “क्यों” का जवाब उसके पास नहीं था।

वह एक ऐसे चौराहे पर खड़ा था जहाँ हर रास्ता धुंध में लिपटा था, और हर मोड़ एक सवाल के साथ घूमता था।

इन अनगिनत सवालों के बीच, उस वक्त उसके पास सिर्फ एक ही जवाब था— "चाय"।

उस दिन उसने चाय पर चाय पी।

शाम नमस्ते कर चुकी थी। माही अपने हाथों में चाय का कप थामे, उसकी तपन को आँखों में सोख रहा था ताकि पलकों पर जमी बर्फ पिघल सके। उसने एक गहरी साँस ली और मन ही मन सोचा— "जब दिमाग अशांत हो, तो इंसान नशे की तरफ खिंचा चला जाता है... और यही वजह है कि आज यह मेरी 11वीं चाय है।"

क्यों?

शायद इसलिए:

“ये भरम था मेरा या हकीकत की कोई आहट थी,
एक लफ़्ज़ ने मेरी सदियों की इबादत को हिला डाला।
मैं किसके लिए छान रहा था ये खाक-ए-दर-ब-दर,
किसके नाम का उसने आज ये नया पासा उछाला?
तलाश किसी और की थी, या खुद से ही मैं अनजान हूँ,
इस 'मेरे मन' के खेल में, मैं आज तक हैरान हूँ।”

अध्याय - 73

“घुमड़ते बादल”

पिछले कुछ दिनों से माही के दिमाग में वही दृश्य बार-बार घूम रहा था... मन का वो एक वाक्य— “Love marriage कर लूँ...” बार बार याद आता... और उसके दिमाग रूपी श्यामपट्ट पर नए-नए सवाल उभर आते। तो क्या सच में उसकी जिंदगी में कोई है...? क्या यही वजह थी कि वो मेरे द्वारा खोजे गए हर लड़के को नापसंद कर देती थी...? अगर ऐसा है... तो फिर मुझे क्यों परेशान कर रही है...? क्यों भटका रही है मुझे... दर-दर की ठोकें क्यों खिलता रही है...? जब उसे अपनी पसंद से ही सब करना है... तो फिर मेरी क्या भूमिका है इस कहानी में...? या... क्या उसे सच में मेरी किसी और तरह की ज़रूरत है...?

और इन सब सवालों के बीच... एक सवाल सबसे ज्यादा चुभता था— उसने ये सब मुझे ही क्यों बताया....?

यही रहस्य उसे अंदर से खाए जा रही था— कहीं वो लड़का... मैं तो नहीं? उसका दिमाग तुरंत पलटता— नहीं, नहीं... मैं नहीं। तो फिर कौन? अगर वो कोई और है, तो फिर इन महीनों में मुझे जो महसूस हो रहा था... वो उसका अधिकार जताना, वो मेरी फ़िक्र... तो क्या वो सब सिर्फ मेरा एक भ्रम था?

इन सवालों के जवाब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते... माही ने खुद को लगभग आखिरी पायदान पर खड़ा कर दिया था... या कहे कि खुद का विकल्प ही खत्म कर लिया था, जैसे उसने खुद के लिए कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा हो। जबकि वो ये भी जानता था... कि उसके भीतर कहीं ना कहीं... कोमल भावनाओं का अंकुर फूट चुका है। लेकिन फिर भी... एक ख्याल बार-बार लौट आता— अगर उसकी दुनिया में कोई और है... तो फिर मेरी फ़िक्र क्यों...? मन का मिलन किसी और से... और परवाह किसी और की...? क्या ये सिर्फ एक सहकर्मि होने की हैसियत थी...? या फिर... कुछ और...?

माही के सामने सभी प्रश्न निरुत्तर थे... आखिरकार उसने खुद को समझाया— शायद अब... मेरे प्रयासों की कहानी पर प्रश्नचिह्न के बाद पूर्णविराम लग चुका है... क्योंकि जब वो अपनी पसंद बता ही चुकी है... तो इस दिशा में आगे बढ़ने का अब कोई औचित्य

नहीं। अब मैं भी अपनी जिंदगी को संभालूँगा... अपनी बिखरी हुई दिनचर्या को फिर से व्यवस्थित करूँगा... बहुत हो गया... अब इस पर और ऊर्जा खर्च नहीं... अपने भीतर एक ऊर्जा भरने की कोशिश की... पर वो खुद भी नहीं जानता था— कि ये ... सिर्फ खुद को दी गई एक झूठी तसल्ली थी... या फिर... एक नई, स्थायी शांति की शुरुआत।

अध्याय - 74

"मेरा साथ मत छोड़ो"

दूसरी तरफ "मन" भी स्थिर नहीं थी। उस दिन वाले एक वाक्य के बाद से उसकी भी नींद गायब हो चुकी थी। उसे भी चैन नहीं पड़ रहा था। बिस्तर पर लेटे-लेटे वह छत को घूरती और सोचती— "क्या मुझे उस दिन वो सब कहना चाहिए था? शायद नहीं..."

'क्या' और 'शायद'—ये शब्द दिखने में भले ही साधारण और हल्के हों, लेकिन कभी-कभी ये इंसान की जिंदगी को इतना भारी बना देते हैं कि साँस लेना मुश्किल हो जाता है। मन के साथ भी यही हो रहा था।

उसके भीतर भी सवालियों का एक ऐसा समुद्र उमड़ रहा था, जो धीरे-धीरे असुरक्षा और डर का रूप ले रहा था। उसे इस बात का खौफ सताने लगा था कि उस दिन की घटना के बाद कहीं माही उससे दूर न चला जाए।

"नहीं, नहीं... ऐसा नहीं होना चाहिए। मैं ऐसा नहीं होने दूँगी..." उसने अँधेरे में ही खुद से बुदबुदाते हुए कहा। अब इस 'ऐसा' का क्या अर्थ था और वह किस चीज़ से डर रही थी, यह तो केवल वही जानती थी।

इसी उधेड़बुन में उसने फोन उठाया। रात काफी हो चुकी थी। माही का अपना एक कड़ा उसूल था—रात 9 बजे के बाद वह मन से बात करना ठीक नहीं समझता था। उसके अपने कुछ नियम थे, जो उसके व्यक्तित्व का हिस्सा थे। लेकिन आज मन को उन नियमों की परवाह नहीं थी।

माही के चैट बॉक्स में उसी चिरपरिचित संदेश की स्याही आहिस्ता से फैल गई:

"Sir..."

"हाँ बोलो।" माही ने रूखेपन से जवाब दिया।

"ठीक हो?"

"हाँ, मैं ठीक हूँ। आप?"

"मैं भी ठीक हूँ। आप सोए नहीं?"

"नहीं... अभी नींद नहीं आ रही। आप भी शायद आज लेट चल रहे हो..."

"हाँ... तो अब सो जाओ।" मन ने बात शुरू करने का एक अजीब सा रास्ता चुना।

"नहीं आ रही नींद

Ok

Sir,आपसे कुछ कहना था," मन ने सीधे मुद्दे पर आते हुए कहा।

"क्या?"

"देखो... मम्मी और मेरे मामा फिर से..." मन ने फिर से एक पुरानी भूमिका बांधनी चाही, पर माही ने उसे बीच में ही टोक दिया।

"अरे! उस दिन आप जो जिक्र कर रही थीं ना... मुझे लगता है कि आपको अपने परिवार से उस विषय में बात करनी चाहिए। अगर सहमति बनती है, तो वहीं आगे बढ़ने में समझदारी है। मेरी कोई सहायता चाहिए तो बता देना। घर वालों को समझाने में या और कुछ... जितना मेरे से होगा, वो मैं करूँगा।" माही ने उसे समझाते हुए कहा।

मन घबरा गई। दाव उल्टा पड़ रहा था। माही ने उसे आज़ाद कर दिया था, और यही आज़ादी मन को डरा रही थी।

"नहीं, नहीं! जो आप सोच रहे हैं, वैसा कुछ नहीं है।"

"तो कैसा है? मैं तो वही सोच रहा हूँ जो आपने बताया।"

"घर-परिवार की इज़्जत को प्रभावित किए बिना यदि आप अपनी पसंद के साथ आगे बढ़ती हैं, तो इससे अच्छा कुछ नहीं है... बस अपनी माँ और भाई के मान का ख्याल रख लेना," माही अब भी उसे समझा रहा था।

"नहीं सर, इतना कुछ नहीं है... वो तो बस ऐसे ही... अब अगर कोई ढंग का लड़का नहीं मिल रहा तो... मैं अपनी पसंद से... इसलिए कह दिया था। नहीं तो इतना ज्यादा किसी से कुछ नहीं है मेरा..." वो शब्द चबा रही थी। यह साफ तौर पर एक 'डैमेज कंट्रोल' था। वह अपने ही फेंके हुए जाल को समेटने की नाकाम कोशिश कर रही थी।

"ये 'ढंग का' कैसा होता है? इतने दिन से दर-दर भटक कर ढंग के ही तो देख रहा हूँ। बेढंग वाले तो मैं खुद ही रिजेक्ट कर देता हूँ और ये 'किसी से इतना कुछ नहीं है', ये क्या है? मैं तो इस लड़की को ही नहीं समझ पा रहा हूँ।" उसने खुद से पूछा।

तभी मन ने अगला मैसेज भेजा—

"देखो Sir, आप उस दिन वाली बात को भूल जाओ Pls... बस ये समझो कि ना मैंने कुछ कहा और ना ही आपने कुछ सुना...

अच्छा?"

"हाँ।"

"तो अब आप मेरे से क्या चाहते हो?"

"वही... जो अब तक चाहा है। आप मेरे लिए Effort continue रखो।"

"ए..." यह लड़की किस मिट्टी की बनी थी?

"Sir Plz..."

"नहीं, अब और नहीं। अब की बार आप समझो Pls मैं आपके लिए 25-30 लड़के देख चुका... अब और नहीं," माही का सब्र अब जवाब दे रहा था। "अगर सच में आपको कोई पसंद है तो आप बताइए। मैं अपना अंतिम प्रयास अब उसके लिए करना चाहूँगा। आपके घर वालों को समझाने की कोशिश करूँगा... लेकिन अब वो पहले वाला... नहीं। हाँ, अगर करना पड़ा तो छोटी वाली (अनु) के लिए करूँगा।"

"Sir आप समझने की कोशिश करो... कुछ नहीं है ऐसा... Pls... Pls..."

और फिर स्क्रीन पर एक ऐसा वाक्य उभरा जिसने माही की साँसें रोक दीं:

"Sir, बीच सफर में इस तरह से मेरा साथ मत छोड़ो।"

इसके तुरंत बाद वह ऑफलाइन हो गई।

माही ने हिलती उँगलियों से एक मैसेज टाइप किया, लेकिन उस पर सिर्फ एक 'सिंगल टिक' (Single Tick) ही आया।

"मेरा साथ मत छोड़ो..."

अब ये क्या है?

वह इस लड़की को सच में नहीं समझ पा रहा था। 'मन' नाम का यह रहस्य सुलझने की बजाय अब एक अँधेरी खाई में तब्दील होता जा रहा था। वह फिर से माही को उसी पथ पर चलने के लिए विवश कर रही थी, जिस पथ से वापसी का वह पूरा मन बना चुका था।

माही चुप बैठा था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। उस लड़की की कौन सी बात पर विश्वास करे? उस दिन वाले "लव मैरिज" पर, या आज वाले "मेरा साथ मत छोड़ो" पर? आखिर कब तक वह खुद को एक बिना मंजिल के सफर पर रखेगा?

इन्हीं ख्यालों में

उसने कमरे की बत्ती बुझा दी। खिड़की के पास खड़ा होकर वह बाहर फैले उस घनघोर अँधेरे को देखने लगा।

उसने एक गहरी साँस ली और मन ही मन सोचा—

"मेरे भीतर का अंधकार... शायद इस रात के अंधकार से तो बहुत गहरा है।"

करवटें, ठंडी चाय और एक रतजगा

उस रात माही के बिस्तर पर जैसे कांटे बिछ गए थे। नींद तो जाने किसी दूसरी दुनिया का रास्ता पकड़ चुकी थी। वो करवटें बदलता, कुछ देर आँखें मूंदने की नाकाम कोशिश करता और फिर हारकर उठ बैठता।

यंत्रवत कदमों से वह रसोई में जाता और चाय चढ़ा देता। चाय का कप हाथ में लिए वो शून्य में कुछ ताकता रहता... और इसी कश्मकश में चाय ठंडी हो जाती। उसे स्वाद या तापमान का कोई होश नहीं था; वह उस ठंडी, कड़वी चाय को एक ही घूंट में गले के नीचे उतार देता।

उसके दिमाग के भीतर एक ही दृश्य लूप (Loop) में चल रहा था।

उस एक वाक्य का मतलब क्या था? फिर अचानक इस तरह बात क्यों घुमा दी? मुझे फिर से उसी काम के लिए प्रेरित करना... क्यों?

इसी क्रम में उसे पीछे का सब कुछ याद आता जा रहा था—वो धूल भरी सड़कें, वो 100 गोत्र, वो सारी खोजबीन... वो यादें जिनमें खोकर वह खुद को लगभग भूल चुका था। उसने अपने उफनते हुए दिमाग को शांत करने की कोशिश की— चलो, थोड़ी देर के लिए उसने जो भी कहा, उसे एक तरफ रख देते हैं। तो क्या मुझे अब भी वो सिलसिला दोबारा शुरू करना चाहिए?

सवालियों की एक नई फौज खड़ी हो गई।

क्या वो सच में ऐसा चाहती है, या उसका इरादा कुछ और है? क्या वो वाकई परेशान और मजबूर है, या फिर सिर्फ मेरा इस्तेमाल कर रही है? क्या सच में उसे मेरे साथ की जरूरत है या फिर...

लेकिन इन सब सवालियों के बीच एक ऐसा सवाल था जो माही के उसूलों से टकरा रहा था— क्या मेरा उसे इस तरह बीच सफर में छोड़ देना, मेरे अपने उसूलों के साथ न्याय कर पाएगा? इन्हीं सवालियों के भंवर में उलझा वो कमरे से बाहर आ गया। सर्द हवा के बीच वह आसमान में टंगे तारों को निहारने लगा। उसकी आँखें तारों पर टिकी थीं, मानो वो

इस अनंत ब्रह्मांड से अपने उन सवालियों के जवाब मांग रहा हो जिनका जवाब शायद खुद 'मन' के पास भी नहीं था।

कुछ देर तारों से मूक संवाद करने के बाद, वह वापस भीतर आया। और फिर से उसके कदम रसोई की तरफ मुड़ गए।

जब वह रसोई से बाहर निकला, तो उसके हाथ में फिर से चाय का एक कप था। आदतन उसने सामने दीवार पर टंगी घड़ी पर नज़र दौड़ाई।

"अरे...!" उसके मुँह से बेसाख़ता निकला।

घड़ी की सुइयां सुबह के 5 बजा रही थीं। यह उसके नित्य उठने का समय था।

माही के हाथों में जो कप था, वो रात की चाय नहीं, बल्कि उसकी 'सुबह वाली चाय' थी। उसे अहसास हुआ कि आज की रात नींद पूरी तरह उससे रूठ कर जा चुकी थी। सवालियों और ठंडी चाय के बीच एक पूरा रतजगा हो चुका था, और वो फिर से उसी दोराहे पर खड़ा था जहाँ से रात शुरू हुई थी।

अध्याय - 76

“खुद के लिए”

सुबह हुई। पिछली रात की थकान को चेहरे पर ओढ़े हुए माही तैयार होकर दफ्तर के लिए निकला। वहाँ पहुँचकर उसने जानबूझकर खुद को काम में मसरूफ कर लिया। दफ्तर का काम आज उसके लिए एक ढाल बन गया था। बीच-बीच में ख्याल आते रहे, लेकिन व्यस्तता के कारण वो माही के दिमाग पर हावी नहीं हो पाए।

शाम ढली। घर लौटकर उसने खाना खाया और जैसे ही बिस्तर पर पीठ टिकाई... ख्यालों की बारात फिर से सजने लगी। लेकिन इस बार एक फर्क था। यह बारात पिछली रात की तरह बेतहाशा भटक नहीं रही थी; आज यह जल्दी ही अपनी एक तय मंज़िल पर पहुँच गई थी।

माही के तार्किक दिमाग ने आखिरकार एक फैसला सुना दिया था—

"‘मन’ के उस वाक्य का चाहे जो भी मतलब हो... अब मुझे उसकी निजी जिंदगी से कोई लेना-देना नहीं रखना है।"

लेकिन... माही के भीतर का वह उसूलों वाला इंसान पूरी तरह मरा नहीं था। उसने खुद से एक समझौता किया—

"इंसानियत के नाते... मैं उसका साथ नहीं छोड़ूँगा। उसने मुझ पर जो विश्वास जताया है, उस पर मैं अपनी सामर्थ्य और मर्जी के अनुसार खरा उतरने की कोशिश करूँगा।"

पर एक चीज़ अब हमेशा के लिए बदल चुकी थी। एक लकीर खिंच गई थी।

"...वो पहले जैसा अंधा समर्पण... अब नहीं होगा। चाहे कुछ भी हो जाए।"

उसने खुद से एक नया वादा किया— "अब मैं अपने ऊपर ध्यान दूँगा... अपने परिवार पर... और अपनी नौकरी पर। किसी और की अनसुलझी पहेलियों के पीछे अपनी नींद और अपना सुकून खराब करने का अब कोई फायदा नहीं।"

उसने एक गहरी साँस ली और करवट बदली। "चलो... कल जो नींद रूठ कर चली गई थी, उसे आज मना कर वापस बुलाता हूँ।"

इस विचार ने चेहरे पर एक मुस्कान ला दी। आदत ने फिर दस्तक दी— "लेकिन पहले... एक चाय...?"

अगले ही पल उसने खुद को टोक लिया। "अरे नहीं... चाय बनाऊंगा तो नींद फिर भाग जाएगी।"

इस निश्चय के साथ, आज कई रातों बाद, उसने बिना चाय के ही अपनी आँखें बंद कर लीं। एक सुकून भरा अंधेरा उसकी आँखों पर छा गया।

लेकिन...

क्या कहानी यहीं खत्म होती है? क्या माही सच में अपने इस तार्किक फैसले की ज़मीन पर टिका रहेगा? क्या 'मन' के लिए किया जाने वाला काम अब महज़ एक 'औपचारिकता' बनकर रह जाएगा?

या फिर... वही औपचारिकता, 'मन' के किसी एक इशारे पर फिर से उसी तीव्र और आत्मघाती समर्पण में बदल जाएगी?

फ़िलहाल... सब के जवाब वक्त की पोटली में बंद थे।

“बारिश, बेरुखी और नाडा साहब का सुकून”

अगली सुबह जब माही की आँख खुली, तो रूठी हुई नींद का कोई मलाल नहीं था। इसके विपरीत, उसके भीतर एक नई स्फूर्ति और ताज़गी थी। उसी ताज़गी के साथ वह दफ्तर गया। दो दिन तक यही क्रम चला और फिर सरकारी मुकदमों की पैरवी के सिलसिले में वह तीन दिन के लिए मुख्यालय (चंडीगढ़-पंचकुला) निकल गया।

ये तीन दिन उसने खुद की मानसिक शांति के नाम कर दिए थे। चंडीगढ़ और पंचकुला का खुला वातावरण, चौड़ी सड़कें और हरे-भरे पार्क उसे एक अलग ही सुकून देते थे। जब भी वह इस शहर में आता, अपने एक बेहद करीबी दोस्त के कमरे पर ही रुकता। उस दोस्त को भी माही के आने से एक घर वाले अपनेपन का अहसास होता, क्योंकि वह भी घर से 250 किलोमीटर दूर इस अनजान शहर में अकेला ही रहता था।

जानकारों के शहर में अजनबीपन:

इसी बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने माही को दुनियादारी का एक और कड़वा सच दिखा दिया। मुख्यालय से उसे एक और कार्यालय में जाना था। तभी आसमान का मिज़ाज बिगड़ा और एक खौफ़नाक बारिश शुरू हो गई। माही ने अपने उन 'नज़दीकी' दोस्तों को फोन घुमाया जो उसी शहर में रहते थे, ताकि कोई उसे गाड़ी से वहाँ छोड़ दे।

लेकिन इसे माही की बदकिस्मती कहें या उन दोस्तों की बेपरवाही, हर किसी ने कोई न कोई बहाना बनाकर पल्ला झाड़ लिया। यह वही शहर था जहाँ भर्ती प्रक्रिया में व्यवधान के समय संघर्ष किया था, खुद की नौकरी और अपने साथियों के लिए आधी रात को मीलों के सफर तय किए थे और लू के थपेड़े सहे थे। उस संघर्ष ने उसे एक पहचान भी दी थी, लेकिन आज... जब उसे ज़रूरत थी, तो जानकारों के इस शहर में वह बिल्कुल अकेला और अजनबी खड़ा था।

मजबूरन उसे उस तूफानी बारिश में भीग कर ही अपना 5 किलोमीटर का सफर तय करना पड़ा। पानी शरीर को ही नहीं, जैसे उसके भरोसे को भी गला रहा था। अब उसे दोस्त के कमरे पर पहुंचना था लेकिन ऑटो वाले भी बिना रुके फरटि से गुजर रहे थे। पूरा दिन भीगने के कारण अब उसके शरीर में कंपकंपी छूटने लगी थी।

शाम के 6 बज चुके थे। हारकर उसने अपने उसी रूममेट दोस्त को फोन लगाया। वह भी बारिश के कारण अपने ऑफिस में ही फंसा था, लेकिन माही की हालत सुनकर वह रुका नहीं। वह भीगता हुआ अपनी स्कूटी लेकर माही के पास पहुँच गया। जब वे दोनों कमरे पर पहुँचे, तो दोनों का ही भीग कर बुरा हाल था।

गिले कपड़े बदलकर जब उन्होंने कड़क चाय बनाई, तो उसकी पहली घूंट ने जैसे माही की रगों में जमी हुई बर्फ को पिघला दिया। पूरे 8 घंटे के इंतज़ार के बाद नसीब हुई उस चाय का मज़ा ही कुछ और था। बारिश के कारण खाना बनाने वाली नहीं आई, तो दोनों ने 'चाय-ब्रेड' का ही डिनर किया। यह साधारण सा खाना उस दिन किसी छपन भोग से कम नहीं लग रहा था।

नाडा साहब और विक्रम बत्रा की यादें:

रात को बारिश रुकी तो दोनों 'नाडा साहब' गुरुद्वारा माथा टेकने चले गए। माही की इस जगह के प्रति एक अगाध आस्था थी। वहाँ पहुँचकर उन्हें खयाल आया कि अगर कमरे पर ब्रेड नहीं खाते, तो यहाँ लंगर छक सकते थे। श्री गुरु ग्रंथ साहिब के आगे शीश नवाकर जब माही ने प्रसाद लिया, तो उसके भीतर एक अजीब सा रोमांच दौड़ गया।

यह वही नाडा साहब गुरुद्वारा था जहाँ कभी 'शेरशाह' कैप्टन विक्रम बत्रा अपनी प्रेमिका डिंपल चीमा के साथ आते थे। विक्रम बत्रा के उस अमर और निस्वार्थ प्रेम की विराटता माही के अंतर्मन को गहरे तक स्पंदित कर दिया करती।

खामोश इबादत और एक अनकहा सच:

रात को जब दोनों अपने-अपने बिस्तरों में घुसे, तो माही का दिमाग आज के घटनाक्रम को पीछे पलट कर देखने लगा। वह सोच रहा था कि क्यों ये दुनिया किसी के किए हुए को याद नहीं रखती, क्यों जरूरत के समय वो ही लोग हमें अकेला छोड़ते हैं जिनमें हम संभावना तलाश रहे होते हैं या फिर इसे ही किस्मत का रूठ जाना कहते हैं।

खैर, इंसान वो ही होता है जो कभी अपने किए का 'आउटपुट' (Output) नहीं मांगता। फिर उसने अपने उस अजीज़ दोस्त को देखा, शायद शुक्रिया अदा कर रहा था, क्योंकि सामने से बोलने की उसकी हिम्मत या आदत नहीं थी। साथ ही उसे इस बात का भी सुकून था कि जानकारों की उस मतलबी भीड़ में कम से कम कोई एक तो है जो अपना है।

माही ने आज तक इस दोस्त से (या दुनिया में किसी से भी) 'मन' का किस्सा साझा नहीं किया था। वह अंदर ही अंदर घुटता रहा, उसकी इच्छा हो रही थी कि इस दोस्त को बताऊं लेकिन फिर लड़की की आबरू और इज्जत के लिए अपना मुँह नहीं खोला ही ठीक समझा। यह राज या तो वो जानता था, या फिर उसका 'मन'।

इन तीन दिनों के दौरान 'मन' का न कोई मैसेज आया और न कोई कॉल। माही ने भी अपनी तरफ से कोई पहल नहीं की। वह तो वैसे भी अब इन सब से पीछा छुड़ाने की फिराक में था। जब से उसने वो "लव मैरिज" वाला अस्पष्ट वाक्य सुना था, उसने अपने भीतर पनप रहे उस कोमल आकर्षण को बड़ी सख्ती से कुचल दिया था।

हाँ, कभी-कभार इंसान होने के नाते वह 'मन' के उस वाक्य में खुद को खड़ा कर लेता था... "कहीं वो लड़का मैं ही तो नहीं?" लेकिन अगले ही पल वास्तविकता का एक चांटा उसे फिर जगा देता, और वह वापस सिर्फ़ एक 'मानवीय रिश्ते' की लक्ष्मण रेखा पर लौट आता।

रिश्ता बेशक अब सिर्फ़ इंसानियत का था और दोनों तरफ से अस्पष्टता की धुंध छाई थी... लेकिन फिर भी, हर रोज़ दोनों के ज़हन में एक-दूसरे की तस्वीर ज़रूर उभर आती थी। एक डोर थी जो 250 किलोमीटर दूर भी खिंची हुई थी। ये सोचते सोचते उसने

नींद को अपनी बाहों में भर लिया।

ट्रैफिक सिग्नल की वो प्रशंसक और “नितिन अंकल”

पूरे दिन की थकान और बारिश के बाद...
दोनों दोस्तों को गहरी नींद आई।
सुबह का पता तब चला...
जब खाना बनाने वाली ने आकर दोनों को जगाया।
जल्दी-जल्दी तैयार होकर...
दोनों अपने-अपने काम के लिए निकल गए।
माही के मुख्यालय से पहले
सेक्टर 5 का गोल चक्कर पड़ता था...
वहाँ रेड लाइट के साथ
पुलिस भी खड़ी रहती थी।
आज भी...
वहीं एक युवा महिला पुलिसकर्मी खड़ी थी।
चेहरे से साफ लग रहा था —
नई-नई भर्ती हुई है।
कल जब माही वहाँ से गुज़रा था...
तो उसे एक विचित्र सा अहसास हुआ था —
जैसे वो लड़की उसे देख रही हो...
लेकिन उसने इसे अपना भ्रम समझकर
इग्नोर कर दिया।

आज...

फिर वही अहसास।

इस बार थोड़ा ध्यान से देखा...

तो लगा —

शायद ये सिर्फ भ्रम नहीं है।

कुछ पल के लिए वो सोच में पड़ा...

फिर खुद को समझाकर आगे बढ़ गया।

वैसे भी...

बिना वजह लड़कियों की तरफ उसका कोई खास रुझान शुरू से ही नहीं था।

लेकिन...

ये सिर्फ एक लड़की की नजर नहीं थी...

ये एक पुलिस वाली की नजर भी थी।

और यही बात...

उसे थोड़ा सा सोचने पर मजबूर कर रही थी।

काम निपटाकर जब वो वापस लौटा...

तो उसी चौक पर...

फिर वही दृष्टि।

इस बार...

वो सच में विस्मित हो गया।

“अरे...!”

बस इतना ही उसके मुँह से निकला था कि

वो लड़की उसके पास आकर खड़ी हो गई।

धीरे से बोली —

“Sir... आप अस्तित्व अवाना (Mahi) हो?”

माही ने हैरानी से कहा —

“हाँ...”

“लेकिन आप मुझे...?”

उसका सवाल पूरा भी नहीं हुआ था कि

वो मुस्करा कर बोली —

“कैसे जानती हूँ?”

“Facebook page पर आपकी posts देखती रहती हूँ...”

माही के मुँह से बस निकला —

“Ohh...”

वो आगे बोली —

“कई दिनों से follow कर रही हूँ...

इसी batch में भर्ती हुई हूँ...

अभी training पर हूँ...”

एक ही बार में उसने

माही के सभी संभावित सवालों के जवाब दे दिए

माही ने मुस्कान के साथ कहा —

“Thanks...”

“मिलकर अच्छा लगा।”

तभी वो बोली —

“Sir... आप के साथ - २ सुमिता मैम और नितिन अंकल को भी फॉलो करती हूँ...”

“उनकी इंफॉर्मेशन काफी सही होती है।...”

“Uncle...”

ये शब्द सुनकर

माही ने बड़ी मुश्किल से अपनी हंसी को नियंत्रित किया।

अपने से भी छोटे किसी साथी के लिए
एक युवा लड़की के मुँह से “uncle” सुनना...
थोड़ा मजेदार तो था ही
माही ने जाते-जाते कहा —
“ठीक है बहन जी... किस्मत ने चाहा तो फिर मिलेंगे।”
और आगे बढ़ गया।
बस स्टैंड तक जाते-जाते...
वो उसी घटना के बारे में सोचता रहा।
एक तरफ...
लड़की का सम्मान भाव पाने की खुशी थी।
और दूसरी तरफ...
मुस्कराने की एक शरारती वजह भी —
“Uncle...”
शाम को उसने
उसी Facebook page पर
इस घटना की पोस्ट डाल दी।
फिर क्या था...
followers ने “uncle” वाली बात पर
जबरदस्त मजे लिए।
साथियों ने भी उस “कथित uncle” का मज़ाक बनाया...
और माही की भी खिंचाई शुरू हो गई —
“भाई... ऐसे हर खूबसूरत लड़की को बहन कहेगा...”
“तो तेरी शादी किससे होगी?”

“एक खामोश हफ्ता और बवंडर की आहट”

मुख्यालय के उन तीन सुकून भरे दिनों को समेटकर माही वापस अपने गाँव, अपने घर लौट आया। किस्मत से अगले दो दिन शनिवार और रविवार की सप्ताहांत की छुट्टियाँ थीं। इस तरह, माही के लिए लगभग यह पूरा सप्ताह एक गहरे मानसिक 'डिटॉक्स' की तरह बीता—एक ऐसा सप्ताह जहाँ न कोई उलझन थी, न किसी रहस्य को सुलझाने की ज़रूरत, और न ही कोई रातों की नींद उड़ाने वाली ठंडी चाय।

लेकिन... जैसा कि कहा जाता है— इस दुनिया में कुछ भी स्थायी नहीं है। ठहराव तो सिर्फ पानी के सड़ने की निशानी है; बदलाव ही प्रकृति का इकलौता अटल नियम है। और शायद... यही नियम अब माही की ज़िंदगी पर भी पूरी सख्ती के साथ लागू होने वाला था। सोमवार की सुबह हुई और फिर से वही पुराना “रोज” शुरू हो गया—घर से दफ्तर, दफ्तर से घर। फाइलें, लोग, और काम की वही पुरानी भागदौड़।

लेकिन इस पूरे दौरान एक बहुत ही हैरत वाली बात हुई। दोनों के बीच कोई संपर्क नहीं हुआ। यहाँ तक कि दफ्तर की हर छोटी-बड़ी बात पर मैसेज करने वाली, जवाब न मिलने पर भी मैसेज करने वाली 'मन' की तरफ से भी कुछ नहीं था। ना कोई मैसेज... ना कोई कॉल।

यह खामोशी माही के लिए थोड़ी हैरानी भरी ज़रूर थी, क्योंकि यह 'मन' के उस स्वभाव के बिल्कुल उलट था जहाँ वह "मेरा साथ मत छोड़ो" कहकर खुद को माही से बांधना चाहती थी। लेकिन सच कहूँ तो, माही को अब इसकी कोई खास परवाह नहीं थी। वह फ़िलहाल खुद में, अपनी नौकरी में और अपनी उस खोई हुई शांति को वापस पाने में व्यस्त था।

लेकिन... माही उस लड़की की फितरत से अब वाकिफ हो चुका था। वह अंदर ही अंदर जानता था कि यह सन्नाटा ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है। इस शांति पर उसे खुद भी भरोसा नहीं था। उसे पता था कि 'मन' का दिमाग इस खामोशी के पीछे ज़रूर कोई नई बिसात बिछा रहा होगा।

खैर... यह हफ्ता तो जैसे-तैसे ठीक ठाक निकल गया। लेकिन... आने वाला अगला सप्ताह... शायद अपने गर्भ में बहुत कुछ लेकर आने वाला था।

अध्याय - 80

खामोशी की मुलाकात

सोमवार की दोपहर थी। अपना काम निपटाकर माही जे.ई. (J.E.) रूम में बैठा एक प्रतियोगी परीक्षा की किताब पढ़ रहा था। खिड़की के बाहर कुदरत अपने पूरे सुकून देते रूप के साथ मौजूद थी। चिड़ियों की बेफिक्र चहचहाहट, हवा से कांपते पत्तों की सरसराहट... सब कुछ मिलकर एक ऐसा वातावरण दे रहा था जिसे सिर्फ वही इंसान समझ सकता है, जो उसे भीतर तक जी रहा हो। और इतने दिनों के मानसिक तूफानों के बाद, शायद माही इस वक्त उसी सुकून को जी रहा था।

वह कुछ देर किताब के अक्षरों में डूबता, फिर नज़र उठाकर खिड़की के बाहर देखता, और फिर से पन्नों में खो जाता।

लेकिन... इस बार जब उसने नज़र उठाई, तो उसकी निगाहें वापस पन्नों पर नहीं लौट सकीं।

जिस पेड़ पर अभी तक पक्षियों की चहचहाहट और ज़िंदगी की हलचल थी, उसी पेड़ की तलहटी में... 'मन' खड़ी थी।

वह थोड़ी नहीं, बहुत ज्यादा अपने आप में खोई हुई थी। वह बिल्कुल शांत थी... किसी गहरे समुद्र की तरह, जिसकी सतह तो एकदम ठहरी हुई और खामोश लगती है, लेकिन जिसके सीने के भीतर एक खौफनाक उथल-पुथल चल रही होती है। उसकी आँखों में एक अलग सी, भारी खामोशी थी। वह एक ऐसी खामोशी थी जिसे दुनिया का हर आम इंसान नहीं समझ सकता था... लेकिन वहाँ कोई था, जो उस खामोशी को सिर्फ देख ही नहीं रहा था, बल्कि अपनी रूह तक महसूस कर रहा था।

माही कुछ पल तक उसे एकटक देखता रहा... फिर जैसे खुद को झकझोर कर संभाला, और वापस किताब में खोने का नाटक करने लगा। जैसे उसने खिड़की के बाहर कुछ देखा ही न हो।

कुछ मिनट ही बीते थे कि कमरे में एक हल्की सी आहट हुई।

माही ने नज़र उठाई। सामने... 'मन' खड़ी थी।

बिना एक भी शब्द कहे, बिना नज़रों से नज़रें मिलाए, उसने माही के खाली कप में चाय डाली... और बिना कुछ बोले उसी गंभीरता के साथ वापस मुड़ गई। ना कोई सवाल, ना कोई शिकवा, ना कोई बाता। बस... एक ज़रूरी, ठंडी सी औपचारिकता।

माही ने भी तय कर लिया था कि वह उस बेरुखी और चुप्पी को अपने ऊपर हावी नहीं होने देगा। या कम से कम, उसने दुनिया और खुद को यही दिखाने की कोशिश की।

उसने चाय का कप उठाया, एक घूंट लिया... और फिर से शब्दों को किताब से उठाकर अपने दिमाग में उतारने का अभिनय करने लगा।

लेकिन... क्या सच में उसका ध्यान किताब के उन छपे हुए अक्षरों में था?

या फिर... उसका दिमाग अब भी उस 'खामोशी' को पढ़ रहा था, जो अभी-अभी चाय की उस प्याली के साथ उसके सामने से गुज़री थी?

फर्ज़ या दूरी... दिल किसकी सुने?

मुख्यालय से लौटने के बाद माही ने अपनी ज़िंदगी को एक बहुत ही सख्त अनुशासन में बाँध लिया था। वह अब अपनी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी और दफ्तर की नौकरी—दोनों को एक नाज़ुक संतुलन में लेकर चल रहा था। इसी वजह से, अपना ज़रूरी काम निपटाते ही वह जे.ई. रूम में आकर खुद को किताबों के समंदर में डुबोने की कोशिश करता।

लेकिन... इंसान अपनी नज़रें किताबों पर टिका सकता है, पर ख्यालों को कैसे बांधे? इन सब के बीच एक चीज़ ऐसी थी जिसे माही लाख कोशिशों के बाद भी नज़रअंदाज़ नहीं कर पा रहा था— "मन की मायूसी।"

पिछले कुछ दिनों से 'मन' बिल्कुल बदल गई थी। कभी वह उसी पेड़ के नीचे घंटों चुपचाप खड़ी रहती, कभी पार्क की बेंच पर अकेली, शून्य में घूरती हुई पाई जाती। और कभी-कभी तो माही उसे फोन पर किसी से ऊँची आवाज़ में बात करते हुए देखता—जैसे वह किसी से बुरी तरह झगड़ रही हो, या कोई उसे रूला रहा हो।

इन दिनों... शायद ही कभी माही ने उसे पहले की तरह मुस्कुराते या चहकते हुए देखा हो। लेकिन इन सब के बीच जो बात माही को सबसे ज़्यादा कचोटती थी, वो यह थी कि इतने दर्द और उथल-पुथल में भी... वह माही की चाय देना कभी नहीं भूलती थी। माही ने खुद को एक पत्थर के खोल में बंद कर लिया था। वह इन सब से बेपरवाह बनने की पूरी कोशिश कर रहा था। लेकिन... एक भावुक इंसान का पत्थर आखिर कब तक नहीं दरकता?

एक दिन माही खिड़की से बाहर देख रहा था। उसने देखा कि 'मन' फोन पर किसी से बहुत तीखी और ऊँची आवाज़ में बात कर रही है। फोन काटने के बाद वह वजनी कदमों से गई और सीधे पार्क की बेंच पर जाकर धड़ाम से बैठ गई। उस दूरी से भी माही को उसका रुआंसा, टूटा हुआ चेहरा साफ़ दिखाई दे रहा था।

कुछ देर बाद, कमरे में आहट हुई। उसी रुआंसी हालत में, नम आँखों के साथ वह आई... और बिना कोई शब्द कहे, चुपचाप माही की मेज़ पर चाय का कप रखकर चली गई।

माही के हाथ वहीं ठिठक गए। उसका दिमाग सोच के एक भंवर में फँस गया।

"ये किस बात से इतनी परेशान है? क्या मुझसे बात ना हो पाने की वजह से? क्या वो चाहती है कि मैं अपनी तरफ से पहल करूँ? या फिर... बात कुछ और है? कहीं सच में वो किसी भारी मुश्किल में तो नहीं फँस गई है?"

और अगर वह मुश्किल में है, तो...

"क्या मेरा यूँ खुद को इस तरह अलग कर लेना, मुँह फेर लेना सही है?" माही के तार्किक दिमाग ने जवाब दिया— "शायद हाँ... मुझे खुद को बचाना है।"

लेकिन अगले ही पल, चाय के उस कप को देखकर उसका दिल बगावत कर बैठा— "इतनी परेशानी में है, खुद टूट रही है... फिर भी उसे मेरी चाय की फिक्र है... और मैं?"

माही के उसूल उसे ललकारने लगे। कम से कम इंसानियत के नाते, क्या यह उसका फर्ज नहीं बनता कि वह उससे उसकी परेशानी का कारण पूछे?

लेकिन फिर माही के उसी अडिग चरित्र ने उसे रोका— "अगर वजह जानकर भी मैं उसके लिए कुछ कर ना पाया तो? तो फिर जानने का क्या मतलब?"

शायद परेशानी उस की वो पुराने वाली ही है ?

जिस से शायद में ऊब और थक चुका हु।

इसलिए में चाह कर भी कुछ नहीं कर पाऊंगा

चूँकि वो उन आम लोगों में से नहीं था जो सिर्फ 'औपचारिकतावश', अपनी 'जिज्ञासा' मिटाने या महज 'झूठा दिलासा' देने के लिए किसी के कंधे पर हाथ रखते हैं। अगर माही किसी का दर्द पूछता था, तो इसका मतलब था कि वह उस दर्द को दूर करने की जिम्मेदारी ले रहा है।

"तो अब क्या करूँ? मुझे क्या करना चाहिए?" माही को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। लेकिन एक बात तो तय थी—अब उससे 'मन' का यह दर्द और ये आँसू देखे नहीं जा रहे थे।

इन्हीं अनगिनत और भारी सवालों के बीच उलझते-उलझते शाम के 5 बज गए, दफ्तर का वक़्त खत्म हो चुका था।

माही ने अपना बैग उठाया, और उन्हीं अनसुलझे सवालों का बोझ अपने कंधों पर लादे हुए, वह घर के लिए निकल पड़ा।

“चाय की छुट्टी और एक टूटता तारा”

रात को खाना खाने के बाद भी माही के भीतर प्रश्नों की खलबली शांत नहीं हुई। 'मन' का वह रुआंसा, मासूम चेहरा बार-बार उसकी नज़रों के सामने आ जाता और एक अस्वाभाविक सी उत्सुकता उसे परेशान करने लगती। लेकिन हर बार वह खुद को रोक लेता। उसे डर था; वह फिर से उसी पुरानी उलझन और उसी दर्द में नहीं जाना चाहता था। फिर भी, वह उसे इस तरह टूटते हुए भी नहीं देख पा रहा था। खैर, आज उसने जैसे-तैसे अपनी बेचैनी पर काबू पाया और फैसले को अगले दिन पर छोड़कर सोने की कोशिश करने लगा।

वो खालीपन और बेचैनी:

अगले दिन ऑफिस में माही उसी जगह बैठा था। उसकी निगाहें बार-बार खिड़की के बाहर उस पेड़ की तरफ जा रही थीं... लेकिन आज ऐसा कुछ नहीं हुआ जो उसकी निगाहों को रोक सके। उस दिन न तो 'मन' आई और न ही उसकी चाय।

तीन बज चुके थे और अब तो आने की कोई उम्मीद भी नहीं थी। इसका मतलब साफ़ था—आज वो ऑफिस नहीं आई थी।

माही उठा और खुद को तसल्ली देने के लिए उसकी ब्रांच की तरफ गया, लेकिन वो सच में वहाँ नहीं थी।

शाम को घर लौटते वक़्त रास्ते में उसका दिमाग और ज़्यादा तेज़ी से दौड़ने लगा। आज वो आई क्यों नहीं? सब ठीक तो है ना उसके साथ? इतने दिनों से वो दिक्कत में थी... ये सब सवाल माही का दिमाग खराब करने के लिए पर्याप्त थे। उसका दिमाग फिर उससे लड़ने लगा— ना चाहते हुए भी मैं उसकी परवाह क्यों कर रहा हूँ? इंसानियत का आखिर ऐसा कौन सा फर्ज़ अब भी बाकी है? या फिर... ये सच में इंसानियत से बहुत ऊपर की कहानी है? इन सवालों के जवाब से माही खुद भी बेखबर था।

टूटा हुआ सन्न और वो मैसेज:

रात के साढ़े आठ बज चुके थे। बिस्तर पर लेटे माही के सोचने का क्रम अब भी जारी था। अब उसका धैर्य जवाब दे रहा था।

"नहीं, मैं उसको ऐसे दिक्कत में नहीं छोड़ सकता।" बस, माही के भीतर के उस व्यक्ति के इस एक वाक्य ने फैसला कर दिया। उसने मोबाइल उठाया और मैसेज टाइप किया:

"Mam"

लेकिन... अगले आधे घंटे तक वह मैसेज 'डिलीवर' (Deliver) नहीं हुआ। सिंगल टिक! माही की बेचैनी अब डर में बदलने लगी। अजीब और बुरे खयाल उसके दिमाग को घेरने लगे। आँखों के आगे एक डरावना सा अँधेरा छाने लगा था।

तभी मोबाइल की स्क्रीन में मानो सुबह हुई। एक रिप्लाई आया— "Han"

उसे देखकर माही की जान में जान आई। उसने थोड़ी हिम्मत जुटाकर, सीधे पूछने की बजाय एक खूबसूरत रूपक का सहारा लिया—

"आज ऑफिस में मेरी चाय नहीं आई?"

जवाब आया— "आपकी चाय छुट्टी पर थी आज।" यह कहने को तो एक साधारण सा वाक्य था, लेकिन निकालने वाले के लिए इसके हजार अर्थ थे। एक अर्थ माही ने भी निकाला, पर वह जल्दी ही इस रूपक से बाहर आ गया।

"क्यों?" "यूँ ही," मन ने रूखा सा जवाब दिया।

"नहीं, आप किसी दिक्कत में लग रहे हो।" "नहीं Sir, कोई दिक्कत नहीं है।"

"है... आप बता नहीं रहे। Plz, अगर कुछ है तो बताओ।"

"नहीं है कुछ भी, कहा ना।"

"नहीं, बिल्कुल है। आप बताओ।" माही अब अपनी ज़िद पर आ गया था।

"आपको क्यों लग रहा है ऐसा?"

"क्योंकि मैंने महसूस किया है।"

"क्यों जानना चाहते हो?"

"क्योंकि मुझे फिक्क है आपकी," माही के दिल का सच आखिरकार होठों पर आ ही गया।

वह कुछ देर तक इस मैसेज को देखती रही। फिर उसका रिप्लाई आया— "क्या कर लोगे जानकर भी?"

"कोई नहीं... आप बताओ तो सही।"

"Sir, क्यों ज़िद कर रहे हो?"

"ज़िद नहीं है, मैं अपनी जिज्ञासा शांत कर रहा हूँ। आप बताओ... मैं आपके साथ हूँ।"

यह आखिरी वाक्य डिलीवर भी हुआ, 'सीन' भी हुआ... लेकिन कोई रिप्लाई नहीं आया। वो सिसकियाँ और एक इकरार:

सीधा फोन आया। घर वाले डिस्टर्ब न हों, इसलिए माही छत पर आ गया।

उसने फोन उठाया, लेकिन उधर से कोई आवाज़ नहीं आई... सिर्फ सिसकियाँ।

"Hello... Hello..." माही की आवाज़ में एक घबराहट थी।

सिसकियों का शोर जैसे ही थमा, रोने की आवाज़ तेज़ हो गई।

"Mam... Mam... क्या हुआ? क्यों रो रहे हो? बताओ तो..."

थोड़ी देर बाद, रुंधे हुए गले से एक तीर जैसा सवाल आया—

"क्या करोगे जानकर? क्या हूँ मैं आपकी? और क्यों परेशान हो मेरे लिए?"

माही ने फिर उसी खोल में छुपने की कोशिश की— "मानवता के नाते... एक सहकर्मी के नाते।"

"अच्छा...?" उधर से एक दर्द भरा जज्बात और ताना दोनों साथ आए। "इतने दिन से कहाँ थी ये मानवता? 15 दिन से... मेरी कोई खोज-खबर नहीं, ना कोई बात, ना हाल-चाल की औपचारिकता! बिल्कुल अजनबियों जैसा व्यवहार...!" और फिर वो टूट गई। रोते हुए उसने एक ऐसा सच बोला जिसने माही को अंदर तक चीर दिया—

"और पता है... मुझे जब कोई नहीं दिखता... तो आप दिखते हो। मेरी हर उम्मीद, मेरी पहली और आखिरी उम्मीद... सिर्फ आप हो। जब ये लगता है कि कोई नहीं है मेरा, तब आपका चेहरा दिखाई देता है... और आप...!"

रात का अँधेरा गहरा था। दूर कहीं खेत में चलते एक ट्रैक्टर की गड़गड़ाहट आ रही थी। और उसी अँधेरे को चीरती हुई, कहीं दूर खेत में ही बज रहे किसी 'सैड सॉन्ग' (Sad

Song) की बारीक सी आवाज़ माही के कानों में पड़ रही थी। और इस दर्द भरे अंधकार में माही... बस सुनता ही जा रहा था।

वह फिर से रोने लगी।

"देखो, आप चुप हो जाओ," माही ने उसे संभालने की कोशिश करते हुए कहा। "और मुझे असली बात बताओ... ताकि मैं किसी समाधान की तरफ बढ़ूँ।"

"मैं अब आपको और परेशान नहीं करना चाहती। जो किस्मत में है, वो मंज़ूर है बसा।"

"नहीं... एक बार और परेशान कर लो। किस्मत को पलटने की भी कोशिश करेंगे।"

"सच?" "हाँ।"

"मेरे साथ हो ना...?" कुछ देर सोचकर माही ने कहा— "हाँ... हर जायज़ वजह में साथ हूँ।"

"अच्छा..."

फिर उसने रोते हुए अपनी व्यथा सुनाई। वही पुराना नशा, बस बोतल नई थी। "मेरी मर्जी के विरुद्ध फिर से घर वाले..." और माही बस सुनता गया। दूर से आते उस सैड सॉन्ग की धुन और 'मन' की उदास आवाज़... दोनों आपस में घुल-मिल रहे थे।

थोड़ी देर बाद अपनी सारी व्यथा सुनाकर, दिल का गुबार निकालकर वह कुछ हल्की हुई। "ठीक है... अब मैं फोन रखती हूँ। रात लंबी हो गई है... और वो देर रात को दिखने वाला तारा भी उग गया है," उसने आसमान की तरफ देखते हुए कहा।

"हाँ..." माही ने भी आसमान की तरफ देखा।

दोनों अपने-अपने आसमान में सांझी दुनिया निहार रहे थे।

यह कुदरत का एक अजीब और दर्दनाक संयोग था।

छत के एक कोने से माही देख रहा था कि आसमान में एक तारा चमक के साथ उग रहा था... जो शायद उस लड़की की 'नई उम्मीद' का प्रतीक था।

और ठीक उसी वक्त, माही की नज़रों के सामने, आसमान के दूसरे छोर पर... एक तारा अपनी जगह छोड़कर अँधेरे में टूट रहा था।

वो भी शायद अपने किसी भिन्न अर्थ में किसी भविष्य की घटना का पूर्वप्रतीक था।

अध्याय - 83

रसोई का ताना और एक अनकहा इकरार

कॉल कटते ही माही के कदम कमरे की तरफ मुड़ने के बजाय सीधे रसोई की तरफ मुड़ गए। हालाँकि, फोन कटने से ठीक पहले 'मन' ने उसे सख्त हिदायत दी थी कि वह बिना चाय किए सीधा सो जाए। लेकिन उसकी सलाह कब और कहाँ माननी है... यह माही ने पूरी तरह से 'परिस्थितियों' पर छोड़ रखा था। और इस वक़्त माही की परिस्थितियाँ चीख-चीख कर कह रही थीं कि उस भारी संवाद के बाद उसे अपनी उस पुराने 'सहारे' (चाय) की सख्त ज़रूरत है।

उसने मन ही मन सलाह ना मानने के लिए 'मन' से एक चुपचाप सी 'सॉरी' बोली और रसोई में घुस गया।

अँधेरी रसोई में घुसते ही उसे एक अहसास हुआ। मानो रसोई की दीवारें उस पर हँस रही हों और ताना मारते हुए कह रही हों— "आखिर आ गया ना फिर से? अपनी इस महबूबा को लेने... बच्चे, तेरा ये उधेड़बुन का सफर ही अब तेरी मंज़िल बन चुका है।"

खैर, चाय का कप हाथ में लेकर वह बाहर खुले आसमान के नीचे आ गया। उसकी निगाहें आसमान को निहारने लगीं। शायद उसकी आँखें भी 'मन' की तरह भोर का कोई 'उगता तारा' (उम्मीद) खोज रही थीं... लेकिन उसकी किस्मत में आज फिर से एक 'टूटता तारा' ही लिखा था। उस टूटते तारे को अपना मुकद्दर मानकर वह वापस भीतर आया और बिस्तर पर जा पड़ा। ख्यालों के उस बवंडर में जल्द ही आँख लग गई।

एक मीठी चाय और माफ़ी:

तैयार होकर वह दफ़्तर गया। काम निपटाने के बाद अपनी उसी पुरानी जगह, जे.ई. रूम में आकर बैठ गया। लेकिन आज एक बड़ा फर्क था— आज उसके हाथों में छुपने के लिए कोई 'प्रतियोगी किताब' नहीं थी। आज वह हकीकत का सामना करने के लिए तैयार था।

थोड़ी देर बाद वह आई... और साथ में चाय भी।

लेकिन आज उस चाय के कप में एक अलग सी गर्माहट और 'मुस्कुराहट की मिठास' घुली हुई थी। 15 दिन की वो बर्फ आखिरकार पिघल चुकी थी।

जैसे ही चाय रखकर वह वापस जाने के लिए मुड़ी, माही ने पीछे से आवाज़ दी—

"सुनो..."

"हाँ?" उसके कदम ठिठक गए।

"सॉरी..." माही ने धीरे से कहा।

"किस लिए?" उसने मुड़कर हैरानी से पूछा।

"कल आपने चाय के लिए मना किया था... पर मुझसे रुका नहीं गया। मैंने पी ली।"

माही की यह बात सुनकर उसके चेहरे पर एक हल्की और सुकून भरी हँसी तैर गई। वह बाहर निकलते-निकलते पलट कर बोली—

"तो फिर ये बात मुझे बताने की क्या ज़रूरत थी?"

माही ने जुबान से कोई जवाब नहीं दिया। पर माही के भीतर से एक बहुत ही गहरी और खामोश आवाज़ उठी—

"...क्योंकि, अब आपसे कुछ भी छुपाने का मन नहीं करता। अब पता नहीं क्यों।"

तस्वीर, उलझन और एक नया फैसला:

कमरे में अकेला बैठा माही चाय की तपन को भीतर उतार रहा था, और साथ ही मोबाइल की स्क्रीन पर उस लड़के की तस्वीर देख रहा था जो 'मन' के घर वालों ने उसके लिए चुना था। 'मन' को वो लड़का कतई पसंद नहीं था।

फोटो को ध्यान से देखने के बाद, माही को भी लगा कि 'मन' का एतराज़ शायद अपनी जगह सही है।

"लेकिन अब मैं करूँ क्या?" "अगर उस लड़के में बाकी सब कुछ ठीक है, सिर्फ़ फोटो ही समस्या है... तो शायद 'मन' को थोड़ा समझौता कर लेना चाहिए।" उसने खुद को ही भीतर ही भीतर यह सलाह दी।

लेकिन कल रात फोन पर उसने जो सिसकियाँ और बगावत सुनी थी, उसे याद करके माही समझ गया कि वो लड़की इतनी आसानी से समझौता करने वालों में से नहीं है।

"तो फिर मैं क्या करूँ? यार, ये लड़की सच में एक अनसुलझी पहेली है।" माही झुंझला उठा।

"जब मैं इसके लिए कोई सही और योग्य लड़का देखता हूँ, तब भी ये 'हाँ' नहीं करती। अगर इसे कोई और पसंद है, तो ये वो बात भी साफ़ नहीं कर रही। और जब इसके घर वाले अपनी मर्जी से कुछ करते हैं, तो ये विद्रोही बन जाती है। आखिर चल क्या रहा है इसके मन में?"

माही को खुद पर भी गुस्सा आ रहा था। "और मैं हर बार इसी का साथ देता हूँ। ना चाहते हुए भी! ये खुद भी किसी एक स्टैंड पर टिक कर नहीं रहती, और ना ही मुझे रहने दे रही है।"

उसने एक लंबी साँस खींची और मोबाइल की स्क्रीन बंद कर दी।

"पर छोड़ो... अभी इन सब उलझनों पर दिमाग़ खपाने का कोई फ़ायदा नहीं।"

कुछ देर गहराई से सोचने के बाद, माही के भीतर के

'संरक्षक' ने एक ठोस फैसला लिया—

"कल मैं खुद उस लड़के के गाँव जाकर उसकी असलियत और बैकग्राउंड का पता करता हूँ। अगर लड़का और परिवार सही हुआ, तो मैं खुद 'मन' को समझाऊँगा... और अगर कुछ गड़बड़ निकली, तो फिर आगे का देखेंगे।"

एक नए मोर्चे की तैयारी के साथ, माही ने चाय का आखिरी घूंट नीचे उतारा।

“सत्त्वाई की ज़मीन पर... एक फैसला”

अगले दिन... सुबह-सुबह ही माही निकल पड़ा। साधनों का अभाव... कच्ची सड़कें... इसलिए गांव पहुंचते-पहुंचते उसे दोपहर हो गई। फसल कटाई का सीजन था, इसलिए खेतों में लोग लावणी में लगे हुए थे... इसी वजह से गांव में शांति पसरी थी, गांव में पहुंचकर उसने सबसे पहले एक छोटी सी चाय की दुकान पर चाय पी और जानकारी ली। “भाई... ये फलों का घर किधर पड़ेगा?” उसने फैसला किया था कि गांव में लोगों से पूछताछ तो करेगा ही, लेकिन सीधे उनके घर भी जाकर आएगा। चाय वाले ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा... फिर हंसते हुए रास्ता बता दिया। लेकिन... उस मुस्कान में कुछ था... जैसे वो सिर्फ रास्ता नहीं... कुछ और भी जानता हो।

खैर... वो घर पहुंचा, दुआ-सलाम करी, उनको अपना काल्पनिक परिचय दिया और आने का कारण बताया— “जी... मैं पास ही के गांव में नौकरी करता हूँ। रहने वाला तो दूर का हूँ। आपके लड़के के बारे में किसी ने बताया। मेरे दोस्त की बहन है... वो लोग भी लड़का देख रहे हैं, तो उसने कहा कि तुम उस साइड नौकरी करते हो तो एक बार हो आओ।”

“अच्छा। वैसे किसने बताया?”

“वो तो जी वो ही जानते हैं, मैं तो बस उनके कहने से आ गया।”

इसके बाद उसने सारी जानकारी हासिल करी— लड़के की, उसके परिवार की, उनकी पसंद, नापसंद, जमीन, व्यवसाय और पशुओं के बारे में। बातों से पता चला कि वे दहेज लोभी हैं। बातों ही बातों में उन्होंने बताया कि हमारी तो फिलहाल बात चली हुई है, लड़की नौकरी करती है और फलों गांव से है।

“अच्छा... तो आपको लड़की और उनका परिवार पसंद है?”

“जी, और अगले रविवार को शायद हम रिश्ता पक्का कर देंगे।”

“अच्छा, चलो ठीक है। अगर आपकी बात बनती है तो अच्छा है, नहीं तो मैं दोबारा आपसे मिलूँगा।”

इतना कह कर उसने वहां से इजाजत ली। बाहर उसने गांव में पता किया, तो सभी ने उस परिवार को घमंडी और लालची बताया। साथ ही वे बाहुबल भी रखते थे। इसके अलावा भी उनसे मिल कर उसने अंदाजा लगा लिया था कि मन का निभाव इस परिवार में मुश्किल है।

अपना काम कर के वो निकल लिया। अब उसे घर पहुंचने की जल्दी थी। किसी ने बताया कि ५ कि.मी. कच्चे रस्ते से जाओगे तो मुख्य सड़क तक जल्दी पहुंचोगे। इसलिए वो उसी रस्ते से निकल लिया। गर्मी तो थी ही, साथ में उसने चाय के अलावा सुबह से कुछ खाया भी नहीं था। रस्ते में ग्वालों से लेकर थोड़ा पानी पिया। हल्का वन, जिसे गांवों में 'बनी' कहा जाता है, शुरू हो गई। वहीं पर दाईं तरफ एक मंदिर दिखाई दिया... उसे फिर से प्यास लगी हुई थी। पानी की उम्मीद में मंदिर में गया। वहां पर मटके का ढंडा पानी पिया। मंदिर में एक साधु बाबा बैठे थे, साथ में कुछ लोग भी थे। बाबा ने भुने चने खाने को दिए जिसे खाकर उसकी भूख शांत हुई। बाबा कुछ सूफी प्रेमकथाएं सुना रहे थे। रोमियो-जूलियट का भी किस्सा आया, वो भी बैठ कर सुनने लगा। बाबा पारंपरिक धार्मिक हिन्दू साधुओं से अलग लग रहे थे, उनके कथित प्रवचनों में धर्म के तत्व की जगह विभिन्न विषय थे।

बाबा ने उसका परिचय पूछा, उसने बताया। किस काम से आए हो, इसका उसने सीधा जवाब ना दे कर विषय घुमा दिया। “बच्चा, प्रेम में भटकने वाले दिखते हो।” बाबा ने मजाक में कहा। वो अवाक रह गया, उसे लगा कि शायद बाबा ने उसकी जन्मकुंडली पढ़ ली हो। “अरे मजाक कर रहा हूँ!” बाबा ने हंस कर कहा। बातों ही बातों में पता चला कि असल में बाबा इंग्लिश लिटरेचर के प्रोफेसर रह चुके थे, जो सांसारिकता से मोह भंग और गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियां निभाकर सन्यासी जीवन जी रहे थे। इतनी देर में चाय आ गई, उसने चाय पी। फिर मंदिर में रखे दानपात्र में अपनी श्रद्धानुसार दान डालकर बाबा से अनुमति ली। इस तरह से मुख्य सड़क पर पहुंच कर, थोड़ी देर के इंतजार के बाद उसने शहर के लिए बस ली। दो-तीन बसें बदलने के बाद शाम को घर पहुंचा। थकान सीधे उसे बिस्तर पर ले गई और नींद ने भी जल्दी ही मेहरबानी दिखा दी।

एक चाल... जो सब बदल सकती है

अगली सुबह जब माही दफ्तर पहुँचा, तो उसके कदमों में पुरानी वाली सुस्ती नहीं थी। वह सीधे जे.ई. (J.E.) रूम में जाकर बैठ गया। लेकिन... आज भी मेज़ पर कोई प्रतियोगी किताब नहीं थी। आज वह किसी और ही किताब के पन्ने पलट रहा था—हकीकत और रणनीति की किताब।

वह एक बहुत गहरी और ठंडी सोच में डूब चुका था। उसके दिमाग में एक ही बात बार-बार घूम रही थी— "मन को अब शादी कर लेनी चाहिए।"

यह माही की अपनी निजी और बेहद तार्किक सोच थी। लेकिन... सही घर में और सही इंसान से। कल जिस घर की धूल वह फाँक कर आया था, वो 'मन' जैसी आज़ाद और स्वाभिमानी लड़की के बिल्कुल भी लायक नहीं था।

माही ने परिस्थितियों का विश्लेषण किया— "शायद उसके घर वाले लड़के के बारे में ज्यादा कुछ पता नहीं कर रहे हैं। उनका मकसद सिर्फ़ इतना है कि किसी तरह बेटी की विदाई हो जाए और उनके सिर से यह 'बोझ' उतर जाए।"

लेकिन अब सिर्फ़ अफ़सोस जताने या सोचने से काम नहीं चलने वाला था; अब कुछ करना ज़रूरी था।

माही ने अपने दिमाग में हर संभव रास्ते को खंगालना शुरू किया।

"मन से इस बारे में बात करने का कोई फायदा नहीं... वो अपना पक्ष पहले ही साफ़ कर चुकी है कि जो किस्मत में है, वो उसे मंज़ूर है। इस ज़हरीले रिश्ते से उसे बिना बताए निकालना ही सही है।"

लेकिन... कैसे?

यही एक सवाल था जो उसे अंदर ही अंदर निचोड़ रहा था। "उसके घर वाले मेरी बात कभी नहीं मानेंगे। लड़के वालों से सीधा जाकर मना करवाना मेरे बस में नहीं है... और पिछली बार वाला वो 'बाहुबली' तरीका (ज़ोर-ज़बरदस्ती या लड़ाई-झगड़ा) तो मैं अब अपनाऊँगा नहीं। वैसे भी... इस बार सामने वाले भी बाहुबल में कम नहीं हैं।"

वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। जे.ई. रूम की खामोश दीवारों अब उसके सुलगते हुए सवालियों का जवाब नहीं दे सकती थीं। वह बाहर निकला और दफ्तर के पास ही एक पार्क में जाकर बैठ गया।

घंटों बीत गए। वह बस तरीक़ब सोचता रहा। हर रास्ता, हर दरवाज़ा उसे बंद ही नज़र आ रहा था।

"क्या करूँ? रविवार को तो रिश्ता पक्का हो जाएगा... समय बहुत कम है।"

पूरा दिन योजना बनाने में निकल गया। थककर वह पार्क की घास पर लेट गया। उसने आसमान की तरफ देखते हुए एक लंबी, थकी हुई साँस ली... और अपनी आँखें बंद कर लीं।

कुछ ही पलों बाद... वह अचानक उठ बैठा।

जैसे... किसी ने भीतर से उसे उसके हर सवाल का जवाब दे दिया हो। उसकी आँखों में एक अजब और, रहस्यमय चमक थी।

"हाँ... ये तरीका काम करेगा!"

यह ऐसा था जैसे कई दिनों से उलझा हुआ कोई बहुत बड़ा पज़ल (Puzzle) अचानक एक झटके में पूरा हो गया हो।

वह तुरंत उठा और सीधे शहर की एक मोबाइल की दुकान की तरफ़ बढ़ गया। वहाँ से उसने कुछ पैसे देकर एक 'सेकंड-हैंड' मोबाइल ख़रीदा, और साथ में... एक नया सिम कार्ड (SIM Card)।

दुकानदार ने उसे एक सामान्य ग्राहक की नज़र से देखा। लेकिन माही के लिए, यह कोई साधारण ख़रीदारी नहीं थी।

वह अनजान मोबाइल और नया सिम लेकर माही बस स्टैंड की तरफ़ बढ़ा। वह घर जाने के लिए बस में बैठ गया... लेकिन इस बार उसके चेहरे पर हार या उलझन की कोई थकान नहीं थी। उसकी आँखों में एक तयशुदा इरादा था। एक ऐसा इरादा जो आने वाले रविवार की पटकथा को हमेशा के लिए बदलने वाला था।

“... परछाइयों की चाल”

रात में माही बिस्तर पर बैठा था... और पूरी एकाग्रता से अपने “काम” में लगा हुआ था। उसने नया मोबाइल उठाया... SIM डाली... फोन चालू किया। सब कुछ तैयार था... लेकिन... अगले ही पल उसके चेहरे पर उदासी उतर आई। “तरीका सही है... लेकिन जोखिम भी उतना ही है...” “SIM मेरे नाम पर है...” “अगर ज़रा सा भी शक हुआ...” “और मैं... एक सरकारी कर्मचारी...” उसने तुरंत खुद को रोका — “नहीं... ये दांव नहीं खेल सकता।” एक पल में... उत्साह निराशा में बदल गया। वो चुपचाप लेट गया... आँखें बंद... लेकिन दिमाग अब भी तेज़ी से भाग रहा था। “क्या इस तरीके को छोड़ने का अफसोस करूँ...?” “या कोई दूसरा रास्ता खोजूँ...?”

कुछ देर बाद... वो उठा। रसोई में गया... और जैसे हर बार होता था... चाय बन गई। कप हाथ में लेकर वो कुर्सी पर बैठ गया। एक घूंट... फिर सोच... चाय से उठती धुंधली भाप में वो जैसे कोई रास्ता खोज रहा था। लेकिन... धुंध से उजाले तक का सफ़र कब इतना आसान रहा है...? चाय खत्म हुई। अब... पैर बिस्तर से टिके थे... सर कुर्सी से सटा हुआ... आँखें बंद... लगभग एक घंटा... वो इसी मुद्रा में बैठा रहा। अचानक... वो झटके से उठा। “Yes...! Yes...!” आँखों में चमक थी। “ये तरीका... लगभग सुरक्षित है...” “और असर... पूरा करेगा।” उस समय उसके होंठों पर उभरी मुस्कान देखने योग्य थी।

उसने बिना देर किए दोनों मोबाइल उठाए। पड़ोस का — “WiFi connect किया...” उसकी योजना में हर छोटी चीज़ की अपनी जगह थी। अब... एक मोबाइल से टाइप करता... दूसरे से जवाब देता... धीरे-धीरे... वो एक कहानी गढ़ रहा था। ऐसी कहानी... जो सच नहीं थी... लेकिन सच जैसी लगती थी। दो दोस्तों के बीच एक काल्पनिक बातचीत... पहला — “यार... रोहित के रिश्ते की जहाँ बात चल रही है ना... वहाँ के बारे में मुझे कुछ ऐसी बातें पता चली हैं... जिसके बाद लगता है कि आगे बढ़ना ठीक नहीं होगा...” दूसरा — “अच्छा...? ऐसा क्या पता चल गया...?”

इसके बाद... दोनों के बीच एक लंबी बातचीत का खाका तैयार होने लगा। बातों में... हैरानी भी थी... चिंता भी... और एक “सच्चाई” भी... जो पढ़ने वाले को सच लगने

लगे। फिर दूसरा बोला — “तो ये बात रोहित तक पहुँचानी चाहिए...” पहला — “सीधे बताएंगे तो वो मानेगा नहीं...” “कोई और तरीका सोचना पड़ेगा...” माही ने... पूरी बातचीत ऐसे बुनी... जैसे सच में दो करीबी दोस्त अपने मित्र के भविष्य को लेकर चिंतित हों। करीब एक घंटे बाद... उसने फोन नीचे रखा। एक गहरी सांस ली। “काम हो गया...” लेकिन... ये सिर्फ शुरुआत थी। वो फिर से रसोई में गया... चाय बनाई... शायद... आज हर फैसला चाय की भाप में ही पक रहा था। बाहर आया... चाँद निकल चुका था। रात अपनी पूरी जवानी पर थी... और ... एक लड़का... किसी की दुनिया बचाने के लिए मुस्तैद खड़ा था। अब... वो अपनी चाल चल चुका था। कुछ देर टहला... फिर बिस्तर पर जाकर लेट गया। इस बार... नींद जल्दी आ गई।

सुबह... वो दफ्तर नहीं गया। एक दूर के कस्बे के साइबर कैफे पहुँचा। ये भी उसकी योजना का हिस्सा था। वो कोई ऐसा सुराग नहीं छोड़ना चाहता था जो कल को उसकी मौजूदगी साबित कर सके। उसने रात वाली चैट के प्रिंट निकाले। एक लिफाफा लिया... कागज़ अंदर डाले... फिर एक छोटा सा पत्र लिखा — “आपके भले के लिए ये जानकारी भेज रहे हैं...” “सोच-समझकर फैसला करें...” “सीधे आकर भी बता सकते थे...” “लेकिन अनावश्यक उलझनों से बचने के लिए ये तरीका अपनाया है...” — आपके शुभचिंतक। लिफाफा बंद हुआ।

अब... आखिरी कदम। वो एक दूसरे गाँव के डाकघर पहुँचा। ऐसा डाकघर... जहाँ पहचान का खतरा कम हो। सबसे पहले... उसकी नजर सीसीटीवी कैमरों को खोजने लगी। कुछ नहीं दिखा। उसने राहत की सांस ली। और फिर... उसने वो लिफाफा सीधे लड़के वालों के पते पर स्पीड पोस्ट कर दिया। हर कदम... सोच-समझकर उठाया गया था। ना अपना इंटरनेट... ना अपना प्रिंटर... सब कुछ... इतनी सावधानी से किया गया था कि उसकी पहचान... सिर्फ उसी तक सीमित रहे।

अंतिम भाव

अब... चाल चल दी गई थी। लेकिन... क्या ये सच में

एक सही कदम था...? या... एक ऐसा खेल... जो आगे चलकर सब कुछ बदल सकता था...? और... उन दो काल्पनिक दोस्तों की बातचीत में ऐसा क्या था... जिसे पढ़कर शायद ही कोई परिवार आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत करता...?

ये एक रहस्य था।

शायद...

कभी ना सुलझने वाला रहस्य।

लेकिन...

एक बात साफ थी —

उन शब्दों में कुछ ऐसा जरूर था...

जो एक “सकारात्मक परिणाम” की संभावना

लगभग सुनिश्चित कर रहा था।

“खुद से पहले उसकी मंजिल”

माही जे.ई. (J.E.) रूम में अपनी कुर्सी पर सर टिकाए बैठा था। वह अपनी आँखें बंद करके पिछले दो दिनों की उस भारी मानसिक थकान को मिटाने की कोशिश कर रहा था।

अमूमन जब कोई इंसान इतनी बड़ी साजिश रचता है, तो उसका दिमाग बार-बार उसी उधेड़बुन में लगा रहता है कि "क्या होगा? खत पहुँचा या नहीं?" लेकिन माही की फितरत अलग थी। कल वाले उस 'गुमनाम खत' के बारे में न तो उसने किसी से कोई चर्चा की थी, और न ही अब वो उस बारे में फिक्रमंद था। उसे अपनी रणनीति और अपने 'हुनर' पर इतना दृढ़ विश्वास था कि वह आखिरी और इच्छित परिणाम (रिश्ता टूटने) के प्रति पूरी तरह आश्वस्त था। तीर निशाने पर ही लगेगा, यह उसका आत्मविश्वास कह रहा था।

कुछ देर सुस्ताने के बाद उसने आँखें खोलीं और मेज पर रखा अपना फोन उठाया। स्क्रीन ऑन करते ही व्हाट्सएप पर एक तस्वीर आई हुई थी।

किसी लड़की की तस्वीर।

उसके घर वालों ने भिजवाई थी।

माही के लिए अब यह कोई नई बात नहीं थी; यह लगभग उसका नित्य का कार्य बन चुका था। उम्र और समाज के तकाजे के अनुसार, घर वालों का दबाव अब दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था। हर दूसरे दिन कोई नई तस्वीर, कोई नया प्रस्ताव आता... और माही हर बार किसी न किसी बहाने से उस रिश्ते को सिरे से नकार देता। इस ज़िद की वजह से घर में क्लेश भी खूब होने लगा था। पिता की नाराज़गी और माँ की चिंताएँ अब रोज का हिस्सा बन गई थीं।

माही ने फोन की स्क्रीन पर उस तस्वीर को ज़रा ध्यान से देखा।

लड़की वाकई अच्छी थी। परिवार, पृष्ठभूमि, पढ़ाई... सब कुछ एकदम सही था। कोई भी आम लड़का इस रिश्ते को तुरंत 'हाँ' कर देता।

माही कुछ पल उस तस्वीर को देखता रहा। फिर उसने एक गहरी साँस ली, टाइपिंग पैड खोला और सीधा एक शब्द लिख कर भेज दिया— "ना"।

यह महज एक शब्द नहीं था, यह माही के भीतर पल रहे एक बहुत बड़े और खामोश 'संकल्प' की गूँज थी।

उसने अपने भीतर ही भीतर एक बेहद कड़ा और आत्मघाती फैसला कर लिया था—

"जब तक मैं 'मन' को इस स्थिति से निकालकर, उसकी पसंद और उसके मुताबिक एक सही लड़का नहीं खोज देता... तब तक मैं अपने बारे में, अपनी शादी के बारे में कुछ नहीं सोचूँगा।"

माही ने फोन वापस मेज़ पर रख दिया।

एक तरफ वह 'मन' की शादी रूकवाने के लिए साजिशें रच रहा था, और दूसरी तरफ अपनी ही शादी के लिए आए एक बेहतरीन रिश्ते को ठुकरा रहा था।

“बिना मंज़िल का मुसाफ़िर”

उसने ज्यादा समय व्यर्थ नहीं किया। अगले ही दिन से उसने अपने अभियान की शुरुआत फिर से कर दी। वो मानो भूल चुका था कि जिस लड़की के लिए वो गाँव-गाँव भटक रहा है... वो पहले भी उसके द्वारा खोजे गए योग्य लड़कों को बिना किसी ठोस कारण के ठुकरा चुकी थी। यहाँ तक कि... उसके द्वारा कहा गया वो वाक्य भी — “मैं love marriage कर लूँ...” अब उसे सिर्फ एक संयोग भर लगता था। शायद... माही ने यादों में से सब कुछ मिटा दिया था। सिवाय... अपने उस वचन के... जिसका हाल ही में उसने फिर से नवीनीकरण किया था। अब... फिर से गाँवों और शहरों की खाक छानने का उसका सिलसिला शुरू हो चुका था। पंडितों की बस्तियाँ... अब उसके लिए किसी पर्यटन स्थल जैसी हो गई थीं। हर दूसरे दिन... कहीं रिश्ता देखना... कहीं जानकारी लेना... कहीं लोगों के बीच बैठना... उसकी जिंदगी धीरे-धीरे किसी और की जिंदगी के इर्द-गिर्द घूमने लगी थी। यहाँ तक कि... वो अपनी तनख्वाह का लगभग एक-तिहाई हिस्सा भी... मन के लिए किए गए अपने संकल्प पर खर्च करने लगा था।

इसी दौरान... एक रसूखदार व्यक्ति के घर उसका लगातार आना-जाना होने लगा। उस व्यक्ति की जवान बेटी... जो CISF में Sub-Inspector थी... वो एक नौजवान के इस अजीब से जुनून को अपनी पीढ़ी की नजर से चुपचाप देख रही थी। उसे शायद हैरानी होती होगी — कि कोई लड़का... किसी लड़की के लिए इतना क्यों भटक रहा है... लड़के ढूँढता... दस में से कभी एक योग्य मिलता... तो “मन” उसे मना कर देती। और कभी... लड़के वालों को “मन” अपने मुताबिक नहीं लगती। इस तरह... बिना मंज़िल का ये सफर अपनी गति से चलता रहा। बिना ब्रेक... बिना थके... बिना यह जाने कि आखिर पहुँचना कहाँ है।

और फिर... एक दिन... अपने इसी “मिशन” से लौटते समय... वो मोबाइल में अपने WhatsApp status के views देख रहा था। कैप्टन विक्रम बत्रा का एक status... जिसे वो अक्सर लगाया करता था। लेकिन... अगले ही क्षण उसकी नजर स्क्रीन पर ठहर गई। viewers list में एक नाम था — “मन”। आज... शायद पहली बार उसने उसका status देखा था। बस... इतनी सी बात थी। लेकिन... उस एक पल में माही को ऐसा

महसूस हुआ... जैसे उस status ने अपनी सार्थकता पा ली हो। अब... उसे शायद किसी और के देखने की जरूरत नहीं थी। उस क्षण का रोमांच... सिर्फ वही महसूस कर सकता था। बेशक... वो संस्कारों की डोर से बंधा हुआ था... लेकिन... कोई पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष भी नहीं था। वो भी... एक साधारण युवक था... जिसके भीतर पुरुषत्व भी था... भावनाएँ भी... और कहीं बहुत भीतर... एक कोमल आकर्षण भी। आज बहुत देर तक... वो उसी list को देखता रहा। फिर... धीरे-धीरे वो उस आत्मानुभूति से बाहर निकला। मोबाइल जेब में रखा... और अगले दिन के कार्यक्रम के बारे में सोचने लगा। लेकिन... उसके चेहरे पर उभरी हल्की सी मुस्कान... अब भी बाकी थी।

कुछ तो है... जो दिखता नहीं

समय की चाल के साथ वो किसी आवारा बंजारे की तरह गाँवों और शहरों की दूरियां नाप रहा था। लेकिन, इन तमाम कोशिशों के बावजूद नतीजों के नाम पर उसके हाथ कुछ खास नहीं लग रहा था। कोई एक रिश्ता आगे बढ़ता, तो दूसरा कहीं अटक जाता। कहीं किसी लड़के को देखकर 'मन' मना कर देती... तो कहीं सामने वाले परिवार की कोई बात अटक जाती।

इस अंतहीन और थकाऊ सिलसिले में... धीरे-धीरे माही का अपने दफ्तर से भी नाता टूटने लगा था। उसकी गैरहाजिरी और काम में लापरवाही के चलते उसकी मेज़ पर 'स्पष्टीकरण पत्रों' (Show-cause notices) की फाइल दिन-ब-दिन मोटी होती जा रही थी। एक सरकारी कर्मचारी के लिए यह खतरे की घंटी थी। लेकिन... अब ये सब उसके लिए बहुत छोटी बातें थीं। शायद... अब उसकी जिंदगी में इस 'मिशन' से बड़ा कुछ बचा ही नहीं था।

उधर... 'मन' चुपचाप उसकी इस अथक मेहनत, पागलपन और समर्पण को देख रही थी।

भीतर ही भीतर वो फिर से वो ही सब सोचती— "कैसे कर लेता है ये इंसान इतना सब...? कहाँ से ढूँढ़ लाता है इतने लड़के...? जबकि ना इसे कोई अनुभव है, और ना ही उम्र..."

लेकिन माही इन सबसे बेखबर, बस अपने काम पर और अपने वचन पर केंद्रित रहता। पहले की तरह ही... ना वो बेवजह उसे मैसेज करता, और ना ही बात करने के बहाने ढूँढ़ता। वह अपने हिस्से का दर्द चुपचाप पी रहा था।

एक रविवार, एक फोन कॉल और एक अनकहा राज़:

हाँ... बीच-बीच में 'मन' खुद ही उससे बात कर लिया करती थी।

और फिर... एक रविवार उसका फोन आया। अंदाज़ कुछ ऐसा था जैसे वो किसी 'प्रगति रिपोर्ट' (Progress Report) के लिए कॉल कर रही हो।

"हैलो..."

"कहाँ हो सर...?" मन की आवाज़ में हमेशा की तरह एक उतावलापन था।

"मैं एक गाँव में आया हुआ हूँ..."

"ओके... आप कहाँ हो?" माही ने पूछा।

"मैं मामा के यहाँ से लौट रही हूँ... बस में हूँ।"

"अच्छा..."

"और बताओ सर...?"

"और तो कुछ नहीं... उस आर.पी.एफ. (RPF) वाले लड़के ने भी मना कर दिया है।" माही की आवाज़ में स्पष्ट निराशा थी।

"ओह हो"

फिर... बस के शोर के बीच वो बहुत ही हल्के और बेपरवाह स्वर में बोली—

"नो प्रॉब्लम सर (No problem sir)... वैसे भी... अब एक-एक करके इन सब से मना ही तो करवाना है..."

"ए...!" माही के मुँह से एकदम से एक हतप्रभ आवाज़ निकली। उसके कदम वहीं ठिठक गए। "क्या मतलब...?" उधर... जैसे उसे एहसास हो गया हो कि बातों ही बातों में उसके मुँह से कुछ बहुत ही गहरा और अनकहा सच फिसल गया है।

"अरे... कुछ नहीं... कुछ नहीं..." उसने हड़बड़ाहट में जल्दी से बात मोड़ दी।

"आप टाइम से घर आ जाना... और कुछ खा लेना। मुझे पता है... आप इस तरह की भागदौड़ में बाहर पानी भी नहीं पीते... अब ऐसा नहीं होना चाहिए। और हाँ... घर पहुँचकर मुझे मैसेज कर देना।"

माही अभी भी उस पिछले वाक्य के सदमे में था। वह कुछ पूछना चाहता था—

"लेकिन आप..."

"कुछ नहीं... फोन रखती हूँ, बस में बहुत भीड़ है। ओके... बाया।"

इतना कहकर उसने फोन काट दिया।

लेकिन... फोन कटने के बाद भी माही के कानों में अब भी वही एक वाक्य गूँज रहा था—

"एक-एक करके... इन सब से मना ही तो करवाना है..."

वह बीच सड़क पर खड़ा कुछ पल मन के उस वाक्य को सोचता रहा। फिर... धीरे से खुद से बड़बड़ाया—

"आखिर... ये लड़की ऐसे झटके क्यों देती है...? क्या है इसके भीतर...? 'एक-एक करके'...? मतलब वो जानबूझकर ये सब करवा रही है?"

नहीं... कुछ तो ऐसा था जो उसकी नज़रों से ओझल था। या शायद... वो खुद ही उस हकीकत को देखना नहीं चाहता था। उस एक वाक्य ने... माही के भीतर सैकड़ों सोए हुए सवाल जगा दिए थे।

वह वाक्य... मानो कोई पूरी की पूरी रहस्यमयी किताब हो।

लेकिन... माही उस किताब को पढ़ने की बजाय... बस घबराहट में उसके पन्ने पलटता जा रहा था।

अध्याय - 90

“चाँद, तारे... और वो”

काफी दिनों बाद... माही को अपने “मिशन” से थोड़ी फुर्सत मिली और उसने दफ्तर का रुख किया। आधा दिन तो स्पष्टीकरण पत्रों के जवाब देने में ही निकल गया। एक तरफ नौकरी... दूसरी तरफ एक ऐसा संकल्प... जिसने उसकी पूरी दुनिया घेर ली थी। इसके बाद... उसने “मन” के किसी एजाम के लिए NOC तैयार की। फिर... वो अपने ठिकाने पर जाकर बैठ गया। साथ में उसका एक करीबी दोस्त भी था। दोनों हल्की-फुल्की बातें कर रहे थे। तभी... माही ने यूँ ही मोबाइल खोला। Status section... जिसमें उसकी वैसे भी ज्यादा दिलचस्पी नहीं रहती थी। लेकिन... उस दिन ना जाने क्यों उसकी उंगलियाँ वहीं ठहर गईं और फिर... जो उसने देखा... वो उसकी कल्पनाओं से भी परे था।

शेरशाह फिल्म का एक रोमांटिक वीडियो... कैप्टन विक्रम बत्रा और डिंपल चीमा के किरदार में सिद्धार्थ मल्होत्रा और कियारा आडवाणी... पृष्ठभूमि में एक बेहद खूबसूरत गीत... उस पल ने... माही की आँखें एक बिंदु पर स्थिर कर दी। दिल... मानो सीने से बाहर निकल आना चाहता हो। “ये...?” वो खुद... अक्सर कैप्टन विक्रम बत्रा के status लगाया करता था। और आज... “मन” ने...! एक साथ अचरज... रोमांच... संदेह... और अनगिनत भाव... उसके भीतर पल्लवित हो उठे। वो उन्हीं भावों के समुद्र में डूबता-उतराता रहा। और कब... घड़ी में ५ बज गए... उसे तब पता चला जब दफ्तर के कमरे लॉक होने लगे।

खैर... वो घर लौटा। खाना खाया... और फिर... छत पर टहलने चला गया। जैसे दफ्तर में एक अद्भुत दृश्य उसका इंतजार कर रहा था... जो अभी भी उसके साथ घूम रहा था.... वैसे ही... आज रात आसमान भी मानो कोई रहस्य समेटे बैठा था। थोड़ी देर बाद... उसकी नजर पश्चिम दिशा में खड़े नीम के पेड़ के ऊपर गई। चाँद... और उसके पीछे तीन तारे... एक सीधी रेखा में। क्या खूबसूरत दृश्य था... शब्दों के बखान से बहुत दूर। वो काफी देर तक उसे निहारता रहा। फिर... उसने मोबाइल निकाला... एक तस्वीर ली... वो उस दृश्य को आंख के किसी कोने में हमेशा के लिए सजा लेना चाहता था... और फिर अचानक... जैसे किसी भाव ने उसकी उंगलियों को पकड़ लिया हो। उसने तस्वीर चुनी... और सीधे “मन” को भेज दी। “Tonight... beautiful view.”

ये पहली बार था... जब उसने बिना किसी काम... रात के समय उसे कोई संदेश भेजा था। मानो की कोई बहाना मिला हो... लेकिन ऐसा था नहीं... मैसेज भेजने के कुछ ही पल बाद... उसे जैसे होश आया। "अरे... ये मैंने क्या कर दिया...?" "एक लड़की को... बिना किसी वजह... रात ९ बजे message..." हालाँकि... काम के सिलसिले में उनकी बातचीत की समय-सीमा अब पहले जैसी कठोर नहीं रही थी... फिर भी... आज उसे खुद में कुछ अलग महसूस हो रहा था। जैसे... पूरा दिन ही थोड़ा "romantic" हो गया हो। सुबह... वो status... और अब... ये चाँद।

तभी... मोबाइल की light जली और चांदनी में समा गई।

— "हाँ... मैंने देखा..." "सचमुच बहुत खूबसूरत है..." Wonderful..... Unbelievable

"लेकिन..." "अब बड़ा तारा दूर जा चुका है..." "और दो छोटे तारे और नजदीक आ गए हैं..." उसने बताया.. माही ने तुरंत आसमान की तरफ देखा। सचमुच... क्रम टूट चुका था। जो बड़ा तारा था... वो अब दूर जा चुका था... और छोटा दिखने लगा था। जबकि... दो छोटे तारे अब और करीब आकर बड़े प्रतीत होने लगे थे। कई देर तक... माही बस उस दृश्य को देखता रहा। लेकिन... क्या तारों की ये दूरी और नजदीकी सिर्फ एक खगोलीय संयोग थी...? या... किसी भविष्य के गर्त में छुपा कोई संकेत...? वो जवाब नहीं जानता था। फिर भी... उसकी आँखें अब भी दूर जाते उस तारे को निहार रही थीं... और... दिल... धीरे-धीरे नजदीक आते चाँद को महसूस कर रहा था।

अध्याय - 91

“दो पाउच”

आज वो घर पर अलमारी खोले खड़ा था। कपड़े एक-एक कर निकालता, साइड में रखता जाता। ऊपर की शेल्फ। फिर नीचे की दराज़। पर वह चीज़ जिसे वह खोज रहा था, उसे नहीं मिली। “क्या ढूँढ़ रहे हो बेटा?” माँ की आवाज़ रसोई से आई। “नहाओगे नहीं? खाना तैयार है, देर हो जाएगी।” “हाँ... आता हूँ” उसने अलमारी बंद कर दी। जैसे खोज भी बंद कर दी हो। कुछ देर बाद नहा-धोकर, खाना खाकर वह ऑफिस निकल गया। आज काम कम था। जो था, निपटा दिया। फिर कुर्सी की टेक से सिर टिकाकर आँखें बंद कर लीं।

और स्मृति ने धीरे-धीरे एक दृश्य खोला। कुछ दिन पहले की बात। ऑफिस में ग्रीन टी का कप हाथ में था। तभी मन आई।

“अरे Sir, ग्रीन टी पीते हो आप?”

“हाँ...

क्यों?”

“कुछ नहीं... मुझे अच्छी नहीं लगती।”

“तो?”

“हमारे घर पर ५० पाउच लाए थे... सिर्फ २ इस्तेमाल किए। बाकी पड़े हैं।” “उन्हें यहाँ ले आना।” माही ने तुरंत कह दिया था। बिना सोचे। उसे खुद नहीं पता था क्यों उसने ऐसा कहा। कुछ दिन बाद मन सच में ले आई। उसने ऑफिस में ग्रीन टी पी। लेकिन दो पाउच चुपचाप अपने बैग में रख लिए। ये सोच कर कि “छुट्टी वाले दिन घर पर काम आएँगे।”

घर आकर उन्हें अलमारी में रख दिया था। उसे याद है— बिल्कुल साफ़। पर आज वे वहाँ नहीं थे। आँखें बंद किए हुए उसे लगा— वह दो पाउच बस ग्रीन टी नहीं थे। वे एक क्षण थे। एक साझा अहसास। एक अनायास निकला वाक्य। क्या वह सच में पाउच खोज रहा था? या वह उस स्मृति को पकड़कर रखना चाहता था? उसे पता ही नहीं चला कब हल्की-सी नींद आ गई। आँख खुली तो घर जाने का समय हो चुका था।

अगले दिन फिर ऑफिस आया। काम लगभग नहीं था। क्षण भर के लिए उसने सोचा— “नहीं मिले तो कोई बात नहीं।” फिर मन ने पलटकर पूछा— “तो फिर खोज क्यों रहा था?” वह चुप रहा। हर बार की तरह इस बार भी कोई स्पष्ट उत्तर नहीं था। लेकिन उसने तय किया— आज फिर खोजूँगा। क्यों? यह प्रश्न अब भी अनुत्तरित था। और शायद उसी प्रतीक्षारत प्रश्न में कहानी की असली दिशा छिपी थी।

“कचरे में रखी स्मृति”

शाम को घर लौटा तो सीधा उसी कोने में गया जहाँ अलमारी रखी थी। बिना समय गँवाए अलमारी खोली। एक-एक कपड़ा हटाया। दराजें खंगालीं। ऊपरी शेल्फ तक हाथ बढ़ाया। पर वे नहीं मिले। उसी समय माँ की आवाज़ आई — खाना के लिए। वह चुपचाप गया। खाना खाया। पर मन कहीं और था। खाना खत्म होते ही वह फिर अलमारी के पास पहुँच गया। इस बार बेचैनी थोड़ी अधिक थी। आखिर माँ ने पूछ ही लिया — “ऐसा क्या नहीं मिल रहा जिसके लिए इतने परेशान हो?” उसने सहज बनने की कोशिश की। “दो ग्रीन टी के पाउच थे...” “अरे वो? मैंने सफाई करते समय बेकार समझ कर कुरड़ी वाले कचरे में फेंक दिए।”

वह स्तब्ध रह गया। “ये आपने क्या किया? वो बेकार नहीं थे...” उसकी आवाज़ में अनजाना आग्रह था। माँ ने साधारण भाव से देखा। उसे स्वयं भी समझ नहीं आया कि वह इतना व्याकुल क्यों हो उठा। रात को खाट पर लेटा। नींद... आ ही नहीं रही थी। आँखें बंद करता तो वही दो पाउच सामने आ जाते। छोटे-से, हल्के-से। पर गहरा भाव लिए। घड़ी में 11 बजे। अचानक वह उठ बैठा। गेट खोला। और बिना कुछ सोचे सीधा कुरड़ी की ओर चल पड़ा। रात झींगूरो को सुन रही थी। गाँव के बाहर का हिस्सा रात की सुहानी ठंडक में डूबा हुआ। एक हाथ में टॉर्च। दूसरे से कचरे को हटाता हुआ। गोबर, सूखी पत्तियाँ, प्लास्टिक के टुकड़े। आधा घंटा बीत गया। हाथ गंदे। कपड़े मैले। पर वह रुका नहीं। फिर — टॉर्च की रोशनी में कुछ चमका। प्लास्टिक की झिल्ली पर रोशनी पड़ी। और तभी उसका चेहरा भी हल्का-सा चमक उठा। वही थे। दो पाउच। गोबर और कचरे में सने हुए।

उसने उन्हें सावधानी से निकाला। बिना हाव भाव के बस देखता रहा। और जाने कब वे हाथ सीधे उसके सीने से लग गए। जैसे वह किसी वस्तु को नहीं, किसी स्मृति को बचा लाया हो। घर लौटा। उन्हें अच्छी तरह धोया। साफ किया। सूखने दिया। उसके बाद इत्र से महकाया और फिर ऐसी जगह रख दिया जहाँ लोग अपनी सबसे बेशकीमती यादें सँजोते हैं। पर क्यों? वो स्वयं नहीं जानता था, लेकिन एक बात स्पष्ट थी — जो चीज़ बाहर से बेकार लगती है, वह भीतर से किसी के लिए अनमोल हो सकती है। और माही अब इस सच्चाई से अनजान नहीं रहा था।

“पिघलती बर्फ... और एक नया रास्ता”

धीरे-धीरे... जमी हुई बर्फ पिघलने लगी थी। दूरियाँ... शायद अब पहले जैसी नहीं रहीं। स्वयं पर लगाया गया नियंत्रण भी धीरे-धीरे टूटता प्रतीत हो रहा था। लेकिन... जिस दायित्व को माही ने अपने कंधों पर उठाया था... वो अब पहले से कहीं ज्यादा जटिल हो चुका था। लगभग... उसके तरकश के सारे तीर खत्म होने लगे थे। जान-पहचान... रिश्तेदारी... पारंपरिक तरीके... अपारंपरिक रास्ते... वो सब आजमा चुका था। आस-पास से लेकर दूर-दराज तक... हर योग्य लड़के को लगभग देख चुका था। लेकिन... बात कहीं भी बनती दिखाई नहीं दे रही थी। और इसी बीच... फुर्सत के पलों में “मन” का वो वाक्य — “एक-एक करके...” उसे भीतर तक रोक देता। अब उसे धीरे-धीरे साफ महसूस होने लगा था कि... वो चाहे जितना खुद को नकारे... कहीं ना कहीं... “मन” उसे एक मौन आमंत्रण दे रही है। क्योंकि... माही कोई सतही सोच वाला व्यक्ति नहीं था। इतनी सूक्ष्म बातों को ना समझ पाना... उसकी प्रकृति के साथ अन्याय होता।

फिर भी... ये सब अभी सिर्फ अनुमान थे। इसलिए... वो खुद को पूरी तरह आश्वस्त भी नहीं कर सकता था। और वैसे भी... दिल के रिश्तों में विवेक कब शून्य हो जाए... पता ही नहीं चलता। शायद... माही खुद इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण था। वरना... एक नौकरीपेशा व्यक्ति... क्यों किसी ऐसे बोझ को ढोता... जिसे दुनिया फिजूल समझती हो...? वो भी... बिना किसी बाहरी स्वार्थ... बिना किसी निश्चित परिणाम के। कुछ देर... वो इन्हीं भीतरी विचारों में डूबा रहा। फिर... जैसे अचानक वास्तविकता ने उसे वापस बुला लिया। "अब... मुझे इन सबके साथ-साथ कुछ अलग भी करना होगा..." "लेकिन क्या...?"

रात के लगभग 11 बज चुके थे। कुछ ही देर बाद... तन्हाई के हमसफर का साथ... और आराम कुर्सी पर पीछे टिका उसका सिर। ऐसे माहौल में... उसके दिमाग में कोई idea ना आए... ये लगभग असंभव था। अचानक... वो उठा। चेहरे पर मद्धम चमक उभर आई। उसने लैपटॉप उठाया। एक matrimonial website खोली, फिर... plan select

किया। Online payment की... और... “मन” का biodata upload कर दिया। लेकिन... एक चीज़ जानबूझकर छोड़ दी — फोटो। वजह...? बताने की आवश्यकता नहीं है। ये काम वो पहले भी कर चुका था लेकिन इस बार उन्नत तरीके से। भुगतान के साथ। उसके चेहरे पर एक सुकून दिखाई दिया। फिर... कूलर की ठंडी हवा... और भीतर पलती मधुर कल्पनाएँ... इन सबने मिलकर धीरे-धीरे उसे नींद की दुनिया में पहुँचा दिया।

“तलाश... जो खत्म ही नहीं होती”

अब... माही की रूटीन और ज्यादा बिखर चुकी थी। सुबह नौकरी... दिनभर भागदौड़... और रात होते-होते matrimonial sites की दुनिया। वो हर रोज नई profiles देखता... अपनी समझ के अनुसार लड़कों को परखता... और फिर पसंद आने पर संपर्क करता। इन सब में... वो बेहद सतर्कता बरतता। साथ ही... परम्परागत तरीके से गाँव-शहर की दौड़ भी जारी थी। कुछ ही दिनों बाद... उसे एक लड़के का profile पसंद आया। उसने वो profile “मन” को भेजा। इस बार... उधर से भी सकारात्मक जवाब आया। पहली बार... उसे लगा कि शायद अब बात आगे बढ़ सकती है। इसके बाद... उसने लड़के की बड़ी बहन से संपर्क किया। घर में वही मुख्य निर्णयकर्ता थी। लेकिन... अब “मन” की बेचैनी बढ़ने लगी थी। वो बार-बार कहने लगी — “आप जाकर लड़का देख कर आओ...”

माही ने समझाया — “अभी बहुत गर्मी है... थोड़ा मौसम ठंडा हो जाए...” लेकिन... हर बार की तरह इस बार भी “मन” जिद पर अड़ गई। आखिरकार... उसे झुकना पड़ा। हालाँकि... उसने पहले कोशिश करी कि उसके घर वाले पहले खुद अपने स्तर पर बात करे— लेकिन... “मन” ने साफ कहा — “नहीं... पहले आप ही जाकर देखो...” अब... क्या करता? उसे उस तपती गर्मी में भी निकलना पड़ा। दिल्ली पहुँचकर... उसने लड़के की बहन द्वारा दिया गया office address खोजा। लेकिन... वहाँ उस नाम का कोई कर्मचारी था ही नहीं। उसकी बहन का फोन भी switch off आ रहा था। कुछ देर तक... वो सड़क पर खड़ा बस देखता रहा — “अब क्या करूँ...? क्या जवाब दूँगा...? कि मैं लड़के तक पहुँच ही नहीं पाया...?”

उसे लगा वापस लौट जाए। लेकिन... फिर वही जिद। वही संकल्प। उसने फिर कोशिश शुरू की। सीधा झंडेवाला न स्थित जल बोर्ड के मुख्यालय “वरुणालय” पहुँचा, यहाँ दिक्कत और भी ज्यादा थी इतने बड़े ऑफिस में सिर्फ नाम के आधार पर किसी कर्मचारी तक पहुँचना लगभग असंभव था। पर कुछ तो करना ही था। इस बार... अपने नौकरी के अनुभव का सहारा लिया। सीधा allocation branch पहुँच गया। वहाँ... किसी कर्मचारी के बारे में सिर्फ नाम के आधार पर जानकारी निकालना आसान नहीं था। ऊपर

से... designation भी नहीं पता। कभी इधर... कभी उधर... काफी मशक्कत के बाद... आखिर उसने लड़के की posting का पता निकाल ही लिया। अब... वो सीधे उस लड़के तक पहुँच गया। बात हुई... पूछताछ हुई... देखना-समझना हुआ... और देर रात... थका-हारा घर लौटा। घर पहुँचते ही... खाने से पहले घर वालों की डाँट उसका इंतजार कर रही थी। लेकिन... अब उसे इन सबकी आदत हो चुकी थी।

अगली सुबह... उसने सारी जानकारी “मन” को दी। नंबर भी भेजा। और कहा — “अब आगे की बात आप लोग करो...” दो दिन बाद... उसने “मन” से पूछा — “क्या हुआ...?” उसने बताया — “लड़के की बहन बहुत तेज है... घर में उसका ज्यादा interfere रहेगा... इसलिए... मैं नहीं...” उधर... लड़के की बहन ने भी “मन” के व्यवहार में कमियाँ निकाल दी थीं। और... बात वहीं रुक गई। कुछ पल की निराशा... फिर वही गहरी सांस... लेकिन... इस बार भी उसने खुद को संभाल लिया। और फिर... हल्की सी मुस्कान के साथ बोला — “कोई नहीं...” जैसे... वो अब हार का भी अभ्यस्त हो चुका था।

“रात, चाय और सिर्फ तुम”

अगले दिन सुबह उसकी आँख खुली तो सबसे पहले उसने मोबाइल उठाया। स्क्रीन पर एक नया संदेश अभिवादन दे रहा था। संदेश उस CISF वाली लड़की (आकृति) के पिता का था। उन्होंने उसे मिलने के लिए बुलाया था। वह बिना देर किए तैयार हुआ और निकल पड़ा। मुलाकात औपचारिक थी, कुछ देर बातचीत के बाद वे दोनों असली काम से बाहर निकल गए। रास्ते भर इधर-उधर की बातें होती रहीं। दोपहर को एक घर में दस्तक दी; लड़के, उसके परिवार, माहौल और हर सदस्य को ध्यान से देखा/परखा। शाम तक ये दौर चलता रहा। लड़के वालों ने सोच-विचार कर जवाब देने की बात कही और फिर दोनों वापस घर आ गए। लौटते समय उसके मन में एक संतुलित-सा विचार था— “आदमी तो ठीक लग रहे हैं।”

थोड़ी देर बाद वह लड़की भी अपनी ड्यूटी पूरी करके घर पहुँची। कपड़े बदलकर उसने रसोई में जाकर चाय बनाई और ट्रे में तीन कप रखकर लॉबी में ले आई। उसी समय माही उसके पिता को दिल्ली वाला किस्सा सुना रहा था। वह किस्सा, जिसमें धक्के थे, संघर्ष था, भटकन थी और थोड़ी-सी किस्मत भी। लॉबी के दरवाजे पर खड़ी लड़की चुपचाप उसकी बातें सुनती रही। वह हैरान थी— ये इंसान कर क्या रहा है? और उससे भी बड़ी बात, क्यों? कुछ बातें सुनकर उसके होंठों पर अनायास मुस्कान बिखेर जाती। इसके बाद वो कप उठाने फिर से लॉबी में आई। माही ने उसे ठीक से देखा भी नहीं। लेकिन लगातार उस घर में आने के कारण दोनों एक-दूसरे से बहुत समय से परिचित थे। शाम ढलने को थी, अब लौटने का समय था। बस स्टैंड तक छोड़ने की जिम्मेदारी आकृति ने अपने ऊपर ले ली। स्कूटी सड़क पर धीमी रफ्तार से चल रही थी। हवा में तपन अब भी थी। दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई। कभी-कभी खामोशी भी अपना परिचय खुद दे देती है, खास कर जब वो एकतरफा हो। बस स्टॉप पर पहुँचकर उसने उसे उतारा। “ठीक से जाना।” “हाँ।” बस इतना ही। इतने में बस भी आ गई। खिड़की से पीछे छूटती सड़क को देखते हुए उसने एक बार मुड़कर देखा। स्कूटी अब भी वहीं खड़ी थी। फिर धीरे-धीरे औझल हो गई। जब वह घर पहुँचा। तो रात काफी हो चुकी थी। थकान शरीर को तोड़ रही थी। उसने कपड़े बदले और जैसे ही बिस्तर पर लेटा, मोबाइल ने रोशनी बिखेरी। मन का एक संदेश। उसके

साथ एक बायोडाटा, एक पहचान पत्र की फोटो और एक ऑफिस ऑर्डर। संदेश में लिखा था— “मेरे एक जानकार अंकल ने भेजा है। लड़का राजस्थान में हॉकी कोच लगा हुआ है।” माही ने दस्तावेज ध्यान से देखे। फिर उसके चेहरे पर मंद मुस्कान तैर गई। “अगर नियमित नौकरी है तो इतने सबूत भेजने की क्या जरूरत है?” उसका माथा थोड़ा सिकुड़ा। दाल में कुछ काला था। उसने लैपटॉप खोला। रात और गहरी होती गई। एक के बाद एक वेबसाइट, एक के बाद एक नए पुराने नोटिफिकेशन। करीब आधे घंटे की मशक्कत के बाद उसे पहली जानकारी मिली— राजस्थान में खेल प्रशिक्षकों की नियमित भर्ती हुए लगभग दस साल हो चुके थे। “अच्छा...”

वह कुर्सी पर थोड़ा पीछे टिक गया। लेकिन बात अभी पूरी नहीं हुई थी। थोड़ी और खोजबीन के बाद एक और जानकारी सामने आई। करीब छह महीने पहले पाँच सौ कोच संविदा पर रखे गए थे। तो सच ये है.... अब उसके चेहरे पर मुस्कान नहीं पूरी हंसी थी। “उम्फ्र... लोग शादी के लिए क्या-क्या नहीं करते।” उसने सिर हिलाया। “जब कॉन्ट्रैक्ट पर हो तो परमानेंट बनाने की जरूरत ही क्या है?” पर क्या करे! देश के युवाओं के लिए बेरोजगारी के बाद शादी ही बड़ा संकट है, खैर लैपटॉप बंद हो गया।

घड़ी ने बारह बजा दिए थे। उसने एक लंबी साँस ली। “अब तो चाय पीनी ही पड़ेगी।” फिर खुद ही मुस्कराया। “सुबह की कहीं या रात की?” वह बाहर आँगन में आ गया। रात शांत थी। बहुत शांत। दूर बिजली की केबल पर बैठे एक उल्लू की आँखें रोशनी पड़ते ही चमक उठीं। क्षण भर को ऐसा लगा जैसे वह उसे घूर रहा हो। मानो कह रहा हो— “भाई, रात काफी हो गई है। अब सो भी जा।” माही हँस पड़ा। ठीक उसी समय, सुदूर खेतों की ओट से उठते किसी गीत के मद्धम स्वर बयार के झोंकों के साथ तैरते हुए वहाँ तक चले आए— “पहली पहली बार मोहब्बत की है...” आवाज़ बहुत धीमी थी। लेकिन रात के स्याह शोर में साफ सुनाई दे रही थी। उसने चाय खत्म की और वापस कमरे में आ गया। बिस्तर पर लेटते ही उसने तक्रिए को बाँहों में भर लिया। उस से बहुत दूर वही गाना अब भी बज रहा था। और न जाने क्यों उसे लगा जैसे हर शब्द उसी से बात कर रहा हो। उसने आँखें बंद कर लीं। मन के किसी कोने से एक पंक्ति उभरी— “काश मेरा दिल भी कोई कागज़ का टुकड़ा होता... रात को तेरी बाँहों में तक्रिए के नीचे सोता...” उसके होंठों पर उभरी खुशी मानो लफ़्ज़ बन कर बाहर आने को आतुर हो। तक्रिया उसकी बाँहों में था। और उसकी कल्पनाओं में...

सिर्फ वो।

अध्याय - 96

“कच्चे आम का सतू”

अगले दिन... माही ने सारी जानकारी “मन” को बता दी। लेकिन... उसे पहली बार में यकीन नहीं आया। “नहीं...” “वो uncle झूठ नहीं बोल सकते...” माही ने शांत स्वर में जवाब दिया — “मैं भी किसी को झूठा नहीं कह रहा... लेकिन... मेरे सामने जो निकल कर आया... वही बताया है आपको...” कुछ पल... उधर ठहराव सा रहा। फिर “मन” ने धीरे से लिखा — “अब मैं क्या बताऊँ... चलो... ठीक है... जैसा आपको सही लगे...” माही ने ज्यादा बात बढ़ाना उचित नहीं समझा। उसने WhatsApp बंद कर दिया। दोपहर को... अचानक उसका मैसेज आया। “Sir...” “हाँ Mam...” अब तक भी... उन दोनों का रिश्ता इन्हीं दो शब्दों के बीच कहीं ठहरा हुआ था। “मन” ने बिना भूमिका बांधे कहा — “आप एक बार उनके गाँव जाकर आओ ना... वहाँ सब clear हो जाएगा...” माही कुछ बोलना चाहता था — “हाँ... लेकिन...” “लेकिन-वेकिन कुछ नहीं... आप जाकर आओ बस... इसके अलावा... आपको सब ठीक लग रहा है ना...? कहीं बाद में फिर आप मना ना कर दो...” माही ने थोड़े गंभीर भाव से पूछा। “अरे... सब सही हुआ... तो क्यों ही मना करूँगी...” और फिर... उसने एक मुस्कराती हुई emoji भेज दी। “सही और गलत की खोज में ही तो भेज रही हूँ तुम्हें...” सेकंड भर में ही... जैसे उसे अपनी गलती का एहसास हुआ हो। “Sorry... मतलब... आपको...”

माही ने धीमे से लिखा — “दो दिन बाद जाऊँगा...” उधर से हुक्म आया — “नहीं... कल...” फिर उसी जिद्दी लहजे में — “देखो... अब बोल दिया तो बोल दिया...” माही ने हार मानते हुए लिखा — “Okay Ma’am...” कुछ पल बाद... फिर message आया — “अच्छा सुनो...” “हाँ...” “कच्चे आम का सतू लाई हूँ... पीना है...?” माही ने तुरंत मना किया — “नहीं...” “क्यों...?” “बस... पूरे दिन चाय का वहम रखा करो...” एक हल्की झिड़की आई — “गर्मी है... पी लो... अच्छा रहेगा...” “नहीं... आप पियो...” “हाँ-हाँ... मैं भी पी लूँगी...” फिर कुछ मिनट बाद... एक ऐसा message आया... जिसने माही के भीतर हलचल पैदा कर दी। “रुको... मैं JE Room

में रखकर आती हूँ...” इस बार... माही मना नहीं कर पाया। बस इतना ही लिख सका — “कोई देख लेगा तो...?” “

में ध्यान रखूँगी...” और फिर... chat बंद हो गई। कुछ देर बाद... एक छोटा सा message आया — “रख दिया...” माही ने जवाब दिया — “Okay... मैं उठा लूँगा...”

ये पहली बार था... जब वो उसके लिए घर से कुछ बनाकर लाई थी। कुछ देर बाद... माही JE Room में गया। टेबल के कोने पर वो बोतल रखी थी। उसने धीरे से उठाया... जैसे कोई बहुत कीमती चीज़ छू रहा हो। फिर... बैठकर कुछ देर उसे बस देखता रहा। कच्चे आम की हल्की खुशबू... और बोतल पर जमी ठंडक... उस पर मन के अहसास की महक — ये सब जैसे उसकी उंगलियों से होते हुए सीधे दिल तक उतर रहे थे। उसने एक घूंट लिया। और उसी पल... उसके भीतर एक मदहोश सिरहन दौड़ गई। जैसे... किसी ने चुपके से उसके सूखे हुए मन पर पानी की पहली बूंद रख दी हो। हर घूंट के साथ... वो कुछ सोचता। “आज... आज क्या इच्छा हुई इसकी...?” “क्या ये सिर्फ सतू है...? या... उसमें कुछ और भी घुला है...?” शायद... अपनापन। शायद... चिंता। या फिर... वो भाव... जिसे दोनों समझते तो थे... लेकिन अहसास से बाहर नहीं निकालना चाहते थे। माही शायद सब समझकर भी अनजान बने रहना चाहता था। लेकिन... इस बार सचमुच... वो एक अलग ही धारा में बह रहा था।

कुछ देर बाद... उसने हिम्मत कर एक छोटा सा message भेजा — “Thanks...” उत्तर में मिला — “Huppp...” स्क्रीन कब की स्थिर हो चुकी थी, पर माही की दृष्टि अब भी वहीं अटकी थी। मानो शब्द आगे बढ़ चुके हों और मन अभी भी उसी पंक्ति में अटका हो। फिर... एक और message आया — “करीबी लोगों को... thanks नहीं बोला जाता...” उसके होंठों पर धीरे-धीरे एक अहसास उभरा। लेकिन सिर्फ इतना ही लिख पाया — “Okay...”

“रात, रास्ते... और दो दिशाओं में बंटता मन”

अगले दिन... माही सुबह जल्दी उठ गया। क्योंकि... “हुक्म” की पालना जो करनी थी। घर वालों से उसने वही पुराना बहाना कहा — “आज आने में देर हो सकती है... ऑफिस में काम थोड़ा ज्यादा है...” इतना कहकर वो निकल पड़ा।

रास्ते में ही “मन” का message आ गया — “कहाँ हो...?”

“जा रहा हूँ वहाँ...” “Okay...”

“गाँव का नाम तो मैंने बताया ही नहीं...”

माही ने कोमलता के भाव को समेट कर कहा — “लेकिन मुझे पता है...”

उसने हैरानी से पूछा। “कैसे...?”

— “वैसे ही...”

“अरे... सही में बताओ ना... आपको कैसे पता चला...?”

“आपने जो ID card भेजा था... उसी में था...”

कुछ पल बाद... एक लंबा okay आया — “Smart Boy...” साथ में एक हँसती हुई emoji... और कुछ शरारती GIFs। वो बस उन्हें देखता रहा। उसे समझ नहीं आया... इन GIFs को देखकर वो वहीं रुक जाए... या फिर आगे बढ़े। “मैं सच में... इसे समझ नहीं पा रहा...”

खैर... जैसे-तैसे वो अपने ठिकाने तक पहुँचा। वो राजस्थान का एक छोटा सा गाँव था। वहाँ पता चला कि लड़के का परिवार दो किलोमीटर पीछे एक ढाणी में रहता है। अब... उसे फिर पैदल निकलना पड़ा। धूप... गर्मी... धूल... लेकिन... अब इन चीजों का उस पर कोई असर नहीं पड़ता था। गाँव पहुँचकर उसने पूछताछ की। सभी ने लड़के को “पक्का” बताया। लेकिन... माही के भीतर का संदेह अब भी पूरी तरह शांत नहीं हुआ था। उसने घर की तस्वीर ली। वो अक्सर “मन” को लड़कों के घरों की तस्वीरें भेजता था।

आज भी ली... लेकिन इस बार तुरंत नहीं भेजी। फिर... ना जाने उसके मन में क्या आया।
"एक बार शहर जाकर... खेल अधिकारी से भी पता कर लेता हूँ..."

शहर... करीब ६० किलोमीटर दूर था। लेकिन... अब दूरियाँ उसके लिए मायने नहीं रखती थीं। किस्मत ने साथ दिया। कुछ दूरी पर स्टेशन था... और ट्रेन भी मिल गई। करीब डेढ़ घंटे बाद... वो चरू पहुँचा। स्टेशन से ऑटो लिया... और सीधे सैनिक बस्ती स्थित चरू जिला खेल स्टेडियम पहुँच गया। वहाँ... किसी event की तैयारी में Army की movement चल रही थी। काफी request के बाद एक Colonel ने उसे अंदर जाने दिया। भीतर... वो खेल अधिकारी के कार्यालय पहुँचा। कंप्यूटर ऑपरेटर से बात की... सिस्टम check किया... और धीरे-धीरे... सारी तस्वीर साफ होने लगी। लड़का... वास्तव में contract basis पर ही था। कुछ देर बाद District Sports Officer Madam भी आ गईं। उन्होंने भी वही बात confirm कर दी। अब... माही के चेहरे पर एक संतुष्टि थी। जैसे... एक और भ्रम का पर्दा हट गया हो।

लेकिन... घड़ी में शाम के ४ बज चुके थे। अब... उसे वापसी की चिंता सताने लगी। बसों में धक्के खाते... लटकते-पटकते... रात के करीब ९ बजे वो अपने इलाके तक पहुँचा। यहाँ से उसका गाँव अभी ३ किलोमीटर दूर था। रात में कोई साधन नहीं था। इसलिए... वो खेतों वाले रास्ते से पैदल ही निकल पड़ा। रात... पूरी तरह खिली हुई थी। लेकिन... गर्मी कुछ देर चलने के बाद... वो एक कुएँ पर रुका। पानी पिया... और वहीं कुछ देर बैठ गया। तभी... उसका फोन बजा। उसे लगा... "मन" का होगा। लेकिन... number unknown था। "Hello..." उधर से एक लड़की की आवाज आई — "मैं आकृति बोल रही हूँ... सूबेदार जेरावत सिंह की लड़की" सूबेदार साहब का नाम सुनते ही वो समझ गया। वो CISF वाली लड़की थी। "जी कहिए..." "मेरा नंबर आपके पास...?"

पापा ने दिया है..." उसने बताया, "उन्होंने आपके लिए... एक लड़की की photo और details भेजी हैं... उनका phone खराब है... इसलिए मैंने भेज दी... थोड़ी देर बाद बताना..."

इतना कहकर उसने फोन काट दिया। माही ने बेमन से profile खोली। कुछ सेकंड देखा... और फिर मोबाइल जेब में रखकर चलने लगा। तभी... फोन फिर बज उठा।

"हाँ जी... बताओ..."

“ठीक है...?”

मैं घर जाकर बताता हूँ... अभी कहीं से आने लग रहा हूँ...”

“अरे... इतनी रात...?”

“हाँ...”

“चलो ठीक है... कल बता देना आराम से...” फिर... धीमे से बोली — “और ध्यान से जाना...” बस... इतना सा वाक्य। लेकिन... ना जाने क्यों उस थके हुए रास्ते पर उसके कदम थोड़े हल्के लगने लगे। वो तेजी से चलने लगा। आज... पैदल चल-चलकर उसका बुरा हाल हो चुका था। घर पहुँचा... तो रात के ११ बज चुके थे। रोटी के साथ... घर वालों की डाँट खाई... और दूध के साथ... अपना गुस्सा पी गया। फिर... चुपचाप जाकर सो गया।

“सोता जंगल और जागता प्रेम”

सुबह... माही ने जैसे ही मोबाइल खोला, साहब का message आया हुआ था। Account office जाना था। उसने माथे पर हाथ मारा। "यार... एक हफ्ते से मेरा बुरा हाल है... घूम-घूमकर इनको भी account office की याद आज ही आनी थी..." लेकिन... क्या करता। सरकारी मुलाजिम, सरकारी हुकम का गुलाम होता है। और इस सत्य को वो भली-भांति जानता था। हालाँकि... अब उसकी जिंदगी में दो हुकम देने वाले थे। एक... दफ्तर वाला मालिक। और दूसरी... एक मल्लिका। सुबह वो निकल पड़ा करनाल के लिए सरकारी आदेश की पालना करने। पूरा दिन कागजों, signatures और accounts में उलझा रहा। शाम को घर लौटा। खाना खाते-खाते माँ ने कहा — “तेरे पापा किसी function में गए हैं... खेत में कपास में पानी चल रहा है... रात को देखना पड़ेगा...” माही ने भीतर ही भीतर एक लंबी सांस ली। "उफ़... पूरे 36 घंटे से... मेरी जिंदगी superfast रेल बनी हुई है..." लेकिन... माँ की आज्ञा भी टाल नहीं सकता था। इसलिए... रात के 9 बजते ही वो खेतों की तरफ निकल पड़ा।

रात... बिल्कुल काली थी। लेकिन... उतनी ही साफ और चमकदार भी। रास्ते में झिंगुरों की आवाज... मंदिर से आती धीमी कीर्तन ध्वनि... और दूर खेतों में चलते मोटरों का शोर... सब कुछ मिलकर उस रात को बेहद नाटकीय बना रहे थे। और ऊपर नभ क्षेत्र में प्रकाशमान तारे मानो रात की रखवाली कर रहे हों। खेत पहुँचा तो पसीने से बुरा हाल था। फव्वारे चल रहे थे... कहीं “90 hit” बज रहे थे... लोग एक-दूसरे को ऊँची आवाज में पुकार रहे थे। ठीक वैसा ही... जैसा खेतों में रात की सिंचाई के समय होता है। उसने फव्वारों से थोड़ी दूरी पर एक खाट डाली... और उस पर लेट गया। हवा में मिट्टी और पानी की मिली-जुली खुशबू थी। एक ऐसी शीतलता... जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है... शब्दों में नहीं उतारा जा सकता। खाट पर लेटा वो आकाश की तरफ देख रहा था। या शायद... अपनी किस्मत के तारे गिन रहा था।

तभी... फोन बजा। रिंगटोन... जो “मन” की caller tune थी। अब ये भी संयोग था... या कुछ और। उसने फोन उठाया। लेकिन... उधर “मन” नहीं थी। आकृति थी।

“हेलो... कैसे हो आप...?”

“मैं ठीक हूँ...

आप कैसी हो...?”

“मैं भी ठीक हूँ...

बताया नहीं आपने...?”

“क्या...?”

“देखो... मेरी friend है वो लड़की... और पापा के अच्छे जानकार हैं...

लेकिन मेरे को पसंद नहीं आया biodata...” माही ने कहा।

“क्या...?” “लड़की पसंद नहीं आई... या details...” वहां से एक हँसी छुटी —

“अब आप कुछ भी समझो...” थोड़ी देर दोनों तरफ सिर्फ शून्य का शोर रहा। फिर आकृति ने सीधे पूछा — “सच में पसंद नहीं है...?” “था इसलिए मना कर रहे हो... क्योंकि कोई और पसंद है...?”

माही एकदम से संभला — “नहीं... आप गलत समझ रही हो... मेरा इन सब से कोई लेना-देना नहीं... मैं इन सब से दूर हूँ...”

“अच्छा...?” “तो फिर... क्यों चक्कर काट रहे हो...?”

“क्या...?”

“कुछ नहीं...” फिर कुछ सेकंड बाद... उसने दोबारा पूछा — “सही बताओ... क्यों मना कर रहे हो...?” माही ने जल्दी से बहाना बनाया — “वो लड़की... थोड़ी healthy है...” “Okay...” कुछ देर फिर से दोनों तरफ से बातों का क्रम टूटा फिर आकृति की आवाज आई — “एक बात पूछूँ...?”

“हाँ पूछो...”

“सच-सच बताना...”

“ठीक है...”

“मैं तो मोटी नहीं हूँ ना...?”

माही ने थोड़ा अचरज से कहा। “नहीं... बिल्कुल भी नहीं...” और तभी... वो सवाल आया जिसने उसकी पूरी चेतना हिला दी।

“तो... मैं पसंद हूँ तुम्हें...?”

उसके हाथ एकदम से खाट पर कस गए। उसे सचमुच लगा... जैसे वो चारपाई से गिर जायगा। दिल... अचानक तेज़ धड़कने लगा।

“बताओ ना... पसंद हूँ क्या तुम्हें...?”

उसके शब्द मानो रास्ता भूल गए। “वो... मैं... आप...” उससे वाक्य ही नहीं बन रहे थे। आखिर... थोड़ी हिम्मत करके बोला — “लेकिन... हमारी caste अलग है...”

उस और से फुर्ती के साथ जवाब आया — “अच्छा...?” “वो मैं संभाल लूँगी... तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होगी...” फिर... धीरे से बोली — “अब बताओ...”

अब... माही क्या बताता। उसके पास कोई excuse ही नहीं बचा था। उसे लगा... जैसे कोई बहुत चालाकी से उसे उसकी ही अदालत में कटघरे में खड़ा कर गया हो। कुछ देर... दोनों तरफ फिर से बिना कहे एक दूसरे को सुनने की कोशिश करने लगे। फिर आकृति बोली — “एक बात कहूँ...?”

“हाँ...”

“तुम्हें कोई भी पसंद नहीं है...” “तुम्हें पसंद वो है... जिसके लिए तुम घूम रहे हो...” “नहीं... ऐसा नहीं है...”

“तो फिर कैसा है...?” “बताओ ना...” फिर आकृति ने धीमे से कहा — “ऐसा ही है mister। देखो... मैं इतनी समझदार तो नहीं हूँ... पर इतना जरूर समझती हूँ... ऐसे कोई किसी के लिए नहीं भटकता... मतलब... जानकारी दे दी... ठीक है... पर तुम तो... पूरी जिंदगी ही लगा बैठे हो उसके पीछे... कभी गाँव... कभी शहर... कभी ऑफिस... कभी लोगों के आगे request... सच बोलूँ...? कभी-कभी सुनकर अजीब लगता है... आजकल लोग... अपने मतलब से आगे नहीं सोचते... और तुम... किसी और की जिंदगी के लिए... खुद की जिंदगी खराब कर रहे हो...” फिर हँसकर बोली — “और ऊपर से बोलते हो... कुछ नहीं है...” माही अब भी चुप था। आकृति की आवाज अब थोड़ी धीमी हो गई — “हो सकता है... मैं गलत समझ रही हूँ... लेकिन... जब कोई इंसान... किसी के लिए खुद को इतना थका दे ना... तो वो सिर्फ इंसानियत नहीं होती... कुछ ना कुछ... दिल में जरूर होता है...” फिर थोड़ी देर रुककर बोली — “जानकारी में सहयोग किया जाता है... जो तुम कर रहे हो... वो बलिदान है... तुम्हारी इच्छाओं का... तुम्हारे सुकून का... तुम्हारे career का... और... तुम्हारे खुद का...” माही अब भी चुप था। दूर कहीं... रात के अंधेरे में आ रहा मोटर चलने का शोर उसके भीतर के शोर में दब चुका था। आकृति फिर बोली — “प्रेमिकाओं के घर उजाड़ने वाले प्रेमी देखे

हैं... कुछ ऐसे भी... जो उनका घर बसाने देते हैं...” फिर उसकी आवाज धीमी हो गई — “लेकिन... प्रेमिका का घर बसाने के लिए... खुद घर-घर भटकने वाला... उसके लिए घर ढूँढने वाला प्रेमी पहली बार देखा है...”

माही की आँखें अब भी आसमान पर टिकी थीं।

“जो तुम कर रहे हो... तुम्हें नहीं लगता कि वो प्यार के highest form के करीब है...? लगाव की पराकाष्ठा...? और इन सब के बीच तुम लगभग... खुद को खो चुके हो...” फिर... थोड़ा रुककर बोली — “इसलिए... अगर सच में कुछ है तो... अब पा भी लो उसको... और... खुद को भी... कभी ऐसा ना हो कि अपने खुद की वजह से ही खो दो उसको।” माही ने धीरे से आँखें बंद कर लीं। लेकिन... आकृति अभी खत्म नहीं हुई थी। “अगर कभी मेरी जरूरत पड़े... तो एक दोस्त की तरह याद कर लेना... जितना होगा... दो दिलों को मिलाने की कोशिश करूँगी...” फिर आखिर में... उसने वो वाक्य कहा... जो उस रात माही के भीतर हमेशा के लिए उतर गया। “और हाँ... एक बात याद रखना... शायद..... नहीं रह पाओगे उसके बिना... इसलिए... अपने हाथों... अपनी खुशियों को विदा मत कर देना... Good night...”

फोन तो कट गया। लेकिन... उसकी आवाज अब भी माही के भीतर गूँज रही थी। “नहीं रह पाओगे उसके बिना...” ये सिर्फ एक वाक्य नहीं था। जैसे... किसी ने उसके भीतर सालों से बंद पड़े किसी सच को जबरदस्ती जगाकर खड़ा कर दिया हो। वो खाट पर लेटा रहा। आसमान बिल्कुल साफ था। तारे वैसे ही चमक रहे थे... फव्वारे अब भी चल रहे थे... झिंगुर अब भी गा रहे थे... परिस्थितियाँ अपनी पुरानी लकीर पर ही चल रही थीं, लेकिन उसके भीतर का सच बदलाव देख रहा था। या शायद... किसी ने उसे खुद से मिलवा दिया था जिस मुलाकात से वो अब तक जानबुझ कर बच रहा था। दूर कहीं खेतों से एक गीत की आवाज हवा में तैरती हुई आई — “आज की रात बड़ी कातिल है...” रात सचमुच कातिल थी। क्योंकि... उस रात... माही पहली बार दुनिया से नहीं... खुद से हारता हुआ दिखाई दे रहा था। उसकी आँखें बंद हुईं... लेकिन नींद नहीं आई। आज... उसके भीतर एक साथ दो आदमी जाग रहे थे। एक... जो “कर्तव्य” निभाना चाहता था। और दूसरा... जो पहली बार किसी को खोने से डर रहा था। उस रात... फसलों के बीच बिछी उस पुरानी चारपाई पर... एक लड़का नहीं... बल्कि एक पूरा प्रेम चुपचाप जागता रहा।

“मंज़िल, सफ़र... और बीच में अटका एक आदमी”

सुबह हो चुकी थी... लेकिन भीतर अब भी रात बाकी थी। माही की आँख खुली तो ऐसा लगा जैसे वो सोया ही ना हो। शरीर ने रात काट ली थी... पर मन अब भी उसी खेत की चारपाई पर पड़ा था। उसने उठकर मोबाइल देखा। स्क्रीन पर सिर्फ़ समय था... लेकिन उसके भीतर अब भी एक आवाज गूँज रही थी — “नहीं रह पाओगे उसके बिना...” उसने तुरंत मोबाइल एक तरफ़ रख दिया। जैसे कोई चोर रंगे हाथ पकड़े जाने पर सबूत छिपा देता है। वो उठकर घर आ गया। सुबह की हल्की हवा चल रही थी... आँगन में रखी बाल्टी के पानी पर सूरज की पहली किरणें काँप रही थीं। आज... उसे खुद से नज़रें मिलाने में कठिनाई हो रही थी। अब तक वो अपने हर कदम को “कर्तव्य”... “इंसानियत”... “सहयोग”... जैसे शब्दों की चादर से ढँक देता था। लेकिन... कल रात किसी ने वो चादर खींच ली थी। और उसके नीचे... एक थका हुआ प्रेम चुपचाप बैठा मिला।

रविवार था। छुट्टी का दिन। हालाँकि शनिवार को भी छुट्टी रहती थी... लेकिन account office की “अर्जेंसी” ने उसका एक सप्ताहांत पहले ही निगल लिया था। नहा-धोकर वो कमरे में जाकर लेट गया। लेकिन... रात वाली फिल्म अब भी उसके भीतर चल रही थी। आँखें बंद करता... तो आकृति की आवाज सुनाई देती — “नहीं रह पाओगे उसके बिना...” आँखें खोलता... तो खुद का चेहरा किसी अजनबी जैसा लगता। अब उसे धीरे-धीरे एहसास हो रहा था कि... वो जिस सच्चाई से अब तक बचता फिर रहा था... कल रात किसी ने उसे उसी के सामने खड़ा कर दिया था। और सचमुच... वो खुद को खो रहा था। इसका बोध उसे पहली बार तब हुआ जब उसने सोचा — “मेरे होते हुए... रात को खेत में पापा जा रहे हैं... और मैं... किसी लड़की के लिए इतना खो चुका हूँ... कि मुझे इसका अहसास तक नहीं रहा...” एक कर्तव्य निभाने की जिद में... वो दूसरे दायित्वों से विमुख होता जा रहा था। शायद... प्रेम का सबसे खतरनाक रूप वही होता है जहाँ इंसान को खुद का खोना त्याग नहीं... कर्तव्य लगने लगे।

शाम होते ही... उसने बिना कुछ कहे खेत में जाने की तैयारी शुरू कर दी। माँ-पापा ने मना भी किया — “आज रहने दे... में देख लूंगा...” लेकिन वो सिर्फ इतना कह पाया — “आप आराम करो...” और खेतों की तरफ निकल पड़ा। आज की रात... कल से भी ज्यादा हसीन थी। काली... गहरी... और तारों से लबालब भरी हुई। वो चारपाई पर लेट गया। ऊपर... आसमान में हर दिशा में जाते विमानों की blinking lights मानो रात की पेशानी पर चलते जुगनू लग रही थीं। फव्वारों की फुहार हल्की-हल्की उस तक आ रही थी। अगर वो सोच में ना डूबा होता... तो ये पल उसकी जिंदगी के सबसे सुंदर पलों में से एक होता। तभी... उसने mobile में net on किया। WhatsApp खुला। “मन” का message था — “Sir...”

करीब एक घंटे पुराना। उसने कुछ पल सोचा... फिर reply किया — “Han Ma’am...”

एक नाराजगी भरा जवाब आया — “Kya sir... aap bhi naa...” ये एक साधारण वाक्य नहीं था। ये शिकायत का शायद सबसे खूबसूरत तरीका था।

फिर उसने पूछा — “क्या हुआ...?”

“मन” का जवाब आया — “कभी खुद से भी message या call कर लिया करो... दो दिन से इंतजार कर रही हूँ... कि आपका कोई message आए... पर आप हो कि...”

माही चुप रहा। फिर सिर्फ इतना लिख पाया — “Sorry...” “क्या sorry...?”

“वहाँ गए थे... उसका भी नहीं बताया...” माही को सचमुच याद आया... Account office का झंझट... आकृति वाली रात... दिनभर का मानसिक शोर... इसी सब में वो “report submit” करना भूल गया था। उसने जल्दी से लिखा — “मैंने बताया था ना... वो contract पर है... ऐसा ही निकला...”

“अच्छा... हद है... दुनिया कितनी झूठी है...” “Hmm...” फिर “मन” ने बात बदल दी — “चलो छोड़ो... और बताओ...”

और तो सब ठीक है... आप बताओ...”

“मैं भी ठीक हूँ...”

फिर मन ने पूछा — “क्या कर रहे हो...?” “खाना खा लिया...?”

“हाँ... खा लिया... खेत में हूँ... पानी चल रहा है...” “अच्छा... इतनी रात में...?”
 “साथ में कौन है...?” “कोई नहीं...”

“अकेले डर नहीं लगता...?”

माही ने एक क्षीण बदलाव होठों पर लाते हुए कहा — “नहीं... डर किस बात का है...
 अरे... मुझे तो लगता...”

उस क्षण... तारों से भरी उस रात में “मन” का साथ... उसे एक अलग ही एहसास दे रहा था। लेकिन... आकृति की आवाज़ बार-बार लौट आती थी... अगले ही पल उसे अपनी सीमाओं का बोध हुआ। उसने खुद को संभाला। “चलो ठीक है... अब रात ज्यादा हो गई... सो जाओ... और सुबह जल्दी उठकर पढ़ाई करना... Good night...” उसने chat समाप्त कर दी। उधर... “मन” ने मन मसोसकर उसकी बात मान ली। और क्या करती। कुछ देर बाद... उसे ज्वार के खेत में आहट सुनाई दी। वो उठा... तो देखा नीलगायों का झुंड अंदर घुस आया था। उन्हें बाहर निकालकर जब वो वापस लौटा... तो “मन” की missed call पड़ी थी। इतनी रात को...? अभी तो बात हुई थी। उसने बिना सोचे तुरंत call back किया। फोन उठते ही धीमी आवाज़ आई —

“Sorry sir... for the disturbance...”

“कोई नहीं... क्यों किया...? सब ठीक...?”

“हाँ... Sir... कल आपको थोड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ेगी...” और फिर... वो अपनी छोटी बहन “अनु” के लिए देखे गए लड़के की बात बताने लगी। वो जो मैंने रिजेक्ट किया था... अनु के लिए देखा है.. आपको बताया था ना कुछ दिन पहले ? “आप एक बार... घर-परिवार के बारे में पता कर आते... और कोई जाने वाला है नहीं... आपको तो पता ही है...” वो बोलती रही... और माही बस सुनता रहा। लेकिन... अब “request” शब्द सुनने के बाद उसके पास मना करने के लिए बहुत कम कारण बचते थे।

उसने धीरे से कहा — “2-3 दिन पहले बता देती...”

ध्यान नहीं रहा... चलो ठीक है... मैं देखता हूँ कल...” “Okay... Thanks...”

“अरे... ये नहीं... आपने ही मना किया था...” उस तरफ से एक खनकती हंसी आई,

“Ok”

फिर... दोनों तरफ से औपचारिक “Good night” हुआ। फोन को आराम मिला।

माही ने लंबी सांस ली। "यार... इस हफ्ते तो चक्कर खत्म ही नहीं हो रहे... अब क्या करूँ... कल office भी जाना है..." फिर खुद से ही बोला — “चलो... देखते हैं...” इतना कहकर वो कोटड़ी की तरफ बढ़ गया। दरवाजा खोला... पतीला निकाला... चाय का सामान वो घर से साथ लाया था। कुछ देर बाद... चाय का कप उसके हाथ में था। आज कई दिनों बाद उसने खेत की चाय पी थी। इसलिए... अनुभूति भी अलग थी। तभी... दोहा से दिल्ली जाने वाली Qatar Airways की flight लगभग 6000 फीट की ऊँचाई से आसमान को भेदती हुई निकली। Flight Radar 24 के notification से उसे उसके route का पता चला। वो काफी देर तक उस जहाज को देखता रहा। जब तक... वो अंधेरे में एक बिंदु बन कर ओझल नहीं हो गया। और शायद... उस उड़ते हुए जहाज के पीछे कहीं उसकी जिंदगी का भी कोई गणित छुपा था। मंज़िल और सफ़र का। क्योंकि... कुछ लोग अपनी मंज़िल तक पहुँचने के लिए सफ़र करते हैं। और कुछ... सफ़र करते-करते किसी और की मंज़िल बन जाते हैं।

अध्याय - 100

“47 डिग्री... की ठंड”

अगले दिन... माही सुबह जल्दी ही ऑफिस पहुँच गया। तेजी से काम निपटाने लगा। कुछ साथी भी आकर बैठ गए... कुछ नपी तुली चर्चा चली... लेकिन उसका मन आज कहीं और था। कुछ देर बाद... उसने “मन” को एक छोटा सा message drop किया... और निकल पड़ा।

23 May 2023

वो दिन... जब सुबह से ही सूरज आग बरसा रहा था। पिछले 4-5 दिनों से तापमान लगातार 45 डिग्री के पार था। और उस दिन... 47°, बाहर निकलते ही ऐसा लगता था मानो किसी ने सीधे भट्टी में झोंक दिया हो। लेकिन... जब भीतर दिल जल रहे हों... तो बाहर की आग इतनी भी भयावह नहीं लगती। शायद... यही माही के साथ हो रहा था। लेकिन... ये यात्रा मन के लिए की गई उसकी सबसे कठिन यात्राओं में से एक बनने वाली थी। एक तरफ... साधनों का नितांत अभाव। दूसरी तरफ... गलत रास्ते का चुनाव। और इन सबसे ऊपर... विकराल गर्मी।

काफी देर तक सड़क किनारे खड़े रहने के बाद उसे बड़ी मुश्किल से एक cab मिली। लेकिन... वो भी आधे रास्ते तक ही थी। दोपहर करीब 1 बजे... उसने उसे एक कस्बे में उतार दिया। वहाँ से... करीब 35 किलोमीटर का सफर अब भी बाकी था। गर्मी... ऐसी... कि हवा भी जलती हुई लग रही थी। परिवहन लगभग ना के बराबर। उसी क्षण... उसे आकृति की बात याद आई — “जो तुम कर रहे हो... वो बलिदान है...” और सचमुच... आज उसे ये सफर बलिदान जैसा लग रहा था। किसी ने बताया — “डेढ़ किलोमीटर आगे जाओ... वहाँ से साधन मिल जाएगा...” माही ने एक पल के लिए उस आदमी को देखा। ऐसी प्रचंड गर्मी में जहाँ डेढ़ कदम चलना भारी पड़ रहा था... वहाँ डेढ़ किलोमीटर उसे एवरेस्ट की चढ़ाई जैसा लगा। लेकिन... मरता क्या न करता। वो चल पड़ा। सड़क... तप रही थी। जूते के भीतर तक गर्मी उतर रही थी। पसीना... अब बह नहीं रहा था। सूख चुका था। आखिरकार... वो उस जगह पहुँचा। एक mini bus खड़ी थी। भेड़-बकरियों की तरह भरी हुई सवारियाँ... सर से टकराती नीची छत... खड़े होकर सफर... ऐसा लग रहा था जैसे जान निकलते-निकलते बच रही हो। लेकिन... फिर भी

वो पहुँच गया। आज सुबह से पता नहीं कितना पानी पी चुका था। फिर भी... प्यास जैसे शरीर नहीं... आत्मा को लगी थी।

खैर... इतनी बाधाओं के बाद वो झुंझनू शहर पहुँचा।

लेकिन दिक्कत यही समाप्त नहीं हुई, लड़के के घर तक पहुँचने के लिए अभी 2 किमी और चलना था, इतना चल कर रही सही जान और निकल गई।

4-5 लोगों से पूछताछ की। सबने घर-परिवार ठीक बताया। अबकी बार... वापसी के लिए किसी ने सही रास्ता बता दिया। इसलिए इतनी परेशानी नहीं हुई। लेकिन... 47 डिग्री का असर अब शरीर पर साफ दिखने लगा था। बीच-बीच में “मन” के messages आते रहे — “कुछ खा लेना...” लेकिन... उस समय उसे message से ज्यादा अपनी जान की पड़ी थी। आज... वो सचमुच लगभग अचेत होते-होते बचा था। शाम करीब 8 बजे वो घर पहुँचा। तब तक... तेज आँधी शुरू हो चुकी थी। साथ में हल्की बारिश भी। जैसे... ऊपर वाला उसकी परीक्षा पूरी होने पर इनाम दे रहा हो। लेकिन... आज बार-बार उसे आकृति की बातें याद आ रही थीं। क्योंकि... वो और “मन” अब लगभग बच्चे बन चुके थे। वो आदेश देती... और वो पालन करता।

रात को... “मन” का फोन आया। “पहुँच गए घर...?”

“हाँ...”

फिर वही पहला प्रश्न — “Tea ले ली...?”

“Coffee ली है...”

पलक झपकने से पहले उसकी आवाज आई — “Ohh ho... Promotion हो गई...”

माही के होंठों पर थकी हुई दिल्लगी आ गई।

फिर मन ने पूछा — “अच्छा बताओ... कैसा रहा...?” “अच्छा रहा... और सब ठीक है... ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं... Done कर दो...” और ... फिर वही चिंता भरा स्वर — “अच्छा... कुछ खाया कि नहीं...?”

माही चुप रहा। लेकिन... उसकी चुप्पी ने ही जवाब दे दिया।

एक मीठी झिड़की आई — “बहुत परेशान करोगे... उस लड़की को... जो आपसे शादी करेगी...”

एक मुस्कान भीतर से निकल कर होंठों पर आ गई और एक शब्द,
कैसे? लेकिन... अगले ही पल “मन” ने जो कहा... उन शब्दों ने उसकी सोच की सतह
पर एक और वृत्त बना दिया।

“और... कोई मेरे जैसी आ गई ना... तो सुधार देगी आपको...”

बस। इतना सा वाक्य। लेकिन... उस पल उसके भीतर एक सिरहन सी उठी। हैरानी का
मीठा झोंका उसकी सांसों को शीतल कर गया। जैसे... किसी मरणासन्न इंसान को
अचानक संजीवनी मिल गई हो। फोन कट गया। कमरे में फिर वही नीरवता उतर आई।
लेकिन... आज की सारी थकान... सारी जलन... सारी तपिश... उस एक वाक्य ने
मानो धो डाली थी। वो कुर्सी पर जाकर बैठ गया। ... और आँखें बंद कर लीं। बाहर...
आँधी अब भी चल रही थी। खिड़की से आती ठंडी हवा उसकी रूह को छू रही थी।
लेकिन... उसके भीतर अब वो एक ही वाक्य भीतर तक ठहर गया था — “कोई मेरे
जैसी...” उसकी अंगुलिया हथेली पर मजबूती से धंस गई। जैसे... अब दिल किसी निर्णय
के बहुत करीब पहुँच चुका हो। मानो भीतर एक प्रार्थना कर रहा हो,

“तेरे जैसी नहीं...

अब... सिर्फ तू...

सिर्फ तुम...”

“एक गर्म दिन का ठंडा अंत”

मन की वो एक पंक्ति... उस भीषण गर्म और कठिन दिन का एक ठंडा और मधुर अंत बन गई थी। उस रात... माही देर तक ख्यालों की धुंध में भटकता रहा। अब वो धीरे-धीरे इस सत्य को स्वीकारने लगा था कि “मन” का मौन आमंत्रण उसे उसकी ओर खींच रहा है। इसलिए... आकृति पूरी तरह ना सही... पर बहुत हद तक ठीक थी। पहले... वो “मन” के लिए किए जाने वाले प्रयासों को एक बोझ... एक मजबूरी... या निभाया जाने वाला दायित्व समझकर करता था। लेकिन अब... स्थितियाँ बदल चुकी थीं। अब वो उसके आदेशों का इंतजार करने लगा था। अब ये यात्राएँ... ये तपती सड़कें... ये थकान... उसे तोड़ती नहीं थीं। बल्कि... एक अजीब सा आत्मिक सुख देने लगी थीं। उसका साथ... अब उसे सुकून देने लगा था। वो याद करने लगा... कैसे शुरुआत में “मन” उसे छुप-छुपकर देखा करती थी। और वो... उसे महज एक इत्तफाक समझकर अनदेखा कर देता था। या शायद... लड़कियों के प्रति अपनी सहज अरुचि के कारण उन नजरो की भाषा को समझना ही नहीं चाहता था।

लेकिन... अब बदलती हुई मनःस्थिति को वो स्पष्ट महसूस कर रहा था। आज... जब वो पीछे मुड़कर उन क्षणों को देखता... तो उन निगाहों में उसे एक धीमा-सा अपनापन दिखाई देता। उसे लगता... शायद उन दिनों का सही चित्रण उन्हें इन फिल्मी पंक्तियों में दिखाई देता— “मुड़-मुड़ के तकना...” “अदाएँ दिखाना...” “कुछ तो है तेरे दिल में...” “बतलाना...” “मिलाकर नज़र को नज़र से...” “बेवजह यूँ इतराना...” पूर्णतया नहीं... लेकिन अब वो धीरे-धीरे उसकी गिरफ्त में आने लगा था। फिर भी... पता नहीं क्यों... उसे भीतर कहीं हमेशा ये महसूस होता था कि उन दोनों का साथ में शायद कोई भविष्य नहीं है। शायद... समाज... परिस्थितियाँ... या फिर उसकी अपनी सीमाएँ। इसीलिए... उसने फैसला किया कि फिलहाल — “उसकी खुशियों के लिए प्रयासरत रहना ही सही है...” “उसका घर... कहीं अच्छे से बस जाए...” “इससे बेहतर... मेरे लिए कुछ नहीं...” फिलहाल... यही उसकी प्राथमिकता थी। यही उसका फर्ज। और शायद... यही उन प्रारंभिक प्रेम भावनाओं का सबसे उचित मुकाम भी।

काफी देर तक इन्हीं विचारों में डूबे रहने के बाद उसने मोबाइल उठाया। समय देखा — रात के 12:30। WhatsApp पर एक message आया हुआ था। उसने खोला। करनैल सिंह Lecturer का संदेश था — “बेटा... हम आज गए थे उस लड़के के घर... ठीक लगा सब कुछ...” असल में... अब माही बहुत से लोगों से “मन” के लिए लड़कों की बात करता रहता था। और इसी क्रम में... कई लोग उससे अपने बच्चों के लिए भी योग्य रिश्ते पूछने लगे थे। अब... कोई नाराज ना हो जाए... कोई उसे लड़के बताना बंद ना कर दे... इस भय से वो उनकी भी मदद करने लगा था। इसी तरह... इन Lecturer साहब की बेटी के लिए भी उसने एक लड़का बताया था। धीरे-धीरे... वो एक समाज विशेष के लिए चलता-फिरता marriage bureau बन चुका था। लेकिन... विडंबना देखो... जो इंसान दूसरों के घर बसाने में लगा था... उसके अपने भीतर एक घर धीरे-धीरे उजड़ने और बसने के बीच झूल रहा था। उसने message पढ़ा... एक संतुष्टि भाव उसके चेहरे पर उभरा। फिर... मोबाइल एक तरफ रख दिया।

कमरे में हल्का अंधेरा था। बाहर कहीं दूर पुलिस के सायरन की आवाज आ रही थी... और छत का पंखा अपना आज का आधा सफर पूरा कर चुका था मानो अब एक थकी हुई हुई लय में घूम रहा था। उसने आँखें बंद कर लीं। लेकिन... नींद से पहले उसके भीतर एक आखिरी विचार फिर से उठा — सब कुछ करूंगा उस के लिए

— अपने “मन...” के लिए।

अध्याय - 102

“तलाश की तलाश”

दोनों के रिश्तों में अब बहुत कुछ बदल रहा था...पहले जहां "मन" माही के स्टेटस उसे पता लगे बिना देखती थी(अपनी फोन सेटिंग्स में बदलाव कर के) लेकिन अब वो खुल कर देखने लगी थी...

साथ ही अपने स्टेटस की दुनिया भी माही के लिए खोल दी थी....

पहले वो सिर्फ एक दूसरे के स्टेटस देखते...फिर धीरे धीरे रिएक्शन ओर कुछ दिन बाद कमेंट करने लगे

हालांकि शुरुआत हमेशा की तरह मन की तरफ से ही हुई... जहां मन के कॉमेंट शरारती और मजाक में होते...वही माही के प्रेरणा रूप..हिदायत, और गंभीरता लिए होते...

ओर फिर कुछ दिन बाद तो मानो स्टेटस ही एक दूसरे के लिए होते।

जहां माही के शेरशाह मूवी के स्टेटस पर

मन मौन रहती..वही उस के जीवन दर्शन कोट्स पर वो उस को चिढ़ाती

साथ ही वो जब जी करता उसको चुलबुले gif कार्टून भेजती।

वो माही के साथ बच्चों जैसी हरकते करती

जो कभी माही को पसंद आती कभी नहीं आती..लेकिन गुस्सा तो शायद उसे कभी उस पर आता ही नहीं था

एक दिन माही ने मशहूर कोट्स का स्टेटस लगाया

"वो भी तुझे ढूंढ रहा है..जिसकी तुझे तलाश है"

इस पर मन का रिप्लाई

"सच"

ये शब्द माही को मानो किसी सच से रूबरू करा रहा हो

उसके बाद

मन -

"कौन है"

माही शर्मा के मारे कोई जवाब नहीं देता

फिर मन हंसते हुए

Sir, अब तलाश बंद करो और शादी कर लो।

जबकि शायद दोनों को ही एक दूसरे की तलाश का अच्छे से आभाष था

ओर अब मन की DP भी हर रोज बदलने लगी...

साथ ही वो माही को भी एक ही DP से चिपके रहने पर लताड़ लगाती

ओर ऐसे में कोई भी लड़का बहक जाए...माही तो फिर भी नियंत्रित था

लेकिन ये भी सच था कि अब धीरे धीरे वो भी कुछ भूलता जा रहा था..

पर अपने प्राथमिक कर्तव्य उसे अच्छे से याद था..परिणामतः प्रयासों में निरंतरता और तेजी बरकरार थी..।

“तू मेरी फिक्र है... तू मेरा डर...”

ऑफिस की सुबह थी।लॉग-इन क्रेडेंशियल्स डालते ही कर्मचारियों का दैनिक सफर शुरू हो गया। लेकिन किसी काम से माही को बाहर जाना था। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए उसकी नजर अचानक “मन” पर पड़ी। वो फोन पर व्यस्त थी। उसके चेहरे पर एक अस्वाभाविक खिंचाव था। जैसे... किसी चिंता ने उसकी सहजता को बाँध रखा हो। उसकी तरफ देखते... देखते वो काम के लिए निकल गया। लेकिन... वापसी पर भी दृश्य वही था। वो अब भी फोन पर थी। और इस बार... उसकी आँखों में एक जल्दबाजी और बेचैनी साफ दिखाई दे रही थी। कुछ देर बाद... जब वो चाय देने आई... तब भी उसके चेहरे की गंभीरता छुप नहीं सकी। उसकी चाल में भी आज एक अस्थिरता थी। माही ने महसूस किया... कुछ ना कुछ जरूर गलत है। लेकिन... उसे भी उसी दिन दफ्तर के काम से चंडीगढ़ निकलना था। इसलिए... चाहकर भी वो ज्यादा देर रुक नहीं सका। पर... बस में बैठने के बाद भी उसका मन वहीं अटका रहा। खिड़की के बाहर सड़कें भाग रही थीं... लेकिन उसके भीतर सवाल रुक गए थे। "पक्का किसी परेशानी में है..." आखिर... काफी देर की उधेड़बुन के बाद उसने फोन मिला ही दिया।

शुरुआत में... “मन” ने वही कहा जो हर परेशान इंसान पहले कहता है — “सब ठीक है...” लेकिन... माही के लगातार पूछने पर उसकी आवाज टूटने लगी। और फिर... आखिरकार उसने बता दिया — उसे एक लाख रुपये की जरूरत थी। उसने ऑफिस में भी पूछा था... बाहर भी... लेकिन हर किसी ने असमर्थता जता दी थी। फिर... धीरे से बोली — “मैं अब बस... आपको ही फोन करने वाली थी...” ये सुनकर... उसे थोड़ा गुस्सा आया। लेकिन... उस पर नहीं। उस स्थिति पर जहाँ वो लड़की जिसकी आँखों में वो हर दिन मुस्कान ढूँढता था... आज पैसों के लिए लोगों के आगे हाथ फैलाने को मजबूर थी। उसने खुद को संभाला। फिर सीधा पूछा — “कितने चाहिए...?” “ये नहीं पूछा कि किस लिए चाहिए” “एक लाख...” एक बार के लिए माही चुप हो गया। रकम बड़ी थी। लेकिन... शायद उसकी परेशानी से बड़ी नहीं। उसने तुरंत अपना account check किया। 45,000। यानी... 55,000 और चाहिए थे। उसने एक-दो दोस्तों को फोन किया। लेकिन... वहाँ भी बात नहीं बनी। आखिर... उसने एक परिचित professional

financer से 55,000 रुपये लिए... और पूरी रकम उसके account में transfer कर दी। फिर सिर्फ इतना कहा — “रात को phone करना...”

रात... पंजाब University के बाहर का इलाका रोशनी से जगमगा रहा था। चारों तरफ फैली हरियाली उस दूधिया रोशनी में खुद को शृंगार रही थी। फूलों की खुशबू चारों ओर फैली थी। कुछ ही देर में माही को लगा, जैसे वह उस महक का हिस्सा बन गया हो। विश्वविद्यालय के अलग-अलग विभागों के छात्र... कहीं बहस करते... कहीं हँसते... कुछ चलती फिरती किताब बने हुए थे। “City Beautiful” की शामें वाकई अपने भीतर एक विशाल इंद्रधनुष समेटे होती हैं। उसी इंद्रधनुष के एक किनारे पर बैठा था माही। दिनभर की भागदौड़ और मानसिक थकान के बाद थोड़ी देर खुद को समेटने की कोशिश करता हुआ। कुछ देर बाद... फोन बजा।

“मन” थी।

इस बार... माही के स्वर में हल्की शिकायत थी। “क्या जरूरत थी... इतने लोगों के आगे गिड़गिड़ाने की...?” “आप सीधे मुझे phone कर सकती थीं...” उधर से धीमी आवाज आई — “मैंने सोचा... मेरे कारण आप पहले ही बहुत परेशान रहते हो... इसलिए आपको और ज्यादा...” “अच्छा...?”

— “आपको पता है... आज के समय में... एक लड़की का किसी से financial help लेना... कितना नुकसानदायक हो सकता है...?” उसकी आवाज अब गंभीर थी। “आजकल... ज्यादातर पुरुष... मदद के बाद... अपना स्वार्थ देखने लगते हैं...” फिर उसने धीमे लेकिन स्पष्ट स्वर में कहा — “इसलिए... मुझे promise करो... आगे से कभी किसी और से...” “Sorry... आगे से नहीं...” माही के चेहरे पर खुशी उभरी।

“हाँ... Good boy...”

ये सुनते ही सामने से हल्की सी haaapp क्योंकि... “Good boy” कह कर चिढ़ाना माही की पुरानी आदत थी।

इसके बाद... उसने बात बदल दी। “और दूसरी बात... इस DP को change करो... मैं दो दिन से देख रहा हूँ... कहना चाह रहा था... पर शायद हिम्मत नहीं हुई...” मन चुप रही। माही ने आगे कहा — “ये हर किसी के देखने लायक नहीं है...” उसकी DP थोड़े आधुनिक पहनावे वाली थी। और जाने क्यों... माही को वो पसंद नहीं आई थी। जवाब में एक धीमी आवाज आई —

“Sir... वो...”

“हाँ... क्या...?”

“मैं कह रही थी कि...”

“बताओ... घबरा क्यों रहे हो...?” अगले कुछ सेकंड सिर्फ सांसों की आवाज आती रही।

फिर... धीरे से वो बोली — “Office में... सिर्फ आप ही हो... जो मेरी DP देख सकते हो...” बसा इतना सा वाक्या लेकिन... उस एक पंक्ति ने माही को उसकी अहमियत बता दी। ये साफ संकेत था कि उसकी नजरों में वो बाकी दुनिया से अलग था। लेकिन... माही उस भाव में बहने की बजाय सीधा बोला — “ऐसी तस्वीर... मुझे भी क्यों...? मुझे भी नहीं... क्योंकि... मैं भी एक पुरुष हूँ...” उसकी आवाज में अब एक गंभीरता उतर आई थी। “और... घर बसाने की सोचने वाला कोई पुरुष... कम नहीं होता... सूफी संत नहीं होता। हर पुरुष के भीतर... एक जानवर छुपा होता है... फर्क सिर्फ इतना है... कोई उसे बाँधकर रखता है... और कोई खुला छोड़ देता है...”

“पेड़ों के थमे हुए पत्ते गवाही दे रहे थे कि हवा ने भी उस समय फोन से कान सटा रखे थे।”

फिर वो धीमे स्वर में बोला — “इसलिए इसे हटा दो... और आगे से ऐसी मत लगाना... मैं सिर्फ सलाह दे सकता हूँ... बाध्य नहीं कर सकता...” आगे से बेहद शांत आवाज आई — “जी Sir... आगे से ध्यान रखूँगी...” “हाँ... ये हुई ना बात... अच्छे बच्चों वाली...” फिर कुछ पल बाद... उसने वही पुराना स्वर अपनाया — “अब फोन रखो... और सोने से पहले... किताबों की दुनिया की सैर करो... आपको Assistant Commandant बनना है...” ये सिर्फ सलाह नहीं थी। ये वो फिक्र थी... जो हर सच्चा प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए भीतर ही भीतर पालता है। क्योंकि... माही के भीतर का पुरुष शायद अब प्रेम में पड़ चुका था। और प्रेम में पड़ा हुआ पुरुष... दुनिया से पहले अपनी प्रेमिका को दुनिया की हर बला व बुरी नजरों से बचाना चाहता है।

अध्याय - 104

“ठंडे शेक की गर्माहट”

वहाँ से आने के बाद... एक दिन माही बाहर पार्क में बैठा हुआ था। गर्मी अपने पूरे शबाब पर थी। पेड़ों की छाँव भी आज आधी अधूरी लग रही थी। तभी... मोबाइल की screen जली। “मन” का message था

— “Sir... आ जाओ... खाना खा लो...” कुछ देर

देखा। फिर reply किया — “मैं तो लेकर ही नहीं आता...” “हाँ तो कोई नहीं... मैं लाई हूँ...” उसने फिर टालना चाहा — “नहीं... आप खाओ... मुझे आदत नहीं है...” कुछ देर बाद... सिर्फ एक शब्द आया — “Okay...” लेकिन... उस “Okay” में हल्की सी मायूसी छुपी थी। और माही... अब उसकी चुपियों की भाषा समझने लगा था। करीब दो-तीन दिन बाद... माही ने अपनी branch में mango shake मंगवाया। सबने पिया... हँसी-मजाक हुआ... गर्मी कुछ देर को हल्की लगी। लेकिन... एक गिलास बच गया। या पता नहीं बचाया गया था। अब ना जाने उसके मन में क्या आया... उसने सीधा “मन” को message कर दिया — “Mam... Shake पीना है...?”

वहाँ से झट reply आया —

“कहाँ है...?”

“यहीं... हमारे room में...”

“हाँ... पी लूँगी... लेकिन... एक शर्त पर...” “क्या...?”

“मैं जो खाना लाई हूँ... वो आपको खाना पड़ेगा...” “अरे...”

और फिर एक laughing emoji आई — “अरे-वरे कुछ नहीं... अगर शर्त मंजूर है... तो बताओ... हम आगे बढ़ें... वरना यहीं पर...” कुछ देर सोच कर माही ने लिखा — “मंजूर है...” “तो फिर... ले जाओ tiffin... और shake दे जाओ...”

“अरे... ऐसे कैसे... कोई देख लेगा तो...?”

अब दोनों उस मुकाम पर पहुँच चुके थे जहाँ छोटी-छोटी चीजों में भी एक मीठा डर शामिल हो जाता है।

फिर माही ने उपाय निकाला — “ऐसा करते हैं... आप superintendent room में tiffin रख जाओ... मैं वहाँ shake रख दूँगा... आप बाद में उठा लेना...” “Okay...” उसके बाद... दोनों ने अपने-अपने हिस्से का काम कर दिया। कुछ देर बाद message आया — “Sir... बहुत अच्छा था...” माही के होंठों पर अनायास खुशी का भाव झलका। उसने बस इतना लिखा —

“Okay...”

लेकिन... उस “Okay” के पीछे जो संतोष था... उसे सिर्फ वही महसूस कर सकता था। अब... माही उसकी पसंद समझ चुका था। इसलिए... जब भी मौका मिलता वो shake मंगवा लेता। हालाँकि... हर बार उसके पीछे कोई ना कोई बहाना तैयार होता। कभी... किसी साथी का birthday। कभी... किसी के paper pass होने की खुशी। कभी... बस यूँ ही। और जब कोई वजह नहीं मिलती... तो पूरी branch के लिए ही मंगवा देता। लेकिन... असल मकसद सिर्फ एक होता — गर्मी में “मन” का ख्याल।

हालाँकि... ये shake भी इतनी आसानी से उस तक नहीं पहुँचता था। सबकी नजरों से बचाकर... कभी JE Room... कभी park... कभी किसी दूसरे कमरे में रखना पड़ता। कभी... कोई अचानक आ जाता... और माही को बिना दिए ही लौटना पड़ता। लेकिन... जाने कैसे... “मन” हर बार रास्ता खोज ही लेती। और सबसे खूबसूरत बात ये थी कि... किसी को जरा सी भनक तक नहीं थी... कि ये सब किसके लिए हो रहा है। दुनिया की नजरों में... वो बस एक साधारण office था। लेकिन... उन दोनों के लिए वो जगह अब धीरे-धीरे एक ऐसे संसार में बदल रही थी... जहाँ चाय के कप... status... GIF... और आम का shake भी भावनाएँ ढोने लगे थे। और शायद... उन्हीं ठंडे shakes के बीच दो दिलों के भीतर एक धीमी गर्माहट जन्म ले रही थी।

“हां....अब सुधार ही दो मुझे”

एक रात... खाना खाने के बाद माही पानी लेने के लिए fridge खोलता है। तभी... उसकी नजर एक चीज़ पर जाकर ठहर जाती है। “Ohh...” “ये अभी तक रखी हुई है...” उसने उसे हाथ में उठाया। Toblerone. स्विट्ज़रलैंड की मशहूर chocolate। उसकी बहन कई महीने पहले उसके लिए रख कर गई थी। लेकिन... माही चॉकलेट खाता नहीं था। इसलिए... वो पिछले तीन-चार महीनों से यूं ही fridge में रखी थी। उसने chocolate को देखा... फिर fridge की टंडी रोशनी में कुछ सोचने लगा। “अगर किसी दिन बिजली नहीं आई... तो ये melt हो जाएगी... लेकिन... मैं तो खाता नहीं... किसको दूँ...? और वैसे भी... आजकल किसी को कुछ देने का जमाना भी कहाँ है...”

तभी... अचानक उसके भीतर एक विचार कौंधा। “हाँ... ये सही रहेगा... मेरा पीछा भी छूट जाएगा... इसका सदुपयोग भी हो जाएगा... किसी को खुशी मिलेगी... और मुझे सुकून...” और फिर... उसके मन में “मन” का चेहरा चमका। अब... उन दोनों के बीच चीज़ों के लेन-देन वाली दीवार धीरे-धीरे गिर चुकी थी। फिर भी... ये बाकी चीज़ों से अलग था। क्योंकि... माही जानता था कि प्रेम संबंधों में चॉकलेट का क्या अर्थ होता है। और शायद... इसीलिए उसे झिझक हो रही थी। उसके घोषित नियम... उसे किसी लड़की को चॉकलेट देने से रोक रहे थे। काफी देर तक वो इसी कश्मकश में बैठा रहा। फिर... उसने खुद को समझाया — “वैसे भी खराब हो जाएगी... तो एक लड़की नहीं... एक इंसान के तौर पर दे सकता हूँ...” कितना मासूम था वो... या शायद... जानबूझकर बड़ा नहीं होना चाहता था। अब उसे कौन समझाता कि इस दुनिया में अरबों लोग हैं... लेकिन... उसके लिए " वो " ही इंसान क्यों है!

खैर... काफी हिम्मत जुटाकर उसने WhatsApp खोला। टाइप किया — “Ma’am...” Message seen हुआ। लेकिन reply नहीं आया। ये उसके लिए हैरानी की बात थी। उसने फिर लिखा — “Ma’am...” इस बार भी... Seen, but No reply तीसरी बार लिखने पर message आया —

“क्या Ma’am Ma’am लगा रखी है...?” “कह दो... जो कहना है...” उस एक वाक्य के अब अनेक अर्थ नहीं थे। सिर्फ 1 ही था लेकिन व्यापक। वह हाथ में फोन थामे, जैसे किसी सोच में डूब गया।

फिर... मद्धम मुस्कान... झिझक... शर्म... और डर के बीच उसने लिखा —

“क्या कहूँ...

” “कुछ नहीं...” “कुछ नहीं”.. “मन” जानबूझकर बात घुमाते हुए बोली — “मेरा मतलब... जो काम है वो कह दो...”

“Okay...”

“मैं वो कह रहा था कि...” फिर निशब्दता।

“हाँ... बताओ... क्या कह रहे थे...?”

“Ma’am... वो Switzerland की chocolate रखी है घर पर...”

अरे!

तुम मेरा मतलब आप कब हो आए स्विट्जरलैंड, वो भी अकेले-२! खिलखिलाती इमोजी के साथ “मन” ने शरारती सवाल किया। नहीं, गया नहीं।

तो?

हमारे फ्रिज में रखी हुई है, दीक्षा दे कर गई थी।

— “तो मैं क्या करूँ...?” उसका लहजा फिर शरारती था। क्योंकि... वो जानती थी इस समय माही की हालत क्या होगी। शायद... वो उसका इम्तिहान ले रही थी।

माही तुरंत पीछे हटने लगा — “चलो छोड़ो... कुछ नहीं...”

“क्यों छोड़ूँ...?” “अब शुरू किया है... तो पूरी बात जानकर ही रहूँगी... बताओ... क्या मामला है chocolate का...?”

अब बचने का रास्ता नहीं था। उसने हिम्मत कर के लिखा — “मैं कह रहा था... अगर आपको पसंद हो... और बुरा ना लगे... तो आपके लिए ले आऊँ...” reply आने में हो रही देरी माही की धड़कने बढ़ा रही थी।

फिर अचानक —

“अच्छा... तो अब आप मुझे chocolate दोगे...?” माही लगभग घबरा गया — “अरे नहीं नहीं... मैं तो बस पूछ रहा था...” दूसरी तरफ से हँसती हुई emojis की बारिश आ गई। फिर उसने लिखा —

“क्यों हो इतने सीधे...?”

“कैसे...?” माही ने पूछा।

“अरे... सीधी बात को... टेढ़ी करके पूछने वाले... सीधे ही होते हैं...”

ओह!

ये सुन कर माही को तसल्ली मिली। फिर उधर से आदेश आया — “अब सीधी बात ये है... कि कल chocolate ले आना... और सुबह मेरी branch में रख देना... मैं उठा लूँगी...” “Okay... ठीक है...”

अगली सुबह... चॉकलेट उसकी उपयोग की जगह तक पहुँच चुकी थी। लेकिन... माही के भीतर का इंसान अब भी कह रहा था — “नहीं यार... ये कुछ ज्यादा हो गया...” Chocolate खाने के बाद “मन” का message आया — “Yummiii...” फिर उसने एक और message type किया — “Sir... क्या मैं आपके लिए रोज खाना लाऊँ...?” लेकिन... उसने तुरंत delete कर दिया। हालाँकि... notification में माही उसे पढ़ चुका था। उसके बाद... मानो एक नया सिलसिला शुरू हो गया। अब “मन” अक्सर उसके लिए खाना लाने लगी। माही मना करता... लेकिन... कभी डाँटकर... कभी किसी “special taste” का बहाना बनाकर... वो उसे खिला ही देती। और बदले में... अब वो उससे अपनी पसंद की चीज़ें मंगवाने लगी। कभी chocolate... कभी burger... कभी pizza... और माही... ना चाहते हुए भी उसके लिए धूप... बारिश... दूरी... सब पार कर आता।

“मन” की मासूम जिद उसके भीतर के संस्कारी आदमी पर धीरे-धीरे भारी पड़ने लगी थी। जमाने की नजरो से खुद को बचाते हुए वो एक दूसरे की हसरतें पूरी कर रहे थे... माही ज्यादा डरता था कि कहीं कोई ये सब देख ना ले... ओर फिर.. कई बार तो उन्हें सही जगह पर रखने में घंटों भी लग जाते। लेकिन... इन सबके बीच सबसे अद्भुत बात ये थी कि — इतना सब होने के बाद भी... आज तक उन्होंने किसी जगह आमने-सामने बैठकर एक कप चाय तक साथ नहीं पी थी। जैसे... उनका रिश्ता दूरी में ही अपनी सबसे गहरी

निकटता खोज रहा हो। माही... उसके लिए हुए tiffin को हर बार धोकर लौटाता था।
एक रात... “मन” का message आया —

“ये tiffin धोकर देना जरूरी है...?”

माही ने लिखा — “ऐसे देना ठीक नहीं लगता...” उस और से एक प्यारी से डांट —
“अच्छा... आपको ज्यादा पता है...

मैं ना... आपको सुधार दूँगी...”

उस रात... माही देर तक उस message को देखता रहा। और सोने से पहले भी... उसने
एक बार फिर वो line खोली। फिर... धीरे से आँखें बंद कर लीं। शायद... भीतर ही
भीतर वो यही कह रहा था — “हाँ...

अब सुधार ही दो मुझे...”

अध्याय - 106

“टॉवेल का राज”

माही पिघल रहा था। धीरे-धीरे... बहुत धीरे। वो उस “सुधर जाने” वाले एहसास की मिठास को महसूस भी कर रहा था। लेकिन... उसने अब तक अपने उसूलों का इस्तीफा नहीं सौंपा था। वो बस... उस ख्याल की गर्माहट में कुछ पल का सुकून ढूँढ़ रहा था। उसका वो कर्तव्य-परायण रूप अब भी ज़िंदा था। वो रात को “मन” के ख्यालों में डूब जाता... लेकिन सुबह उठकर फिर उसी यथार्थ का सामना करता। शायद... ये एक सामान्य इंसानी फितरत ही है। हम अक्सर रात के अँधेरे में उन चीज़ों की कामना करते हैं... जिन्हें दिन के उजाले में अपनाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। माही का वो सोचना भी असल में उसकी उसी दबी हुई चाहत का अक्स था। खैर... इन सबके बीच भी वो अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढ़ रहा था। और तभी... दो घटनाओं ने उसके लिए कुछ नए रास्ते खोल दिए। पहली... ऑफिस में नए अधिकारी ने कार्यभार संभाल लिया था। दूसरी... उसके cadre ने राज्यव्यापी हड़ताल की घोषणा कर दी। चूँकि... माही पहले ही दफ्तर को अपनी दूसरी प्राथमिकता बना चुका था... और पुराने अधिकारी से उसके संबंध भी अच्छे नहीं बचे थे... इसलिए... उसकी नौकरी पर संकट आने की संभावना लगभग तय थी। लेकिन... इन दो बदलावों ने उसे फिलहाल थोड़ी राहत दे दी। और सबसे बड़ी बात... “मन” के नामित किए जा रहे अपने “मिशन मैरिज” के लिए थोड़ा और समय। अब... वो कुछ देर हड़ताल में भागीदारी करता... और फिर अपने prime work पर निकल जाता।

इसी बीच... बरसात का मौसम भी शुरू हो चुका था। धरती की तपिश धीरे-धीरे ठंडी होने लगी थी। लेकिन... कुछ तपिशों ऐसी भी थीं जो अब भीतर जन्म ले चुकी थीं। “मन” का चंडीगढ़ पुलिस और दिल्ली पुलिस का exam था। इसलिए... उसने library join कर ली थी। उधर... उसकी बहन का रिश्ता पक्का हो गया था। घर में शादी की तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं। इन्हीं दिनों... एक सुबह माही का WhatsApp बंद हो गया। पूरे 36 घंटे के लिए। और विडंबना देखो... उन दोनों के बीच जो सबसे बड़ा सेतु बन चुका था... वो यही था। इसी दौरान... “मन” ने कोई status लगाया। लेकिन... एक-दो घंटे में उसके status देखने वाला माही का नाम... आज 12 घंटे बाद भी viewers list में नहीं था।

पहले वो थोड़ी हैरान हुई। फिर... हल्की परेशान। क्योंकि... कम online रहने की शिकायत वो माही से अक्सर करती थी। लेकिन आज तो... पूरी खामोशी थी। उसने जैसे-तैसे रात काटी। सुबह भी... स्थिति वही रही। आखिर... उसने फोन मिला ही दिया। “Sir...” “हाँ...”

“कहाँ हो...?” “क्या कर रहे हो...?”

“मैं अभी निकलने वाला था... हड़ताल के लिए... फिर कल आपके काम से कहीं जाऊँगा... आप बताओ... क्यों फोन किया...?”

अब वो सीधे तो नहीं कह सकती थी कि उसे उसके status ना देखने की चिंता थी। इसलिए... बात घुमाकर बोली — “मेरे मामा ने एक लड़का बताया है... Teacher लगा है... फलाँ गाँव में... लड़के का नाम... बाप का नाम... अभी पता नहीं... पता चलते ही WhatsApp करूँगी...”

“मेरा WhatsApp काम नहीं कर रहा... इसलिए text करना...” माही ने हिदायत दी।

“क्या हुआ...? क्यों नहीं चल रहा...?”

“पता नहीं... 36 घंटे बाद का notification आया था...” बस। अब उसने ज्यादा कुछ नहीं पूछा। जिस बात के लिए फोन किया था... उसका जवाब मिल चुका था। लेकिन... अपनी इस छोटी सी जिज्ञासा में उसने माही को एक बड़े काम पर लगा दिया। शाम करीब 6 बजे... “मन” के पास एक text message पहुँचा। और उसमें... पूरा बायोडाटा था। लड़के का नाम। उम्र। पिता का नाम। नौकरी। परिवार। ज़मीन। पशु। सब कुछ। “मन” उस text को देखे ही जा रह थी। क्योंकि... उसने तो सिर्फ 150 किमी दूर स्थित गाँव का नाम बताया था। और इस लड़के ने... पूरा इतिहास निकाल दिया था। उसने तुरंत पूछा — “Sir... आप जाकर लाए हो ये detail...?”

“नहीं...”

“मतलब...” “यहीं बैठे-बैठे...?”

“हाँ...”

“पर कैसे...?” उसके लिए ये सचमुच अचंभा था। लेकिन... ये माही का अपना तरीका था। उसके लिए गाँव का नाम ही काफी होता था। गाँव से परिवार तक पहुँचना... उसके

अपने गुप्त... भिन्न... और अपारंपरिक रास्ते थे। जिन्हें अपनाने से पहले साधारण आदमी कई बार सोचता।

खैर... “मन” ने पशुओं का बहाना बनाकर उस रिश्ते की शुरुआत से पहले ही अंत कर दिया। क्योंकि... असल में वो रिश्ता नहीं... माही का status ना देखने का कारण जानना चाहती थी। लेकिन... माही ने उसे फिर गंभीरता से ले लिया। अगले दिन... message आया — “Sir...” “हाँ...” “Mega Mart में आई हूँ... कुछ लाना है क्या...?” “Coffee... ले आना...” “अच्छा... और...?” “और तो कुछ नहीं...” “ठीक है... शाम को juice वाले भैया की दुकान से उठा लेना... वहाँ रख दूँगी...” शाम को... coffee के साथ एक और चीज़ रखी थी। एक छोटा सा towel। Baby towel। माही उसे देख कर समझने की कोशिश करता रहा। उसके घर में कोई छोटा बच्चा भी नहीं था। फिर ये towel किसलिए...? उसने सोचा — “पूछूँ...?” फिर लगा... अपने भतीजे के लिए लाई हो शायद गलती से रह गया हो? रात को घर पहुँचकर उसने message किया — “Towel...?”

जवाब आया:

“आपका ही है...”

“Baby...”

“हाँ जी...” इतना reply आया... और chat off। बिस्तर पर लेटा माही देर तक सोचता रहा। उसे नहीं पता था कि... तौलिया छोटा था। लेकिन... शायद उसे खरीदने के पीछे का भाव बहुत गहरा था। और फिलहाल... वो उसी गहराई में उतरने की कोशिश कर रहा था। लेकिन... उससे पहले ही नींद की गहराई ने उसे अपने भीतर खींच लिया। वैसे भी... प्रेम में इंसान धीरे-धीरे बच्चा ही तो हो जाता है।

“पहाड़ के पार की चांदनी”

अगले दिन की सुहावनी सुबह... माही ठीक पाँच बजे उठ गया। चिड़ियों की चहचहाहट... दूर से आती कोयल की मधुर आवाज... सुबह की हवा अपने साथ रात की बची हुई शांति लिए बह रही थी। लेकिन माही के साथ ऐसा नहीं था, और आज भी कुछ अलग नहीं था, हर बार की तरह... रात में किसी को पाने की लालसा... सुबह होते-होते उसी को किसी और को सौंप देने के दायित्व में बदल जाती। इसी दायित्व की पूर्ति के लिए आज उसे “मन” के भाई को लेकर निकलना था। इसलिए वो जल्दी से तैयार हुआ।

driver का इंतज़ाम उसने पिछली शाम ही कर लिया था। ठीक साढ़े छह बजे वो घर से निकल पड़ा। रास्ते में से वियान (“मन” का भाई) को भी बैठा लिया। लड़के वालों से मिलने का कार्यक्रम शाम को था... इसलिए उसने पहले भानगढ़ घूमने का विचार बनाया। वियान भी घूमने की बात से अत्यधिक रोमांचित था। रूह को हर्षित कर देने वाले पहाड़ी दृश्यों के बीच से गुजरते हुए... करीब तीन घंटे बाद वे भानगढ़ पहुँचे। वही भानगढ़... जो अपनी डरावनी कहानियों के लिए प्रसिद्ध है। उस जगह के बारे में विभिन्न श्रापित किस्से माही पहले भी सुन चुका था। खंडहर किले को देखा... पत्थरों में जमी वीरानी को महसूस किया... और वहाँ बंदरों व लंगूरों का अप्रत्याशित भाईचारा भी। आसपास का पहाड़ी दृश्य विहंगमता लिए था। मानो... मानो... प्रकृति ने अपने भीतर का एक पूरा पन्ना यही खोल कर रख दिया हो।

करीब दो घंटे वहाँ बिताने के बाद वे अपने मुख्य गंतव्य की ओर निकल पड़े। ये अलवर के पास कोई जगह थी। करीब दो घंटे बाद वे वहाँ पहुँचे। जीत पाण्डेय (लड़के) और उसके परिवार से मिले। कुछ अपनी कही... कुछ उनकी सुनी... और हमेशा की तरह माही ने “मन” की तारीफ में कसीदे भी गढ़े। और इन्हीं तारीफों के बीच उसके मुँह से निकला “लड़की को कोई भी देख कर मना नहीं कर सकता”। ये पंक्ति सुन कर जीत के चहरे पर एक भिन्न भाव उभरा। जिसे माही ने गहराई से notice किया, इसके बाद माही ने कुछ और भी खूबियाँ गिनाईं। हालाँकि... पहले जितने नहीं। क्योंकि “मन” एक बार उसे ऐसा ना करने की हिदायत दे चुकी थी। लेकिन... दिल कहाँ किसी की पूरी बात मानता है।

इसलिए... आंशिक पालन तो हुआ... पर पूर्ण विराम नहीं। वैसे भी... रिश्तों के मामले में पूर्ण विराम हो भी कहाँ पाता है। उसके भाई को सब कुछ दिखा दिया। उसे खुद कुछ समझ आया... कुछ नहीं। इसके बाद वो लोग वापसी के लिए निकल पड़े। “मन” के भाई को जयपुर जाना था... इसलिए उसे रास्ते में ही बस में बैठा दिया। रात करीब आठ बजे माही घर पहुँचा। खाना खाकर बिस्तर पर लेट ही रहा था कि... “मन” का message आ गया।

पहुँचने की पूछी... खाने की पूछी... और फिर अचानक उसने उसके कपड़ों की तारीफ कर दी।

“Sir... Jeans में तो आज बिल्कुल ज़हर लग रहे थे...” चूँकि... ऑफिस में माही हमेशा formal पहनता था... इसलिए उसका ये रूप “मन” ने बहुत कम देखा था। और आज... जब देखा... तो शायद वो खुद को रोक नहीं सकी। जो उसे ऐसी बातें ना करने की हिदायत देती थी... आज वही खुद वो सब कह रही थी। माही अच्छा खास शरमा गया।

“अच्छा... घूमने ही जाना था... तो मुझे भी ले चलते...”

“क्या करती आप...”

“और क्या देखना ऐसी श्रापित जगह को...”

“आप अच्छी जगह घूमना...”

“भुतहा जगह थी... तभी तो चलती...” फिर अचानक... उसने शरारती लहजे में लिखा — “आज इतनी आग लगा रखी थी... अगर किसी चुड़ैल को पसंद आ जाते... तो पकड़ कर बैठा लेती...”

अच्छा ही था बैठा लेती तो... माही ने कहा

फिर मेरा क्या होता...?” एक पल रुकी... फिर तुरंत खुद ही बात मोड़ दी — “I mean... फिर मेरे लिए कौन effort करता...”

अब... चूँकि माही उसकी मनःस्थिति से परिचित हो चुका था... इसलिए उसके भावों को समझने के लिए अब ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। उसने खुद को संभालते हुए बात को दूसरी दिशा देते हुए लिखा — “मैंने आपके भाई को सब दिखा दिया है... लड़के को salary slip के लिए बोला है... जब भेजेगा... मैं आपके पास भेज दूँगा...” फिर...

औपचारिकता निभाते हुए उसे Good Night कहा... और सोने चला गया। लेकिन... नींद आज उतनी सरल नहीं थी।

दो दिन बाद... उस शाम बारिश के बाद उमस कुछ ज्यादा थी। लेकिन मौसम बिल्कुल साफ था। पता नहीं उसका क्या मन हुआ... उसने घर वालों से कहा कि आज खेत में जाकर सोएगा। और निकल पड़ा। खेत की कोठड़ी की छत पर बिछौना बिछाकर लेट गया। मंद-मंद बयार बह रही थी। पास की किसी ढाणी में सीजन का आखिरी विवाह था। बारौठी निकल रही थी। मौसम साफ होने की वजह से वहाँ की आवाजें हल्की-हल्की यहाँ तक चली आ रही थीं। वरमाला के समय का मज़ाक... लड़कियों की सामूहिक हँसी... ढोल की थाप... आसमान में रंगीन आतिशबाजी सब मिलकर रात को एक अलग ही रवानियत दे रहे थे। ऊपर चाँद खिला हुआ था। धरती उसकी शीतल रोशनी को चुपचाप ओढ़े बैठी थी। आसपास के खेत सुनहरी आभा में चमक रहे थे। हवा के हल्के झोंकों के साथ विवाह स्थल की तरफ से आती इत्र की खुशबू... पूरा वातावरण महका रही थी। दूर पहाड़ भी... मानो चाँदनी को चूमने को आतुर दिखाई दे रहे थे। इस सारे जादुई दृश्य को अपने भीतर सहजने के बाद... जैसे ही उसने आँखें बंद कीं... फोन की घंटी बज उठी। स्क्रीन पर नाम उभरा — “मन”।

“Hello... कैसे हो आप...?”

“मैं ठीक हूँ...

आप...?”

“मैं भी ठीक हूँ... खाना खा लिया...?”

“हाँ...

और क्या कर रहे थे...?”

“बताऊँ...?”

“हाँ... बताने के लिए ही तो पूछा है...”

“आपके गाँव के पहाड़ों को निहार रहा था...

बारिश के बाद... आज बहुत खूबसूरत लग रहे हैं... ऊपर से चाँदनी की बरसात... कयामत ढा रही है...”

“अच्छा जी...”

“जी...”

कुछ पल के लिए शब्द खो गए... इस के बाद वो अचानक बोली —

“मैं नहीं दिखी क्या आपको...?”

माही क्षणिक चौंका।

“नहीं...”

कहाँ हो आप...?”

“अरे... मैं भी पहाड़ पर ही खड़ी हूँ... आपको देख रही हूँ...” फिर... उसकी वही खनखनाती हँसी। “ध्यान से देखो...” और फिर से हँसी।

माही के लबों पर भी मुस्कराहट उतर गई।

“पर आप मुझे क्यों देखोगे... आप तो बस... मुझे यहाँ से निकालने की सोच रहे हो...”

“मैं ऐसा सोच रहा हूँ...?”

“और क्या...”

“अच्छा...”

तभी उसे पीछे से आती लड़कियों की हँसी सुनाई दी। “और ये शोर कैसा आ रहा है...?”

“कुछ नहीं... लड़कियों के हँसने की आवाज़ है...” “अच्छा... मैं कह रही थी ना... कोई चुड़ैल पकड़ लेगी तुम्हें... देखा... पकड़ लिया ना...” इस बार उसकी आवाज़ में एक रूआँसी शरारत थी। माही को तुरंत एहसास हुआ कि अब ये ज्यादा हो रहा है। बातें अब दूसरी दिशा में बढ़ रही हैं... जहाँ से लौटना आसान नहीं होता। इसलिए उसने फौरन विषय बदल दिया। “देखो... अभी तक उस लड़के ने salary slip नहीं भेजी... कल बोलता हूँ उसको...”

“अब क्या ही करे Sir... नहीं भेज रहा तो... क्यों बेचारे को परेशान करते हो... नहीं होगी... ज्यादा करोगे... तो कहीं से जाली बनवा लाएगा...”

दोनों हँस पड़े।

फिर अचानक... वो बोली — “Sir... एक काम कर लो ना...”

“बताओ...”

“कोई intercast ही देख लो...”

“एक क्षण के लिए दोनों तरफ से संवाद थम-सा गया। मानो चाँदनी ने शब्दों की सारी आहट सोख ली हो।”

“क्यों...?”

“क्योंकि... हमारी caste में तो अच्छे लड़के हैं ही नहीं...” फिर... थोड़ा शब्दों को संभालकर... धीरे से बोली —

“आपके गाँव में देख लो... कोई अच्छा सा हो तो...”

बस इतना सुनना था कि ऊपर से बरसती दूधिया शीतलता भी उसके भीतर तपन जगा गई। उसका गला सूख गया। शरीर जैसे कुछ पल के लिए निश्चल हो गया। माथे पर पसीना महीन बूंदे बन उभर आया।

“Sir...?” “Sir...”

“हाँ...

कहाँ चले गए...?” “अभी सो जाओ... अभी मत देखने चले जाना किसी को...” फिर उसकी वही हँसी।

“हाँ... ठीक है... मैं देखता हूँ...” माही की आवाज़ अब भी काँप रही थी।

“नहीं देखना... अभी... सो जाओ... Good Night...”

“हाँ...

Good Night...” और फिर... फोन कट गया। लेकिन... उसकी आवाज़ अब भी खेतों की हवा में फैली हुई थी। माही एक जगह निश्चल बैठा रहा। मोबाइल अब भी उसके हाथ में था... लेकिन पकड़ ढीली पड़ चुकी थी। ऊपर चाँद था... नीचे चाँदनी में भीगे खेत... और बीच में एक ऐसा आदमी... जिसके भीतर अभी-अभी किसी ने एक निषिद्ध संभावना का दीप जला दिया था। “आपके गाँव में देख लो...” ये शब्द अब उसके कानों से उतरकर सीधे धड़कनों में बस चुके थे। दूर विवाह स्थल से बंद हो चुके ढोल की थाप अब भी उसे सुनाई दे रही थी... जैसे कोई उत्सव बहुत दूर नहीं... उसकी अपनी किस्मत के दरवाज़े पर भी दस्तक दे रहा हो। हवा का एक ठंडा झोंका उसके सूखे चेहरे को नम कर गया। लेकिन... माथे पर उभरा पसीना अब भी वैसा ही था। क्योंकि... कुछ वाक्य सिर्फ सुने नहीं जाते... वे इंसान के भीतर एक आशा जगा देते हैं।

“एक तस्वीर... और भीतर उठता हुआ डर”

हड़ताल स्थल नारों से गूँज रहा था। चारों तरफ आवाज़ें थीं... जोश था... भाषण थे... मांगें थीं... लेकिन उस शोर के बीच भी माही एक कोने में चुपचाप बैठा था। हालाँकि... वो union में राज्य स्तर का पदाधिकारी था। लेकिन उसने अपनी हैसियत और अहमियत एक साधारण सदस्य से भी नीचे कर रखी थी। और इसकी वजह न तो बताने की जरूरत थी... न समझाने की। क्योंकि... जो व्यक्ति अपने ही दफ्तर के काम में रुचि खो चुका हो... उससे पदाधिकारी वाले कर्तव्यों की उम्मीद करना भी बेमानी ही था। मन का चंडीगढ़ पुलिस का पेपर था। कल जाते समय “मन” ने एक status लगाया था। एक restaurant के बाहर की तस्वीर... जहाँ लंबे सफर वाली बसें कुछ देर के लिए रुका करती थीं। तस्वीर में वो खड़ी थी। हल्की मुस्कान... हवा में उड़ते बाल... और पीछे यात्रा की भागती हुई दुनिया। लेकिन... कल से ही वो तस्वीर माही के भीतर कहीं अटक गई थी। ना जाने क्यों... एक अजीब-सी अधीरता... एक अनजाना भय... उसके भीतर जन्म लेने लगा था। बार-बार वो तस्वीर उसकी आँखों के सामने घूमती... और हर बार सिर्फ एक सवाल उसके भीतर कौंध उठता — “तस्वीर खींची किसने...?” फोटोग्राफर कौन था...? “मन” का phone उसी के हाथ में था। अगर ऐसा ना होता... तो शायद वो खुद को समझा देता कि किसी राह चलते से phone देकर photo खिंचवा ली होगी। हालाँकि... कल उसने उसके जाने और रुकने की चिंता जताई थी। तब “मन” ने किसी रिश्तेदार के यहाँ ठहरने की बात कहकर उसे थोड़ा आश्वस्त भी किया था। रात को माही ने उसे शुभकामनाएँ भेजीं... लेकिन... उस तस्वीर के बारे में पूछ नहीं पाया। क्योंकि... एक तो वो exam से ठीक पहले उसे किसी उलझन में नहीं डालना चाहता था। और दूसरा... शायद उसे खुद भी नहीं पता था कि ऐसा पूछने का अधिकार उसके पास है भी या नहीं। हाँ... फिक्र करने का हक जरूर था। लेकिन... किसी की सुरक्षा और सम्मान की चिंता एक शुभचिंतक की तरह तो की ही जा सकती है... बिना किसी रिश्ते का नाम दिए...? यही सवाल उसे उलझा रहा था। आखिर में... वो हिम्मत नहीं कर पाया।

खैर... शाम चार बजे तक अपने ही ख्यालों से जूझने के बाद वो घर के लिए निकल गया। घर पहुँचकर... बिना भूख थोड़ा बहुत खाया... और बिस्तर पर लेट गया। ना “मन” का

कोई message... ना उसने किया। उस रात... कुछ नींद आई... कुछ नहीं भी। सुबह... कुछ साथी उसे जबरदस्ती हड़ताल से जुड़ी एक meeting के लिए जींद शहर ले गए। लेकिन... वहाँ भी उसका दिमाग उसी वहम... उसी तस्वीर... और उसी अनजाने डर में उलझा रहा। पूरा दिन उसने phone तक नहीं देखा। बस... एक औपचारिकता निभाई... और रात को घर लौट आया। हाथ-मुँह धोकर जैसे ही उसने phone उठाया... “मन” के दो-तीन नए status सामने थे। सूखना झील और रॉक गार्डन में घूमती हुई के। अब... उसके बेचैन दिमाग को और वजह मिल चुकी थी। उसका मन अचानक से बहुत उदास हो गया। आज... ना तो status पर reaction देने का मन था... ना comment करने का। बस... एक ही डर उसके भीतर उपज रहा था कहीं कोई है तो नहीं साथ। घर वालों से “भूख नहीं है” कहकर... वो चुपचाप ऊपर छत पर आ गया। खुले आसमान के नीचे... कुछ देर बैठा रहा। फिर... वहीं लेट गया। ऊपर एक हवाई जहाज हवाई अड्डे पर जगह ना मिलने के कारण hold पर था... और लगातार आसमान में चक्कर काट रहा था। माही काफी देर तक उसे देखता रहा। उसे लगा... आज वो जहाज नहीं... उसका अपना मन भटक रहा है

गाँव के सरकारी स्कूल में प्रशासन का रात्रि ठहराव था। देशभक्ति के गीत बज रहे थे। जिले के लगभग सभी अधिकारी वहाँ आए हुए थे। दो दिन पहले तक उसकी इच्छा थी कि DC साहब को गाँव की समस्याओं से अवगत कराए... लेकिन आज... उसे ये बात याद तक नहीं थी। तभी उसे ख्याल आया — वो खुद भी एक राज्य स्तरीय प्रोजेक्ट में डीसी साहब की टीम का हिस्सा था — “साहब मुझे जानते हैं... उन्हें पता चलेगा कि ये मेरा गाँव है... और मैं पहुँचा नहीं... ये भी ठीक बात नहीं...” उसने खुद से कहा — “Protocol comes first.” और उठने ही वाला था कि... फोन की light जली। “मन” का message था। उसकी जान में जान आई... “क्या कर रहे हो...?” “कुछ नहीं... आप बताओ... कहाँ हो...?” “Paper कैसा हुआ...?” “ठीक हूँ... वहीं हूँ... मौसी के घर... कल चलूँगी... Paper अच्छा नहीं हुआ... इसलिए थोड़ा अच्छा feel नहीं हो रहा...” माही सीधा बैठ गया। “कोई बात नहीं... अभी बहुत paper हैं life में... और हाँ... अच्छे से रहना... अपना पूरा ख्याल रखना... और कल ध्यान से आना... चलने से पहले message कर देना... मैं सुबह बात करता हूँ... अभी काम के लिए जा रहा हूँ कहीं...” “Okay...”

चैट तो खत्म हो गई... लेकिन कुछ देर बाद माही खुद सोच में पड़ गया। इतना कुछ पूछने का हक... उसे आखिर कब से मिल गया...? “ख्याल रखना...” “ध्यान से आना...”

ये सब मन को बिल्कुल पसंद नहीं था। उसे लगता था... जैसे कोई बुजुर्ग किसी बच्चे को समझा रहा हो। ओर शायद वो मन ही मन कह भी रही हो बड़ा आया मेरा खयाल करने वाला.. तू पहले खुद का तो कर ले। माही का प्रेम शायद प्रेमी से पहले एक संरक्षण बन चुका था। खैर... अल्प समय के उस वार्तालाप से उसे जो सुकून मिला... उसे सिर्फ वही समझ सकता था। और सबसे बड़ी बात... अब उसके भीतर गाँव के स्कूल तक जाने का ईंधन फिर से लौट आया था। वो धीरे से उठा... आसमान की तरफ देखा। ऊपर वो जहाज़ भी जा चुका था। ओर वो भी चल पड़ा।

“जिसको तू ढूँढ रहा है...”

अगले दिन सुबह... “मन” का message आया — “Train में बैठ चुकी हूँ... घर पहुँचकर बात करती हूँ...” माही ने बस “ठीक है” लिखा... लेकिन इतने से ही उसे एक राहत मिली। कम से कम... वो सुरक्षित थी। दिनभर दोनों में से किसी को भी समय नहीं मिला। लेकिन... कुछ रिश्तों में चुप्पी भी लगातार संवाद करती रहती है। रात को... आखिर माही ने message किया — “पहुँच गए घर...?”

“हाँ...”

“और बताओ... खाना खा लिया...?” “हाँ... आपने...?”

“हाँ...” फिर... कुछ देर शब्द ठहरे। “और कुछ बताओ...”

“और तो क्या ही बताऊँ... Paper ठीक नहीं हुआ... जबकि आसान भी बहुत था...”

“कोई बात नहीं... अभी Group 57 वाला भी तो है... उसकी तैयारी करो...”

“मैं ना जाऊँ देने...”

“क्यों...?”

“क्यों क्या... नहीं है इच्छा...”

“देखो... ऐसा नहीं... देना है paper तो...” “

ना दूँ बोल... क्या करोगे...?” आज... उसकी आवाज़ में एक बच्चो वाली हरकत थी। जैसे... वो जवाब नहीं... उसका आग्रह सुनना चाहती हो।

माही ने अपनेपन वाली सख्ती से कहा। “देखो... या तो चुपचाप दे आना... नहीं तो...”

“नहीं तो क्या...? बताओ... क्या करोगे...?”

“मैं आपको... घर से उठा ले जाऊँगा... सीधा examination center पर...”

कुछ सेकंड तक संवाद का सिलसिला रुका मानो शब्द बाहर आने से पहले खुद को सजा रहे हो। फिर.. “हाय...! वाह...वा... So sweet...” मानो... वो इसी जवाब का इंतजार कर रही थी।

माही तुरंत संभला। “क्या sweet...?”

“कुछ नहीं... कुछ नहीं... Sweet corn...” फिर अचानक... वो फिर से बच्चों जैसी जिद पर उतर आई — “वैसे मैं ना जाऊँ... अब तो...

क्यों...?” “क्योंकि... फिर इसी बहाने... कम से कम... आप हमारे घर तो आओगे...”

ये पढ़ते ही... माही एक बार के लिए शांत हो गया। अब उसे महसूस हुआ... कि धीरे-धीरे वो खुद भी अपना संतुलन खोने लगा है। लेकिन... हर बार की तरह उसने फिर खुद को संभाला। “चलो... अब थोड़ा पढ़ लो... और अगर कल की थकान है... तो सो जाओ...” “नहीं पढ़ना मुझे...” “क्यों...?” कुछ सेकंड तक typing... दिखाई देता रहा। फिर message आया — “यार... मेरी शादी करा दो...

क्यों?

अब चाहिए कोई प्यार करने वाला...” आज... उसने पहली बार उसे “यार” कहा था। एक छोटा-सा शब्द... लेकिन अपने भीतर ना जाने कितनी नज़दीकियाँ लिए हुए। माही ने खुद को अप्रभावित दिखाने की कोशिश की।

“अरे!...” “प्यार करने वाले रहे कितने...?” “मम्मी... बहन... भाई...”

“अरे ये नहीं... वो वाला चाहिए...”

अब... दोनों अच्छी तरह समझ रहे थे कि बात किस तरफ जा रही है। लेकिन फिर भी... कोई स्पष्ट शब्दों में उस रास्ते पर कदम नहीं रख रहा था। माही ने आखिर लिखा — “देखो... आपको प्यार करने वाले... बहुत मिल जाएँगे... लेकिन... ढूँढना उसे... जिससे आप प्यार करो...” उसके बाद... उसने जल्दी से “Good Night” लिखकर आज की बातचीत को विराम दे दिया। लेकिन... दोनों ही इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि — “जिसको तू ढूँढ रहा है... उसको भी तेरी तलाश है...”

“पत्थर पिघल गया”

उस रात... माही को दो बातें ना चाहते हुए भी स्वीकार करनी पड़ीं। पहली... वो अब पहले जैसा नहीं रहा था। एक समय था... जब लड़कियों के मामले में वो लगभग पत्थर हुआ करता था। दुनिया की किसी भी लड़की में इतनी हिम्मत नहीं थी कि उसके भीतर कोई हलचल पैदा कर सके। ना किसी की खूबसूरती... ना किसी की नज़रों का ठहराव... ना किसी की मुस्कान... उसके भीतर कोई कंपन जगा पाती थी। वो एक बंद दरवाज़ा था... सालों से बंद। जिसे खोलने का दम शायद किसी के पास नहीं था। लेकिन... इस लड़की ने ना सिर्फ वो दरवाज़ा तोड़ दिया था... बल्कि... अंदर पड़े पत्थर को भी धीरे-धीरे पिघला दिया था। अब... उसकी एक हँसी दिनभर की थकान उतार देती थी। उसका एक message बुझते हुए मन में फिर से उजाला भर देता था। और अगर किसी दिन उससे बात ना हो... तो वो भीतर से लगभग पागल हो जाता था। अजीब-सी बेचैनी... बिना वजह की घबराहट... और हर थोड़ी देर बाद मोबाइल स्क्रीन देखने की आदत... उसे खुद अपने ही ऊपर हैरान करने लगी थी।

जबकि... उसे चाहिए भी क्या था...? बस... एक मिनट का साथ। सिर्फ एक मिनट। और वही एक मिनट उसके पूरे दिन की थकान उतार देता था। सबसे बड़ी विडंबना तो ये थी कि... किसी लड़के के “मन” के साथ होने की कल्पना मात्र से उसका दिल काँप उठता था... वो खुद उसी “मन” के लिए ऐसे ही किसी लड़के की तलाश में दर-दर भटक रहा था। वो अपने ही हाथों से अपनी धड़कनों को किसी और के नाम लिखने निकला हुआ था। रात में जिसे पाने की इच्छा जन्म लेती... सुबह वही इच्छा कर्तव्य बनकर उसे फिर किसी नए लड़के की तलाश में भेज देती। ये प्रेम था... या त्याग... या दोनों के बीच की कोई ऐसी भूमि... जहाँ पहुँचकर इंसान खुद को भी ठीक से समझ नहीं पाता। और शायद... इसीलिए आकृति की वो बात अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी — “नहीं रह पाओगे... उसके बिना...”

उसने करवट बदली... ऊपर छत पर फैले अँधेरे को देखा... उसे लगा... कि प्रेम इंसान को कमजोर नहीं करता... बस उसके भीतर छिपे हुए इंसान से उसकी मुलाकात करवा देता है।

“आज सिर्फ़ एक पता नहीं खोजा गया था; असली खोज यह थी कि सीमाओं से परे का लगाव इंसान से अपनी ही हदें किस तरह तुड़वा देता है, जब इंसान खुद से पूछने लगे—
‘मैं आखिर कहाँ तक जा सकता हूँ?’”

“बारिश, गलियाँ... और एक अधूरा सफर”

उसके पास एक लड़के की details आई हुई थी। पिछले दो-तीन दिन से वो जाने की सोच रहा था... लेकिन मन नहीं बना पा रहा था। हालाँकि... अब छुट्टियों की भी कोई खास दिक्कत नहीं थी। हड़ताल ने उसे दफ्तर की जकड़न से बड़ी राहत दे दी थी... और सच कहें तो वो खुद भी इस समय का ज्यादा से ज्यादा लाभ उठा लेना चाहता था। लेकिन फिर भी... पता नहीं क्यों वो निकलने को तैयार नहीं हो रहा था। शायद... भीतर कहीं अब थकान जमा होने लगी थी। या फिर... हर सफर के साथ “मन” से दूर होने का डर और गहरा होता जा रहा था। खैर... उस दिन आखिर उसने खुद को तैयार कर लिया। ज्यादातर वो अपने जाने की सूचना “मन” को नहीं देता था। अगर कहीं से कुछ सकारात्मक निकलता... तभी बताता। लेकिन आज... निकलने से पहले उसने message छोड़ दिया था। उसे जो address मिला था... उसकी एक छोटी-सी पर्ची जेब में डाली... और निकल पड़ा। हिसार से गुरुग्राम की सीधी बस मिल गई, बारिश का मौसम था। पूरे रास्ते बारिश होती रही। लेकिन बस के भीतर होने की वजह से ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। उसे दिल्ली जाना था... इसलिए Gurugram से Metro पकड़नी थी। ऑटो से MG Road station पहुँचा... तो token लेने वाली लाइन देख उसने लंबी साँस ली। भारी भीड़... भीगे लोग... और काउंटर के सामने उमड़ी हुई अधीरता। उसे अचानक याद आया... क्यों “मन” उसे बार-बार Metro card रखने के लिए कहती है। खैर... थोड़ी मशक्कत के बाद token लिया... और Metro से Ghitorni पहुँच गया। लेकिन बाहर निकलते ही... बारिश और विकराल हो चुकी थी। मानो... पूरा आसमान दिल्ली पर उतर आया हो। वो कुछ देर station पर ही रुका रहा। सोचता रहा — “अब ऐसी बारिश में कैसे जाऊँ...?” लेकिन... करीब दो घंटे बाद भी जब बारिश नहीं रुकी... तो आखिरकार वो निकल पड़ा। अब वो Metro station की boundary पार कर घिटोरी की तंग गलियों में प्रवेश कर चुका था।

चलते-चलते उसे वही SSB center याद आया... जहाँ वो कभी भर्तियाँ देखने आया करता था। उन पुरानी यादों ने कुछ पल के लिए उसके होंठों का आकार बढ़ाया। लेकिन... कर्तव्य पथ आज भी आसान नहीं था। कुछ ही देर में वो पूरी तरह भीग चुका था। लेकिन...

असल मुसीबत अब शुरू होने वाली थी। आगे... गलियों, नालियों और overflow होते gutters का पानी सड़कों पर आ चुका था। कुछ scooter और bike वाले आधे डूबे हुए अपने वाहन हाथ से पकड़कर पैदल निकल रहे थे। माही रुका। फिर... चुपचाप जूते उतारे... हाथ में पकड़े... और उतर गया उस पानी में। दिल्ली की नालियों का गंदा, बदबूदार पानी घुटनों तक बह रहा था। चलते-चलते वो कभी सरकारों को कोसता... कभी खुद की किस्मत को। करीब दो किलोमीटर तक उस पानी से जूझने के बाद... आखिरकार वो ठिकाने तक पहुँच गया। लेकिन... बारिश और गंदे पानी से भी बड़ी चोट उसे वहाँ पहुँचकर मिली। Address गलत था। उसने कई लोगों से पूछा... भटका... फिर किसी जानकार ने बताया — “जो location तुम्हारे पास है... वो यहाँ नहीं... वसंत कुंज side में पड़ेगी... यहाँ से पाँच-छह किलोमीटर दूर...”

एक दुकान की टपकती टीनशेड के नीचे खड़ा सोच रहा था, क्या करूँ? Google Map की help से आगे बढ़ा जाए? उसने कुछ दिन पहले ही google map चलाना सीखा था, और ये ट्रेनिंग भी उसे “मन” ने ही ऑन कॉल दी थी। लेकिन तभी बारिश और उग्र हो गई।

फिर... झुंझलाहट में उसने माथा पकड़ लिया। भीगे बालों से पानी टपक रहा था... कपड़े पहले ही जवाब दे चुके थे... और अब मन भी धीरे-धीरे हार मानने लगा था। उसने कुछ देर वहीं खड़े होकर सोचा — “जाऊँ...?” “या वापस लौट जाऊँ...?” घड़ी देखी। शाम के चार बज चुके थे। अगर अब और देर होती... तो रात बहुत भारी पड़ती। घर पर मम्मी-पापा की सख्ती वैसे भी इन दिनों बढ़ चुकी थी। और अब तो... वो अपनी छोटी विवाहित बहन को भी इन यात्राओं की जानकारी देने लगा था। शायद... खुद को जवाबदेह बनाए रखने के लिए। कुछ देर बाद तय कर लिया — आज वापस लौटना ही ठीक रहेगा। इस तरह... बारिश से भीगा हुआ... गलत पते से ठगा हुआ... और भीतर से थोड़ा टूटा हुआ... वो एक असफल दिन को साथ लिए घर की ओर लौट पड़ा। कभी-कभी... सफर सिर्फ मंजिल तक न पहुँच पाने से असफल नहीं कहलाते खासकर तब जब रस्ते और इरादे जिंदा हों।

“और आज इश्क का प्रश्नपत्र”

रात को सोने से पहले उसने आज की पूरी update “मन” को दे दी थी। साथ ही... घर पहुँचते ही कल फिर से जाने की बात भी बता दी थी। तब “मन” ने एक और हिदायत जोड़ दी — “उसके office भी चले जाना...” ठीक सुबह 5 बजे वो घर से निकल पड़ा। लेकिन... उसे बिल्कुल अंदाज़ा नहीं था कि ये यात्रा... उसकी “मन” के लिए की गई सबसे कठिन... सबसे भयावह... और शायद सबसे निर्णायक यात्राओं में से एक बनने वाली है। आज बादल तो थे... लेकिन बारिश नहीं। इसलिए सफर कुछ आसान लगा। करीब 10 बजे वो Gurugram के MG Road Metro Station पहुँच गया। वहाँ से Rajiv Chowk... और फिर Noida line पकड़कर Barakhamba Road स्थित Metro Bhawan पहुँचा... जहाँ वो लड़का कार्यरत था। Connaught Place... दिल्ली का वो इलाका जहाँ शहर अपना सबसे सजा हुआ चेहरा पहनता है। महंगी गाड़ियाँ... सलीके से चलती भीड़... ब्रांडेड कपड़ों में लोग... कुछ परिवार... कुछ प्रेमी जोड़े... वीडियोग्राफी करते विदेशी पर्यटक। सब कुछ मिलाकर ऐसा लगता था मानो किसी यूरोपीय शहर का कोई हिस्सा हो। और इन्हीं सब के बीच... एक साधारण-सा हरियाणवी गाँव का लड़का... उस भव्यता से बेपरवाह जेब में पड़ी पर्ची के साथ Metro Bhawan की तरफ बढ़ रहा था जैसे आधुनिक शहरों के बीच, एक दिल अपनी राह तलाश रहा हो। लेकिन gate पर guard ने रोक लिया। “कहाँ जाना है? किससे मिलना है? क्यों मिलना है?” उसने लड़के का नाम बताया... लेकिन बिना permission मिलना संभव नहीं था। अब लड़के का number भी उसके पास नहीं था। काफी कोशिशों के बाद जब कोई रास्ता नहीं निकला... तो उसने वहीं खड़े दूसरे guard से उस लड़के के बारे में जानकारी लेने की कोशिश की। थोड़ी ना-नुकुर... थोड़ा संदेह... और आखिरकार... guard मान गया। उसने जितनी जानकारी ला कर दे सकता था दे दी। माही ने जो मिला उतना समेट कर, थोड़ी तसल्ली... और थोड़ी बेचैनी के साथ वो वहाँ से निकल पड़ा।

लेकिन आज... उसने तय कर लिया था — “लड़के से नहीं मिला... तो क्या... आज उसके घर तक जरूर पहुँचूँगा।” इस बार वो Ghitorni नहीं... Sultanpur station उतरा। अपनी खोजबीन से उसे पता चला था कि वसंतकुंज यहाँ से नज़दीक पड़ेगा। जल्दी

से station से बाहर आया... एक auto किया... और गंतव्य की ओर निकल पड़ा। शुरुआत में सब ठीक लग रहा था। लेकिन... असल मुसीबत अब शुरू होने वाली थी। Auto वाला... तेल बचाने के चक्कर में मुख्य सड़क छोड़कर कच्चे रास्ते पर उतर आया। शायद... 5 किलोमीटर को 3 किलोमीटर में बदल देना चाहता था। लेकिन... करीब पाँच सौ मीटर बाद ही उसे अपनी गलती का एहसास हो गया। आगे... कीचड़ और पानी इस कदर भरा था कि बढ़ना लगभग असंभव था। उसने हाथ खड़े कर दिए। माही ने गलत रास्ते पर लाने के लिए नाराजगी जताई... दूरी के अनुसार जो बना वो किराया दिया... और उसे वापस भेज दिया। अब आगे का सफर उसे अकेले तय करना था। उसने एक बार पूरा इलाका देखा। मुश्किल तो था... लेकिन गाँव का लड़का था। ऐसी परिस्थितियों से कई बार गुजर चुका था। इसी भरोसे... इसी अतिआत्मविश्वास के साथ उसने आगे बढ़ने का फैसला किया। और यहीं पर उस से चूक हो गई, क्योंकि “आत्मविश्वास” आज उसके लिए सजा बनने वाला था।

पूरी तरह कच्चा रास्ता... दोनों तरफ रेत की ऊँची दीवारें... जिन्हें गाँव की भाषा में “पारे” कहा जाता है। उन पारों के बीच बरसाती पानी फैला हुआ था। बीच में बदबूदार कीचड़... और किनारों पर चिकनी मिट्टी... जिस पर पैर टिकाना तक मुश्किल था। सबसे भयावह बात... चारों तरफ वीरानी। दूर-दूर तक कोई इंसान नहीं। बस... झाड़ियाँ... पेड़... और बीच-बीच में Delhi Police के बोर्ड — “Crime Prone Area” (अपराध संभावित क्षेत्र)। ऊपर... काले बादलों का जमावड़ा मानो आने वाली मुसीबत की भूमिका लिख रहा था। इन सबके बीच... वो अकेला आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। लेकिन हाल ये था कि... दो कदम आगे बढ़ता... और पाँच कदम पीछे फिसल जाता। बीच से जा नहीं सकता था। पानी और कीचड़ बहुत गहरा था। इसलिए... पारों के सहारे चलना मजबूरी था। लेकिन वहाँ ढलान और चिकनी मिट्टी हर कदम को इम्तिहान बना रही थी। वो कभी दोनों हाथों से रेत पकड़ता... कभी झाड़ियों का सहारा लेता... तो कभी फिसलने के बाद फिर उठ खड़ा होता। मंजिल अब भी ढाई किलोमीटर दूर थी। लेकिन... यहाँ दो कदम चलना भी युद्ध जैसा लग रहा था। और तभी... हल्की बूँदाबांदी शुरू हो गई। जो कुछ ही देर में तेज बारिश में बदल गई। अब मुसीबत और विकराल हो चुकी थी। पानी बढ़ गया... मिट्टी और फिसलन भरी हो गई...

अंधेरे की संघनता ने दिन और रात के अंतर को मिटा दिया था, जगह-जगह साँप और चूहे बिलों से बाहर निकलने लगे। पर वो... अब भी चले जा रहा था। रुकने की कोई

जगह नहीं थी। बचने का कोई रास्ता नहीं था। सारे कपड़े... जूते... शरीर... मिट्टी और बारिश में डूब चुके थे।

तभी... अचानक एक भयंकर धमाका हुआ। इतना तेज... कि उसका पूरा अस्तित्व सिहर उठा। वो आसपास गिरी आकाशीय बिजली की आवाज थी। पल भर के लिए वो वहीं जड़ हो गया। आज पहली बार... उसे अपने फैसले पर पछतावा होने लगा। चलते-चलते वो खुद से सवाल कर रहा था — “क्यों कर रहा हूँ मैं ये सब...? अपनी जान जोखिम में डालकर... खुद की नहीं... कम से कम माँ-बाप की तो सोचनी चाहिए... अगर मुझे कुछ हो गया... तो उनका कौन...? क्या खुद को बलिदान की हद तक पहुँचा देना... वाकई इंसानियत है...? कर्तव्य है...? इश्क है...? या सिर्फ पागलपन...?” और शायद... आज वो खुद भी इस प्रश्नपत्र में Option D ही चुनता। इन्हीं सवालोंने के बीच... वो धीरे-धीरे मंजिल की ओर बढ़ता रहा। लेकिन... क्या वो सचमुच मंजिल थी...? जो सफर को ही अंतिम यात्रा जैसा बना दे। तभी... एक और जोरदार धमाका हुआ। इस बार आकाशीय बिजली इतनी पास गिरी... कि कुछ पल के लिए पूरा इलाका दूधिया रोशनी से भर उठा। उस चमक में उसे कुछ सेकंड के लिए अपना अकेलापन साफ दिखाई दिया। एक वीरान रास्ता... बारिश... झाड़ियाँ... कीचड़... और उन सबके बीच सिर्फ “वो”, उस घटना ने उसके भीतर “डर” बैठा दिया, ये आगे ना बढ़ने का सीधा संकेत था लेकिन... पीछे जाने का रास्ता भी बंद हो चुका था, मजबूरी ही सही लेकिन चलना ही एकमात्र विकल्प था, करीब एक घंटे में डेढ़ किलोमीटर पार करने के बाद... उसे दूर झाड़ियों और पेड़ों के बीच एक खेत में बना मकान दिखाई दिया। उसे देखकर उसकी साँसों में थोड़ी उम्मीद लौटी। और आखिरकार... करीब पैंतालीस मिनट और संघर्ष करने के बाद... वो उस बियाबान से निकलकर वसंतकुंज की आलीशान दुनिया में पहुँच गया। बड़े-बड़े farmhouse... हरी घास... चौड़ी सड़कें... लगभग ना के बराबर traffic। उसने एक गहरी साँस ली। ऊपर वाले का शुक्रिया अदा किया। लेकिन... समस्या यहाँ भी खत्म नहीं हुई। जिस Avenue [Redacted] address को वो ढूँढ़ रहा था... वो किसी रईस का farmhouse निकला। वहाँ पर्ची वाले नाम का कोई नहीं रहता था। उसने माथे पर हाथ मारा। फिर किसी से पूछा... तो पता चला — “ये address... Baba Ramsingh Farm House side का है... Ghitorni के पास... यहाँ से... सात-आठ किलोमीटर...” ये सुनकर ही उसकी जान निकल गई। मतलब... अब फिर पैदल...? लेकिन करे भी क्या। और वैसे भी... इश्क तो सरहदें पार करवा देता है। ये तो सिर्फ कुछ किलोमीटर थे। करीब गोल चक्कर काटते हुए आठ किलोमीटर और चलने के बाद...

आखिरकार... वो उस घर के सामने खड़ा था... जिसे वो दो दिनों से ढूँढ़ रहा था। आलीशान घर। BSF के Inspector का। उसने घर की photo ली... पास की स्टील shop से उनके बारे में जानकारी जुटाई... Inspector साहब से phone पर बात की... और जब पूरी तसल्ली हो गई... तब वापस station की ओर चल पड़ा।

अब... उसके भीतर एक तृप्ति थी। मानो... आज उसने सिर्फ एक घर नहीं खोजा था... बल्कि अपने भीतर छिपे उस आदमी को भी देख लिया था... जो प्रेम में हद से गुजर सकता था। शाम के पाँच बज चुके थे। Metro से Gurugram... और फिर Haryana Roadways की bus से Rewari, यहां से Hisar के लिए रेल पकड़ी, रास्ते में “मन” का message आया। एक शरारती emoji के साथ — “निकल लिए...?” “चाय पी कि नहीं...?” वो चाहे खाने की पूछे ना पूछे... लेकिन चाय... उसकी चिंता का स्थायी विषय थी। माही ने थोड़ा बहुत बता दिया। कुछ देर बाद उसका फिर message आया — कुछ और ही पूछ रही थी।

“कल आपको बताया तो था... इस बारे में...” माही ने लिखा —

“ओह... मैं भूल गई थी... SORRY...” फिर एक और message आया — “और एक बात बताऊँ...? मुझे तो बस... आपके पास message करने से मतलब है...” ये पढ़कर... दिनभर की सारी थकान उस एक वाक्य ने समेट ली हो।

इसके बाद उसने बस इतना लिखा — “अच्छा... अब जल्दी से घर पहुँचो... Bye...” और फिर... करीब रात साढ़े दस बजे वो घर पहुँच गया। शरीर थककर टूट चुका था... खाना खाकर जैसे ही वो बिस्तर पर लेटा... नींद उसे अपने सफर पर ले गई।

“मेरा मन”

रात को उसे इतनी गहरी नींद आई... कि जो लड़का अक्सर सुबह 6 बजे उठ जाया करता था... उसे उस दिन सुबह के 8 बजने का भी पता नहीं चला। उठते ही उसने सबसे पहले “मन” को message किया। कल की पूरी Summary की जगह... बस एक छोटी-सी line लिखी — “All is good. I will explain later.” मतलब साफ था। अब... उस रिश्ते में आगे बढ़ा जा सकता था। उस दिन वो कहीं नहीं गया। पूरा दिन उसने बस कल की थकान उतारी। लेकिन... कुछ यात्राएँ ऐसी होती हैं जो शरीर से तो उतर जाती हैं पर भीतर कहीं लंबे समय तक जमा रहती हैं।

अगले दिन सुबह... माही exercise कर रहा था। तभी... मोबाइल स्क्रीन पर वो सफेद खरगोश उभरा। जिसके ऊपर लिखा था —

“Man”।

“Sir... आज आ रहे हो क्या...?”

“हाँ... आऊँगा...”

“Ok... मैं canteen में आऊँगी... कुछ मंगाना हो तो बताओ...” उसे मंगवाना तो कुछ नहीं था। लेकिन फिर भी... उसने छोटी-सी list बनाकर भेज दी।

“ठीक है Sir... जब मैं phone करूँ... तो canteen आ जाना...” करीब 12 बजे उसका phone आया। “Sir... आ जाओ...”

वो लगभग पंद्रह मिनट में पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा... “मन” भीतर थी... और उसका bag बाहर नीचे एक कोने में रखा हुआ था। वो चुपचाप वहीं जाकर बैठ गया। फिर... पता नहीं उसके मन में क्या आया... उसने bag उठाकर अपने पास रख लिया। शायद... सुरक्षा की वजह से। या शायद... अब उसका मन उससे जुड़ी चीजों को भी अपने पास रखना चाहता था। थोड़ी देर बाद “मन” बाहर आई। उसकी नजर सीधे bag पर गई। फिर... उसकी आँखों और होठों पर एक महीन सी मुस्कान झलक उठी। शायद... माही की मासूमियत पर। कि... सीसीटीवी की निगरानी में भी उसे उसका

bag असुरक्षित लग रहा था। फिर उसने पूछा — “आपने पहचान लिया मेरा bag...?”
 “हाँ...” “Great...” पेमेंट होने तक दोनों वहीं खड़े रहे। माही... हमेशा की तरह ज़रूरी दूरी बनाए हुए। थोड़ा शर्माया हुआ... थोड़ा घबराया हुआ। और एक दिलचस्प बात...
 “मन” भी phone पर जितनी खुल जाती थी... सामने उतनी ही सिमट जाती थी। इतनी... कि कोई कह ही नहीं सकता था कि यही लड़की रात-रात भर इतनी बातें करती है। सामान लेने के बाद माही अगले चौक तक उसका सामान छोड़ने गया... जहाँ से उसे bus मिलनी थी। फिर... खुद का सामान लेकर घर लौट आया।

रात के 9 बजे... मैसेज टोन बजी।

“क्या कर रहे हो...?” “खाना खा लिया...”

“हाँ...”

आपने...?”

“मैंने भी...”

और बताओ...”

“बस ठीक है...”

कुछ देर बाद... माही ने लिखा — “आपने सामान ला कर दिया... उसके लिए... Thnx...”

“मन” — “क्या कहा...?” “Thnx...” “अरे सुना नहीं... थोड़ा जोर से बोलो...” अब वो जानबूझकर उसे परेशान कर रही थी। लड़की का असली तात्पर्य जानते हुए भी उसने 3-4 बार लिखा — “Thnx... Thnx... Thnx...” फिर पूछा — “अब सुन गया...?” “हाँ... लेकिन पसंद नहीं आया... मना कर रखा है ना... इसके लिए...” “हाँ... पर...”

“पर क्या...?” फिर अचानक “तुम हो कि समझते नहीं...” कुछ सेकंड बाद... वो “तुम” जल्दी से “आप” बन गया। “Sorry... आप...”

माही की नजरे एक पल के लिए स्क्रीन पर छपे शब्दों में खो गई।

— “क्या sir... Aap bhi naa...”

क्या हुआ...?” “Canteen में ऐसे खड़े थे... जैसे जानते भी नहीं... इतना भी कौन शर्माता है... सुंदर, जवान लड़की खड़ी थी साथ... कम से कम इन गुणों की तो कद्र कर लेते...” उसके बाद हँसती हुई emojis... और कुछ चुलबुले GIFs।

माही बिना प्रतिक्रिया के messages को देखता रहा।

फिर उसका एक और सवाल आया — “Sir... आपने मेरा number किस नाम से save कर रखा है...?”

“आपके नाम से...”

“सुनो... मेरा नाम change कर लो...”

“क्यों...?”

“अरे... किसी ने देख लिया तो... आपके phone में मेरा number... Be safe...”

“किस नाम से करूँ फिर...?”

“मुझे नहीं पता... पर change करो...” माही ने एक शरारती emoji भेजी — “Canteen वाले... के नाम से कर लूँ...?”

“हाँ... कर लो...” दोनों तरफ से कुछ दांत निकालते (हंसी) मुखौटे। फिर उसने लिखा — “मज़ाक अपनी जगह है... बताओ... किस नाम से करूँ...?”

“जो आपका मन करे...”

माही बस उस line को देखता रहा। फिर type किया — “मेरा मन...”

दो ही तो शब्द थे... लेकिन मन ने मानो उन्हें देखने के लिए समय को रोक लिया था। शायद इसी वजह से दोनों तरफ की स्क्रीनें घड़ी की सुइयों से वक्त को वापिस मांग रही थी।

— “हां, आपका मन, ओर क्या, मेरा मन।”

माही - “हां, मेरा मन।”

“अच्छा...”

कौन है... आपका मन...?” उसने पूछा।

माही ने लिखा — “जो रूह में है... मेरा मन...”

Ohh ho..

फिर से एक हँसती हुई emoji आई।

फिर उसने लिखा — “चलो... अब जाओ... Good Night...” माही ने भी वैसा ही लिखा। कुछ देर बाद... मोबाइल स्क्रीन पर वह सफेद खरगोश... जो पहले सिर्फ — “मन” था...

अब बन चुका था — “मेरा मन”।

अध्याय - 114

“मन का मौसम”

उस रात के बाद... जब मोबाइल की स्क्रीन पर "मन" की जगह "मेरा मन" लिखा दिखाई दिया था... मानो एक शब्द नहीं बहुत कुछ बदल गया हो। अगली सुबह... माही बहुत जल्दी जाग गया। हालांकि आज कहीं जाना नहीं था। न किसी लड़के का घर देखना था... न कोई दफ्तर का काम... फिर भी नींद ऐसे टूटी जैसे किसी ने भीतर से आवाज देकर जगा दिया हो। बाहर हल्की भोर उतर रही थी। किसी मंदिर से आती प्रातः वंदना भजनों का संगीत। आसमान के पूर्वी कोने में सूरज अभी पूरी तरह निकला नहीं था... बस उसकी हल्की सुनहरी आभा क्षितिज पर फैलने लगी थी। चांद पश्चिम की तरफ बढ़ रहा था.. माही घर से बाहर सड़क पर खेतों की तरफ निकल गया। रात की नमी अब भी मिट्टी में बची हुई थी। कपास के पौधों पर ओस की बूंदें ठहरी थीं। ऐसा लग रहा था जैसे प्रकृति ने रात भर कोई अनमोल बात लिखी हो... और अब सुबह उसे पढ़ने की तैयारी कर रही हो।

वो मेड़ पर जाकर बैठ गया। सामने दूर तक फैले खेत... ऊपर नीला होता आसमान... और बीच-बीच में उड़ते बगुले। उसे आभास हुआ... कि प्रकृति का हर दृश्य शायद मनःस्थिति के अनुसार बदल जाता है। यही खेत... यही हवा... यही पेड़... उसे पहले भी दिखाई देते थे। लेकिन आज उनमें कुछ और था। या शायद... बदला खेत नहीं था। बदल देखने वाला गया था। हवा का एक झोंका आया। साथ में कहीं दूर से जैस्मीन (मोगरा) की बची हुई खुशबू भी। उसने अनायास मोबाइल निकाला। स्क्रीन जली। और वहाँ...  "मेरा मन"

Good morning! बस इतना ही। कोई नया संदेश नहीं। कोई missed call नहीं। फिर भी... उस नाम को देखते ही उसका चेहरा नूरानी हो गया। वो मुस्कान वैसी थी... जैसी बारिश के बाद पहली धूप की किरण धरती पर उतरते समय होती है। एक नया सवेरा.. नई शुरुआत।

उसे अचानक याद आया... कुछ महीने पहले तक वो प्रेम जैसी चीजों पर हँस दिया करता था। उसे लगता था... ये सब शायरों के रोग और सड़कछाप आशिकों के शौक हैं। लेकिन अब... वो खुद एक ऐसे प्रश्न का उत्तर बन चुका था... जिसे कभी समझना भी नहीं चाहता

था। दूर बिजली के तार पर बैठा तोते का एक जोड़ा एक साथ उड़ गया। माही उन्हें देखता रहा। कितना विचित्र है... पक्षियों को अपने संबंधों की घोषणा नहीं करनी पड़ती। न कोई वादा... न कोई प्रमाण... न कोई नाम... फिर भी उन्हें पता होता है कि उन्हें कहाँ लौटना है। और शायद... मनुष्य की सबसे बड़ी विडंबना यही है। उसे प्रेम होने के बाद भी हजार प्रमाण चाहिए होते हैं, उसकी निगाहे अब आसमान की तरफ थी, एक सफेद बादल... हवा के साथ धीरे-धीरे बह रहा था। उसे अचानक लगा... दूर किसी मंदिर से घंटी बजी। एक किसान बैलगाड़ी लेकर कच्चे रास्ते से निकला। फौज की तैयारी करने वाले युवा लड़के दौड़ लगा कर वापिस आ रहे थे। दिन धीरे-धीरे जाग रहा था। वो मेड़ से उठा। कपड़ों पर जमी ओस झाड़ी। और घर की तरफ चल दिया। लेकिन आज चलते समय उसे ऐसा लगा... जैसे दुनिया भले ही वैसी है... पर उसके भीतर कोई ऋतु बदल गई है। और जब भीतर मौसम बदल जाए... तो फिर पेड़ वही रहते हैं, खेत वही रहते हैं, आसमान वही रहता है, लेकिन भावनाओं का एक नया संसार बस जाता है, और फिर दुनिया नई लगने लगती है।

“यज्ञ, आहुति और एक खामोश जीत”

अगले चार-पाँच दिन

माही के लिए अत्यधिक व्यस्तता से भरे रहे।

एक तरफ हड़ताल से जुड़ी औपचारिकताओं के लिए भागदौड़...

तो दूसरी तरफ,

अनु की शादी की तैयारियों में "मन" को उसकी ज़रूरत थी।

हालाँकि, वो जानबूझकर माही को ज्यादा परेशान नहीं करना चाहती थी।

लेकिन कई बार...

माही को लगता कि उसे ये छोटे-छोटे काम सौंपना भी

शायद "मन" के अपनत्व का ही एक हिस्सा था।

मानो...

घर में शादी का कोई बड़ा 'यज्ञ' चल रहा हो...

और उसमें परिवार के सदस्यों के साथ-साथ

माही की 'आहुति' भी ज़रूरी हो।

और माही...?

उसके लिए तो "मन" की हर ज़रूरत

सिर्फ एक काम नहीं, बल्कि उसका परम कर्तव्य था।

वो जितना बताती...

माही उससे कहीं ज्यादा कर गुज़रता।

और उन कामों का जो भी अच्छा परिणाम आता...
उसे देखकर माही के भीतर एक चाव, एक सुकून भर जाता।
लेकिन...
इसी बीच एक ऐसी अड़चन आ खड़ी हुई,
जिसने माही के माथे पर पसीने ला दिए।
एक ऐसा काम...
जो लगभग 'असंभव' की श्रेणी में आता था।
हुआ यूँ था कि...
"मन" ने राज्य के सेवा चयन बोर्ड में
किसी पद के लिए आवेदन किया था।
लेकिन फॉर्म भरते समय...
अनजाने में उससे अपनी श्रेणी (Category) गलत भरी गई।
आयोग ने बीच में सुधार का मौका भी दिया था...
लेकिन "मन" को इसका पता ही नहीं चला।
और अब...
बोर्ड ने गलत सूचनाओं वाले सभी आवेदनों को
सीधे निरस्त करने की अधिसूचना जारी कर दी थी।
ऐसे में "मन" का मायूस होना और टूट जाना लाजमी था।
क्योंकि उसके लिए...
इस नौकरी से ऊपर की नौकरी लेना
सिर्फ एक इच्छा नहीं, बल्कि उसकी सबसे बड़ी प्राथमिकता थी।
हर बार की तरह...

इस घबराहट में भी उसने सबसे पहले माही को ही बताया।

माही ने जब यह सुना...

तो एक बार के लिए उस पर झुंझलाहट हावी हो गई।

उसने इस बड़ी लापरवाही के लिए "मन" पर हल्का गुस्सा भी ज़ाहिर किया।

लेकिन...

ये गुस्सा वास्तविक नहीं था, बल्कि उस फिक्रमंद इंसान का था, जो किसी अपने की गलती पर झल्लाता तो है... पर फिर उसे बचाने के लिए पूरी दुनिया से लड़ जाने का माद्दा भी रखता है।

बस...

वहीं से माही का अपना 'अभियान' शुरू हो गया।

शुरुआत में उसने

अपने व्यक्तिगत संपर्कों के ज़रिए

सिर्फ "मन" का फॉर्म ठीक करवाने की कोशिश की।

लेकिन...

बोर्ड की गोपनीयता और कड़े नियमों के चलते

ऐसा करना बिल्कुल संभव नहीं था।

चार-पाँच दिन की लगातार भागदौड़, मानसिक थकान...

और हर जगह से निराशा मिलने के बाद भी

माही ने हार नहीं मानी।

उसने अपने संपर्कों का दायरा और ऊँचा किया...

प्रशासन की उन कड़ियों का इस्तेमाल किया,

जहाँ तक आम इंसान की पहुँच नहीं होती।

और आखिरकार...

उसकी वो ज़िद रंग लाई।

माही के उन अथक प्रयासों का ही नतीजा था कि...

पूरे राज्य के अभ्यर्थियों के लिए

त्रुटि सुधार (Correction Window) का एक और नया मौका जारी कर दिया गया।

यह एक बहुत बड़ी जीत थी।

लेकिन माही के लिए यह किसी जश्न का नहीं, बल्कि बस एक गहरी साँस लेने का पल था।

उसने अपनी 4-5 दिन की उस अथक भागदौड़, उन पसीनों और उन ऊँचे संपर्कों के इस्तेमाल का कोई विशेष जिक्र "मन" से नहीं किया।

शाम को उसने बस बहुत ही सहजता से एक मैसेज टाइप किया —

"पोर्टल खुल गया है... जल्दी से अपना फॉर्म ठीक कर लो।"

"मन" को शायद कभी पूरी तरह पता ही न चले कि उसके इस एक फॉर्म के लिए माही ने पीछे कितने बड़े स्तर पर सिस्टम से लड़ाई लड़ी थी।

यह जीत उसकी व्यक्तिगत नहीं थी।

यह जीत थी उसके अटूट कर्तव्य की...

और शायद...

उसके उस "मन" की।

अध्याय - 116

"8:37 का नियम"

अगली रात... कई दिनों की भागदौड़ आखिर रंग लाई थी। फोन, संदेश, संपर्क और उम्मीद-निराशा के बीच उलझा माही हल्का महसूस कर रहा था। क्योंकि कुछ सुकून अपनी जीत से नहीं... किसी अपने की राहत से मिलता है। रात के ठीक 8 बजकर 37 मिनट पर... काली और शांत मोबाइल स्क्रीन जगमगा उठी। "मेरा मन"। उसके चेहरे पर खिलावट आ गई। पिछले कुछ दिनों से 8:37 का समय दोनों के बीच एक अनकहा नियम बन चुका था। दिन कितना भी व्यस्त क्यों न हो... बात करने के लिए कुछ हो या ना हो... लेकिन इस समय एक संदेश जरूर आता था। कभी सिर्फ— Good Evening, तो कभी— खाना खा लिया? और अगर सचमुच कोई बात नहीं होती... तो Good Night के साथ चर्चा समाप्त हो जाती। आलम यह था कि 37वें मिनट के शुरुआती तीस सेकंड तक अगर एक तरफ से संदेश नहीं आता... तो दूसरी तरफ बेचैनी शुरू हो जाती। और फिर नियम टूटने से पहले ही कोई न कोई इसे बचा लेता। शुरुआत मन ने की थी। लेकिन उसकी झाड़ खाने के बाद... अब माही भी इस नियम का उतनी ही ईमानदारी से पालन करता था।

आज भी संदेश आया— सुनो हो के?

माही ने भी शब्दों की बिजली कड़काई — जी, नहीं। देख रहा हूँ।

— Hayye... So Sweet... क्या Quick-witted है। कहाँ से सीखी?

आपसे।

देखा... बस इसी तरह मेरे Best Student बने रहो। Life बना दूँगी आपकी।

बताओ... बनोगे?

Mummy-Papa से पूछना पड़ेगा।

क्यों?

क्योंकि Decide तो उन्हीं को करना है कि किसका Student बनाना है।

फिर... Ohh... ये बात... वाह वाह... आज तो Mood में लग रहे हो। ये पढ़ते ही माही को अपने भटकाव का अहसास हुआ। वो जानता था कि ऐसी बातचीत खतरनाक रास्तों पर जा सकती है। इसलिए उसने हमेशा की तरह विषय बदल दिया। कहिए... क्या सुनाने के लिए Message किया है? वो मैं कह रही थी कि... Ghitorni वालों ने मना कर दिया है।

क्यों?

ताऊ जी ने बात करी थी। वो बोले कि हमें Teaching Background की लड़की चाहिए।

अच्छा। माही ने ऐसे प्रतिक्रिया दी... जैसे पहली बार सुन रहा हो। जबकि सच्चाई यह थी कि लड़के के पिता यह बात उसे पहले ही बता चुके थे। लेकिन उसने जानबूझकर यह बात मन से छिपाई थी। वो चाहता था कि एक बार दोनों परिवार बात तो करें। कहीं बातचीत में कोई रास्ता निकल आए। शायद इसलिए... कि वह एक संभावना को उसके जन्म लेने से पहले मारना नहीं चाहता था। खैर... अब वह संभावना भी समाप्त हो चुकी थी। चलो कोई नहीं... और देखते हैं।

हाँ... मैं भी यही कह रही थी। अगले ही पल... मन फिर अपने असली विषय पर आ गई। अब वो Faridabad वाला देख आओ किसी दिन जाकर।

हाँ। मैं जल्दी ही जाता हूँ।

ठीक है। जिस दिन जाओ Message कर देना।

हाँ। बता दूँगा। और बताओ।

और तो कुछ नहीं।

फिर अचानक... उसके संदेशों का स्वर बदल गया। और आप तो Office आते नहीं हो अब। पीछे से सफाई वाला हटा दिया है। एक महीने से झाड़ू भी नहीं निकली Office में। मेरा तो आने का भी जी नहीं करता। ऐसा मन करता है कि पूरे दिन लाइब्रेरी में ही रहू। और आपके Office वाला Cooler भी खराब है। फुर्सत में वहाँ बैठ जाती थी... लेकिन बिना हवा के कैसे बैठूँ? साथ में एक रुआँसी इमोजी भी थी।

माही ने हंसते हुए लिखा। जी मैडम। सुन लिया। लेकिन मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि मैं हड़ताल में शामिल हूँ। दफ्तर के मामलों में दखल नहीं दे सकता।

एक बार फिर से चुप्पी पसर गई।

फिर संदेश आया— अच्छा...

हाँ। इसके लिए माफ करो।

जाओ ठीक है। मैं बात नहीं करती आपसे। साथ में एक चिढ़ी हुई इमोजी। और उसके तुरंत बाद— Bad Nyt और चैट समाप्त। माही के होंठों पर एक चंचल मुस्कान थी। दिन भर वह न जाने कितने लोगों की समस्याएँ सुनता था। किसी की नौकरी... किसी का रिश्ता... किसी का भविष्य... और कितनों की नाराजगी झेलता था। लेकिन यह शायद पहली लड़की थी... जिसकी नाराजगी भी उसे अच्छी लगती थी। क्योंकि वह जानता था... ये वास्तविक क्रोध नहीं है। ये उस अपनत्व की निशानी है... जहाँ शिकायत करने का अधिकार महसूस होने लगता है। उसके होंठों पर चिरपरिचित शांत मुस्कान थी। फिर उसने सलीके से टाइप किया— Bad नहीं... Good Night और संदेश भेज दिया। मोबाइल की स्क्रीन बुझ चुकी थी। लेकिन उसके चेहरे की मुस्कान कुछ देर और बनी रही। बाहर रात अपने दायरे को और बड़ा कर रही थी। दूर कहीं किसी खेत से हवाई फायरिंग की आवाज आ रही थी। जो अक्सर फसल को पशु पक्षियों से बचाने का आधुनिकता में लिपटा पारंपरिक तरीका है। आसमान में कोई विमान अपनी लाल-नीली बत्तियाँ टिमटिमाता हुआ आगे बढ़ रहा था। और इधर... 8 बजकर 37 मिनट की वह छोटी-सी दुनिया... आज फिर अपने नियत समय पर आबाद होकर सो चुकी थी।

“बेशक वह मोहब्बत की किताब को पूरी शिद्दत से पढ़ रही थी... लेकिन अभी वह उस पन्ने तक नहीं पहुँची थी जिस पर लिखा था—“इश्क ही रब है।”और अब वह किसी का मुकम्मल इश्क बन चुकी थी... इसलिए किसी को उसमें ही अपना खुदा दिखाई देता था। वह साधारण सा दफ्तर माही के लिए अब महज़ एक इमारत नहीं, बल्कि एक पाक इबादतगाह बन चुका था, जिसकी धूल साफ करने का हुक्म इश्क का पीर अपने सच्चे मुरीद को दे चुका था।”

अध्याय - 117

“एक रोटी तुम्हारे लिए”

अगली सुबह...

माही का कार्यालय।

समय लगभग 9 बजे का था। सफाई कर्मचारी पूरे मनोयोग से दफ्तर को चमकाने में लगा हुआ था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो किसी अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकारी का आगमन होने वाला हो।

एक महीने से फर्श पर जमी धूल गायब हो चुकी थी।

कोनों में फैले जाले हटाए जा चुके थे। अब बारी टाइलों को चमकाने की थी। तभी मन कार्यालय पहुँची। दफ्तर की बदली हुई सूरत देख कर वो ठिठक गई। कुछ क्षण तक चारों ओर देखती रही।

फिर मन ही मन बोली—“ये सब किसने करवा दिया?”

“लगता है भगवान ने ही सुन ली मेरी...”

“वरना उस खडूस इंसान को कहाँ फिक्र है मेरी।”

वो मुस्कराई और आगे बढ़ गई। कुछ कदम आगे जाकर उसने माही के कमरे की ओर देखा।

एक मिस्त्री कूलर की मोटर खोल कर बैठा था और उसे ठीक करने की कोशिश कर रहा था।

अब वो सचमुच सोच में पड़ गई।

कल तक जो कूलर बंद पड़ा था...

आज उस पर काम चल रहा था। कमरा साफ था। दफ्तर चमक रहा था। वो हैरान थी।

उसे समझ नहीं आ रहा था कि ये सब सब की रहमत है... या फिर उसी इंसान की...

जो हर बार अनजान बनने का अभिनय करता रहता है।

वास्तव में पिछली रात को ही माही ने जिला प्रशासन के एक प्रभावशाली अधिकारी के माध्यम से कार्यालय की सफाई व्यवस्था की जिम्मेदारी संभालने वाले अधिकारी तक बात पहुंचवाई थी।

सुबह से पहले ही पूरे इमारत की सफाई करवा दी गई। और साथ ही कूलर भी ठीक कराने के निर्देश दे दिए गए थे।

मन अपने कमरे में जाकर बैठ गई।

कुर्सी पर बैठते ही उसने सिर झुका लिया।

दो बूंदें पलकों से फिसलीं...

और मेज पर रखे कागजों पर गिर गईं।

उसे आज फिर से लगा...

कि दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं...

जो "मैं तुम्हारा ख्याल रखता हूँ" नहीं कहते...

बल्कि चुपचाप रख लेते हैं।

उधर पानी से चमकता फर्श था...

और इधर उसकी आँखों से निकली दो बूंदें।

एक धारा दफ्तर को स्वच्छ कर रही थी।

दूसरी...

उसके मन को, मोबाइल निकाला, स्क्रीन टिमटिमाई।

"मेरा मन"

उधर से संदेश था।

विडंबना यह थी कि दोनों ही मोबाइल में एक-दूसरे के में "मन" बन चुके थे...

और दोनों को इसकी खबर तक नहीं थी।

"जा रहा हूँ फरीदाबाद सुबह 5 बजे निकल लिया था, एक जानकार की गाड़ी मिल गई थी इसलिए दोपहर तक आ जाऊँगा।"

"ठीक है।"

आज इधर वाला "मन" बस इतना ही लिख पाया।

दोपहर ठीक 3 बजे।

“कहाँ आ लिए ?”

“बस थोड़ी देर में पहुँच रहा हूँ”

“Ok”

“सुनो”

“हाँ बताओ”

“कुछ खाया ?”

हाँ, खा लिया था।

“झूठ”

“नहीं।”

“खाओ किसी की कसमा”

“इस बार काफी देर तक कोई उत्तर नहीं आया।”

“फिर संदेश आया”—

“झूठ बोल रहे थे ना ?”

“माही की चुप्पी ही उसका उत्तर थी।”

“JE Room में खाना रखा है।”

“आकर खा लो।”

“अरे...”

“कुछ नहीं सुनूँगी, बस आ जाओ।”

“अब इस आदेश की अवहेलना का कोई अर्थ नहीं था।”

“कई दिनों बाद वो कार्यालय आया था।”

“कर्मचारी के रूप में नहीं...एक हड़ताली के रूप में।”

“वो JE Room में पहुँचा। टेबल पर रखा टिफिन खोला।”

“एक रोटी।और थोड़ी सी सब्जी।

“उसने मैसेज किया।”

“फिर आप ?”

“मैंने खा ली।”

“कब ?”

“झूठ बोल रहे हो।”

“नहीं”

“2 रोटी लाई थी, मैंने खा ली,1 आपके लिए...”

इसके बाद माही ने मोबाइल धीरे से मेज पर रख दिया।

उसने रोटी का एक टुकड़ा तोड़ा।

उसे मुँह तक ले गया,लेकिन हाथ वहीं रुक गया।

आँखें भीग चुकी थीं।

बार-बार वही आवाज कानों में पड़ रही थी—

"1 मैंने खा ली..."

“1 आपके लिए...”

साधारण से चार शब्दों से उत्पन्न आसाधारण जज्बातों की लहर धड़कन को हृदय से जुदा कर अपने साथ बहा ले गई।

सामने बैठा एक सहकर्मी उसे देख रहा था।

लेकिन समझ कुछ भी नहीं पा रहा था।

सुबह जिस फर्श को सफाई कर्मचारी ने पानी से धोया था...दोपहर में वह किसी और ही कारण से पवित्र हो रहा था।

सुबह जो धारा बह निकली थी...वो कृतज्ञता की थी।

दोपहर जो बह रही थी...वो प्रेम की थी।

और शायद...दोनों मिलकर अब एक ही नदी बन चुकी थीं।

अध्याय - 118

“मन का दर्पण”

उस रात... माही को नींद आने की कोई जल्दी नहीं थी। छत पर कमरे के बाहर चारपाई पर लेटा था। बरसात का मौसम था। हवा में सुहानी शीतलता थी। ऊपर आकाश में बादल नहीं थे। आज वाली घटना रह-रह कर उसकी आँखों के आगे आ रही थी। उसने आँखें बंद कर लीं। लेकिन कुछ स्मृतियाँ आँखें बंद करने से नहीं जातीं। वे भीतर और स्पष्ट हो जाती हैं। वो बस अपनी ही सोच में डूबा था। कितना विचित्र था सब कुछ। कैसा सफर है ये... जहाँ अपनी मंज़िल के लिए ही रास्ते खोज रहा था। और फिर खुद से प्रश्न— क्या वो... दुनिया का सबसे बड़ा नासमझ है? क्या ये खुद के साथ की जा रही क्रूरता नहीं है? क्या वो अपने संस्कारों के द्वारा अपनी इच्छाओं का अंतिम संस्कार तो नहीं करा रहा? और सबसे बढ़कर... क्या वो अपने "मन" के लिए ही निर्दयी तो नहीं है?

मर्द की आँखों से किसी स्त्री के लिए निकले अश्रु... प्रेम के पक्ष में दिए गए सबसे प्रबल साक्ष्यों में से एक होते हैं। अगर प्रेम नहीं था... तो फिर यह सब क्या था? और अगर प्रेम है... तो फिर वह उससे इतना दूर क्यों खड़ा है? उसने करवट बदली। पास रखा मोबाइल उठाया। स्क्रीन रोशन हुई।

"मेरा मन"।

आज कोई विशेष बात नहीं हुई। बस... रात के ठीक 8 बजकर 37 मिनट पर दोनों ने अपने अनकहे नियम का निर्वहन किया था। और फिर— Good Night! दोनों के लिए ही आज... 8:37 शुभरात्रि की एक औपचारिकता भर थी। असल बातचीत तो उसके बाद शुरू होती थी... जब शब्द समाप्त हो जाते थे... और स्मृतियाँ बोलने लगती थीं। जब चैट बंद हो जाती थी... और ख्याल खुल जाते थे। जब मोबाइल की स्क्रीन अंधेरी हो जाती थी... और मन उजाला करने लगता था।

उसने मोबाइल वापस रख दिया। तभी दूर खेतों में पेड़ों के पास एक जुगनू चमका। कुछ ही क्षणों में अंधेरे का एक छोटा-सा हिस्सा टिमटिमाती रोशनियों से भर गया। माही उन्हें देखता रहा। कितनी विचित्र बात थी... ये छोटे-छोटे जीव अंधेरे से लड़ने की कोशिश नहीं कर रहे थे। न ही उसे समाप्त करने की। वे बस... अपनी पूरी सामर्थ्य से चमक रहे थे। शायद

प्रेम भी ऐसा ही होता है। वह जीवन के अंधेरे को खत्म नहीं करता... लेकिन उसके बीच जीने की वजह दे देता है। उसे अचानक महसूस हुआ कि प्रेम शायद साथ चलने का सफर नहीं है। कभी-कभी प्रेम... सिर्फ यह जान लेने का नाम होता है कि इस विशाल संसार में कहीं एक व्यक्ति ऐसा है... जिसकी खुशी तुम्हारी अपनी खुशी से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। लेकिन उसी क्षण एक और प्रश्न उठता। अगर उसकी खुशी इतनी महत्वपूर्ण है... तो फिर उसके किसी और के साथ होने की कल्पना से दिल काँप क्यों उठता है? इस प्रश्न का उत्तर उसके पास आज भी नहीं था। शायद इसलिए कि मनुष्य प्रेम को समझ सकता है... लेकिन उससे मुक्त नहीं हो सकता।

दूर जुगनुओं की चमक एक विरोधाभास उत्पन्न कर रही थी। अंधेरा भी वहीं था। रोशनी भी। और शायद उसकी जिंदगी भी कुछ ऐसी ही हो गई थी। एक तरफ कर्तव्य। दूसरी तरफ प्रेम। दिन भर वह उसके भविष्य का प्रहरी बनकर चलता था। उसके लिए रास्ते खोजता था। समस्याएँ सुलझाता था। उसके कल को सुरक्षित करने की कोशिश करता था। लेकिन रात... रात उससे सारे पद, सारे तर्क और सारी जिम्मेदारियाँ छीन लेती थी। और तब... वह सिर्फ एक प्रेमी रह जाता था। जुगनुओं की टिमटिमाहट को देखते-देखते उसकी पलकों पर नींद उतरने लगी। आज भी... वह प्रेमी बनकर सो गया था। दूर जुगनू अब भी चमक रहे थे। शायद उन्हें भी मालूम था— कुछ रोशनियाँ साथ चलने के लिए नहीं होतीं... रास्ता दिखाने के लिए होती हैं।

“दो बतख और एक सवाल”

उस दिन बात यहीं समाप्त हो गई। सुबह माही ने फरीदाबाद वाले लड़के की सारी जानकारी मन को भेज दी। निष्कर्ष संतोषजनक था। रिश्ता आगे बढ़ सकता था। लेकिन जानकारी देने में अब पहले जैसा उत्साह नहीं था, उसके भीतर कल की "एक रोटी" अब भी गर्म थी। आँसू सूख चुके थे... एहसास नहीं।

बस।

अगली रात... 8 बजकर 37 मिनट।

Sir कैसे हो?

ठीक हूँ।

आप?

मैं भी।

वो फरीदाबाद वाले तो ताऊ जी के जानकार निकल आए। लड़के के पापा और ताऊ जी ने साथ नौकरी की है। अभी उनका मैसेज आया था। और ताऊ जी उनका घर भी देख चुके हैं। इसलिए लड़के वालों के यहाँ जाने की जरूरत नहीं है। अब वो ही किसी दिन मुझे देखने आएँगे।

अच्छा।

— ये तो और भी अच्छी बात है। जानकारी रिश्तेदारी में बदल जाए तो।

हाँ।

वैसे उनके आने से पहले एक बार और जा आओ कुछ ओर पता कर लो। हो सकता है कोई कमी निकल आए जो पहली बार में दिखाई न दी हो।

अच्छा... तो आप चाहते हो कि कोई कमी निकले? माही ने अचंभित भाव से पूछा नहीं, नहीं... ऐसा नहीं है।

तो कैसा है?

इस प्रश्न का उत्तर उसके पास था भी... और नहीं भी। मैं तो वैसे ही कह रही थी। पर छोड़ो। कुछ देर बाद मन ने घर की तस्वीरें भेजीं। Sir देखो... कल ताऊ जी उनके घर की फोटो दिखा रहे थे। वो ये नहीं जानते कि मेरे पास तो पहले से ही सारी फोटो आ जाती है। अब इस बात पर माही का भी हंसना बनता था। कुछ देर बाद दोनों ने शुभरात्रि कहा। और चैट समाप्त हो गई।

अगली सुबह... वो घर से बाहर निकल गया। रात की बारिश के बाद वातावरण साफ था। हल्की ठंडी हवा चल रही थी। तभी उसकी नजर खेत के पास घूम रहे एक सफेद बतखों के जोड़े पर पड़ी। दोनों कभी एक-दूसरे के आगे निकलते। कभी पीछे। कभी चोंच मारते। कभी जैसे किसी बात पर बहस कर रहे हों। उन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे दो बच्चे आपस में लड़ रहे हों। कुछ देर बाद उनमें से एक सचमुच नाराज हो गया। उसने तेज आवाज निकाली। और दूसरी दिशा में चल पड़ा। दूसरा भी अपनी अकड़ में खड़ा रहा। माही मुस्कराने लगा। लेकिन तभी कहीं से एक आवारा कुत्ता आया। और उसने अकेले खड़े बतख की तरफ झपट्टा मारा। पहला बतख कुछ समझ पाता... उससे पहले दूसरा बिजली की तरह उसकी तरफ दौड़ा। फिर दोनों ने मिलकर कुत्ते पर ऐसा हमला बोला कि आखिरकार उसे पीछे हटना पड़ा। कुछ देर बाद खतरा टल गया। अब दोनों फिर साथ खड़े थे। थोड़ी देर पहले जो एक-दूसरे से नाराज थे... अब चोंच से चोंच मिलाकर अपनी नाराजगी मिटा रहे थे। क्या सचमुच रिश्ते कागजी खूबियों से बनते हैं... या उस एक इंसान से, जो संकट के समय बिना सोचे तुम्हारे पक्ष में खड़ा हो जाए?

ये वो प्रश्न था, जिसका उत्तर माही लौटते कदमों से तलाश रहा था।

अध्याय - 120

“सुबह से पहले”

एक हफ्ते बाद... रात के ठीक 8 बजकर 37 मिनट। मोबाइल स्क्रीन जगमगाई।

Sir

हाँ Ma'am

Sir देखो...Mam मत कहा करो।

तो क्या कहूँ?

"मन"

चलो देखते हैं।

कोशिश करके।

हाँ। डाल लो आदत। अब वैसे भी...

वैसे भी क्या?

कुछ नहीं। — अच्छा मैं कह रही थी कि... वो कल आ रहे हैं मेरे को देखने।

अच्छा।

चलो ठीक है। करो कल की तैयारी।

क्या तैयारी करूँ?

वो तो लड़कियाँ क्या करती हैं... मेरे को ज्यादा नहीं पता। पर अभी फोन रखकर कम से कम mentally prepare हो जाओ।

नहीं होना। जैसी हूँ ठीक हूँ। अनु हल्का makeup करने के लिए कह रही थी। पर मैंने मना कर दिया।

क्यों?

क्यों क्या? Simplicity is the real beauty.

Ok. जैसा आपको ठीक लगे।

कुछ देर बाद मन ने अचानक विषय बदल दिया। मेरा एक दोस्त है। उसके घर वाले उसकी शादी किसी दूसरी लड़की से करना चाह रहे हैं। लेकिन वो किसी और से... अब उसका रो-रो कर बुरा हाल है।

अच्छा। आप उसकी help करो -- माही ने कहा। उसके घर वालों को समझाओ कि ऐसा मत करो। अगर फिर भी कुछ नहीं होता... तो घर वालों की इज्जत का खयाल समझ कर जो है उसे accept कर लो।

मन - हो गई आपकी philosophy?

हाँ।

Sir...

हाँ। आप भी कर लो अब कहीं शादी।

“अच्छा।”

“हाँ कर लो।”

“आप कर लो पहले। फिर देखता हूँ।”

ऐसा क्यों? बस ऐसे ही।

माही ने फिर बात घुमा दी। देखो... कल है ना। उनसे अच्छे से बात करना। जो पूछें उसका ठीक से जवाब देना। थोड़ा अच्छा बन कर जाना। कभी ऐसे ही बावले से बन कर चले जाओ।

और कुछ हो तो वो भी बता दो।

और तो... आप होशियार हो। समझदार भी। नौकरी है। और सुंदर इतने कि देखकर कोई मना भी नहीं कर सकता। —

ये last line फिर से बोलो।

आप बहुत सुंदर हो।

Sir... फिर से।

सुंदर हो आप। बहुत।

Sir... लिखते जाओ।

क्यों?

मेरे को अच्छा लग रहा है।

कब तक लिखूँ?

जब तक तुम्हारी उंगलियाँ ना थक जाएँ।

साथ में खिलखिलाती हँसी वाली इमोजी।

हटा चलो भागो अब यहाँ से। शरारती कहीं की। और सुबह की तैयारी करो। Good Night

Good Night

चैट बंद कर के फोन एक तरफ रख दिया। माही ने आँखें बंद कर लीं। कुछ देर तक यूँ ही लेटा रहा। लेकिन नींद भी जैसे स्क्रीन में ही झाँक रही थी।

थोड़ी देर बाद फिर स्क्रीन जली।

"मेरा मन"।

इस बार सीधी कॉल आई। हाँ। बताओ। अगर आपको शादी करनी है... तो मेरी एक friend है आपकी caste में। उससे बात करूँ? अरे... इतनी रात को क्या याद आ गया आपको? Time देखो। 11 बज गए। और वैसे भी... इतनी रात को फेरे होते हैं। रिश्ते तय नहीं होते।

अच्छा... तो कर लो फेरे। जवाब की तेजी बता रही थी कि वाक्य सालों से रूह की किसी कण में श्वास ले रहा था।

किससे करूँ? अरे... होगी कोई girlfriend आपकी। कर लो फोन पर ही।

अब फोन रखेंगी मैडम जी?

ना रखूँ बोला।

मैं रख दूँगा।

मैं दुबारा करूँगी।

मैं उठाऊँगा नहीं।

अच्छा... इतना परेशान हो गए मेरे से?

नहीं। परेशान तो बिल्कुल नहीं।

तो फिर?

रात काफी हो गई है। सोना भी है। फिर उठना भी होता है।

तो चाँद-तारों को कहो कि थम जाएँ यहीं। और रात लंबी कर दें। आपकी तो दोस्ती है आजकल इनके साथ।

माही कुछ क्षण चुप रहा। फिर मन ने धीरे से कहा—

अच्छा सुनो...

हाँ।

अगर कल उन्होंने पक्का कर दिया तो?

— तो फिर... कई दिन का इंतजार खत्म। इसी दिन का तो इंतजार है।

तभी मन की माँ की आवाज सुनाई दी— कहाँ चली गई?

ठीक है। मैं रखती हूँ। और कॉल समाप्त हो गई। आज उसे भी नींद नहीं आ रही थी। काफी देर तक करवटें बदलता रहा। फिर एक पुराने मित्र को फोन मिला दिया। कुछ देर इधर-उधर की बातें हुई। तन्हा बाते जिन्हें सामने वाला समझ तो रहा था लेकिन जान नहीं पा रहा था। हाँ इतना जान गया था कि माही इस वक्त सामान्य नहीं है। कुछ समय बाद उसने दोस्त को भी Good nyt कहा और दुबारा खुद में खो गया, मन के सामने चाहे वह कितना भी निस्पृह बनने का अभिनय करे... लेकिन सच यह था कि आज मन से भी अधिक बेचैन वह स्वयं था। इतना बेचैन... कि अपने ही विचारों के साथ एक कमरे में रहना कठिन लग रहा था। आखिर वह उठकर रसोई में चला गया। चाय बनाई। और कप हाथ में लेकर बाहर आ बैठा। रात ने गहरा लिबास पहन लिया था। दूर खेतों में फैला अंधेरा किसी अथाह समुद्र जैसा दिखाई दे रहा था। कहीं-कहीं मैंढको की आवाज उस सन्नाटे पर हल्की लकीरें खींच रही थी। सांसे चाय में मिलकर उसका तापमान गिरा रही थी वह चुपचाप

बैठा रहा। जैसे किसी फैसले का इंतजार कर रहा हो। जैसे कोई यात्री स्टेशन पर खड़ा आखिरी ट्रेन की प्रतीक्षा करता है। क्योंकि उसे मालूम था... कल का दिन साधारण नहीं है। हो सकता है कल एक रिश्ता आगे बढ़ जाए। हो सकता है किसी का इंतजार समाप्त हो जाए। और हो सकता है... किसी के भीतर पल रही एक संभावना हमेशा के लिए दम तोड़ दे। हो सकता है वो खुद का कातिल बन जाए या किसी के सपनों की हत्या कर दे। उसे बस किसी तरह सुबह चाहिए थी। क्योंकि वह जानता था... हर सुबह उसके भीतर के प्रेमी की एक छोटी-सी मृत्यु होती है। और फिर उसी जगह एक संरक्षक जन्म लेता है। जो दिन भर किसी और के भविष्य के लिए जीता है। उस रात भी... वह उसी सुबह की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन इंतजार वाली सुबह से पहले की रातें अक्सर सबसे लंबी होती हैं।

अध्याय - 121

“दर्द या सुकून”

अगले दिन मन ने बताया कि वह लड़के वालों से मिल आई है। मुलाकात अच्छी रही थी। लेकिन अंतिम निर्णय देने के लिए उन्होंने एक सप्ताह का समय माँगा था। सबसे विचित्र बात यह थी कि इस बार माही की मनःस्थिति बदल चुकी थी। पिछली बारों की तरह वह स्वयं को अभिभावक के रूप में नहीं देख पा रहा था। कम से कम पूरी तरह तो नहीं। पूरा दिन उसके भीतर एक अनचाही तड़प बनी रही। किसी काम में मन नहीं लग रहा था। किसी बात में रस नहीं आ रहा था। एक अजीब-सा भय... जिसका कोई स्पष्ट आकार नहीं था। लेकिन जिसकी उपस्थिति हर क्षण महसूस हो रही थी। किसी को खो देने का डर। वो उसी रास्ते पर चल रहा था जिसे उसने स्वयं चुना था। लेकिन आज उसी रास्ते के अंत से भयभीत था। उसकी स्थिति उस शिकारी जैसी थी... जो जाल तो खुद बिछाता है, लेकिन उसमें अपने ही हृदय को फँसा बैठता है। फिर भी... इन सबके बीच एक संतोष का भाव था। अगर उसे सचमुच एक अच्छा घर मिल जाए... अच्छे लोग मिल जाएँ... तो शायद यही उचित होगा। मानो कर्तव्यबोध उसके कंधे पर हाथ रखकर कह रहा हो— "दर्द बाद में देख लेना... अभी जो सही है, वो करो।" उसने बहुत पहले ही एक निर्णय ले लिया था। अगर कभी उसके सुख और अपने सुख में चुनाव करना पड़ा... तो वह उसका सुख चुनेगा। आज भी वह उसी निर्णय पर उतनी ही दृढ़ता से खड़ा था।

मनुष्य विचित्र प्राणी है। जिस व्यक्ति के बिना जीवन की कल्पना कठिन लगने लगे... उसी के सुख के लिए प्रार्थना भी करता है। एक तरफ बिछड़ने की संभावना उसे भीतर तक तोड़ रही थी। दूसरी तरफ यही संभावना कि उसे एक अच्छा घर मिल सकता है... उसे सुकून भी दे रही थी। मानो वह भीतर ही भीतर कह रहा हो— "ऊपर वाला तुम्हें सारी खुशियाँ दे। खुद को तो मैं समझा लूँगा।" इन्हीं विचारों के साथ तीन-चार दिन और बीत गए।

फिर एक रात... ठीक 8 बजकर 37 मिनट पर। मोबाइल स्क्रीन जगी।

साथ में एक इमोजी। न पूरी गंभीर। न पूरी शरारती। ठीक अपनी मालकिन की तरह। माही काफी देर तक उसे देखता रहा। फिर — हाल-चाल जाना। और बताओ?

और तो... — उन्होंने मना कर दिया।

उसके हाथ कुछ पल के लिए रुक गए। अंदर कहीं एक थरथराहट दौड़ी।

क्यों?

क्योंकि लड़के को मेरी नौकरी अपनी नौकरी के बराबर नहीं लगी। जवाब पढ़कर वह कुछ क्षण शब्दों के भीतर झांकने लगा। अजीब बात थी। उसकी वर्तमान मनोस्थिति में ये खबर एक राहत होनी चाहिए थी। लेकिन अब उसे ये एक व्यथा लग रही थी.. वह स्वयं भी नहीं समझ पा रहा था कि उसे क्या महसूस करना चाहिए। दुख? संतोष? अफसोस? या फिर... कृतज्ञता? लेकिन मन शायद इन जटिलताओं से बहुत आगे निकल चुकी थी। उसके बाद लगातार शरारती GIF आने लगे। मानो किसी परीक्षा से मुक्त हुआ बच्चा उछल रहा हो। आखिरकार माही ने लिखा— अब रुक भी जाओ। क्यों रुकूँ? मैं तो हवा में उड़ूँगी। साथ में तितली वाली इमोजी। फिर एक परी। फिर एक और हँसती हुई तस्वीर। अब शादी नहीं हो रही तो क्या? हँसना छोड़ दूँ? जीना छोड़ दूँ? आप भी हँसो। इसके साथ कुछ हँसते हुए मुखौटो। उसने जवाब में सिर्फ एक हल्की मुस्कान वाली इमोजी भेज दी— ये नहीं... और हँसो। और फिर ना चाहते हुए भी उसे हँसना पड़ा। कुछ देर तक स्क्रीन पर इमोजियाँ उड़ती रहीं। शब्द बहुत कम थे। लेकिन इस बार शब्दों की जरूरत भी नहीं थी। माही मोबाइल को देखता रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि ये कैसी प्रीति है। जहाँ मन उसे अपने पास रखना चाहता था... और आत्मा उसके लिए सबसे अच्छा संसार चुन लेना। एक हिस्सा उसके रुक जाने की दुआ करता था... और दूसरा हिस्सा उसके लिए सबसे सुंदर मंजिल माँगता था। वो उसे अपने पास भी रखना चाहता था... और उसे खुश भी देखना चाहता था। शायद यही कारण था कि आज न तो पूर्ण अस्वीकृति उसे दुख दे पा रही थी... और न ही उसके रुक जाने की संभावना उसे पूरी तरह सुखा। उसकी स्थिति उस दीपक जैसी थी... जो स्वयं जलते हुए भी अंधेरे से शिकायत नहीं करता, क्योंकि उसकी लौ किसी अपने का रास्ता रोशन कर रही होती है। या फिर शायद... वो प्रेम की उस अवस्था में पहुँच चुका था, जहाँ अधिकार समाप्त हो जाते हैं... और दुआएँ शुरू हो जाती हैं। स्क्रीन पर तितली वाली इमोजी अब भी उड़ रही थी। माही उसे देखता रहा। उसे लगा... शायद कुछ लोग सचमुच तितली जैसे होते हैं। उन्हें मुट्ठी में बंद नहीं किया जा सकता। उनके लिए बस इतना किया जा सकता है कि जब वे उड़ें... तो उनके आकाश के लिए दुआ की जाए। और फिर उसने... एक लंबी साँस ली। क्योंकि सिर्फ एक फैसला टला था। लेकिन कहानी नहीं।

अध्याय - 122

सायरन और सन्नाटा

शाम के 3 बजे।

मोबाइल की स्क्रीन पर उसका नाम चमका।

"Sir..."

"हाँ।"

"कहाँ हो?"

"हड़ताल में बैठा हूँ।"

"अच्छा... कोई पुलिस में जानकार है क्या?"

माही के कान खड़े हो गए।

"क्या हुआ?"

"पहले आप बताओ, कोई है कि नहीं?"

"हाँ है। लेकिन बताओ तो सही, क्या हुआ है?"

"मैं थोड़ी देर में कॉल करती हूँ।"

"नहीं, अभी बताओ।"

"बताती हूँ कुछ समय बाद।"

"सब ठीक है ना?"

"हाँ, ऐसा कुछ नहीं है।"

"Ok."

कॉल कट गई।

लेकिन माही के पास चिंता की एक और वजह छोड़ गई।

शाम के 7 बज चुके थे।

उसका कोई फोन नहीं आया।

घर लौटते समय माही ने बस से उसे कॉल किया था, लेकिन उसने उठाया नहीं।

और फिर...

8 बजकर 37 मिनट।

Mam

Han, sir

आपने बताया नहीं... आपको किस लिए पुलिस सहायता चाहिए?

वो...

आप जो भी है, वो बताओ।

Sir, आप मेरे पर गुस्सा मत होना...

नहीं।

पक्का ना?

हाँ।

मेरे साथ 20k का ऑनलाइन फ्रॉड हो गया है।

माही ने स्क्रीन को कुछ पल घूरा।

कैसे?

बस...

चलो छोड़ो... पीछे की कहानी बाद में सुनूँगा।

ये बताओ कि साइबर थाने में रिपोर्ट करी कि नहीं?

हाँ, वो तो कर दी। लेकिन बिना जानकारी के पुलिस...

ठीक है।

आप अभी चैट बंद करो।

और सो जाओ।

ज्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं है।

और हाँ, रिपोर्ट की कॉपी भेजो मुझे।

Ok, भेजती हूँ।

रिपोर्ट की कॉपी आते ही माही ने अपने एक परिचित पुलिस अधिकारी को फोन मिलाया।

"हाँ भाई, इतनी रात कैसे याद किया?"

हाल-चाल की औपचारिकता के बाद माही सीधा मुद्दे पर आया।

"हिसार साइबर पुलिस स्टेशन में इंचार्ज कौन है?"

"फलां सिंह है।"

"तो भाई, मैं तुम्हारे पास एक पावती (receipt) भेज रहा हूँ।

एक लड़की के साथ फाइनेंसियल फ्रॉड हुआ है।

उन्हें बोलकर रिसीवर का अकाउंट फ्रीज करवाओ।"

"कब हुआ है?"

"आज दोपहर।"

"अरे, तो तभी करना था। देख लो भाई, अगर उन्होंने करवा दिया हो तो ठीक है, नहीं तो अब करवाओ।"

"ओके।"

कुछ देर बाद वापस कॉल आई।

"भाई, करवा दिया है।"

"ठीक है भाई। Thanks."

अब वह अपने कुछ और संपर्कों से भी बात कर चुका था।

11 बज चुके थे।

माही चाय का एक कप—लेकर छत पर आ गया।

बिजली गुल थी। हवा में बारिश के बाद वाली भारी उमस थी।
बादल अपनी स्याही रात पर उँडेलकर चले गए थे।
दूर-दराज फैले बाजरे के गहरे खेत उस अंधेरे को और खौफनाक बना रहे थे।
सीमावर्ती गाँव के खेतों से शियारों (गीदड़ों) की आवाजें आ रही थीं।
तभी उसके पास एक और कॉल आई।
उसने कुछ देर बात की।
उसके सीने से संतुष्टि की एक गहरी आह निकली।
चाय का आखिरी घूँट भी अपना सफर पूरा कर चुका था।
तभी...
दूर अंधेरे में लाल-नीली बत्तियाँ चमकीं।
और पुलिस की गाड़ी के सायरन की आवाज़ हवा में गूँजने लगी।
यह पुलिस की रात्रि गश्त थी।
माही छत की मुंडेर के पास खड़ा उस रंग-बिरंगी रोशनी को देखता रहा।
अक्सर ऐसा होता है...
हम जिस किसी चीज़ या इंसान के बारे में गहराई से सोचते हैं, उसी से जुड़ी घटनाएँ हमारे
इर्द-गिर्द घटने लगती हैं।
या शायद... हमारा दिमाग उन्हें नोटिस ही तब करता है, जब भीतर कोई गहरा जुड़ाव हो।
आज यह सायरन उसे इसलिए सुनाई दिया था, क्योंकि आज शाम से ही वह पुलिस के
संपर्क में था।
कई बार जब वह 'मन' को शिद्दत से याद कर रहा होता है... ठीक उसी क्षण उसका संदेश
या कॉल आ जाता है।
यही तो वह जुड़ाव है।
यही वह कुछ खास है...

और यही 'मन' का रिश्ता है।

गाड़ी के दूर जाने के साथ पुलिस की बत्तियाँ अब हल्की पड़ने लगी थीं।

तभी गली की रोशनी जल कर अंधेरे को चिढ़ाने लगी।

खेतों से आती शियारों की आवाजें और तेज़ हो गई थीं।

माहौल डरावना था,

इस खौफनाक और गहरी रात के 12 बजे...

छत पर खड़ा माही इन सब चीज़ों से बेखौफ था।

क्योंकि वह अभी से अगली सुबह वाली “भूमिका” की तैयारी कर रहा था।

प्रेमी वाली नहीं।

दूसरे वाली...

“खुद को भी खो दूंगी”

अगले चार-पाँच दिन माही लगभग इसी काम में लगा रहा। “Sir... मेरी मेहनत के पैसे?” मन का यही प्रश्न बार-बार उसको सामने दिखता।

वो — “कहीं नहीं जाने दूँगा।” “धैर्य और विश्वास रखो।” लेकिन सच यह था कि जितना विश्वास वह उसे दिला रहा था... उतना ही वह स्वयं अपने भीतर पैदा करने की कोशिश कर रहा था। मन की मायूसी उससे देखी नहीं जा रही थी। इसलिए अगले कुछ दिन उसके लिए कोर्ट, थाना और बैंक के बीच झूलते रहे। कभी साइबर थाने में हाजिरी। कभी जाँच अधिकारी से बातचीत। कभी बैंक अधिकारियों से संपर्क। और कभी पुलिस वालों के साथ बैठकर चाय पीते हुए मामले की गति तेज करवाने का प्रयास। वह जानता था... कानून का पहिया चलता जरूर है। लेकिन अक्सर बहुत धीरे। और इस बार उसे जल्दबाजी थी। क्योंकि मामला पैसों का कम... और मन के भरोसे का ज्यादा था। आखिरकार पुलिस को बैंक से रिसीवर की अकाउंट स्टेटमेंट प्राप्त हो गई। खाते में अब भी लगभग पच्चीस हजार रुपये मौजूद थे। मतलब... मन के बीस हजार सुरक्षित थे। अब अगला कदम था— कोर्ट से रिकवरी आदेश प्राप्त करना। इसलिए जिला न्यायालय के चक्कर शुरू हुए। एक वकील किया गया। जल्दी तारीख लगवाई गई। लेकिन पहली तारीख में भारत के न्यायालय कहाँ फैसला सुनाते हैं। कागजों की कमी का हवाला देकर अगली तारीख दे दी गई। फिर नए दस्तावेजों के लिए थाने के चक्कर। कभी मन के हस्ताक्षरों की आवश्यकता। कभी किसी नए प्रमाण की। कभी किसी अधिकारी की अनुपस्थिति। और जब सब कुछ पूरा हो गया... तो जज साहब अवकाश पर चले गए। वो इस से ज्यादा कर भी क्या सकता था। क्योंकि यह वही व्यवस्था थी... जिससे लड़ते-लड़ते लोग बूढ़े हो जाते हैं। लेकिन इस बार उसके पास हार मानने का विकल्प नहीं था। आखिरकार... कुछ इंतजार के बाद एक दिन रिकवरी आदेश जारी हो गए। कागज उसके हाथ में था। और कई दिनों की भागदौड़ उसकी आँखों के सामने। उसने साथ देने वाले हर व्यक्ति का शुक्रिया अदा किया।

उस रात... ठीक 8 बजकर 37 मिनट पर। उसने आदेश की कॉपी मन को भेज दी। साथ में केवल एक पंक्ति— “आगे से ध्यान रखा करो।” सिर्फ इतना ही मशविरा दिया, क्यों ओर कैसे? आज भी नहीं पूछा। लेकिन उधर से -

क्यों रखूं?

माही - खुद के लिए।

नहीं रखूंगी।

क्यों?

“क्योंकि...” “आप हो ध्यान रखने के लिए।” माही सब कुछ जानते हुए भी शब्दों के पीछे का दर्शन ढूंढने की कोशिश करने लगा। फिर लिखा— “अच्छा...” “और अगर किसी दिन मैं कहीं खो गया तो?” इस बार उत्तर आने में थोड़ा समय लगा। फिर स्क्रीन पर —

“तो मैं खुद को भी खो दूंगी।”

साथ में एक रुआंसी-सी इमोजी। और फिर— “Good Night!” आज की चर्चा पूरी हो गई। लेकिन माही के भीतर की चर्चा अब शुरू हुई थी। विचित्र बात थी। दोनों ने कभी प्रेम का नाम नहीं लिया था। कभी कोई वादा नहीं किया था। कभी कोई दावा नहीं किया था। लेकिन शायद दोनों सच कह रहे थे। सचमुच... दोनों खो चुके थे। कहीं बाहर नहीं। एक-दूसरे के भीतर। अब सवाल सिर्फ इतना था... क्या किसी दूसरे में खो जाना... खुद को पा लेना होता है, या सचमुच खुद को खो देना? इस प्रश्न का उत्तर कम से कम आज की रात के पास तो नहीं था। और भविष्य... आज भी मौन था।

अध्याय - 124

“मन की धूल”

हड़ताल का दौर तीव्रता से चल रहा था। पदाधिकारी होने के नाते बे-मन से ही सही, लगभग हर तीसरे दिन किसी न किसी जिले में बैठक, धरना या प्रदर्शन के लिए जाना पड़ता था। उस दिन भी माही सुबह-सुबह कुरुक्षेत्र जाने के लिए बस अड्डे पर उतरा था। अब अगले 3 दिन उसे वही रहना था। बस आने में अभी थोड़ा समय था। इसलिए वो वेटिंग हॉल में बैठा यूँ ही इधर-उधर देख रहा था। तभी उसकी नजर बस अड्डे के मुख्य द्वार की तरफ गई। और फिर... वहीं ठहर गई। मन खड़ी थी। लेकिन आज अकेली नहीं थी। उसके पास एक लड़का खड़ा था। दोनों कुछ बात कर रहे थे। न ज्यादा हँसी थी। न कोई असामान्य हावभाव। प्रथम दृष्टया एक साधारण बातचीत। माही ने एक बार देखा। फिर नजर हटा ली। बस इतनी-सी बात थी। लेकिन पता नहीं क्यों... बस इतनी-सी बात नहीं थी। उसी समय बस आ गई। वो चढ़ गया। खिड़की वाली सीट मिल गई। बस धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। उसने पीछे देखा। दोनों अब भी वहीं खड़े थे। फिर दृश्य आँखों से ओझल हो गया। लेकिन दिमाग से नहीं। दोपहर तक हड़ताल स्थल पहुँच गया। मंच से कर्मचारी नेताओं के जोशीले शब्द आ रहे थे, लेकिन वो अब भी सुबह वाली जगह पर खड़ा था, कौन था? क्या काम होगा? और सबसे बड़ी बात... इतनी देर क्यों खड़ा था?

फिर उसने खुद को झिड़का। "पागल हो गया है क्या?" सब के निजी संपर्क है। जरूरी नहीं कि आत्मीय ही हो, व्यक्तिगत जीवन की हर बात बताई भी नहीं जाती। उसे मन पर पूरा विश्वास था। आज भी था। जितना पहले था। उतना ही आज भी। फिर ये बेचैनी क्यों? इस सवाल का जवाब उसके पास था भी और नहीं भी। और सबसे आसान जवाब था सुरक्षा की चिंता और किसी दूसरे के साथ असुरक्षा का भाव। लेकिन क्या बस ये ही एकमात्र वजह थी? शायद नहीं। उसे अचानक चंडीगढ़ वाला दिन याद आ गया। तब भी ऐसा ही हुआ था। बिना किसी कारण। बिना किसी आधार। सिर्फ एक ख्याल। और पूरा दिन खराबापर समस्या विश्वास की नहीं थी। समस्या उस जगह की थी... जहाँ विश्वास समाप्त होता है और लगाव शुरू होता है। उसने खुद को समझाने की कोशिश की। दिन गुजर गया। शाम हो गई। रात को कमरे में भी खिड़की से बाहर देखते हुए भी वही दृश्य उसके भीतर घूम रहा था। रात को खाना भी ठीक से नहीं खाया गया। साथ वालों ने पूछा भी।

रात को उसने मोबाइल उठाया। फिर एक स्टेटस लगा दिया बस एक पंक्ति— "कभी-कभी सबसे कठिन युद्ध किसी दूसरे से नहीं... अपने ही मन से होता है।" स्टेटस लगाने के बाद भी कोई राहत नहीं मिली। उस रात नींद भी ठीक से नहीं आई। शायद दोष उस दृश्य का नहीं था... और न ही उस अनजान लड़के का। धूल अगर कहीं थी... तो बस मन पर थी। और मन की धूल की सबसे बड़ी विशेषता यही होती है कि वह सामने की वस्तु को नहीं... देखने वाले को धुंधला कर देती है। लेकिन उसी धूल को मन में लिए उसने आँखें बंद कर लीं।

“मन का कुरुक्षेत्र”

अगले दिन भी उसका हाल कुछ अलग नहीं था। वो बार-बार खुद को समझाता— "मुझे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए।" लेकिन फर्क तो पड़ रहा था। कहीं कुछ बैठा था। डर? दर्द? या फिर केवल खोने की संभावना से जन्मा कोई अनाम भाव? कारण वो खुद भी नहीं खोज पा रहा था। और शायद ऐसे भय की कोई स्पष्ट वजह होती भी नहीं। सुबह सभी साथी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय परिसर में घूम रहे थे। विस्तृत सड़कें। ऊँचे-ऊँचे वृक्षा। दूर तक फैले हरे लॉन। युवा ऊर्जा से भरा वातावरण। लेकिन माही की चेतना किसी दूसरे ही सफर पर थी। वो अपने विचारों को बार-बार दूसरी दिशा में मोड़ने की कोशिश करता। लेकिन जैसे ही सामने किसी पेड़ के नीचे बैठे लड़के-लड़कियों का समूह दिख जाता... उसका मन फिर उसी जगह लौट जाता। शाम को हड़ताल स्थल से निकलकर सबने घूमने का कार्यक्रम बनाया। ब्रह्मसरोवर का विशाल विस्तार। शांत जल। उसमें पड़ता आसमान का प्रतिबिंब। दूर मंदिरों से आती घंटियों की ध्वनि। सब कुछ अत्यंत सुंदर था। उसके साथी उस सौंदर्य को आँखों में भर रहे थे। और वो... अपने ही भीतर की उलझनों में डूबा हुआ था। इसके बाद वे कुरुक्षेत्र पैनोरमा और विज्ञान केंद्र पहुँचे। वहाँ एक पारदर्शी कुआँ था। ऊपर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी कोई सीमा ही नहीं। माही कुछ देर उसके सामने खड़ा रहा। उसे लगा... उसके भीतर भी कोई ऐसा ही कुआँ बन गया है। ऊपर से शांत। लेकिन भीतर... कितनी गहराई है... इसका अनुमान स्वयं उसे भी नहीं।

शाम होते-होते सभी ज्योतिसर पहुँच गए। सूरज धीरे-धीरे पश्चिम की ओर झुक रहा था। ऊपर खुली जगह में लगी कुर्सियों पर लोग बैठ चुके थे। और सामने विशाल पर्दे पर महाभारत का सजीव चित्रण प्रारम्भ हुआ। रथ दौड़ रहे थे। शंख बज रहे थे। धर्म और मोह आमने-सामने खड़े थे। माही चुपचाप देखता रहा। उसे लगा जैसे पर्दे पर महाभारत नहीं... उसका अपना द्वंद चल रहा हो। कुरुक्षेत्र केवल एक भूमि नहीं था। वो एक अवस्था थी। और पिछले दो दिनों से उसका मन भी किसी कुरुक्षेत्र से कम नहीं था। और 2 दिन ही क्यों कुछ साल से उसकी जिंदगी ही रणभूमि थी। क्योंकि उस युद्ध में उसका सामना किसी दूसरे से नहीं... खुद से था। एक पक्ष कहता— "विश्वास रखो।" दूसरा पूछता— "फिर बेचैनी क्यों है?" एक पक्ष कहता— "उसे खुश देखना ही तो चाहते थे।" दूसरा धीरे से

पूछता— "फिर ये दर्द किस बात का है?" एक पक्ष कहता— "प्रेम त्याग है।" दूसरा पूछता— "तो फिर खोने का भय क्यों?" और शायद यही उसका धर्मयुद्ध था। किसी को हराने के लिए नहीं। किसी पर अधिकार पाने के लिए नहीं। बल्कि अपने भीतर के उस हिस्से को शांत करने के लिए... जो प्रेम और कर्तव्य के बीच खड़ा होकर लगातार प्रश्न पूछ रहा था। पर्दे पर महाभारत समाप्त हो चुका था। लोग उठकर वापस जाने लगे थे। लेकिन माही का कुरुक्षेत्र अभी समाप्त नहीं हुआ था। क्योंकि ऐसे युद्ध एक दिन में समाप्त नहीं होते। जिसमें... प्रतिद्वन्द्वी उसका अपना मन हो।

अध्याय - 126

“मन का सुकून”

(ये सफ़र तेरा मेरा)

भीतर का तूफ़ान तीसरे दिन भी उफ़ान पर ही था। सोचना... स्टेटस लगाना... और फिर उन्हें खुद ही पढ़ना। पिछले दो दिनों से यही चल रहा था। वो नियत समय पर स्टेटस देखती। कभी कोई उदास पंक्ति। कभी कोई शायरी। और हर बार एक ही प्रश्न पूछती— "सब ठीक है?" और उत्तर मिलता— "हाँ।" बस दो दिन यही चलता रहा। लेकिन तीसरे दिन परिस्थितियाँ कुछ अलग थीं। स्थान था— कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय। उस दिन विश्वविद्यालय में काव्य गोष्ठी आयोजित की गई थी। इसलिए हड़ताल से लौटने के बाद माही और उसके साथी वहाँ पहुँच गए। दोस्त कविताओं का आनंद ले रहे थे। लेकिन आनंद सिर्फ उनके लिए था। माही के हिस्से में तो विराग आया था। पूरा वातावरण शायराना था। वाह-वाह के स्वरा ठहाके। युवा लड़के-लड़कियों की किलकारियाँ। ग़ज़लों पर झूमते साहित्य विभाग के प्रोफेसर। ऐसे में कोई शायर फैज साहब की ये पंक्तियाँ सुना रहा था

“शब-ए-ग़म की उदासी में अचानक यूँ लगा जैसे, दुआ कुबूल होने का कोई पैग़ाम आया है।” “दिल नाउम्मीद तो नहीं, नाकाम ही तो है, लम्बी है ग़म की शाम, मगर शाम ही तो है।”

और तभी.. रात के ठीक 8 बजकर 37 मिनट पर "मोहब्बतें" फिल्म की पियानो धुन बजी। मोबाइल स्क्रीन दीप्तिमान हुई—

"मेरा मन"।

विश्वविद्यालय की दूधिया रोशनी में आज वह नाम कुछ अलग ही दमक रहा था। उसकी चमक के आगे आसपास की सारी रोशनियाँ फीकी पड़ रही थीं। और दूर कहीं खिली रात की रानी की सुगंध ने मानो उस क्षण को और भी मादक बना दिया था। ऐसी महक की कोई भी बहक जाए।

दिन में भी उसका फोन आया था। वो उसकी मायूसी का कारण जानना चाहती थी। लेकिन उसने रात को बताने की बात कहकर बात टाल दी थी।

फोन उठाते ही मन बोली— "पहले ये बताओ... खाना खाया कि नहीं?"

"हाँ।"

"बहका तो नहीं रहे?"

"नहीं।"

"अच्छा ये बताओ क्या खाया और कितना खाया?"

अब उसकी आदत थी। वो उससे झूठ नहीं बोलता था। ऑफिस में भी जब वो खाना लाती थी तो अगर उसने एक रोटी खाई होती... तो एक ही बताता था। बाकी घर ले जाकर खा लेता। लेकिन झूठ नहीं बोलता। आज भी उसने सच बता दिया। "एक ही चपाती खाई है।" उधर से अच्छी सी डाँट पड़ी— "ये ठीक नहीं है।"

"क्यों परेशान हो?"

"क्या बात हुई है?"

"बताओ।"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो है।" "आपको इस तरह इतने दिन लगातार उदास पहले कभी नहीं देखा।"

"कल बताऊँगा।"

"आज क्यों नहीं?"

"बस ऐसे ही।" असल समस्या ये नहीं थी कि वो बताना नहीं चाहता था। समस्या ये थी कि पूछने का अधिकार उसके पास नहीं था। क्योंकि वो उसके साथ किसी भी रिश्ते में संपूर्ण नहीं था। न पूरा प्रेमी। न पूरा अभिभावक। वो दोनों के बीच की कोई ऐसी जगह थी... जिसका समाज में कोई नाम नहीं होता। कुछ देर बाद मन ने विषय बदल दिया।

"एक काम करोगे?"

"क्या?"

"दीक्षा दीदी के नंबर देना।"

"क्या करोगे?"

"वो मैं आपको क्यों बताऊँ?"

"फिर भी थोड़ा तो बताओ।"

"अरे शादी करवानी है आपकी।" "आपको तो करनी नहीं।" "अब मैं और दीक्षा ही कुछ करेंगे।"

3 दिन में आज पहली बार माही के चेहरे पर मंद हास ने दस्तक दी।

"अच्छा?"

"हाँ तो और क्या।" "नहीं तो आप ऐसे ही स्टेटस लगाकर बोर करते रहोगे।" "कुछ रोमांटिक लगाया करो।" "पहले की तरह।" "समुद्र वाले।" "बर्फीले पहाड़ों वाले।" फिर से एक मुस्कराहट उभरी।

"अच्छा एक बात कहूँ?"

"हाँ।"

"चले जाओ ना मालदीव।"

मालदीव... यह शब्द उनके बीच नया नहीं था। जब भी माही समुद्र किनारे वाले स्टेटस लगाता... मन उसे चिढ़ाती। "अकेले जाकर क्या करोगे?" "ऐसी जगहों का मज़ा तो किसी अपने के साथ है।" और हर बार माही का एक ही उत्तर होता— "शादी के बाद जाऊँगा।" आज फिर वही बात निकल आई। "हाँ, तो मैंने आपको बताया था ना..." "कब जाऊँगा।"

"पहले क्यों नहीं?"

"क्योंकि आपने ही कहा था..." "ऐसी जगहों पर कोई अपना होना चाहिए।" अगले कुछ पल खामोशियों के थे। फिर मन बोली— "तो एक काम करो।"

"क्या?"

"आप मुझे ले चलो मालदीव।"

और बस... फिर मानो साफ़ आसमान से अचानक बिजली गिर गई हो। इस एक शब्द ने मानो समय को थाम लिया हो, मंच पर कोई शायर प्रेम पर ग़ज़ल पढ़ रहा था। तालियाँ

भी बज रही थीं। लोग अब भी मुस्करा रहे थे। लेकिन माही के भीतर जैसे किसी ने शांत झील में एक साथ हजारों कंकड़ फेंक दिए हों। लहरें ही लहरें। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मन ऐसा कुछ कहेगी। वो मालदीव... जो अब तक सिर्फ एक मज़ाक था। एक स्टेटस था। एक अधूरा सपना था। आज पहली बार किसी ने उसमें अपना नाम जोड़ दिया था। और वो "कोई" भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। मोबाइल कान से लगा हुआ था। लेकिन उसे अपनी धड़कनों की आवाज़ ज्यादा साफ सुनाई दे रही थी। गोष्ठी स्थल से उड़ कर आई इत्र की खुशबू सांसों में समाई, और उसे लगा... आज यह खुशबू कुछ ज्यादा ही नशीली है। मानो प्रकृति भी उसकी परीक्षा लेने पर तुली हो। फिर से दूर मंच से कोई प्रेम कविता सुनाई दी। इस बार करतल ध्वनि और तेज थीं। रात की रानी और महक उठी थी।

"बताओ तो कुछ..."

मन की आवाज़ ने उसे वर्तमान में लौटाया।

"नहीं..." "ये सही नहीं है।"

"क्यों?" "सही नहीं है।" "दोस्त के नाते भी नहीं?" "क्या दो जानकार साथ घूम भी नहीं सकते?" नज़दीक मंच पर कविता चल रही थी— "ये सफ़र तेरा मेरा... मंज़िलों से बड़ा है..." और इधर माही उस सफ़र को बीच में ही रोक रहा था।

"नहीं। बिल्कुल नहीं।" इस बार उसकी आवाज़ में सख्ती थी।

"तुम कुछ ज्यादा ही सिद्धांती हो।" मन ने नाराज़गी से कहा।

"हाँ..." "आप कुछ भी समझो।" "लेकिन मुझे नहीं लगता कि हमारा वर्तमान रिश्ता हमें इस यात्रा की इजाजत देता है।" "और इस विषय को यहीं विराम दो।" फिर मन बोली— "चलो ठीक है।" "मान ली आपकी बाता।" "लेकिन दीक्षा के नंबर तो देना।"

"हाँ, भेज दूँगा।"

"और सुनो..." "एक स्माइल करो।" "Please..." "इतना तो कर दो मेरे लिए।"

"हाँ, बिल्कुल।" और फिर दोनों हँस पड़े।

"ये हुई ना बाता।" "अब वादा करो कि उदास नहीं रहोगे।"

"नहीं रहूँगा।"

"पक्का ना?"

"बिल्कुल पक्का।"

Okay"Good Night."

सिर्फ पंद्रह मिनट के इस वार्तालाप ने उसके भीतर जमा तीन दिनों का सारा बोझ बहा दिया। Good Night के बाद वो फिर से स्वयं में लौट आया। काव्य गोष्ठी अब भी चल रही थी। कोई युवा शायर मंच से पढ़ रहा था—

"कमरे में पसरी वो उदासी भी हैरान रह गई, जब उसकी एक आवाज़ से सन्नाटे की उम्र घट गई।"

माही ने मंच की ओर देखा। फिर आसमान की ओर। फिर होंठों ने खुशी में हरकत की। पिछले तीन दिनों से उसके भीतर जमा संशय की धूल मानो हवा का एक झोंका अपने साथ उड़ा ले गया था। वो खुद पर झुंझला भी रहा था। जिस लड़की ने अभी कुछ देर पहले मालदीव में अपने साथ चलने का निमंत्रण दिया था... उस पर वह पिछले तीन दिनों से मन ही मन आरोप गढ़ता घूम रहा था। लेकिन मनुष्य का मन बड़ा विचित्र होता है। विश्वास होने पर भी डरता है... और प्रेम होने पर भी पूरी तरह निश्चिंत नहीं हो पाता। काव्य गोष्ठी समाप्त होने लगी थी। लोग लौट रहे थे। लेकिन अब उसे रात पहले से ज्यादा सुंदर लग रही थी। दूधिया रोशनी में नहाया विश्वविद्यालय... फिजा में फैली फूलों की खुशबू... और मन के शब्द... तीनों मिलकर कोई ऐसी कविता रच गए थे... जिसे किसी कवि ने नहीं लिखा था।

“मन खुश हुआ”

मन ने अनु की शादी की तैयारियों के लिए उसे कुछ और काम सौंप दिए थे। इसलिए अगले दो दिन माही का अधिकांश समय इन्हीं व्यवस्थाओं में बीता। वास्तव में उसकी सबसे बड़ी चिंता खाने की व्यवस्था को लेकर थी। शादी में सैकड़ों चीजें होती हैं। कुछ कम-ज्यादा हो भी जाए तो लोग भूल जाते हैं। लेकिन खाने में कमी रह जाए... तो बरसों तक याद रखी जाती है। मन ने भी यही चिंता उससे साझा की थी। "सब कुछ ठीक होना चाहिए।" बस इतना ही कहा था उसने। लेकिन माही समझ गया था कि इस एक वाक्य में कितनी बेचैनी छिपी है। अब यह जिम्मेदारी उसकी थी। हर बार की तरह। अगली सुबह सूरज पूरी तरह निकला भी नहीं था कि वह घर से निकल पड़ा। अगले दो दिन उसने अलग-अलग हलवाईयों से संपर्क किया। कहीं स्वयं जाकर काम देखा। कहीं उनके पुराने आयोजनों के बारे में जानकारी जुटाई। कहीं उनके भोजन की गुणवत्ता परखने की कोशिश की। सिर्फ स्वाद ही नहीं... बर्तनों की व्यवस्था। सेवाकर्मियों की संख्या। समय की पाबंदी। बैठक व्यवस्था। मिठाइयों की गुणवत्ता। और सबसे महत्वपूर्ण— शुल्क। वो किसी एक बात से संतुष्ट होने वालों में से नहीं था। पहला हलवाई। बार्ते बड़ी-बड़ी। व्यवस्था छोटी। दूसरा। व्यवस्था अच्छी। लेकिन खर्च इतना कि सुनकर ही माथा ठनक जाए। तीसरा। खाना अच्छा। लेकिन समय का भरोसा नहीं। बात करते समय उसके कुछ प्रश्न परम्परागत होते तो कुछ लीक से हट कर। जैसे, खाना शुरू करने का समय, स्टालों की संख्या, वेटर, स्टालों की सजावट, चाकू से ले कर कढ़ाई तक की व्यवस्था। "मिठाई उसी दिन बनेगी या पहले?" कुछ लोग उसकी बारीकी देख कर मुस्करा देते। कुछ सोचते... शायद अपने घर की शादी होगी। लेकिन वो किसी को क्या बताता... कि जिस शादी के लिए वह इतनी चिंता कर रहा है... वो उसके घर की नहीं है। दोपहर तक सूरज सिर पर आ चुका था। सड़कें तप रही थीं। पसीना कमीज से चिपक गया था। लेकिन उसे अभी और जगहें देखनी थीं। पानी पीता। और फिर आगे बढ़ जाता। शाम तक जब वो घर लौटा... तो पैरों में थकान साफ महसूस हो रही थी। लेकिन काम अभी बाकी था। अगले दिन फिर वही क्रम शुरू हुआ। फोन। मुलाकात। जांच। हिसाब। दिन भर वह एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहा। लेकिन उसके भीतर एक अजीब संतोष था। उसे पता था... वो सिर्फ इंतजाम नहीं कर रहा। वो किसी की चिंता कम कर रहा है।

शाम ढलते-ढलते आखिर उसे वह हलवाई मिल गया... जिस पर उसे भरोसा हुआ। उसने एक-एक बात लिखित में तय करवाई। मेन्यू। मात्रा। समय। बर्तन। मिठाइयाँ। भुगतान। कुछ अतिरिक्त चीजें भी जुड़वाईं... जिनके बिना भी काम चल सकता था। लेकिन वह जानता था... अगर बाद में कोई कमी निकली... तो सबसे ज्यादा दुख मन को होगा। सारा काम पूरा होने के बाद उसने कागजों की तस्वीरें खींचीं। और उसे भेज दीं। संदेश आया— हँसते हुए, "मन खुश हुआ।" बस चार शब्द। लेकिन उन शब्दों ने दो दिनों की थकान का एकमुश्त हिसाब कर दिया। सूरज डूब चुका था। दूर खेतों के ऊपर सांझ उतर रही थी। शरीर थक रहा था। आँखें भी। लेकिन चेहरे पर मुस्कान थी। क्योंकि आज उसने कोई बहुत बड़ा काम नहीं किया था। उसने बस... किसी की चिंता को अपने हिस्से में बाँट लिया था। और अब उसे पिछले दो दिनों का वह लंबा सफर तकलीफ नहीं... सुकून दे रहा था। क्योंकि किसी भी सफर का सबसे बड़ा सुख मंजिल नहीं होती। उसका सबसे बड़ा सुख तो यह होता है कि वह रात को बिस्तर पर पहुंचते ही इंसान का परिचय सपनों से करा दे। और आज रात... ऐसा ही था। आँखें बंद होने से पहले उसे सिर्फ इतना याद था कि अब मन पहले से कम चिंतित होगी। उसके बाद नींद ने धीरे से उसका हाथ पकड़ा... और उसे अपने साथ ले गई।

अध्याय - 128

“मन की चाह”

(करवाचौथ के चाँद के साथ)

30 सितंबर। करवाचौथ का दिन। पिछले दो दिनों की भागदौड़ के बाद आज पहली बार उसे आराम का अवसर मिला था। सुबह स्नान किया। खाना खाया। और फिर कमरे में आकर चारपाई पर लेट गया। शरीर थका हुआ था। कुछ देर बाद उसने मोबाइल उठाया। नेट ऑन किया। व्हाट्सएप खोला।

"मेरा मन"।

उसका संदेश एक घंटे पहले आया हुआ था।

"Sir Ji..."

माही ने प्रत्युत्तर दिया— "हाँ जी।" आधे घंटे तक कोई उत्तर नहीं आया। उसे नींद आने लगी। पलकों ने विरोध नहीं किया। और कुछ ही देर में वह सो गया। लगभग एक घंटे बाद उसकी आँख खुली। आदतवश सबसे पहले उसने मोबाइल उठाया। नेट ऑन किया। व्हाट्सएप चैट खोली।

अगले ही क्षण लगा... मानो किसी ने समय की धारा को उँगलियों से थाम लिया हो।

नज़रें स्क्रीन से हटकर ऊपर गईं। पंखा अपनी जगह घूम रहा था, लेकिन उसे लगा जैसे पूरी छत ही चक्कर काट रही हो।

दीवार पर टंगी घड़ी अपनी जिम्मेदारी निभा रही थी... पर उसके कानों तक उसकी टिक-टिक पहुँच ही नहीं रही थी। वहाँ अब सिर्फ़ एक आवाज़ थी— अपनी ही धड़कनों की... जो हर पल अपना स्वर बदल रही थीं।

उसने फिर संदेश पढ़ा।

फिर पढ़ा।

फिर एक बार और।

लेकिन शब्द वहीं ठहरे रहे...

बदल रहे थे तो सिर्फ उनके अर्थ...

और उनके साथ उसके चेहरे के भावा

"आज आपके साले जी का जन्मदिन है।"

बस एक पंक्ति। लेकिन कभी-कभी एक पंक्ति पूरी किताब से भारी पड़ जाती है। उसे समझ नहीं आ रहा था कि हँसे, चौंके, इतराए या फिर गुस्सा करे। या फिर इस बात को समझने की कोशिश करे। उसने कुछ लिखना चाहा। उंगलियाँ चलीं। फिर रुक गई। शब्द टाइप हुए। फिर मिट गए। कई बार। बार-बार। दोपहर धीरे-धीरे शाम में बदल गई। लेकिन उसका उत्तर अब भी अधूरा था। उसने चाय बनाई। सोचा... शायद चाय हिम्मत दे दे। लेकिन आज चाय भी उसके पक्ष में नहीं थी। वो भी जवाब दे गई। तन्हाई की चासनी (चाय का असर) भी बेवफाई कर गई। कप खाली हो गया। हिम्मत नहीं आई। शाम ढली। रात आई। आसमान में तारे उभरे। और कुछ देर बाद करवाचौथ का चाँद भी। गाँव की छतों पर रौनक थी। महिलाएँ सज-धज कर खड़ी थीं। कहीं छलनी उठ रही थी। कहीं हँसी गूँज रही थी। कहीं कोई अपने चाँद को निहार रहा था। मानो पूरा वातावरण चाँदनी को और भी जादुई बनाने पर तुला हो। लेकिन माही की हिम्मत को सहारा नहीं मिल रहा था। और फिर

घड़ी की सुइयाँ जैसे ही आठ बजकर सैंतीस मिनट पर आकर रुकीं, सदियों का एक अनकहा नियम जी उठा। "कुछ यात्राएँ ऐसी होती हैं... जिन्हें उस समय तक पहुँचना ही होता है। आज भी पहुँचना था। इस नियम ने उस यात्रा को गति देने का काम किया

उसने गहरी साँस ली। और टाइप करना शुरू किया। "Aap....."

"पहले तो लगा कि कोई सपना देख रहा हूँ... फिर लगा शायद कोई मजाक है... लेकिन कैलेंडर ने बताया कि आज पहली अप्रैल नहीं है... इसलिए मजाक भी नहीं लग रहा... जो भी है... अद्भुत है। अविश्वसनीय है। कल्पनाओं से परे। आपका किसी के बारे में इतना सोचना... किसी के लिए भी एक सपना हो सकता है। आपके लिए मेरे मन में सम्मान और अपनापन है... इस तथ्य से मैं इनकार नहीं कर सकता। और इतना है कि उसे किसी सीमा में बाँधा भी नहीं जा सकता। फिर भी... मैंने कभी इतना आगे..." सच कहूँ... ये संदेश देखने के बाद मैं काफी देर तक कुछ भी लिखने या कहने की स्थिति में नहीं था। थोड़ा सामान्य होने के बाद... अब हिम्मत कर रहा हूँ। आपकी भावनाओं का सम्मान करता हूँ... और आपका आभार। और हाँ... जन्मदिन का पता था मुझे... इसलिए आपके संदेश

से पहले ही विश कर दिया था। अब इससे ज्यादा तो क्या कहूँ... आज तो बस सोच ही सकता हूँ।”

संदेश भेजने के बाद उसने तुरंत नेट बंद कर दिया। आज उसमें उत्तर देखने का साहस नहीं था। मानो तीर छोड़ दिया हो... और अब परिणाम देखने से डर रहा हो। दो घंटे बाद बेचैनी ने फिर उसे घेर लिया। उसने नेट ऑन किया। दिल की धड़कनें फिर तेज हो गईं। और तब उसने उसका उत्तर पढ़ा। “मजाक था...” “मजाक” बस दो शब्द। माही मुस्कराया नहीं। उदास भी नहीं हुआ। बस चुपचाप संदेश को देखता रहा। क्योंकि वो जानता था... ये मजाक नहीं था। ना ही कोई सपना था, ना कल्पना। कोई बात थी, किसी के “मन की बात”। साथ ही एक कहानी भी.. एक ऐसी कहानी जो सालों से चली आ रही थी.. पहले भी टुकड़ों में कही गई पर आज पूरी सुना दी गई। या फिर उसका निष्कर्ष कह दिया गया हो चार शब्दों में। कुछ भी था लेकिन अब कहानी अनकही नहीं रही थी।

कुछ बातें मजाक के रूप में कही जाती हैं। ताकि अगर सामने वाला समझ न पाए... तो उन्हें मजाक कहकर बचाया जा सके। और अगर समझ जाए... तो बिना कहे भी सब कुछ कह दिया जाए। करवाचौथ का चाँद अब काफी ऊपर चढ़ चुका था। छतों का शोर कम होने लगा था। लेकिन आज दो रूह एक दूसरे के भीतर जाग उठी थी। उसे बार-बार वही पंक्ति याद आ रही थी। “आज आपके साले जी का जन्मदिन है।” चार शब्द। सिर्फ चार शब्द। लेकिन उन चार शब्दों ने वर्षों से बिखरी हुई कई बातों को एक सूत्र में पिरो दिया था। आज उसका यकीन, विश्वास की जगह ले रहा था... शायद वो कहानी, जिसे वो अब तक अकेले पढ़ता आया था... उसकी दूसरी प्रति भी कहीं मौजूद थी। और ... उसका दूसरा पाठक भी। उस रात उसे नींद नहीं आई। वो जानता था कि आज की रात सपनों से उसकी मुलाकात नहीं होनी। क्योंकि आज सपनों की बारात नहीं निकलनी थी। आज तो कल्पनाओं की झाँकी निकलनी थी। और उस झाँकी के रथ पर... सवार था—

“उसका मन”

अध्याय - 129

“मन का बहाव”

करवाचौथ की वह लंबी और नाटकीय रात आखिरकार बीत गई। सुबह की पहली किरण आसमान में बिखर चुकी थी। माही की आँखें पूरी रात ठीक से बंद नहीं हुई थीं। लेकिन आज चेहरे पर नींद की थकान नहीं थी। एक ठहराव था। उसने मोबाइल उठाया। चैट खोली। सामने अब भी वही दो शब्द खड़े थे— "मजाक था... मजाक।" रात को उसने कोई उत्तर नहीं दिया था। क्योंकि वह जानता था... रात भावनाओं को जरूरत से ज्यादा गहरा कर देती है। लेकिन अब सुबह हो चुकी थी। हकीकत की सुबह। उसने टाइप किया— "मुझे पता है।"

"और अच्छा है कि यह मजाक था। क्योंकि कुछ सच इतने भारी होते हैं... कि उन्हें उठाने के लिए एक दिन या एक रात नहीं... पूरी उम्र चाहिए होती है।" संदेश चला गया। उत्तर आने में ज्यादा समय नहीं लगा। "Hmm... आप बहुत समझदार हो। कभी-कभी डर लगता है आपकी इस समझदारी से।" माही ने यहां भी जवाब उसी लय में दिया— "समझदारी से डरना नहीं चाहिए। समझदारी बचाती है।"

"किससे?" "उन सपनों से... जिनकी कोई जमीन नहीं होती।"

कुछ देर तक उधर से कोई उत्तर नहीं आया। शायद वह सोच रही थी। या शायद उन शब्दों की गहराई में उतर रही थी। या फिर राहत महसूस कर रही थी। उसने माही के सामने खुद को जिस तरह से खोल कर (Expose) रख दिया था... माही ने बड़ी शालीनता से उस पर 'मजाक' और 'समझदारी' का पर्दा डाल दिया था। ताकि उसकी गरिमा बची रहे। ताकि वह बिना झिझक के अगली बार फिर उससे बात कर सके। उसने रात को जो कहा था... माही ने उसे पकड़कर कोई फैसला नहीं बना दिया था। न ही उसे हल्के में उड़ा दिया था। बस सम्मानपूर्वक वापस उसकी ओर लौटा दिया था। कुछ देर बाद नया संदेश आया। "अच्छा सुनो... अनु की शादी में जो हलवाई किया है... उसे बोल देना कि गुलाब जामुन थोड़े ज्यादा बनाए।"

"क्यों?"

"मेरे को पसंद है। और क्यों?" "दीक्षा दी को भी पसंद है।" "अच्छा..." "हां..." विषय बदल चुका था। या शायद सिर्फ उसकी शक्ल बदली थी। "जी हुजूर। समझ गया। बोल दूंगा।" "ठीक है..." फिर अचानक— "माही!" ने आवाज दी। "रुको... सुनो... कल ऑफिस आओगे?" "हां।" "क्यों?" "क्या बनाया था करवाचौथ पर?" "उम्म... हलवा। पूरी। चूरमा। और दही भल्ले।" "अच्छा। तो कल थोड़ा-थोड़ा ले आना।" "क्यों?" "सवाल नहीं। बस ले आना।" "मैं कल हड़ताल में आऊंगा।" "आपके घर नहीं बना कुछ?" मन ने पूछा। "या फिर..." "क्या या फिर?" कुछ क्षण तक टाइपिंग चलती रही। फिर उत्तर आया— "या फिर... ससुराल का ही पसंद है?" वो कुछ देर देखता रहा। फिर टाइप किया— "हां है। अब बताओ?" उत्तर भी गति से आया— "ठीक है... तो आपकी पसंद... मेरा फर्ज।" इस बार माही चुप हो गया। और शायद उधर बैठी मन भी। जैसे दोनों ने अनजाने में कोई ऐसी पगडंडी छू ली हो... जिस पर अभी चलना नहीं था। तभी—

"Just Kidding." और उसके साथ कुछ हँसते हुए स्टिकर। माही ने राहत की साँस ली। "कुछ ज्यादा ही शरारती होते जा रहे हो। थोड़ा अच्छी जगह लगाओ मन को।"

"लगा तो रखा है। और अच्छी जगह ही लगा है।"

"कहाँ?"

इस बार उत्तर आने में समय लगा। जैसे उंगलियाँ भी सोच रही हों कि आगे बढ़ें या लौट जाएँ। फिर स्क्रीन पर सिर्फ दो शब्द उभरे— "आप में।"

माही एक टक देखता रहा।

लेकिन अगले ही क्षण नया संदेश आ गया— "Just a Joke." "अगर ज्यादा लग गया हो तो Sorry. Bye Sir." और फिर चैट ने अपना आज का काम कर के खिड़की बंद कर ली।

“सुबह नई... सफर वही”

अगले दो-तीन दिन कभी हड़ताल तो कभी घर के कुछ लंबित कार्यों को निपटाने में बीत गए। कल भी माही देर शाम तक बाहर रहा था। पापा का एक जरूरी काम कई दिनों से अटका हुआ था, जो आखिरकार पूरा हो गया। इसी संतुष्टि के साथ वह रात को सोया और काफी गहरी नींद आई। सुबह लगभग छह बजे उसकी आँख खुली। नित्य कर्म से निवृत्त होकर जब वह वापस कमरे में आया तो मोबाइल पर एक मिस्ड कॉल दिखाई दी। नंबर परिचित था। वह उन लोगों में से एक थे जिनसे समय-समय पर मन के रिश्ते के विषय में बातचीत होती रहती थी। माही ने तुरंत वापस कॉल किया,

"एक लड़का है।"

फिर उन्होंने लड़के के बारे में जितनी जानकारी थी, बतानी शुरू कर दी। परिवार, नौकरी, रहन-सहन और अन्य शुरुआती बातें। माही ने ध्यान से सब सुना। फिर बोला, "ठीक है, फोटो और बाकी जानकारी व्हाट्सएप पर भेज दीजिए।" "भेज देता हूँ।"

कुछ देर बाद माही ने कहा, "अभी उनकी बहन की शादी है, इसलिए कुछ दिन इसी में निकल जाएंगे।" "शादी के बाद आराम से बात करेंगे।" फिर थोड़ी देर रुककर बोला, "और उससे पहले एक बार आपसे मिल भी लूंगा।" "बिल्कुल, जब कहो तब मिल लेते हैं।" बात खत्म हुई और कॉल कट गई। कुछ ही देर बाद व्हाट्सएप पर फोटो और जानकारी आ गई। माही ने एक नजर डाली और मोबाइल मेज पर रख दिया। जीवन शायद फिर उसी दिशा में लौट रहा था। जिस दिशा में वह पिछले कई महीनों से चल रहा था। एक और रिश्ता। एक और संभावना। और उसके साथ जुड़ी हुई कुछ नई जानकारियाँ। बाकी बात अब अनु की शादी के बाद ही आगे बढ़नी थी।

अध्याय - 131

“मन का ढ़ंद”

अनु की शादी अब नज़दीक आ चुकी थी। तैयारियाँ अपने अंतिम चरण में थीं। साथ ही व्यवस्थाओं की चिंता भी। इन्हीं तैयारियों के बीच मन ने उससे कुछ सामान मंगवाया था। आज वही देने के लिए माही उसके गाँव की ओर निकल पड़ा। उसने गाँव के स्कूल के पास मन के भाई को बुला लिया, क्योंकि घर जाना उसने उचित नहीं समझा। सामान उसके सुपुर्द किया। और फिर वह बिना रुके वापस लौटने लगा। दोपहर ढलने लगी थी। सूरज की किरणें अब पहाड़ियों के कंधों पर टिककर सुनहरी होने लगी थीं। घर लौटने का रास्ता गाँव के उन छोटे-छोटे पहाड़ों के बीच से होकर गुजरता था, जो वर्षों से वहीं खड़े थे। न जाने कितने लोगों को आते-जाते देखते हुए। माही साइकिल धीरे-धीरे चला रहा था। कुछ दूर आगे जाकर सड़क एक ऊँचे मोड़ पर पहुँची। माही ने साइकिल सड़क किनारे रोक दी। वह कुछ कदम आगे बढ़ा और सामने फैलते दृश्य को देखने लगा। नीचे दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। हरे, पीले और सुनहरे रंगों में रंगी धरती किसी चित्रकार की बनाई हुई प्रतीत हो रही थी। हवा के साथ लहराती फसलें ऐसा आभास दे रही थीं जैसे धरती स्वयं कोई मौन गीत गा रही हो। दूर छोटे-छोटे गाँव दिखाई दे रहे थे। ऊँचाई से देखने पर वे इतने छोटे लग रहे थे कि मानो बच्चों ने मिट्टी से घरों दे बनाकर छोड़ दिए हों। उसकी दृष्टि धीरे-धीरे घूमती हुई एक सँकरी गली पर जाकर ठहर गई। वही रास्ता... जो आगे जाकर मन के घर की ओर मुड़ता था। ऊँचाई से देखने पर वह भी किसी साधारण गली जैसी ही लग रही थी। लेकिन माही के लिए वह सिर्फ एक रास्ता नहीं थी। उसे लगा जैसे वह गली धरती पर नहीं... उसके दिल के किसी हिस्से से होकर गुजरती हो।

कुछ देर तक वह यूँ ही खड़ा रहा। फिर न जाने कैसे एक विचार उसके भीतर उतर आया। "क्या मैं सही कर रहा हूँ?" प्रश्न नया नहीं था। लेकिन आज पहले से कहीं अधिक स्पष्ट था। कहीं ऐसा तो नहीं कि वह स्वयं को ही धोखा दे रहा हो? एक बार फिर से उसे विचार आया कि क्या ये खुद के साथ क्रूरता है? किसी चाहने वाले के साथ नाइंसाफी? उसने फिर नीचे फैले रास्तों की ओर देखा। हर सड़क किसी न किसी मंजिल तक जाती दिखाई दे रही थी। लेकिन जीवन के रास्ते इतने स्पष्ट कहाँ होते हैं? क्या हर वह रास्ता सही होता है जो अच्छा दिखाई देता है? और क्या हर सही रास्ता मन को स्वीकार होता है? उसने

आँखें बंद कर लीं। ऐसा लग रहा था जैसे कि आज... वो ऊंचाई पर खड़ा अपने वजूद को माप रहा था। अगर मन के दिल में सचमुच कुछ है... तो? अगर वह समझकर भी अनजान बना हुआ है... तो? अगर भविष्य में किसी दिन उसे यह लगे कि मैंने उसकी बात सुनकर भी नहीं सुनी... तो? इन प्रश्नों का कोई उत्तर उसके पास नहीं था। पहाड़ उत्तर नहीं देते। वे केवल सुनते हैं। शायद इसलिए सदियों से मनुष्य अपने सबसे कठिन प्रश्न उन्हीं के पास लेकर जाता आया है। माही भी आज वही कर रहा था। वह सामने फैले दृश्य को देख रहा था। लेकिन देख कहीं और रहा था। अपने भीतर। उसे लगा कि उसका संघर्ष प्रेम और त्याग का नहीं है। उसका संघर्ष निर्णय का है। क्योंकि प्रेम करना आसान हो सकता है। किसी के लिए तपना भी शायद आसान हो। लेकिन यह तय करना कि उस व्यक्ति के लिए वास्तव में अच्छा क्या है... यहीं सबसे बड़ी परीक्षा शुरू होती है। सामने दूर वह गली अब भी दिखाई दे रही थी। मन के घर तक पहुँचने वाला रास्ता उसे साफ दिखाई दे रहा था। लेकिन मन की मंज़िल तक पहुँचने वाला रास्ता आज भी धुँधला था। और शायद यही धुँधलापन उसके भीतर के इस द्वंद का कारण था। उसने एक लंबी साँस ली। फिर आसमान की ओर देखा। शायद ऊपर वाला भी किसी ऊँची जगह से हम सबको देखता होगा। जहाँ से हमारे संघर्ष, हमारे निर्णय और हमारी जिदें बहुत छोटी दिखाई देती होंगी। उसने धीरे से मन ही मन प्रार्थना की— "अगर मैं गलत रास्ते पर हूँ तो मुझे समय रहते रोक देना। और अगर सही हूँ... तो इतना विवेक देना कि किसी अपने के साथ अन्याय न हो जाए।" कुछ देर बाद वह वापस साइकिल की ओर लौटा। क्योंकि कुछ यात्राएँ उत्तर पाने के लिए नहीं होतीं। वे सिर्फ यह याद दिलाने आती हैं कि प्रश्न अब भी जीवित हैं।

अध्याय - 132

“मन की चिंता”

अनु की शादी में अब सिर्फ एक दिन बाकी था। घर में लोगों का आना-जाना बढ़ चुका था। कहीं हँसी-मजाक चल रहा था। ऐसे माहौल में समय का पता ही नहीं चलता। लेकिन कुछ आदतें ऐसी होती हैं जो व्यस्तता से भी बड़ी हो जाती हैं। और उनमें से एक थी — 8:37। रात 8 बजकर 37 मिनट। माही ने संदेश भेजा।

"Ma'am"।

मन - "कैसे हो?"

"ठीक हूँ।"

इतने व्यस्त पारिवारिक माहौल में भी उतर आने की गति बता रही थी कि इस समय से जरूरी कुछ भी नहीं है।

"सब ठीक चल रहा है?"

"हां।"

"खाना खा लिया?"

"हां।" "

सच में ना?"

"हां। झूठ क्यों बोलूंगी?"

"अरे वो बात नहीं है। कई बार व्यस्तता के बीच इंसान खुद को ही भूल जाता है।"

"नहीं भूली।"

— "वैसे मेरी इच्छा थी... आकर काम करवाने की। लेकिन लोग कई तरह की बातें करेंगे। कौन है? क्यों है? वगैरह-वगैरह।"

"हां।" "और परेशान होना भी नहीं। पर्दे के पीछे ही काफी भागदौड़ करवा रखी है मैंने आपकी।" मन ने कहा

"नहीं।"

माही ने कहा, "ऐसे समय तो दूर के लोग भी काम आते हैं। फिर मैं तो... इसलिए एहसान बोध मत कराओ।"

"जी नहीं कराऊंगी।"

"अच्छा सुनो।"

"हां बताओ।"

"मैं कुछ पैसे भेज रहा हूँ।"

कई बार अचानक जरूरत पड़ जाती है। इसलिए रख लेना। इसके अलावा कोई और जरूरत हो तो परेशान मत होना। बस मैसेज कर देना। और खुद का ध्यान रखना। ज्यादा दबाव मत लेना। और हां... कल शाम को आऊंगा मैं।"

"ठीक है। मैं ध्यान रखूंगी।" फिर कुछ सेकंड बाद एक और संदेश आया।

"और आप भी मेरा ध्यान करके खुद को परेशान मत करना।"

"ठीक है।"

जिम्मेदारी के साथ अवसर को भी एंजॉय करना।" "जी।"

उसके बाद मन ने शादी की तैयारियों की कुछ तस्वीरें भेजीं। कहीं सजावट हो रही थी। कहीं महिलाएं किसी रस्म की तैयारी में लगी थीं। साथ में कुछ स्टिकर भी। तस्वीरें देखते हुए माही ने लिखा— "मिस है कुछ।"

"क्या?"

"आप सोचो।"

"नहीं पता।"

माही ने हंसने वाली इमोजी भेज दी।

"अच्छा..."

" शायद आज सचमुच वह हंसना भूल गई थी। मन ने दो-तीन लाफिंग इमोजी भेज दीं।

"Good Boy " माही ने उसे चिढ़ाया।

मन ने गुस्से वाली इमोजी भेजी—

"Sorry."

"It's Okay." कुछ देर दोनों ऑनलाइन रहे। लेकिन अब कहने के लिए कुछ विशेष नहीं बचा था। शायद दोनों को पता था कि कल का दिन बड़ा है। कल अनु की शादी थी। इसलिए घर में उत्साह भी था और भागदौड़ भी। लेकिन इन सबके बीच एक बात समान थी। मन को शादी ठीक से निपट जाने की चिंता थी। और माही को मन की। लेकिन फिक्र और व्यस्तताओं के इस समंदर में भी 8:37 का छोटा-सा सुकून द्वीप अब भी सुरक्षित था।

अध्याय - 133

“मन का चांद”

(शहनाई और संयोग)

आखिर वह दिन आ ही गया जिसका इंतजार हर लड़की और उसके परिवार को रहता है। 1 नवंबर। शहर का मिलन गार्डन रोशनियों से जगमगा रहा था। मुख्य द्वार से लेकर मंच तक हर कोना सजा हुआ था। रंग-बिरंगी झालरें, फूलों की सजावट, हवा में उड़ती इत्र की महक और दूर से सुनाई देती शहनाई की मधुर धुन... सब मिलकर उस रात को विशेष बना रहे थे। आगंतुकों पर पुष्प वर्षा करती युवतियाँ। मिकी माउस के साथ फोटो खिंचवाते बच्चे। सजी हुई स्टॉलों पर उमड़ती भीड़। डीजे की धुन पर थिरकते युवक-युवतियाँ। और अपने जीवन के नए अध्याय - की प्रतीक्षा करती दुल्हना और इन्हीं सब के बीच कोई ओर भी था जो किसी का इंतजार कर रहा था। दो आंखे बार-बार सजे-धजे मुख्य द्वार को निहार रही थी। और सचमुच आज मन के भीतर उतावलापन, चिंता और क्रोध के भाव एक साथ आ रहे थे। क्योंकि 8 बज चुके थे, लेकिन माही अभी तक नहीं आया था। जबकि उसने शाम तक आने के लिए कहा था। वो बार-बार टाइम और गेट को देख रही थी। उधर माही रास्ते में गाड़ी में बैठा सोच रहा था.. आज पहली बार उस के किसी फंक्शन में जा रहा हूँ... जहां पर उसके सब घर वाले रिश्तेदार होंगे। उन्हें क्या परिचय दूंगा? दफ्तर में से कोई और आता तो मैं भी उन्हीं में शामिल हो लेता। लेकिन उसने वहाँ से मेरे अलावा किसी को भी नहीं बुलाया। ड्राइवर का इंतजाम करते करते वो पहले ही लेट हो गया है... और इसी जद्दोजहद में उसकी गाड़ी गार्डन के गेट पर पहुंची। उसने गार्डन के भीतर प्रवेश किया और सामने लगी स्क्रीन पर चमकते समय पर उसकी दृष्टि पड़ी— 08:37। उसने हैरानी से मोबाइल निकाला, उसमें भी 08:37। और ठीक इसी समय आसमान में गोल चांद ने भी अपनी हाजिरी लगाई। मानो वो भी माही के साथ उस गार्डन में आया हो। ये महज संयोग है या प्रकृति का कोई दुर्लभ योग, ये सोच ही रहा था कि तभी मोबाइल स्क्रीन पर उभरा वो प्यारा सा, मासूम सा उसका सफेद खरगोश— "मेरा मन"। अब शायद ये योग दुर्लभ से दुर्लभतम हो गया... इसकी व्याख्या कर ही रहा था कि— "कहां हो?" "यही हूँ गार्डन में अभी आया हूँ।"

"इतनी Late!" नाराजगी और गुस्सा एक साथ। माही को उसकी संभावित डांट का पहले ही आभास था। खैर तभी उसने फोन हटाया और सामने खड़ी थी— "मन"।

बिना कुछ ज्यादा कहे वो सीधा उसको भीतर ले गई। वहां अनु और कुछ लड़कियां थी। वो पहली बार आज एक दूसरे से मिले थे। दोनों ने एक दूसरे का अभिवादन किया। माही ने उसको गिफ्ट और विवाह की शुभकामनाएं दी। अनु ने विदाई तक वही रहने की इच्छा प्रकट की। बाहर शहनाई बज रही थी। रंग-बिरंगे पटाखे आसमान को दीप्तिमान कर रहे थे। घोड़ी पर चढ़ा दूल्हा साथियों का नाच देख कर मुस्करा रहा था। तभी माही बाहर आ गया और गार्डन में ही बैठ गया। मन अपनी सहेलियों के साथ डीजे पर थिरक रही थी, लेकिन उसकी नज़रें बीच-बीच में भीड़ से होकर उसी दिशा में चली जाती थीं... जहाँ माही बैठा था। कुछ देर बाद वह फिर उसके पास आई। "एक फोटो ले लेते हैं।" माही ने विनम्रता से मना कर दिया। क्षण भर के लिए मन का चेहरा उतर गया। लेकिन वह उसके स्वभाव को जानती थी। कुछ लोग यादें तस्वीरों में संजोते हैं, और कुछ... दिल में। माही शायद दूसरी श्रेणी का व्यक्ति था। मन ने अधिक जोर नहीं दिया। कुछ देर बाद वह फिर अपनी जिम्मेदारियों में व्यस्त हो गई। इसके बाद वो बाहर चला गया, शायद अपनी जिम्मेदारी निभाने के लिए कि कहीं कोई ऐसी वैसी हरकत ना कर दे। मन उसको खाने के लिए फोन कर रही थी। लेकिन ढोल नगाड़ों और डीजे की आवाज में उसको सुनाई नहीं दिया। ठीक 11 बजे दुल्हा गेट के सामने पहुंचा। औरतों ने अपनी रस्म निभाई, और दूल्हे राजा ने अपनी। उसके बाद भीतर प्रवेश किया। माही ने भी रात वाली चाय ले कर एक मैसेज के द्वारा "मन" से अनुमति ली। सामने से मैसेज आया— "इतनी जल्दी?" "हां।" वो भी समझ गई। आखिर इतने दिनों से उस किताब को पढ़ रही थी। क्योंकि वो जानती थी कि उसकी अपनी कुछ मर्यादाएं और सीमाएं हैं जो उसे इस से ज्यादा रुकने की इजाजत नहीं देती थी। इसलिए वो इतना ही कह पाई— "ठीक है, लेकिन घर पहुंचकर मैसेज कर देना।"

"जी।" माही ने मोबाइल जेब में रख लिया। एक बार फिर उसने पूरे गार्डन पर नज़र डाली। शहनाइ की जगह डीजे ने ली थीं। रोशनियाँ रंग बदल रही थीं। लड़कियां दूल्हे को छेड़ने को आतुर थी, इन सब के बीच अनु अपने नए जीवन की ओर बढ़ रही थी। और माही... अपनी पुरानी मर्यादाओं के साथ वापस लौट रहा था। फर्क बस इतना था कि आज उसके मन में एक अलग सुकून था। क्योंकि आज उसने सिर्फ अनु को शुभकामनाएं नहीं दी थीं। उसने उस घर की खुशियाँ अपनी आँखों से देखी थीं... जिसकी चिंता वह पिछले कई महीनों से करता आ रहा था।

अध्याय - 134

“खाली ऑगन”

पिछले कई महीनों से जिस दिन की तैयारी चल रही थी, वह आखिरकार बीत चुका था। अनु की विदाई के साथ ही आए हुए लोग भी अनुमति ले रहे थे, सुबह से शाम तक मन कभी सामान समेटती, कभी किसी को विदा करती, तो कभी कुछ, शरीर थक गया था। लेकिन थकान सिर्फ शरीर में नहीं थी। जब कोई अपना विदा होता है। तो उसके जाने के बाद सबसे पहले उसकी अनुपस्थिति दिखाई नहीं देती... महसूस होती है। शाम ढलते-ढलते घर लगभग खाली हो चुका था। कुछ करीबी लोग ही मौजूद थे। उत्सव अब स्मृति बन चुका था। रात को जब घड़ी ने 8:37 का समय दिखाया, तब पहली बार उसे एहसास हुआ कि पूरे दिन वह इस समय को लगभग भूल ही गई थी। डिसप्ले ने उजाला किया। माही का संदेश था। "सब ठीक से निपट गया?" मन ने संदेश पढ़ा।

— "हां।"

"और आप कैसी हो?"

इस बार जवाब ने थोड़ा सफर तय किया।

"पता नहीं।"

"मतलब?" "

बस... आज मन नहीं लग रहा।" माही समझ गया। "अनु की याद आ रही है?"

— "हां। घर अजीब सा लग रहा है। सुबह तक सब यहीं थे। अब ऐसा लग रहा है जैसे अचानक बहुत कुछ बदल गया।" माही उस पल को सिर्फ महसूस कर सकता था। उसके पास कोई ऐसा शब्द नहीं था जो उस खालीपन को भर सके। इसलिए उसने सिर्फ इतना लिखा— "समय लगेगा। लेकिन धीरे-धीरे आदत हो जाएगी।" "मुझे नहीं चाहिए ऐसी आदत।" उस संदेश के साथ एक उदास इमोजी भी थी। "ये बात अनु को बता देना। वो खुश हो जाएगी।" इस बार सामने से हँसने वाली इमोजी आई। और शायद पूरे दिन में

पहली बार उसके चेहरे पर भावों का रूपांतरण हुआ। फिर दोनों ने एक-दूसरे को शुभरात्रि कहा। मोबाइल की स्क्रीन बंद हो गई। लेकिन आज पहली बार मन को एहसास हुआ कि शादी की सबसे कठिन रस्म विदाई नहीं होती। सबसे कठिन होता है उस से उत्पन्न खालीपन

अध्याय - 135

“आपके पापा जी”

अनु की शादी को कुछ दिन बीत चुके थे। मन के घर शादी से पहले जैसा माहौल लौट आया था। उस दिन माही घर पर ही था। साफ- सफाई निपटाने के बाद वह अपने कमरे में आकर लेट गया। समय बिताने के लिए उसने मोबाइल उठाया और स्टेटस देखने लगा। सच तो यह था कि स्टेटस सेक्शन वह सबके लिए नहीं खोलता था। उसकी तलाश हमेशा एक ही नाम पर जाकर खत्म होती थी। और आज भी वही हुआ। सिर्फ एक मिनट पहले लगाया गया स्टेटस। एक युवा व्यक्ति की साधारण-सी तस्वीर। नीचे लिखा था— "आपके बिना हर खुशी अधूरी है।" वह मन के पिताजी की तस्वीर थी। शायद अनु की शादी के दौरान उनकी कमी बहुत गहराई से महसूस हुई थी। वह काफी देर तक तस्वीर देखता रहा। फिर Reply में पूछा— "अंकल जी हैं?"

संदेश भेज दिया गया। लेकिन काफी देर तक केवल एक टिक ही दिखाई देती रही। कुछ देर बाद वह किसी काम से बाहर निकल गया, मोबाइल घर पर ही छोड़कर। यह उसकी पुरानी आदत थी। एक ऐसी आदत जिसकी शिकायत मन और खुद उसके घरवाले समय-समय पर करते रहते थे। शाम को लौटकर उसने खाना खाया और फिर नियत समय पर व्हाट्सएप खोला। उस के प्रश्न का उत्तर आ चुका था।

"अंकल नहीं... पापा जी हैं आपके।"

बस इतना। इस एक शब्द ने माही की संपूर्ण नजर अपने पर केंद्रित कर ली। आपके पापा जी... ये एक शब्द उसकी नजरों को स्थिर किए हुए था। हैरानी हुई। और शायद नहीं भी। क्योंकि पिछले कुछ महीनों में बहुत कुछ ऐसा हो चुका था जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। लेकिन आज जो कहा गया था... वह उन सब से ऊपर था। कुछ संबोधनों में शब्द कम होते हैं, अर्थ बहुत अधिका। वह उसी विचार में खोने लगा था। शायद आज 8:37 भी यूँ ही निकल जाता, अगर दूसरी ओर से उसे वापस वर्तमान में न खींच लिया जाता।

मन: "कैसा लगा आज वाला मजाक?"

— "आजकल आपके हर मजाक में जान निकल जाती है। लेकिन आज वाले मजाक को तो चरण वंदन करता हूँ।"  मन की तरफ से हँसने वाली इमोजी आई। इसके बाद वह इस विषय को आगे नहीं बढ़ा पाया। शायद शब्द साथ नहीं दे रहे थे। इसलिए उसने बात बदल दी। "अनु वाली जिम्मेदारी आपने अच्छे से निभा दी। अब खुद की बताओ..." एक जगह से... वह आगे कुछ और लिखता, उससे पहले ही उत्तर आ गया। "हाँ। मैंने अपनी जिम्मेदारी निभा दी। अब आप भी निभा दो अपनी जिम्मेदारी। कर दो जल्दी से मेरा कन्यादान।" माही की उँगलियाँ कीपैड पर रुक गईं।

"कन्यादान?" "हाँ।

"अरे... आप वही तो काम कर रहे हो जो मेरे पापा करते। इसलिए कह रही हूँ।"

"देखो... पापा नहीं थे तो अनु का कन्यादान ताऊ जी और ताई जी ने किया। क्योंकि मम्मी अकेली कर नहीं सकती थीं।" साथ में एक आँसू वाली इमोजी थी। माही कुछ नहीं लिख पाया। वह सिर्फ पढ़ रहा था। मन ने फिर लिखा— "तो इस बार... किसी और की बजाय... मेरा कन्यादान आप कर देना।" अब दोनों तरफ से शब्द मानो दिशा भूल गए थे या शायद शब्दों ने अपनी सीमा छू ली थी।

कुछ देर बाद माही ने लिखा— "मैं कैसे कर सकता हूँ? उसके लिए तो जोड़ा होना चाहिए।"

जवाब स्पीड पोस्ट से आया।

"नहीं।

मेरे लिए आप अकेले ही काफी हो। जरूरी नहीं कि हर परंपरा ज्यों की त्यों निभाई जाए।" माही के पास इसका कोई जवाब नहीं था। और शायद मन भी यह जानती थी। इसलिए उसने स्वयं ही लिखा— "चलो... जो भी है... उनसे बात कर लेना।" फिर कुछ सेकंड बाद— "Good Night." और वह चली गई। पीछे छोड़ गई कुछ शब्द। कुछ प्रश्न। और उनसे भी अधिक कुछ अर्थ। दूर के आसमान से पटाखों की आवाजें आ रही थीं। शาดियों का मौसम अपने पूरे शबाब पर था। लेकिन माही का मन उन आवाजों से बहुत दूर चल गया था। वह सोच रहा था— किसी के जीवन में स्थान मिल जाना और बात है। लेकिन किसी के मन में परिवार का स्थान मिल जाना... शायद उससे कहीं बड़ी बात होती है। उसने कोई उत्तर नहीं लिखा। कोई प्रश्न भी नहीं किया। बस... "पापा जी हैं आपके" इस संदेश पर एक  लगा दिया। शायद उस रात उसके पास कहने के लिए इससे अधिक कुछ था भी नहीं।

“मन की खुशी....मन से बढ़कर”

अनु की शादी को काफी दिन बीत चुके थे। शादी से पहले माही ने लड़के वालों से अनुरोध किया था कि आगे की चर्चा विवाह के बाद ही की जाए। इसलिए अब लगातार उनके फोन आने लगे थे। कई बार व्यस्तता आड़े आ जाती। और कई बार... मन के कुछ "मजाक"। विशेषकर वह मजाक, जिसे माही मजाक मानने को तैयार नहीं था। लेकिन किसी भी बात को अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता। आखिर एक दिन उसने वहाँ जाने का कार्यक्रम बना लिया। बीच में उसका एक परिचित भी था। इसलिए दोनों सुबह ही निकल पड़े। दोपहर के आसपास वे लड़के के घर पहुँचे। लड़का भारतीय वायुसेना में था। दिल्ली विश्वविद्यालय से विज्ञान स्नातक। अपने महाविद्यालय का टॉपरा। पढ़ाई अच्छी। नौकरी अच्छी। व्यवहार अच्छा। परिवार भी व्यवस्थित और सम्मानित। गाँव में अच्छी जमीन थी। माँ सरपंच थीं। परिवार का सामाजिक सम्मान भी कम नहीं था। लेकिन इन सबसे अधिक जिस चीज़ ने माही को प्रभावित किया... वह उनका व्यवहार था। बातों में सरलता थी। व्यवहार में अपनापन। और शब्दों में कोई बनावट नहीं। संयोग से परिवार के एक सदस्य के साथ उसकी पुरानी पहचान भी निकल आई। विश्वास को जैसे एक और आधार मिल गया। कहीं कोई ऐसी बात नहीं मिली जिस पर उंगली रखी जा सके। और शायद यही कारण था कि लौटते समय उसके मन में संतोष था। सिर्फ संतोष नहीं। एक प्रकार का विश्वास। रास्ते भर वह यही सोचता रहा कि अगर यह रिश्ता हो जाए... तो शायद मन खुश रहेगी। वह उस घर के आँगन में उसे देखने लगा। उस परिवार का हिस्सा बनते हुए देखने लगा। शायद पहली बार वह मन के वर्तमान से आगे... उसके भविष्य की कल्पना कर रहा था।

घर लौटकर उसने लड़के वालों को पुनः संपर्क का आश्वासन दिया। और इस बार न जाने क्यों... उसके शब्दों में सामान्य से अधिक आत्मविश्वास था। मानो सब कुछ उसके हाथ में हो। जबकि वह जानता था कि वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग है। लेकिन कभी-कभी हम जिन लोगों की खुशी चाहते हैं... उनके लिए असंभव बातों पर भी विश्वास करने लगते हैं। शायद माही के साथ भी कुछ ऐसा ही था। मन की खुशी ही उसका स्वार्थ थी। और उस स्वार्थ को पूरा करने के लिए... वह अपनी कई इच्छाओं का गला घोटने को

तैयार था। रात हुई और नियत समय पर बात भी। औपचारिक बातों के बीच मन ने बताया कि तीन-चार दिन बाद उसका दिल्ली पुलिस का शारीरिक परीक्षण है। जनवरी का महीना था। सर्दी अपने चरम पर। कुछ देर और बातें होती रहीं फिर खत्म भी। लेकिन माही की रात अभी समाप्त नहीं हुई थी। वह बिस्तर पर लेटा सोचता रहा, इतनी सर्दी में वह जाएगी कैसे? रुकेगी कहाँ? मेरे को साथ जाना चाहिए कि नहीं। अगर नहीं तो उसकी सुरक्षा कैसे सुनिश्चित हो? क्या करूँ? एक प्रश्न दूसरे को जन्म देता रहा। और धीरे-धीरे उन्हीं प्रश्नों के बीच एक विचार आकार लेने लगा जो योजना बन कर उसके साथ सो गया।

अध्याय - 137

"बिना पावती का सफर"

(धुंध, इबादत और एक खामोश वापसी)

अगले दिन सुबह जब आँख खुली, तो बाहर घना अँधेरा था।

जनवरी की हाड़ कँपा देने वाली सर्दी और उस पर बिजली का न होना।

लेकिन माही के भीतर किसी और ही चीज़ की गर्माहट थी।

उसने बिना किसी शोर के चूल्हे पर पानी गर्म किया।

जल्दी से नहा-धोकर तैयार हुआ। खाने के नाम पर हमेशा की तरह सिर्फ एक कप चाय गले के नीचे उतारी, जो उसकी उलझनों की सबसे पुरानी साथी थी।

घर में सब सो रहे थे।

वह बिना किसी को जगाए, दबे पाँव घर से बाहर निकल गया।

रास्ते से ही उसने घर वाले नंबर पर एक मेसेज छोड़ दिया— "हड़ताली यूनियन के किसी जरूरी काम से बाहर जा रहा हूँ।"

लेकिन असली सच सिर्फ दीक्षा को बताया। साथ ही यह सख्त हिदायत भी दी कि मम्मी-पापा को इस बारे में कुछ पता नहीं चलना चाहिए।

बाहर धुंध इतनी गहरी थी कि कुछ कदम दूर का रास्ता भी दिखाई नहीं दे रहा था।

लेकिन माही की मंज़िल धुंध में भी, बहुत स्पष्ट थी।

दोपहर 12 बजते-बजते वह दिल्ली पहुँच गया।

सीधे पूर्वी दिल्ली के यमुना पार इलाके में।

वजीराबाद का 'पुलिस ट्रेनिंग स्कूल', जहाँ 'मन' की शारीरिक परीक्षा (Physical Test) होनी थी।

माही ने वहाँ ठहरने की व्यवस्था का जायज़ा लिया।

हालत देखकर उसका दिल बैठ गया। खुले मैदान, टेंट की आधी-अधूरी व्यवस्था और दिल्ली की वह सर्द हवा। एक लड़की के लिए वहाँ रात गुज़ारने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उसका मन इस व्यवस्था को कैसे स्वीकार कर लेता?

वह तुरंत वहाँ से निकला।

काफी भागदौड़ और खोजबीन के बाद, आखिरकार वजीराबाद से दूर 'ग्रीन पार्क' इलाके में उसने एक अच्छा और महंगा कमरा बुक किया। कमरा बिल्कुल पुलिस चौकी के नज़दीक था, ताकि सुरक्षा कोई कमी समस्या ना रहे।

इतना ही नहीं, उसने अपनी जान-पहचान की एक महिला कांस्टेबल से भी संपर्क किया, जो उसी इलाके में रहती थी। उसे 'मन' का खयाल रखने और सुबह परीक्षा स्थल तक सुरक्षित पहुँचाने की पूरी ज़िम्मेदारी सौंप दी।

अब जाकर माही के भीतर पल रही वह गहरी बेचैनी शांत हुई थी।

वह पूर्णतया आश्वस्त था।

कंधों से जैसे कोई बहुत बड़ा पहाड़ उतर गया था।

चेहरे पर एक असीमित खुशी जिसको साथ ले कर वह वापस घर की ओर निकल पड़ा।

देर रात वह घर लौटा।

थकान से शरीर टूट रहा था, लेकिन मन किसी पक्षी की तरह हल्का था।

रात के 10 बज चुके थे।

उस दिन 8:37 भी सफर में कहीं पीछे छूट गया था। रात दस बजे घर पहुँचा तो शरीर ने बातचीत से पहले ही नींद चुन ली।

यह समय अब उसके लिए महज़ एक समय नहीं रहा था। वह उसकी रोज़ की इबादत बन चुका था। और आज... वह अपने इष्ट के लिए एक छोटा-सा सरप्राइज़ संजोए बैठा था।

नियत समय पर स्क्रीन में उजाला हुआ।

सामान्य बातों के बाद माही धीरे से अपने मुख्य विषय पर आया।

उसने बातों ही बातों में पूछा—

"दिल्ली कैसे जाओगी? वहाँ रुकने का क्या सोचा है?"

"क्या मैं कोई व्यवस्था कर दूँ?"

उसे उम्मीद थी कि 'मन' अपनी चिंता ज़ाहिर करेगी, और तब वह उसे वह खुशी देगा जो वह कल से अपनी जेब में लेकर घूम रहा था।

लेकिन उधर से जो उत्तर आया, उसने माही के सारे उत्साह पर एक झटके में बर्फ़ डाल दी।

"मेरी कॉलेज टाइम की एक सहेली मुखर्जी नगर में तैयारी करती है। मैं उसी के पास रुकूँगी।"

"लेकिन मैं भी अच्छा इंतजाम करूँगा..." माही ने एक आखिरी कोशिश की।

"नहीं, आप मत परेशान होना। मैं देख लूँगी। और वो बहुत अच्छी लड़की है।"

माही की उँगलियाँ कीपैड पर ही जम गईं।

अब वह क्या करे?

किस हक़ से उस पर ज़िद करे?

क्या यह कहे कि "तुम मेरी बात मानो क्योंकि मैं तुम्हारे लिए कल दिन भर दिल्ली की सड़कों पर धक्के खाकर आया हूँ?"

नहीं। यह तो एहसान जताना हो गया।

चिंता तो उसे अब भी खाए जा रही थी। मुखर्जी नगर की वह सहेली कितनी अच्छे से संभाल पाएगी, यह कोई नहीं जानता था।

लेकिन माही के 'अनाम रिश्ते' की लक्ष्मण रेखा यहीं तक थी।

उसने कोई ज़िद नहीं की।

उसने उस असीमित खुशी, उस 'सरप्राइज़' और उस पूरे दिन की भागदौड़ का कोई जिक्र नहीं किया।

उसने अपनी सारी मेहनत, अपनी सारी फिक्र चुपचाप पी ली।

सिर्फ इतना टाइप किया—

"ठीक है अपना खयाल रखना। Good Night."

और फिर... एक और मैसेज टाइप किया।

उस महिला कांस्टेबल को।

"बुकिंग कैंसिल कर दीजिए... अब ज़रूरत नहीं है।"

कमरे में वापस सर्दी उतर आई थी, लेकिन उसका बाहर के मौसम से कोई संबंध नहीं था।

अध्याय - 138

“मन की अदला-बदली”

(उल्टी इबादत)

दिल्ली पुलिस के शारीरिक परीक्षण के कुछ दिन पहले माही ने मन से उस लड़के का जिक्र किया था, मन के ताऊ जी स्वयं वहाँ होकर आए। उनकी राय भी सकारात्मक थी। लेकिन मन को इस बात पर हमेशा एक शिकायत रहती थी। उसके अनुसार उसके ताऊ जी और घर के बाकी लोग लगभग हर लड़के में अच्छाई ढूँढ लेते थे। उसे लगता था कि उनका उद्देश्य किसी भी तरह उसकी जिम्मेदारी पूरी करना है। लेकिन माही के साथ बात अलग थी। उस पर उसे पूरा विश्वास था। क्योंकि वह सिर्फ लड़का नहीं देखता था। घर देखता था। परिवार देखता था। पड़ोस देखता था। आस-पास के गाँवों तक पूछताछ करता था। और जब तक उसे पूरी तसल्ली न हो जाए... तब तक किसी बात पर अंतिम राय नहीं देता था। इसलिए इस बार उसके पास भी कोई विशेष आपत्ति नहीं थी। मार्च में लड़का छुट्टी आने वाला था। इसलिए दोनों को आमने-सामने मिलवाने का कार्यक्रम भी मार्च में ही तय किया गया। रात हुई। और फिर वही समय... 08:37 उनका महीनों पुराना वो मूक अनुबंध फिर जाग उठा जिसे अब दोनों में से किसी ने नाम नहीं दिया था। लेकिन माही अपने मन में उसे इबादत कहने लगा था।

बातों-बातों में उसने पूरी जानकारी साझा की। मन हर बात पर छोटे-छोटे उत्तर देती रही। "हां।" "ठीक है।" "अच्छा।" "ओके।" माही को उसकी आवाज़ में एक हल्की उदासीनता महसूस हुई। उसने पूछा—

"क्या हुआ?" "

कुछ नहीं।"

"फिर भी?" "

जुकाम हो रहा है। नाक बह रही है।" माही ने तुरंत समाधान दिया— "तो नाक साफ कर लो।"—

"नहीं आती ठीक से साफ करनी। और पास में कोई है भी नहीं जो कर दे मेरी नाक साफ।" माही हंस पड़ा। लेकिन मन अभी रुकी नहीं थी। "पैर भी दर्द कर रहे हैं। इच्छा होती है कोई आकर दबा दे। लेकिन कोई है नहीं ऐसा करने वाला।" "अच्छा।" "Hmmm." इसके बाद कुछ क्षणों का विराम आया। स्क्रीन पर कोई हलचल नहीं थी। और फिर... शायद बिना सोचे, या शायद सोचकर, माही की उंगलियाँ स्क्रीन पर चलने लगीं। "आपकी नाक पोंछने और पैर दबाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा? क्या करना होगा? कहाँ माथा टिकाना होगा?" संदेश अपनी जगह पहुँच चुका था।

— "Ohhh..." "Haaye..." उसका ये Haaye माही की जान निकाल दिया करता। माही जानता था, उसका यह एक शब्द कई बार उसकी पूरी तर्कशक्ति को निष्क्रिय कर देता था।

"कौन करना चाहता है ये सब?" मन ने पूछा। "बताओ।" "बताओ ना।"

इस बार माही चुप था। वह उत्तर नहीं दे रहा था। शायद इसलिए क्योंकि प्रश्न पूछते समय जितना साहस था... उत्तर देने के लिए उतना नहीं था। कुछ देर बाद मन ने स्वयं ही लिखा— "जो भी है... उसको मेरी मम्मी के पैरों में माथा टिकाना होगा। अच्छा अब बताओ। कौन है वो भाग्यवान?" फिर वही हँसने वाली इमोजी।

माही ने कुछ देर देखा उसके बाद वही रास्ता चुना... जो अक्सर मन चुना करती थी। "अरे कोई नहीं है। मजाक है मजाक।"

"अच्छा।"

"Hmmm."

"ठीक है।"

"और अच्छे से पता कर लो लड़के के बारे में। एक बार मिलने के बाद तो फिर..." वह वाक्य अधूरा छोड़ गई। शायद जानबूझकर। या शायद आगे कुछ कहना नहीं चाहती थी। "ठीक है।" माही ने उत्तर दिया। "Good Night." "Good Night."

आज का किस्सा यही समाप्त हुआ लेकिन आज की इबादत सामान्य नहीं थी। आज पहली बार माही ने वही किया था... जो अक्सर मन किया करती थी। एक प्रश्न पूछा। और उत्तर मिलने से पहले ही पीछे हट गया। मन ने भी उस बात को आगे नहीं बढ़ाया। माही ने भी नहीं। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं... जो पूछे जाने के बाद समाप्त नहीं होते। और फिर समय आने पर स्वयं अपना उत्तर खोज लेते हैं।

अध्याय - 139

“मन का सपना”

रात काफी आगे बढ़ चुकी थी। बातचीत समाप्त हुए भी काफी समय हो गया था। लेकिन मन... उसकी आँखों में अभी भी जाग बाकी थी। वह बिस्तर पर लेटी हुई थी। कभी दाएँ करवट लेती, कभी बाएँ। कभी चादर सिर तक खींच लेती, कभी फिर नीचे कर देती। बात कोई बड़ी नहीं थी। कम से कम इतनी बड़ी तो नहीं... जितनी बड़ी उसकी मुस्कान बन गई थी। "आपकी नाक पोंछने और पैर दबाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा?" वह वाक्य फिर से उसके मन में आया, अधरो ने हरकत करी और हाथ आईना बन कर मुस्कान के सामने आ गए। आज पहली बार किसी ने उसके ही अंदाज़ में उससे बात की थी। पहली बार किसी ने प्रश्न पूछा था। और उत्तर आने से पहले ही पीछे हट गया था। ठीक वैसे ही... जैसे वह स्वयं किया करती थी। बाहर कहीं दूर रेलवे लाइन थी रात के सन्नाटे को चेताती हुई अचानक एक रेल की सीटी सुनाई दी। लंबी। धीमी। और फिर धीरे-धीरे दूर जाती हुई। मन ने आँखें बंद कर लीं। उसे लगा जैसे उसके विचार भी उसी रेल के डिब्बों की तरह एक के पीछे एक भागे चले जा रहे हों। एक डिब्बे में हँसी थी। दूसरे में प्रश्न। तीसरे में वह "Haaye..." और चौथे में... एक अनकही खुशी। रेल गुज़र गई। लेकिन उसके मन के डिब्बे अभी भी चल रहे थे। कुछ देर बाद कब उसकी आँख लग गई... उसे स्वयं भी पता नहीं चला।

रात अपनी गति से बीतती रही। और फिर... एक बार फिर दूर से रेल की सीटी सुनाई दी। इस बार सुबह हो चुकी थी। मन की आँख खुली। उसने कुछ क्षण छत को देखा। फिर कमरे को। फिर खिड़की से आती धूप को। और उसके बाद... वो मुस्कुरा दी। मानो अभी-अभी किसी सुंदर सपने से लौटकर आई हो। सपना क्या था? शायद उसे खुद भी याद नहीं था। या शायद... याद था। लेकिन शब्दों में नहीं। सिर्फ़ एहसास में। उधर...

कुछ किलोमीटर दूर...

माही की भी आँख खुल चुकी थी।

वह कुछ क्षण यूँ ही लेटा रहा।

फिर मुस्कराया।

"उफ़..."

"ये सपना भी ना..."

बस।

बाकी उसने भी उसे याद करने की कोशिश नहीं की।

क्योंकि कुछ सपने याद रखने के लिए नहीं होते...

वे पूरे दिन महसूस करने के लिए होते हैं।

“वापसी”

(मन की)

जनवरी का अंतिम सप्ताह था। सुबह का तापमान शून्य के आसपास। घना कोहरा। ऐसा मौसम जिसमें रजाई से बाहर निकलने का भी मन न करे। और ऐसे ही एक दिन माही अपने कमरे में बैठा था। आज मन का शारीरिक परीक्षण था। रात भर वह कैसे गई होगी? कहाँ रुकी होगी? सुबह समय पर पहुँची होगी या नहीं? इतनी ठंड में दौड़ कैसे लगाएगी? ऐसे न जाने कितने प्रश्न उसके भीतर आते-जाते रहे। इसी फिक्र में दिन बीत गया। रात को उसने हमेशा की तरह संदेश भेजा। "Hello, कहाँ हो?" उसने परिणाम नहीं पूछा। परिणाम से पहले सुरक्षा थी। काफी देर तक संदेश पर एक ही टिक बना रहा। उसने कॉल की। कॉल नहीं उठी। फिर एक संदेश भेजा। करीब एक घंटे बाद उत्तर आया। "जहाँ भी हूँ ठीक हूँ। आप बेफिक्र होकर सो जाओ।" और उसके नीचे एक और पंक्ति थी। "मैं disqualified हो गई हूँ।" माही ने भी आगे कुछ नहीं पूछा। उसे लगा शायद वह पहले से ही परेशान होगी। लेकिन इतने दिनों में आज उसे उसके व्यवहार में कुछ अलग लगा। कुछ ऐसा... जिसे शब्दों में पकड़ना मुश्किल था। खैर। दिन बीत गया। फिर कुछ दिन और बीत गए। एक दिन उसका फोन आया। माही घर पर नहीं था। बातों-बातों में वही रिश्ता सामने आ गया। फिर चर्चा अंतरजातीय विवाह पर पहुँच गई। समाज। परंपराएँ। जातियाँ। लोगों की सोच। मन इस विषय पर खुलकर बोल रही थी। कुछ नाराज भी थी। शायद अपेक्षा कर रही थी कि माही भी अपना पक्ष रखेगा। लेकिन वह सिर्फ सुनता रहा। हमेशा की तरह। बात समाप्त हुई। फोन कट गया। और कुछ देर बाद मोबाइल पर एक संदेश आया। "अपनी किताबें वापस ले लेना। और अनु की शादी में जो पैसे दिए थे... वो भी भेज रही हूँ।"

माही संदेश के पीछे के भाव को समझने की कोशिश करने लगा। शब्द नहीं बदले। अर्थ भी नहीं। लेकिन उसे विश्वास नहीं हो रहा था। यह वही मन थी? वही मन... जिसके लिए वह दिल्ली जाकर किताबें लाया था? वही किताबें... जिन्हें देते समय उसने झूठ बोला था। "मेरी हैं। मैं भी कभी इनसे तैयारी करता था।" जबकि सच यह था कि वह उन्हें खास उसके लिए लाया था। और आज... वह उन्हें वापस करना चाहती थी। पूरे दिन वह बेचैन रहा। अजीब बात थी। उसके मजाक। उसकी नाराजगी। उसकी डाँट। उसके संकेत। इनमें

से किसी ने उसे उतना विचलित नहीं किया था... जितना इस एक संदेश ने कर दिया। आखिरकार 8:37 आ गया। आज उसने संदेश नहीं भेजा। सीधा फोन मिलाया। फोन उठ गया। "हाँ बताओ।" "आप बताओ।" "क्यों किया फोन?" माही चुप था। "वो..." "जल्दी बताओ।" "आप किताबें और पैसे..." "हाँ तो?" "दोनों से मेरी जरूरत पूरी हो गई।" "अब वापस तो करने ही हैं।" माही कुछ कहना चाहता था। बहुत कुछ। लेकिन शब्द आगे बढ़ ही नहीं रहे थे।

"लेकिन..."

"नहीं।" "कुछ नहीं।" कुछ क्षण की चुप्पी।

— "चलो ठीक है। मैं सुबह बात करती हूँ।" और फोन कट गया। इस बार बदलाव सिर्फ महसूस नहीं हो रहा था। दिखाई दे रहा था।

माही देर तक फोन हाथ में लिए खड़ा रहा। फिर सीढ़ियाँ चढ़कर छत पर आ गया। फरवरी की शुरुआती रात थी। मध्यम ठंड। दूर जंगल की तरफ से सियारों की आवाजें आज भी आ रही थीं। आज उन आवाजों में उसे एक अजीब-सी बेचैनी सुनाई दे रही थी.. मानो भीतर की उथल-पुथल उन सियारों की रोती आवाज से ताल मिला रही हो। आज उसे परेशानी और व्यथा में फर्क महसूस हो रहा था। नजदीक बिजली के तार पर बैठा एक उल्लू आज फिर से स्थिर आँखों से उसकी ओर देख रहा था। पहले भी वह कई बार उसे देख चुका था। लेकिन आज बात अलग थी। आज वह परेशान नहीं था। आज वह आहत था। और परेशानी तथा आहत होने में बहुत अंतर होता है। जब आदमी परेशान होता है... तो चाय उसका सहारा बन जाती है। लेकिन जब भीतर कुछ टूटता है... तो हाथ अनायास पानी की ओर बढ़ते हैं। आज उसके हाथ में चाय का कप नहीं था। सिर्फ पानी का एक गिलास था। उसने एक घूंट पर घूंट भरी लेकिन बेचैनी नहीं उतरी। नीचे रसोई में सब कुछ था। दूध भी। चीनी भी। चायपत्ती भी। लेकिन आज उसने चाय नहीं बनाई। शायद इसलिए कि आज समस्या दिमाग में नहीं थी। आज चोट कहीं और लगी थी और ये संकेत था कि वेदना भारी है। कुछ देर बाद वह नीचे उतर आया। कमरे की बत्ती बुझाई। लेकिन नींद उस रात उसके कमरे तक नहीं पहुँची। और उधर... कहीं दूर... एक संदेश अब भी मोबाइल की स्क्रीन पर पड़ा था। "अपनी किताबें वापस ले लेना..." कई बार कुछ चीजें लौटाने की बात... सिर्फ वस्तुओं की नहीं होती। ये जज्बातों से आगे का मसला है।

अध्याय - 141

“थार के उस पार”

(मन की दूरी)

"वापसी" वाले संवाद के बाद एक दिन बीता। फिर दूसरा। फिर तीसरा। और फिर पूरा महीना। लेकिन कुछ नहीं बदला। शुरुआत के दो-चार दिन माही ने समझने की कोशिश की। कभी सीधी बातचीत के माध्यम से। कभी तर्क से। कभी सीधे। लेकिन कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। हाँ, मन की तरफ से एक उत्तर बार-बार मिला— "नहीं। मैं नाराज नहीं हूँ। बस एक पेपर की तैयारी में व्यस्त हूँ।" माही हर बार "ठीक है" कह देता। लेकिन दोनों एक-दूसरे की जिंदगी के इम्तिहान पहले ही दे चुके थे। इसलिए उसे समझने में अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ी। यह पेपर... महज एक कोरा कागज़ था। असल कारण कहीं और था। लेकिन वह कारण क्या था... यह अब भी धुंध में छिपा हुआ था। इबादत अब दुआ-सलाम तक सीमित हो चुकी थी। 08:37 अब भी आता था। लेकिन उसके भीतर से बहुत कुछ चला गया था। माही के भीतर का संकट सिर्फ वही जानता था। सच जानने की बेताबी थी। लेकिन जबरदस्ती का कोई अधिकार नहीं था। और फिर... इन्हीं सबके बीच उसे जैसलमेर जाना पड़ा। प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी के दिनों का एक मित्र। अब जैसलमेर के एक दूरस्थ गाँव में अध्यापक था। गाँव में शिक्षा और जल संरक्षण के लिए उसे राज्य सरकार द्वारा सम्मानित किया जाना था। और उसने इस अवसर पर सिर्फ एक व्यक्ति को बुलाया था— माही को। यहाँ तक कि अपने परिवार को भी नहीं। शायद इसलिए कि सम्मान देने आने वाले जिला कलेक्टर भी उन्हीं दिनों के साथी थे। पुराने संघर्षों के तीन पात्र। तीनों अलग-अलग दिशाओं में निकल गए थे। लेकिन वर्षों बाद फिर एक मंच पर मिलने वाले थे। माही मना नहीं कर पाया। हिसार से बीकानेर की बस पकड़ी। हरियाणा पार करते ही दृश्य बदलने लगे। धरती का रंग बदल गया। हवा का स्वभाव बदल गया। और धीरे-धीरे बस थार के रेगिस्तान में प्रवेश कर गई। मार्च की शुरुआत थी। लेकिन रेगिस्तान ने गर्मी का स्वागत पहले ही कर दिया था। रेत उड़ रही थी। हवा में सूखापन था। और दूर-दूर तक फैली धरती पर जीवन विरल दिखाई देता था।

इसी बीच उसके फोन पर एक संदेश आया। उसके जानकार का, एयरफोर्स वाले लड़के के परिवार की तरफ से। लड़का छुट्टी आ चुका था। और वो आगे के कार्यक्रम के बारे में पूछ रहे थे। माही ने संदेश ज्यों का त्यों मन को भेज दिया। फिर मोबाइल जेब में रखा। और बस की खिड़की से बाहर देखने लगा। कुछ देर बाद उसकी आँख लग गई। शाम को जब नींद खुली तो बस रेत से सनी सड़क पर दौड़ रही थी। श्रीडूंगरगढ़ के नजदीक का इलाका था। सूरज ढल चुका था। और रेगिस्तान का रंग अब सुनहरे से तांबे में बदल रहा था। रात आठ बजे बस बीकानेर पहुँची। सामने जैसलमेर जाने वाली रात्रि बस खड़ी थी। वह तुरंत उसमें बैठ गया। 08:36। उसने व्हाट्सएप खोला। मन का चैट बॉक्स ऊपर ही था। संदेश पढ़ लिया गया था। दो नीली टिकें उसकी गवाही दे रही थीं। लेकिन उत्तर नहीं था। उसने लिखा— "Hello"

"हाँ"

"आपने बताया नहीं।"

"क्या?"

"कब का दिन देना है?"

"सुबह बताती हूँ।" बस इतना ही। और फिर वही अंधेरा। सुबह सात बजे से पहले बस जैसलमेर पहुँच गई। लेकिन यात्रा अभी बाकी थी। गाँव वहाँ से भी कई घंटे दूर था। लोंगेवाला की दिशा में। भारत-पाकिस्तान सीमा के निकट। रेत और हवाओं के बीच बसा एक छोटा-सा गाँव। करीब दस बजे वह वहाँ पहुँचा। कार्यक्रम शुरू हो चुका था। ग्रामीण इलाका था। भीड़ कम थी। कुछ पत्रकार। कुछ स्थानीय लोग। कुछ अधिकारी। और मंच पर उसका मित्र। दोनों वर्षों बाद मिले थे। गले मिले। मुस्कराए। पुरानी यादें ताज़ा हुईं। लेकिन आज माही के भीतर दो प्रकार की भावनाएँ चल रही थीं। एक मित्र की सफलता की खुशी। और दूसरी... जिसका नाम वह खुद भी नहीं रख पा रहा था।

कुछ देर बाद कलेक्टर साहब पहुँचे। सम्मान समारोह पूरा हुआ। प्रशस्ति पत्र मिला। तालियाँ बजीं। फोटो खिंचे। और फिर औपचारिकताएँ समाप्त हो गईं। इसके बाद तीनों मित्र एक मेज पर बैठे। कलेक्टर। सम्मानित अध्यापक। और माही। तीनों अपने पद भूल गए। और उन दिनों में लौट गए... जब उनके पास सिर्फ सपने हुआ करते थे। मेज पर खाना था। ऐसा लग रहा था मानो किसी ने यादों की पतल में परोस दिया हो। साथ में संघर्षों की

कहानियाँ। और उन सबके बीच... एक अपनापन। दोस्तों की निकटता उसे अच्छी लग रही थी। लेकिन एक दूरी भी उसे भीतर तक चुभ रही थी। थार का यह रेगिस्तान हजारों किलोमीटर तक फैला हो सकता था। लेकिन उस समय उसे सबसे लंबी दूरी जैसलमेर और उसके गाँव के बीच नहीं लग रही थी। सबसे लंबी दूरी थी... उसके और उसके "मन" के बीच। और अजीब बात यह थी कि इस दूरी को न कोई बस तय कर सकती थी। न कोई रेल। न कोई सड़क। क्योंकि कुछ दूरियाँ किलोमीटर में नहीं... चुप्पियों में नापी जाती हैं।

“निर्णय”

(मन का)

अगले दिन गाँव को थोड़ा और करीब से देखने का अवसर मिला। गाँव बेहद पिछड़ा था। अच्छे घरों के नाम पर कुछ पक्की झोपड़ियाँ थीं। बाकी अधिकतर मकान घास-फूस और मिट्टी के बने हुए थे। इसलिए उसका मित्र गाँव से बाहर बने स्कूल परिसर में ही रहता था। सुबह चाय पीते समय मित्र ने आग्रह किया— "अब इतनी दूर आया है तो दो-तीन दिन और रुक जा।" माही ने तुरंत हामी भर दी। सच तो यह था कि उसे भी इस समय ऐसी ही किसी जगह की जरूरत थी। जहाँ शोर कम हो, लोग कम हों, और सोचने के लिए बहुत सारी जगह हो। गाँव पिछड़ा जरूर था, लेकिन सुंदर था। दूर-दूर तक फैला थार का रेगिस्तान अपनी ही भाषा में कोई कहानी कहता दिखाई देता था। दिन में वह लोंगेवाला की तरफ निकल गया। सीमा की मिट्टी को प्रणाम किया। शहीदों को याद किया। और कुछ देर तक उन लोगों के बारे में सोचता रहा जिन्होंने अपने हिस्से का जीवन देश को दे दिया। शाम को वापस स्कूल आया। लेकिन आज पूरे दिन एक और मोर्चा खुला हुआ था। एयरफोर्स वाले लड़के के परिवार की तरफ से लगातार फोन आ रहे थे। उसका जानकार दबाव बना रहा था। लड़का छुट्टी पर आ चुका था। और अब आगे की प्रक्रिया के लिए उत्तर चाहिए था। काफी मुश्किल से उसने एक दिन का समय लिया। रात को उसने और उसके मित्र ने मिलकर खाना बनाया। मित्र का एक विद्यार्थी भी वहाँ आ गया था जो उसकी काम में सहायता करवा दिया करता। कुछ देर बातें हुईं हँसी-मजाक हुआ। लेकिन माही का मन कहीं और था। उसे 8:37 का इंतजार था। और फिर... ठीक 8:37 पर उसने मोबाइल उठा लिया, और बिना देर किए सीधे विषय पर आ गया। "देखिए... उनके लगातार फोन आ रहे हैं। आप बता दो कि मैं उन्हें कब का समय दूँ?"

"Sir... अभी कोई Time मत दो। थोड़ा और सोचने का समय दे दो मुझे।" —

"अब तक आपकी सोच पूरी नहीं हुई? इतने दिन हो गए। अब तो बात आगे बढ़ाने का समय है।"

— "देखो... मैंने आपको बता दिया जो है वो। आगे आप जानो।"

"मैं क्या जानूँ? क्या जवाब दूँ उनको?"

"जो मैंने बताया है।"

"ये बचपना है।

आप तो समझदार हो। कोई समझदारी वाला जवाब तैयार कर लो।"

"नहीं होगा मेरे से।"

— "तो फिर स्पष्ट मना कर दो।" माही जैसे ठिठक गया।

"क्या?"

"मना कर दो।"

"लेकिन क्यों?"

"क्योंकि अभी मैं निर्णय लेने की स्थिति में नहीं हूँ।" माही ने गहरी साँस ली। "देखो... बहुत अच्छा लड़का है। अच्छा परिवार है। गाँव में पूछताछ की है। आप खुश रहोगे।"

— "वो सब ठीक है। लेकिन अभी नहीं।" "अरे मैं किस मुँह से मना करूँ? मैं तो आपके विश्वास पर हाँ भरकर आया हूँ। अब मैं कैसे मना करूँ? मेरा जानकार बीच में है। लड़के का चाचा भी मेरा परिचित निकला।"

"Sir please... जैसा भी करके आप संभालो। Please समझो।"

"Madam... सब कुछ सही है। इससे अच्छा मिलना मुश्किल है।"

"मैं समझती हूँ। लेकिन मैं अभी आगे नहीं बढ़ सकती। I really sorry." माही ने माथा पकड़ लिया। "देखो... मेरी बेइज्जती होगी। मैं उनके सामने जाने योग्य नहीं रहूँगा। और इस से पहले भी आपने कितने रिश्ते मना किए। क्या मैंने कभी दबाव डाला? लेकिन इस बार मेरी साख दाँव पर है।"

"अच्छा... मतलब आपकी इज्जत मेरी जिंदगी से बढ़कर है?"

माही का कलेजा जैसे जगह छोड़ गया।

"आप अपनी इज्जत की कीमत मेरा सौदा करके बढ़ाओगे?" उसे लग रहा था जैसे वे शब्द फोन से निकलकर सीधे उसके सामने खड़े हो गए हों। "मेरा सौदा..." वह बस यही सुनना रह गया था।

— "क्या बकवास कर रही हो? अपने शब्दों को दायरे में रखो।" पहली बार उसके शब्दों में कठोरता आ गई थी। लेकिन अब तक बहुत देर हो चुकी थी। क्योंकि चोट शब्दों से नहीं लगी थी। सच से लगी थी। उसके बाद दोनों तरफ शब्द और भावनाएं दोनों थम गए। माही ने कॉल डिस्कनेक्ट कर दी। और स्कूल से बाहर निकल आया। रेत पर रात उतर चुकी थी। दूर तक फैला रेगिस्तान चाँदनी में धुँधला दिखाई दे रहा था। दिन में यही रेत सुनहरी लगती थी। लेकिन रात ने उसका रंग बदल दिया था। शायद कुछ ऐसा ही उसके भीतर भी हुआ था। उसे अब भी लगता था कि वह मन का भला चाहता है। और यह बात गलत भी नहीं थी। लड़का अच्छा था। परिवार अच्छा था। भविष्य भी अच्छा दिखाई देता था। लेकिन इसी सबके बीच वह एक बात भूल गया था— निर्णय का अधिकार। और शायद... अनजाने में उसने अपनी जुबान, अपना विश्वास और अपनी साख भी इस रिश्ते के पलड़े में रख दी थी। यहीं गलती हुई थी। क्योंकि कोई रिश्ता कितना भी अच्छा क्यों न हो... उसके लिए किसी की इच्छा को गिरवी नहीं रखा जा सकता। "मन" किसी का भी हो जबरदस्ती ठीक नहीं। दूर हवा चली। रेत का एक छोटा-सा गुबार उठा। कुछ दूर गया। और फिर उसी रेत में खो गया। माही देर तक उसे देखता रहा। उसे महसूस हुआ— शायद गलत कोई नहीं था। मन अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र थी। और वह... अपनी जुबान के बोझ तले दबा हुआ। रेगिस्तान की दूर तक फैली वीरानी की तरह उसकी सोच भी वीरान हो चुकी थी। और उस रात... थार के उस छोटे-से गाँव में... उसे एक ओर हार दिखाई दी। इस बार भी... अपने ही भीतर।

अध्याय - 143

“मन का सैलाब”

स्कूल के खुले प्रांगण में सूरज की पहली किरण पड़ी।

माही ने हथेली आँखों के आगे कर ली, मानो उस चमक से बचना चाहता हो।

बराबर वाली खाट खाली थी।

मास्टर जी कब के उठकर तैयार हो चुके थे।

पूरी रात सोच और जागरण के समुद्र में डूबे रहने के कारण सुबह के अंतिम पहर में कहीं जाकर उसकी आँख लगी थी।

खैर...

मुंह-हाथ धोया।

चाय पी।

और फिर तुरंत उस काम में लग गया, जिससे वह कल रात से भाग रहा था।

हिम्मत नहीं हो रही थी।

आखिर कैसे मना करे?

कई बार फोन उठाया।

कई बार वापस रख दिया।

लेकिन अब कोई दूसरा रास्ता भी नहीं बचा था।

आखिरकार उसने अपनी जुबान का सौदा करने का फैसला कर लिया।

सबसे पहले अपने उस परिचित को फोन किया जो बीच में था।

बहुत संभालकर बात शुरू की।

लेकिन उधर से बात संभली नहीं।

उल्टा उसे ही सुनना पड़ा।

"नहीं करना था तो इतने दिन लटकाया क्यों?"

"मर्द की तो जुबान की ही कीमत होती है।"

माही चुप रहा।

फिर लड़के के चाचा का फोन आया।

उन्होंने भी भरपूर नाराजगी जताई।

उसने सब सुना।

बिना किसी प्रतिवाद के।

सुनता भी क्यों नहीं?

गलती उनकी नहीं थी।

वचन उसने दिया था।

कुछ और फोन आए।

कुछ और शिकायतें।

कुछ और ताने।

हर किसी को उसने अपनी भड़ास निकालने का पूरा अवसर दिया।

दोपहर तक वह मानसिक रूप से थक चुका था।

थोड़ी देर आँख लगी।

क्योंकि पिछली रात भी सो नहीं पाया था।

शाम को उठा।

रेगिस्तान तप रहा था।

मार्च में भी सूरज अपनी प्रचंडता दिखा रहा था।

धीरे-धीरे दिन ढला।

फिर वही रेगिस्तान, जो दिन में अग्नि जैसा लगता था, अंधेरे की चादर ओढ़ने लगा।

कुछ देर बाद पूरा इलाका रात के आगोश में समा चुका था।

रात का खाना खाकर वह खाट पर लेट गया।

आज पहली बार 8:37 का इंतजार नहीं था।

रात के 8:37 ... यह महज़ कोई समय नहीं, बल्कि उनके दरमियाँ महीनों से चला आ रहा एक बिना लिखा समझौता था।

वही चिर-परिचित 8:37 का वक्त, जिसे दोनों ने महीनों से एक साथ जिया था।”

“घड़ी की सूइयाँ उन अक्षरों पर जाते ही दिल की धड़कनें गवाही देने लगीं कि महीनों पुराना वो अनकहा नियम आज भी ज़िंदा है।”

बेशक ज़िंदा है...लेकिन आज अकेला है।”

वह कुछ सोच ही रहा था कि मोबाइल स्क्रीन दमकने लगी।

"मेरा मन"

स्क्रीन पर लिखा शब्द उसकी आँखों के रास्ते रूह में उतरता रहा।

फिर संदेश खोला।

"कैसे हो?"

कुछ देर तक उंगलियाँ स्थिर रहीं।

फिर उसने लिखा—

"ठीक हूँ।"

"अच्छा।"

"खाना खा लिया?"

इस बार भी जवाब आने में समय लगा।

"हाँ।"

माही की उंगलियों की धीमी गति देखकर उधर से भी संदेश रुक गए।

और तभी...

उस वीरान रात में स्क्रीन पर फिर उभरा—

वही नन्हा-सा सफेद खरगोश।

जिस पर सुनहरे अक्षरों में चमक रहा था—

"मेरा मन"

Calling...

उसने कॉल उठा ली।

"क्या हुआ?"

"आप ठीक हो ना?"

"हाँ।"

"नहीं।"

"मेरे को ठीक नहीं लग रहे।"

"कल मैंने कुछ कह दिया हो तो उसके लिए..."

लेकिन इस बार वह पूरा भी नहीं बोल पाई।

मानो महीनों से जमा लावा रास्ता खोज चुका था।

माही अचानक बोल पड़ा—

"अब क्या ही फर्क पड़ता है?"

"जो सुनना था सुन लिया।"

"जो सहना था सह लिया।"

"अब ये Sorry..."

"बस मन की शांति है।"

फोन के उस पार मानो वक्त कुछ लम्हों के लिए ठहर गया।

फिर धीमी आवाज आई—

"नहीं... ऐसा नहीं है..."

"वो..."

"मैं..."

लेकिन अब माही अपने ऊपर नियंत्रण खो चुका था।

"क्या मैं?"

"जैसा तुम चाहोगी वैसा ही करूंगा?"

"शुरू में ही मना कर देती।"

"यहाँ तक बात आती ही नहीं।"

"मैं जबरदस्ती करता तुमसे?"

उसकी आवाज भारी हो गई।

"पचास से ज्यादा लड़के देख चुका हूँ तुम्हारे लिए।"

"हर बार कोई न कोई वजह।"

"हर बार बात आगे बढ़ाकर मैं पीछे हटा हूँ।"

"मानता हूँ तुम्हारी जिंदगी है।"

लेकिन उस जिंदगी की फिक्र मुझे भी है।

इसलिए तुम्हारी खुशी की खोज में भटक रहा हूँ

"खुद को खोता फिर रहा हूँ"

ठीक है तुम अपने निर्णय के लिए स्वतंत्र हो

"लेकिन मैं भी तो इसी समाज का हिस्सा हूँ।"

"कौन विश्वास करेगा आगे से मेरी बात पर?"

"कैसे नजर मिलाऊंगा सबसे?"

"तुम तो एक Sorry बोलकर अपना काम कर लेती हो..."

"मैं?"

"मैं?"

उधर से शब्दों का बहाव ठहरा हुआ था।

वह सुन रही थी।

बस सुन रही थी।

"समझ नहीं आता..."

"क्या है तुम्हारे भीतर?"

"क्या चाहती हो तुम?"

"क्यों सता रही हो इतना?"

"क्या है तुम्हारे मन में?"

"चाहती क्या हो तुम?"

आवेश में वह एक ही प्रश्न कई बार दोहरा गया।

और फिर...

जिस धैर्य ने इतने महीनों तक मन को थाम रखा था...

वह टूट गया।

फोन के उस पार से आवाज आई—

"तुम्हें..."

एक विराम।

"तुम्हें..."

फिर दूसरी बार।

और फिर...

"तुम्हें चाहती हूँ।"

“सिर्फ तुम्हें”

समय जैसे चलना भूल गया, रेगिस्तान ठहर गया, हवा रुक गई।

विचार सो गए।

बस वह एक वाक्य रह गया।

"सिर्फ तुम्हें चाहती हूँ।"

उधर वह बोलती चली गई, मानो कोई बाँध टूट चुका हो।

"मैं नहीं..."

"तुम मुझे सता रहे हो।""हर कोशिश की तुम्हें पिघलाने की।"

"हर बार इशारा किया।"

अनगिनत संकेत दिए।

"बार - २ समझाने की कोशिश की।"

"लेकिन तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।"

उपर किसी फाइटर विमान की गर्जना रात की शून्यता को चीरती हुई, शांत अंबर की कालिख पर एक निशान छोड़ गई।

"तुम वो बने घूम रहे हो जो मैं चाहती ही नहीं।"

"नहीं चाहिए तुम्हारे अलावा कोई भी।"

"समझते क्यों नहीं तुम?"

अब उसका गला भर आया था।

शब्द टूटने लगे थे।

"क्यों नहीं आता तुम्हें मुझ पर तरस?"

"क्यों हर बार किसी और का बनाने निकल जाते हो मुझे?"

"कैसा लोहे का कलेजा है तुम्हारा?"

"अपने ही हाथों अपने प्यार की हत्या करने वाले कैसे इंसान हो तुम?"

और फिर...

वह रो पड़ी, सिर्फ रोई नहीं, दहाड़ मारकर रोई।

इतने दिनों का दर्द।

इतनी रातों की प्रतीक्षा।

इतनी इबादतें इतने संकेत, इतनी चुप्पियाँ।

सब कुछ आज आँसुओं में बदल गया था।

माही पत्थर की तरह खड़ा रह गया।

रात के तम रेगिस्तान में उसे कंपकंपी चढ़ रही थी।

उसकी आँखों के सामने एक-एक दृश्य घूमने लगा।

08:37

सफेद खरगोश।

"Love marriage करूंगी"

"आपके गांव में देख लो"

"आपके साले का जन्मदिन"

"पापा जी हैं आपके।"

"मेरा कन्यादान आप कर देना।"

"आपकी नाक पोंछने और पैर दबाने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा?"

एक-एक क्षण, एक-एक शब्द, एक-एक स्मृति।

और तभी...

उसे महसूस हुआ।

जिस सत्य से वह भाग रहा था... वह आज उसके सामने खड़ा था।

निर्वस्त्र, निर्मम, और निर्विवाद।

"खाओ इस शहादत की मिट्टी की कसम..."

मन की टूटी हुई आवाज फिर आई।

"नहीं चाहते तुम भी मुझे?"

"नहीं है तुम्हारे मन में कुछ?"

"अगर कुछ नहीं है..."

"तो बंद करो मेरी फिक्र करना..."

इसके बाद फिर सिसकियाँ।

लंबी, गहरी, टूटी हुई।

माही ने बोलने की कोशिश की।

भावनाओं के सैलाब ने शब्दों का रास्ता जैसे पूरी तरह रोक दिया था।

जुबान साथ छोड़ चुकी थी।

थार का विशाल आकाश आज छोटा पड़ गया था।

क्योंकि उसके भीतर जो भंवर उठ रहा था...

उसके सामने वह भी सीमित था।

एक बूँद उसकी आँख से गिरी।

वर्षों से भीतर थमा वह समुद्र...जो अब तक मर्यादाओं, सिद्धांतों, तर्कों और जिम्मेदारियों के बाँध में बंद था...

आखिरकार दायरा तोड़कर बाहर आ गया।

महीनों की जमी वो बेचैनी पिघलकर...

आँखों का रास्ता चुन चुकी थी।

सामने सीमा पर लगी सर्चलाइट अब भी सक्रिय थी।

कभी जलती, कभी बुझती।

एक तरफ सिसकियाँ थीं।

दूसरी तरफ खामोशी।

लेकिन आज दोनों एक ही भाषा बोल रहे थे।

कई महीनों से रुका हुआ सैलाब...

आज आखिरकार फूट पड़ा था।

और रेत के बीच जज़्बातों की खानी बनकर बह रहा था।

अध्याय - 144

“अपने मन से”

(रेत का उत्तर)

फोन कटने के बाद भी माही काफी देर तक वहीं खड़ा रहा। वह स्कूल प्रांगण में आया। हैंडपंप से पानी लिया। दो घूंट भीतर उतारी। लेकिन पानी भी कोई राहत नहीं दे पाया। वह चुपचाप अपनी खाट पर जाकर लेट गया। रात आधी बीत चुकी थी। बराबर वाली खाट पर लेटे मित्र ने पूछा— "कहाँ था?" "यहीं था।" बस इतना ही। लेकिन माही के भीतर... घमासान। आज फोन पर कहे गए एक-एक शब्द बार-बार मुडकर के आ रहे थे। "सिर्फ तुम्हें चाहती हूँ... क्यों हर बार किसी और का बनाने निकल जाते हो मुझे? खाओ इस मिट्टी की कसम... नहीं चाहते तुम भी मुझे?" वह आँखें बंद करता, शब्द फिर सुनाई देने लगते। आँखें खोलता, तो रेगिस्तान का अँधेरा दिखाई देता। पूरी रात इसी तरह बीत गई। सुबह पाँच बजे के आसपास किसी चरवाहे की आवाज सुनाई दी, नई सुबह आ गई थी, लेकिन माही के भीतर अब भी वही रात थी। दिन जैसे-तैसे निकला। दोपहर को खाना खाने के बाद वह स्कूल के एक खाली कमरे में जाकर लेट गया। पिछले दो दिनों की अधूरी नींद शरीर माँग रहा था। लेकिन नींद इस समय तटस्थ थी। ना इस तरफ आ रही थी, ना ही उस पार जा रही थी, "सिर्फ तुम्हें चाहती हूँ..."

दिन बीता, सांझ ने उसको संभालने के लिए रात को बुला लिया। आज उसने दोस्तों के साथ बैठकर खाना तो बनाया, लेकिन खाया क्या... उसे खुद याद नहीं रहा। घड़ी ने आठ बजाए। वो बाहर रेगिस्तान की तरफ चला गया। स्कूल से दूर। रेत के टीलों की ओर। कुछ दूर जाकर एक ऊँचे टीले पर बैठ गया। बैठा रहता है, सोचता रहता है। फिर अचानक: घड़ी 08:37 दिखाती है। और उसी क्षण उसकी उंगलियाँ मोबाइल की तरफ बढ़ती हैं। जैसे रोज बढ़ती थीं। वो व्हाट्सएप खोलता है। चैट बॉक्स सामने आता है— "मेरा मन"। लेकिन आज... न कोई Hello, न कोई Good Evening, न कोई संदेश। वह स्क्रीन को कुछ सेकंड देखता है, फिर मोबाइल लॉक कर देता है। सामने दूर-दूर तक फैला वीरान रेगिस्तान दिखाई दे रहा था। दिन भर की तपन अब ठंडी होकर रेत में समा चुकी थी। हवा धीमे-धीमे चल रही थी, और असंख्य तारे रेत की निगरानी कर रहे थे। लेकिन उसके भीतर... अब भी तूफान था। "खाओ इस मिट्टी की कसम... नहीं चाहते तुम भी मुझे?"

यह वाक्य बार-बार लौटकर आ रहा था। और शायद... आज वह इसी प्रश्न का उत्तर खोजने यहाँ आया था। काफी देर तक वह रेत को देखता रहा। फिर भीतर से एक आवाज़ उठी। धीमी,

लेकिन स्पष्ट— "हाँ... है। और बहुत है।" उसने पहली बार यह स्वीकार किया। न फोन पर, न दुनिया के सामने, सिर्फ अपने सामने। दूर स्कूल की छत पर हवा में लहराता तिरंगा मानो इस स्वीकृति का साक्षी हो।

"लेकिन इस चाहत को उसकी मंजिल तक कैसे पहुँचाऊँ? इस सोए हुए समाज को कैसे जगाऊँ? जातियों की इन जंग लगी बेड़ियों को कैसे तोड़ूँ? उन रास्तों पर तुम्हें कैसे ले जाऊँ... जिन पर चलकर तुम्हारे पैरों में काँटे ही काँटे आने वाले हैं?" रेत पर चलती हवा ने जैसे उसके शब्द अपने साथ बहा लिए। "नहीं चाहता... कि मेरी वजह से दुनिया तुम्हारे चरित्र पर उँगली उठाए। नहीं चाहता... कि जिन पापा को तुमने अपना कहकर मुझे भी दे दिया... उन्हीं के नाम पर लोग ताने कसें। नहीं चाहता... कि तुम अपने ही घर में कठघरे में खड़ी कर दी जाओ। नहीं चाहता... कि मेरे कारण तुम्हारा परिवार टूटे। तुम्हारे रिश्ते बिखरें। तुम्हारे अपने तुमसे दूर हो जाएँ।" आज फिर से दूर कहीं हवा का एक झोंका उठा। रेत का छोटा-सा गुबार बना। कुछ क्षण आसमान की ओर बढ़ा, फिर वापस धरती में मिल गया। माही उसे देखता रहा। "नहीं लड़ना चाहता... इसलिए नहीं कि मेरे भीतर साहस नहीं है। नहीं लड़ना चाहता... क्योंकि इस लड़ाई में सबसे अधिक चोट तुम्हें लगेगी। तुम्हारी जिंदगी कठिन हो जाएगी। तुम्हारे रास्ते दुरूह हो जाएँगे। और मैं... मैं जीवन भर स्वयं को क्षमा नहीं कर पाऊँगा।" उसने मुट्ठी भर रेत उठाई। धीरे-धीरे उसे हाथ से फिसलते हुए देखा। "तुम्हें बसाने के लिए घर खोजना आसान था। लेकिन तुम्हारे लिए पूरी दुनिया से लड़ना... उससे कहीं कठिन।"

उसने आसमान की ओर देखा। आज अपने भीतर इस अहसास को भर रहा था कि वह मन से नहीं उसके दुख से भाग रहा था। और शायद इसी कोशिश में... उसे ही सबसे अधिक दुख दे बैठा था। धरती शांत थी। आसमान मचल रहा था, ऐसा लग रहा था जैसे शांति और शून्य उसी की खबर ले रहे हो, और रात उसके "मन" की बात जानने को उत्सुक थी। लेकिन आज

उसने... सिर्फ खुद से बात की।

अध्याय - 145

“बहन का मन”

(रेत और रिश्ते)

तीन दिन बिना सोए काटने के बाद आज सूरज उसे भारी लग रहा था। थार की सुबह वैसे तो सुंदर थी, लेकिन आज उसके भीतर कोई सुंदरता नहीं उतर रही थी। मास्टर जी पढ़ाने चले गए थे, बच्चे भी अपनी दिनचर्या में लग चुके थे और माही स्कूल के पीछे लगे नीम के पेड़ की छाया में अकेला बैठा था। सामने दूर तक फैला रेगिस्तान था, दिन चढ़ने के साथ रेत का रंग बदल रहा था। लेकिन उसके भीतर उस रात का एक भी शब्द फीका नहीं पड़ा था— "सिर्फ तुम्हें चाहती हूँ... क्यों नहीं आता तुम्हें मुझ पर तरस? अपने ही हाथों अपने प्यार की हत्या करने वाले कैसे इंसान हो तुम?" वह आँखें बंद करता, शब्द फिर सुनाई देने लगते। आँखें खोलता, तो रेत दिखाई देती। लेकिन आज रेत भी उसे उत्तर नहीं दे पा रही थी। कुछ देर बाद उसने मोबाइल उठाया, कॉन्टैक्ट सूची खोली और उंगलियाँ दीक्षा के नाम पर आकर रुक गईं। उसने कॉल कर दी।

"Hello Bhai!" उधर की आवाज हमेशा की तरह चंचल थी। लेकिन इधर की खामोशी ने उसे तुरंत सावधान कर दिया।

"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

"झूठा।"

"इतना पहचानती है मेरे को?"

“बहन होती ही किसलिए है ?”

"तेरे बोलने से पहले पहचान लेती हूँ।"

और फिर... महीनों का बोझ उतरने लगा। उसने शुरुआत की— 08:37 से, सफेद खरगोश से, कन्यादान से, रिश्तों से, जैसलमेर से और अंत... "सिर्फ तुम्हें चाहती हूँ" पर जाकर

रुका। मोबाइल की स्क्रीन पर कॉल का समय बढ़ रहा था। और फिर दीक्षा बोली— "तो आखिरकार बोल ही दिया उसने।"

हाँ, फिर उसने कुछ और बातें भी बताईं। दीक्षा बीच में नहीं बोली, बस सुनती रही। शायद पहली बार उसका बड़ा भाई उसके सामने इतना असहाय बैठा था।

कुछ देर बाद उसने धीरे से पूछा—

"भाई... एक बात पूछूँ?"

"हाँ।" "तुम्हे पहले से पता था?"

पहले तो वो चुप रहा, फिर बोला—

"शायद... हाँ, थोड़ा बहुत।"

"तो फिर भाग क्यों रहे थे?" यह प्रश्न सीधा था और सबसे कठिन भी। "मैं भाग नहीं रहा था। उसके लिए अच्छा सोच रहा था। समाज है, जातियाँ हैं, परिवार हैं,

लोग हैं, और सब से बढ़ कर उसका सुखद भविष्य है। जो कि मेरे साथ वैसा ना हो" उस को सुनने के बाद दीक्षा बोली— "भाई... मान लिया आप बहुत अच्छे इंसान हो, लेकिन कभी-कभी अच्छे इंसान भी गलती कर देते हैं। तुम उसके लिए लड़के ढूँढते रहे, उसका भविष्य बनाते रहे, उसकी खुशियों की चिंता करते रहे। लेकिन कभी उससे पूछा... कि उसकी खुशी क्या है?" माही के पास उत्तर नहीं था। "मुझे सबसे ज्यादा डर किस बात का लग रहा है पता है?" दीक्षा फिर बोली।

"किस बात का?"

"कि कहीं तुम दोनों... एक-दूसरे को खुश रखने के चक्कर में... पूरी जिंदगी दुखी ना हो जाओ।" माही ने सिर झुका लिया। कुछ देर बाद उसने पूछा— "लेकिन समाज?" दीक्षा हल्का-सा हँसी। पहली बार। "समाज? जब तुम बूढ़े हो जाओगे... तो क्या समाज आपके साथ बैठेगा? जब वो रोएगी... तो क्या समाज उसके आँसू पोंछेगा? जब आप दोनों अकेले हो जाओगे... तो क्या समाज साथ रहेगा?"

माही सुन रहा था।

फिर बोला..

लेकिन वो समाज उस को और उस के परिवार को जीने नहीं देगा और तब दीक्षा ने वह बात कही... जो उसके भीतर बहुत देर तक गूँजने वाली थी। "भैया... समाज ने आज तक किसी की जिंदगी नहीं जी। उसने सिर्फ राय दी है।" दोनों कुछ देर विराम की स्थिति में रहे। दोपहर अब सांझ का रूप ले रही थी। "मैं आपको कोई सलाह नहीं दे रही। ना ही कोई निर्णय बता रही हूँ। बस एक बात कह रही हूँ। एक बार... सिर्फ एक बार... दुनिया से पूछने की जगह अपने मन से भी पूछ लेना। अब तक तो आप सिर्फ दुनिया से पूछते आए हो। भाई, अगर मन किसी और को चाहती होती और आप उसे रोकते, तो मैं सबसे पहले आपके खिलाफ खड़ी होती। लेकिन जब वह तुम्हे चाहती है... तो अब तुम ही उस के रस्ते में खड़े हो।"

मोबाइल अब भी हाथ में था, पर बातचीत पीछे छूट चुकी थी। लेकिन उस वक्त... माही के सामने कोई नया प्रश्न खड़ा था। और इस बार... उत्तर अपने मन को देना था।

अध्याय - 146

“मन का विश्वास”

(आस्था के द्वार)

उस शाम उसे पिछले चार-पाँच दिनों में पहली बार कुछ सुकून महसूस हो रहा था। खाना बनाते समय वह, नवीन (मास्टर जी) और समर (विद्यार्थी) के बीच चल रहे हँसी-मजाक में शामिल तो था, लेकिन अब तक की तरह सिर्फ दिखावे के लिए नहीं। आज उसके चेहरे पर सचमुच मुस्कान थी। बल्कि आज तो उसने समर को मरुस्थल की प्रसिद्ध ककड़ी लाने भेज दिया और फिर बड़े चाव से उसकी सब्जी बनाई। रेगिस्तान में खाना बनाना भी अपने आप में एक अनुभव था। बिजली थी नहीं। लालटेन की पीली रोशनी में चूल्हे की आँच और बर्तनों की खनक... सब कुछ किसी पुराने समय की कहानी जैसा लगता था। खाना बनने के बाद वह स्कूल की छत पर चढ़ गया। दूर कहीं चरवाहों का एक टोला अपने पशुओं को लेकर लौट रहा था। रेत के पार सड़क पर सैन्य वाहनों की हलचल दिखाई दे रही थी। और ऊपर से बहती शीतल हवा दिनभर की गर्मी को धीरे-धीरे अपने साथ ले जा रही थी। आज इस प्रवास में पहली बार वह रेगिस्तान को देख नहीं रहा था, जी रहा था कुछ देर बाद तीनों ने साथ बैठकर भोजन किया। फिर अपने-अपने बिस्तर बिछा लिए। घड़ी ने 8:37 दिखाया। माही ने आदतन व्हाट्सएप खोला। आज फिर कोई संदेश नहीं भेजा। कोई प्रतीक्षा भी नहीं की। बस एक सधी मुस्कान के साथ मोबाइल बंद कर दिया। इसके बाद उसे कुछ याद नहीं। बहुत दिनों बाद नींद ने उसे बिना संघर्ष के अपने भीतर समेट लिया।

सुबह दूर सड़क से आती सैन्य काफिले की आवाजों ने उसकी आँख खोली। " और फिर— "भारत माता की जय!" उद्घोष स्कूल तक आ रहा था। यह थार में उसकी पहली पूर्ण नींद थी। वह जल्दी से उठा। नहाया। कपड़े पहने। लेकिन पानी के अलावा कुछ ग्रहण नहीं किया। नवीन से बस इतना कहा— "थोड़ी देर में आता हूँ" और सड़क पर जाकर खड़ा हो गया। बस का इंतजार किया। लेकिन काफी देर तक कोई बस नहीं आई। अंत में उसने समर को फोन किया। कुछ देर बाद समर अपनी साइकिल लेकर पहुँच गया। "इतनी दूर जाओगे इस पर?" समर ने आश्चर्य से पूछा।

हा...और वह साइकिल लेकर चल पड़ा। गंतव्य था— तनोट माता मंदिर। करीब अड़तीस किलोमीटर दूर। लेकिन आज दूरी का कोई महत्व नहीं था। वैसे भी सड़क अच्छी थी। धीरे-धीरे उसकी साइकिल सड़क पर गति पकड़ने लगी। मार्च का सूरज ऊपर चढ़ रहा था। गर्मी अपना असर दिखा रही थी। लेकिन आज उसके भीतर एक नई तरह की ऊर्जा थी। रास्ते में मरुभूमि अपनी पूरी सुंदरता में दिखाई दे रही थी। दूर-दूर तक फैले टिब्बे। धीमी गति से घूमती पवनचक्कियाँ। रेगिस्तान में पानी हमेशा एक चिंता होता है। जो पानी वह साथ लेकर चला था, वह समाप्त हो चुका था। रास्ते में एक सैन्य वाहन मिला। वहीं से पानी लिया। और फिर आगे बढ़ गया। करीब तीन घंटे बाद वह तनोट माता मंदिर के प्रांगण में था। वही मंदिर... जिसके बारे में कहा जाता है कि युद्ध के समय गिरे अनेक बम भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाए। उसने शांत भाव से दर्शन किए। भीड़ अधिक नहीं थी। कुछ देर वह मंदिर प्रांगण में बैठा रहा। फिर आँखें बंद कर लीं। उसने कोई बड़ी मुराद नहीं मांगी। बस मन ही मन इतना कहा— "जो निर्णय सही हो... उसी पर चलने की शक्ति देना। और यदि रास्ता कठिन हो... तो उसे निभाने का साहस देना।"

कुछ देर बाद वह वापस लौट पड़ा। अब सूरज सिर पर था। रेत तप रही थी। सड़क से गर्म हवा उठ रही थी। लेकिन आश्चर्य की बात थी कि आज यह सब उसे परेशान नहीं कर रहा था हालांकि वापसी में समय अधिक लगा। लेकिन दिन ढलने से पहले वह फिर स्कूल पहुँच गया। नवीन बाहर ही खड़ा मिला। उसे देखकर राहत की साँस ली। दोनों एक दूसरे को देख कर खुश हुए। वह कुछ देर चुपचाप पश्चिम की ओर डूबते सूरज को देखता रहा। कल तक वह उत्तर खोज रहा था। आज उसके पास प्रश्न नहीं था... लेकिन उसे विश्वास था कि वह उत्तर तक पहुँच जाएगा।

अध्याय - 147

मन की तरफ

(थार से वापसी)

तनोट से लौटने के बाद उस शाम का रंग बदला हुआ था।

स्कूल के बाहर लगी पुरानी चारपाई पर बैठा समर उसका इंतज़ार कर रहा था।

साइकिल के साथ अंदर आते माही को देखकर उसने हाथ हिलाया।

"आ गए?"

"हाँ।"

"माता जी ने सुन ली?" समर की आँखों में शरारत थी। माही के होंठों पर हल्की हंसी।

"लगता तो है।"

समर कुछ समझा नहीं, लेकिन जवाब सुनकर खुद भी मुस्करा दिया।

सूरज धीरे-धीरे पश्चिम के टीलों के पीछे सुस्ताने की जगह तलाश रहा था नवीन भी दूर नल से नहा कर वापिस आ गया था।

उसने आते ही पूछा—

"38 किलोमीटर साइकिल से गए थे?"

"हाँ।"

"और वापिस भी?"

"हाँ।"

"पागल आदमी हो।"

नवीन हँस पड़ा।

उस रात तीनों ने साथ बैठकर खाना बनाया।

लालटेन की पीली रोशनी में रोटियाँ सिकती रहीं। सौर लालटेन की सफेद रोशनी उसको सहारा दे रही थी।

समर बीच-बीच में गाँव के किस्से सुनाता रहा।

नवीन अपने विद्यार्थियों की शरारतें बताता रहा।

और माही...मंद मंद मुस्कराता रहा।कई दिनों बाद वह सुन रहा था,सिर्फ सुन नहीं रहा था...महसूस भी कर रहा था,रात को बिस्तर पर लेटते समय उसने आसमान की ओर देखा, सेटेलाइट इधर उधर दौड़ रहे थे,पूर्णिमा का गोल घेरा मानो उनकी टोह ले रहा हो।माही के भीतर कोई द्वंद नहीं था,,इबादत का ध्यान किया।सुबह जल्दी उठ गया,नहाया,तैयार हुआ।और अपना बैग बाँधने लगा।

"आज निकल रहे हो?"

नवीन ने पूछा।

"हाँ।"

"रुक जाते एक-दो दिन और।"

"अब वापिस भी जाना है।"

समर थोड़ी देर चुप रहा।

फिर बोला—

"फिर आना।"

"इबकी बेर बिंदणी गेल्या आइजो।"

इस बात पर नवीन और

माही जोर से हंस दिए।

"जरूर।"

"लेकिन अगली बार साइकिल से तनोट मत जाना।"

समर ने हँसते हुए कहा।

"में मोटरसाइकिल रो जुगाड़ कर द्यांला।"

तीनों हँस पड़े।

कुछ देर बाद सड़क किनारे बस का इंतज़ार करते हुए वे खड़े थे,चारों ओर वही पिला समुद्र,वही झोंके,और हवा से फिसलते रेत के पहाड़।

लेकिन अब यह जगह उसे अजनबी नहीं लग रही थी।

दूर से बस दिखाई दी।

धूल उड़ाती हुई, धीरे-धीरे पास आती हुई।

बस रुकी।

माही ने बैग उठाया, सबसे पहले समर से हाथ मिलाया।

फिर नवीन से।

"अपना ध्यान रखना।"

नवीन ने कहा।

"तुम भी।"

"और हाँ..."

नवीन मुस्कराया।

"कुछ फैसले ज़्यादा देर तक टालना मत।"

माही ने उसकी ओर देखा।

नवीन की मुस्कान बता रही थी कि वह जितना दिखाता है, उससे कहीं ज़्यादा समझता है।

माही ने कोई जवाब नहीं दिया, बस हल्के से होंठ हिला दिए, बस चल पड़ी, खिड़की वाली सीट पर बैठा वह धीरे-धीरे दूर होते स्कूल को देखता रहा।

कुछ ही देर में स्कूल भी ओझल हो गया।

लेकिन जाते-जाते थार उसे कुछ देकर भेज रहा था।

जब वह यहाँ आया था...

तो अपने मन से भाग रहा था।

और जब लौट रहा था... तो अपने मन को साथ लेकर लौट रहा था।

बस रेगिस्तान की सड़क पर आगे बढ़ती रही।

और माही... घर की ओर।

अध्याय - 148

“मन से मन तक”

(मन का मिलन और एप्पल डे)

आज लगभग पूरे एक सप्ताह बाद वह घर लौटा था। लेकिन ऐसा लग रहा था मानो थार के वीराना से एक नई दुनिया अपने साथ ले आया हो। जब गया था... तो ऐसा महसूस हो रहा था जैसे जीवन से कुछ छूट रहा है। और अब... मानो किसी खोई हुई चीज़ की तलाश में गया था और उसे खोजकर लौट आया हो। खैर... दिन भर की थकान उतारी। जी भरकर चाय पी। घरवालों से खूब सारी बातें कीं। रात को खाना खाने के बाद वह सीधा छत पर आ गया। बिजली आज भी नहीं थी। चारों ओर अंधेरा था। लेकिन ऊपर... फलक पर तारों की महफ़िल पूरी शिद्दत से सजी हुई थी। वह सीधे छत के फर्श पर लेट गया। पिछले कई दिनों से रेत की रातों को समझ रहा था। आज फिर अपने गाँव की रात को महसूस कर रहा था। किसी खेत की दिशा से ट्यूबवेल की हल्की आवाज़ आ रही थी। और बीच-बीच में बहती हवा उसके चेहरे को छू कर राह में उतर रही थी। लेकिन उसका ध्यान कहीं और था। बार-बार मोबाइल की स्क्रीन जलती। बार-बार समय देखा जाता। और फिर... वह समय आ गया। 08:37। उसने धीरे से आँखें बंद कीं। इबादत से पहले उसने अपने इष्ट को स्मरण किया। फिर मोबाइल उठा लिया। व्हाट्सएप खोला। ऊपर वही एक नाम— "मेरा मन"। जैसे इतने दिनों की यात्रा उसी एक नाम तक पहुँचने के लिए हुई हो। आज कोई भूमिका नहीं थी। न कोई दार्शनिक बात। न कोई मनोविज्ञान। न कोई तर्क। सिर्फ एक वाक्य।

"मालदीव चले?"

संदेश भेज दिया गया। दो नीली टिक आने में एक सेकंड भी नहीं लगा। मानो उधर पहले से ही चैट बॉक्स खुला हो। लेकिन उत्तर आने में लगभग एक मिनट लग गया। और वह एक मिनट... माही को कई वर्षों जितना लंबा लगा। फिर स्क्रीन ने जादू बिखेरा।

"सच?"

"हाँ। अब बताओ... चले क्या?"

उत्तर आया। "हाँ.....।" बस। सिर्फ एक शब्द। और उसके बाद एक छोटा-सा । फिर... कुछ नहीं। न कोई लंबी बातचीत। न कोई उत्साह भरे संदेश। कुछ भी नहीं। लेकिन शायद... उन्हें कुछ कहने की जरूरत भी नहीं थी। क्योंकि कुछ खुशियाँ शब्दों में नहीं उतरतीं, वे सिर्फ महसूस की जाती हैं। आज वैसा ही एक क्षण था। वर्षों का इंतज़ार। सालों की स्तुति। अनगिनत चुप्पियाँ। अनगिनत त्याग। अनगिनत अधूरे वाक्य। आज सब मिलकर उस एक छोटे-से "हाँ" में समा गए थे।

माही फोन को देखता रहा। उस छोटे-से दिल को। उस एक शब्द को। और फिर चेहरा खिल उठा। आज रात सितारे भी जैसे किसी उत्सव में शामिल थे।

नीचे गाँव नींद की तैयारी कर रहा था। लेकिन उस रात... दो लोगों की दुनिया सजाने की जिम्मेदारी नींद ने ले ली थी। माही आज 26 अक्टूबर को याद करके मुस्करा रहा था.... वो तारीख जब वो दोनों पहली और आखिरी बार एक दूसरे के सामने बैठे थे। उसी दिन से शायद मन ने उसको अपनी जिंदगी में आमंत्रित कर लिया था। उसे अच्छे से याद था जब वो उस दिन कमरे में आया तो मन के हाथ में सेब था। और आज उसने उस तिथि को एक नया नाम दे दिया। 26 अक्टूबर... अब सिर्फ एक तारीख नहीं रही।

यह उनका अपना 'एप्पल डे' था।

अध्याय - 149

“मन की खुशी”

(एक हाँ के बाद)

उस रात "हाँ" लिखने के बाद उसने मोबाइल बंद कर दिया। जैसे यकीन कर रही हो कि जो हुआ... वह सचमुच हुआ है। फिर धीरे से मोबाइल सीने पर रख लिया। कमरे में वो और उसकी सांसे थी। हल्का अंधेरा भी। कोने में रखा छोटा-सा रोबोट अपनी आसमानी रोशनी बिखेर रहा था। उसकी नीली किरणें छत पर पड़कर तरह तरह की आकृतियाँ बना रही थीं। कहीं तारों का भ्रम। कहीं बादलों का। कहीं किसी दूर की आकाशगंगा का। वह करवट बदलकर छत को देखने लगी। मानो उन तारों के बीच किसी चांद को खोज रही हो। आज उसे लग रहा था जैसे उसका छोटा-सा कमरा किसी रात के आकाश में बदल गया हो। तभी दूर कहीं से रेल की एक लंबी सीटी सुनाई दी। वह मुस्करा दी। बचपन से उसे रेल की सीटी पसंद थी। लेकिन आज... आज उसका अर्थ कुछ और था। रसोई में रखे बर्तनों की हल्की खनक हवा के साथ आ रही थी। वह मुस्करा रही थी। बिना कारण। या शायद... इतने बड़े कारण के साथ कि शब्द उसके सामने छोटे पड़ गए थे।

वह उठी। खिड़की तक गई। बाहर देखा। वही आँगन। वही घर। वह वापस बिस्तर पर आ गई। नींद आने का नाम नहीं ले रही थी। बार-बार वही संदेश याद आ रहा था— "मालदीव चले?" रूह का रस फिर से होंठों पर आ गया। "पागल..." धीरे से खुद ही बुदबुदाई। रात काफी हो चुकी थी। लेकिन उसे नींद नहीं आ रही थी। वह करवट बदलती। फिर मुस्कराती। फिर आँखें बंद कर लेती। और हर बार उसे लगता... जैसे उसके भीतर कोई छोटा-सा दीपक जल रहा हो। शांता स्थिर। लेकिन लगातार। उसने धीरे से तकिए के नीचे रखा मोबाइल निकाला। चैट खोली। ऊपर वही संदेश था। "मालदीव चले?" उसने उसे फिर पढ़ा। फिर अपना भेजा हुआ "हाँ" देखा। और

उसके नीचे वह छोटा-सा  मोबाइल फिर से बंद कर दिया। इस बार मुस्कान थोड़ी और गहरी थी। क्योंकि उसका इंतजार व्यर्थ नहीं गया। आज उसे लगा... कि इबादत सिर्फ

8:37 तक सीमित नहीं रही। वह कबूल भी हुई है। "बाहर रात, इस उत्सव का निमंत्रण लेकर सूरज की ओर चल पड़ी थी।"मन भी व्याकुलता से उसका इंतजार कर रही थी। और सच पूछो तो... वह सोना भी नहीं चाहती थी। क्योंकि कुछ रातें सपने देखने के लिए नहीं होतीं। वे इसलिए होती हैं... क्योंकि सपना सच हो चुका होता है।

(इबादत के बाद का)

अगले दिन रात को जब मोबाइल की स्क्रीन पर वह सफेद खरगोश उभरा, तो अब शब्दों में उतावलापन नहीं था, स्थिरता थी। "मेरा मन" स्क्रीन पर नाम चमका। सबसे पहले माही ने लिखा— "मुझे जिंदगी भर अपना देने के फैसले के लिए शुक्रिया।"

— "आपका भी धन्यवाद। हार नहीं मानी आपने।" उसे अच्छी तरह पता था कि इस सफर में हार न मानने का श्रेय शायद दोनों को बराबर जाता है। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि प्रेम स्वीकार होने के बाद भी दोनों ने प्रेम की बातें नहीं कीं। कोई शायरी नहीं, कोई रोमांटिक संवाद नहीं। सीधे भविष्य पर चर्चा शुरू हो गई। उससे पहले दोनों ने एक-दूसरे को एक वचन दिया। माही ने लिखा— "अब हमेशा मेरे साथ रहना। क्योंकि हम दोनों अपना बहुत कुछ दांव पर लगा कर यहां तक पहुंचे हैं। किसी एक का परिस्थितियों के आगे पलायन दूसरे को बर्बाद कर देगा। मैं आपके लिए हर मुश्किल से लड़ूंगा। बस आप खड़ी रहना। और धैर्य मत छोड़ना।"

मैं भी हर परिस्थिति में आपके साथ रहूँगी। और जो फैसला लिया है... उसके साथ भी।"

कुछ देर बाद माही ने लिखा— "और शादी होने तक हम पहले की तरह ही मर्यादित रहेंगे। अपने दायरों और सीमाओं की रक्षा करेंगे।" मन ने बिना देर किए लिखा— "हाँ। इसी में हमारी गरिमा है।" अब बात वास्तविक जीवन की ओर मुड़ चुकी थी। माही ने पूछा— "घरवालों की तरफ क्या स्थिति है?" मन ने उत्तर दिया— "मम्मी को मैं मना लूँगी। अनु और छोटे भाई को कोई समस्या नहीं होगी। लेकिन ताऊ जी, चाचा जी और मामा जी से बात करनी पड़ेगी। मैं सबको अपने निर्णय के पक्ष में करने की कोशिश करूँगी।"

"मैं भी पापा से बात करूँगा। और हर हाल में मनाने की कोशिश करूँगा।" कुछ देर बाद उसने एक और संदेश भेजा। यह वही प्रश्न था जो उसे शुरू से परेशान करता आया था। "लेकिन मैं आज भी वही कह रहा हूँ। ऐसे मामलों में समाज लड़के से ज्यादा लड़की और

उसके परिवार पर उँगली उठाता है। क्या आप इसके लिए तैयार हो? मैं पहले भी आपकी इज्जत की चिंता कर चुका हूँ।"

"मुझे अपने चुनाव और अपने फैसले पर गर्व है। इसलिए शायद दूसरों की थोथी दलीलों की परवाह करने की आवश्यकता नहीं है।" मन ने स्पष्ट किया

माही ने संदेश पढ़ा। उसे महसूस हुआ— जिस साहस की तलाश वह अपने भीतर कर रहा था... वह साहस तो सामने पहले से मौजूद था।

"ठीक है। दो दिन बाद फिर बात करेंगे। और अपनी-अपनी प्रगति से एक-दूसरे को अवगत करवाएँगे।" मन ने मुस्कराहट वाली इमोजी भेजी। फिर लिखा— "मुझे आपके साथ जिंदगी शुरू करने और अपनी इच्छाएँ पूरी करने का बेसब्री से इंतजार है।" और — "तो फिर... 8:37 वाली हमारी रवायत को यहीं विराम देते हैं।" अब बात करने का कोई समय निर्धारित नहीं होगा। हम एक-दूसरे के लिए हर समय उपलब्ध रहेंगे।"

"हाँ।"

और फिर... "Thank You 8:37  Bye Bye..." दोनों के मन खुशी से प्रफुल्लित थे। 08:37 सिर्फ एक समय नहीं था। वह प्रतीक्षा था। इबादत था। दूरी था। आशा था। और अब... वह एक खूबसूरत स्मृति बन चुका था। घड़ी से उतरकर... दो धड़कनों में बस गया था। कुछ देर बाद दोनों ने एक-दूसरे को शुभरात्रि कहा। मोबाइल स्क्रीन बुझ गई। लेकिन उस रात... 08:37 समाप्त नहीं हुआ था। वह बस अपना रूप बदलकर... दो जिंदगियों में बस गया था। एक नया अध्याय - बन कर।

अध्याय - 151

“पहला पड़ाव”

(स्वीकृति)

दोनों ने अपने-अपने मोर्चे संभाल लिए थे। माही के लिए यह सफर आसान नहीं था। अपने घर में इस विषय का उल्लेख करना ही उसके लिए किसी युद्धभूमि में उतरने जैसा था। कई दिनों तक वह अवसर तलाशता रहा। कई बार बात शुरू करने की कोशिश की, लेकिन ऐन वक्त पर हिम्मत जवाब दे जाती। आखिर एक दिन उसने साहस जुटाया और अपने पापा के सामने मन का जिक्र कर दिया। जैसा उसने सोचा था... लगभग वैसा ही हुआ। सुनते ही घर का वातावरण बदल गया। पापा का चेहरा कठोर हो गया। कुछ ही क्षणों में घर में मानो तूफान आ गया। उन्होंने उसे खूब डाँटा। समझाया। समाज की बातें कहीं। रिश्तेदारों की बातें कहीं। लोग क्या कहेंगे, इसकी बातें कहीं। और अंत में स्पष्ट शब्दों में कह दिया— "आगे से इस विषय पर कोई बात नहीं होगी।" माही ने दोबारा प्रयास करना चाहा, लेकिन घर वाले सुनने को ही तैयार नहीं थे। दो दिन बाद उसने मन को सारी स्थिति बताई। साथ ही यह भी कहा कि— "अभी हार नहीं मानी है।" उधर से भी वैसा ही उत्तर आया— "मैं भी कोशिश कर रही हूँ। हम मानेंगे नहीं।" समय धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा।

जब माही को लगा कि अकेले उसके लिए यह लड़ाई कठिन पड़ रही है... तो उसने अपना सबसे अच्छा हथियार मैदान में उतारा— दीक्षा, उसकी बहन, जिसने बचपन से लेकर आज तक कभी उसका साथ नहीं छोड़ा था। शुरुआत में पापा ने उसे भी गंभीरता से नहीं लिया। फिर उसने एक बेटी की तरह नहीं... एक बहन की तरह बात की। एक-एक कर उसने दोनों को समझाना शुरू किया। "अगर दोनों एक-दूसरे के साथ खुश रह सकते हैं... तो फिर समाज इतना महत्वपूर्ण क्यों है?" दिन बीतते रहे। बहसें होती रहीं। तकरार होती रही। लेकिन इस बार माही भी पीछे हटने को तैयार नहीं था। और दीक्षा... वह सचमुच चट्टान की तरह उसके साथ खड़ी रही। आखिरकार... कई दिनों की कोशिशों के बाद... घरवालों को झुकना पड़ा। पूरी तरह नहीं, सहजता से भी नहीं, लेकिन बेटे की खुशी के सामने। उन्होंने अपनी सहमति दे दी। लेकिन उनके पापा ने एक शर्त रखी... कि लड़की के घर से किसी जिम्मेदार व्यक्ति को उन से रिश्ते की बात करनी होगी। ताकि ये बच्चों का खेल ना लग कर.. एक परिपक्व और सामाजिक स्वीकृति का फैसला लगे।

उसने बिना देर किए यह खबर अपने "मन" को दी। उस की खुशी का भी कोई ठिकाना नहीं था। और आश्चर्य की बात यह थी कि वहाँ भी लगभग वैसी ही स्थिति बनी हुई थी। अनु, उसका भाई और उसके जीजा जी— सभी मिलकर उसकी मम्मी को समझाने में लगे हुए थे। और आखिरकार... वहाँ भी सहमति मिल गई। पूरी नहीं, लेकिन शुरुआत के लिए पर्याप्त। उस रात दोनों बहुत खुश थे। क्योंकि उन्हें अब... अपना सपना सच के करीब पहुंचता दिख रहा था।

“दो राहें”

(एक मंजिल)

अगली कुछ रातों में उनकी बातचीत का स्वरूप पूरी तरह बदल चुका था। अब न तो 08:37 की प्रतीक्षा थी, न इबादत का कोई निर्धारित समय। न ही उन दिनों की तरह अधूरी बातों और संकेतों का संसार। अब दोनों एक-दूसरे के जीवन का हिस्सा थे और शायद इसी कारण उनके पास प्रेमी-प्रेमिका वाली बातों के लिए फुर्सत भी नहीं थी। पहले भी उनके बीच हल्की-फुल्की बातें हो जाया करती थीं। खासकर मन की तरफ से। कभी कोई शरारत। कभी कोई उल्टा-सीधा सवाल। लेकिन अब... मन की चुलबुलाहट गंभीरता में बदल गई थी, उनका पूरा ध्यान एक ही बात पर था— कैसे भी करके इस सफर को मंजिल तक पहुंचाना, ताकि रास्ते की कोई बाधा अंतिम पड़ाव के बीच दीवार बनकर खड़ी न हो जाए। उस रात दोनों अपने-अपने घर की छतों पर थे।

"पापा कह रहे हैं कि आपके घर की तरफ से कोई बात करने वाला होना चाहिए।" माही ने कहा।

"हां..." "लेकिन यहां दिक्कत ये है कि जब मम्मी और आपके पापा बैठेंगे... तो हो सकता है मम्मी इसे मजबूरी का फैसला कहकर आपके पापा को भी प्रभावित कर दें।" "मजबूरी का फैसला..." यह शब्द सुनकर माही थोड़ा विचलित तो हुआ। लेकिन वह जानता था कि अभी भावनाओं से ज्यादा आवश्यकता समाधान की थी। "तो अब क्या करें?" उसने पूछा।

"अब मैं क्या बताऊं... आप ही सोचो कुछ।" माही कुछ देर तक चुप रहा। फिर बोला— "देखो, एक रास्ता है। चाहे मजबूरी में ही सही, लेकिन आपकी मम्मी साथ हैं। और मेरे मम्मी-पापा भी अब पूरी तरह विरोध में नहीं हैं। भाई, बहन भी हमारे साथ हैं। तो क्यों न आपकी मम्मी और मेरे पापा की बात करवा दी जाए? पहले उन्हें समझा देते हैं। मुझे नहीं लगता कि वो हमारी खुशी के रास्ते में खड़े होंगे।" मन चुपचाप सुन रही थी।

माही आगे बोला— "उसके बाद दस दिन के भीतर... एक छोटा-सा समारोह। जिन्हें हमारी खुशी से खुशी है... बस उन्हीं के बीच। या फिर... आपकी मम्मी और मेरे पापा की मौजूदगी में कोर्ट मैरिज। अब आप बताओ।"

— "मैं कल बताऊंगी।" "Okay." दोनों ने फोन रख दिया। अगली रात फोन फिर जुड़ा। इस बार मन पहले से तैयार लग रही थी। "देखो... मैं चाहती हूँ कि मेरी शादी धूमधाम से हो। जैसे अनु की हुई थी। मेरी सारी फ्रेंड्स आएँ। नाच-गाना हो। फोटो हों। खाना हो। मतलब... सब कुछ।" उसकी आवाज़ में कोई ज़िद नहीं थी। बस एक साधारण लड़की का पारंपरिक अरमान झलक रहा था। माही ने कहा— "मैं समझता हूँ। और आपसे सहमत भी हूँ। क्योंकि हर व्यक्ति... चाहे लड़का हो या लड़की... अपने इस खास दिन को यादगार बनाना चाहता है।" "लेकिन कई बार परिस्थितियाँ हमारी इच्छाओं से बड़ी हो जाती हैं। और हमारे मामले में भी ऐसा ही है। अनु की शादी और हमारी स्थिति में फर्क है। वो एक परंपरागत विवाह था। और हम... हम कुछ ऐसा कर रहे हैं जिसे समाज अब भी पूरी तरह स्वीकार नहीं करता। आप फर्क समझने की कोशिश करो। इतना आसान नहीं है। आप खुद देख रही हो।"

"और फिर... अगर आपकी इच्छा के अनुसार सब करना है... तो तैयारी चाहिए। समय चाहिए। कम से कम दो-तीन महीने। और मुझे नहीं लगता कि इतना लंबा इंतज़ार समझदारी होगी।" कुछ देर बाद उसने हल्की मुस्कान के साथ कहा— "अगर यादगार बनाना ही है... तो मनाली में मेरे दोस्त का रिसॉर्ट है। वहीं कर लेते हैं। आप अपनी सहेलियों को बुला लेना।" मन ने बिना एक क्षण गंवाए उत्तर दिया— "नहीं। इतनी दूर संभव नहीं होगा। यहीं करेंगे।" "तो फिर हमें और मेहनत करनी होगी। घर वालों को साथ लाना होगा। रिश्तेदारों को। नजदीकी लोगों को। तभी यह संभव होगा।" "लेकिन... मुझे नहीं लगता कि सब लोग साथ आएंगे। क्योंकि दुनिया को मैं भी जानता हूँ। फिर भी... मैं चाहता हूँ कि जितने लोग साथ आ सकें... उन्हें साथ लेकर चला जाए।" कुछ क्षण बाद उसने धीमे स्वर में कहा— "बाकी... आप जो निर्णय लेंगी, मैं उसके साथ हूँ।" दूसरी तरफ... मन शायद अपने सपनों और परिस्थितियों के बीच कोई रास्ता खोज रही थी। आखिर उसने कहा— "ठीक है। मैं भी सोचती हूँ। जल्दी बात करेंगे।" "Okay. Good Night."

"Good Night." फोन कट गया।

अध्याय - 153

मन की मन्नत

(छुपी इबादतों का सच)

एक दिन 'मन' के व्हाट्सएप पर एक नया status दिखा।

वह शादी के बाद एक लड़की की छिनती हुई आज़ादी पर आधारित एक छोटा-सा वीडियो था।

ससुराल वालों की अंतहीन पाबंदियाँ।

हर छोटी बात पर टोका-टाकी।

माही ने वह स्टेटस देखा,

लाफिंग इमोजी के साथ उसने लिखा..

"लेकिन आपको घबराने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ आपकी आज़ादी का पूरा खयाल रखा जाएगा। और ना ही कोई बेवजह की रोक-टोक होगी।"

"Thanks."

और उसके ठीक नीचे एक और शरारती संदेश था—

"और आप भी भर-भर के कप चाय पीना... कोई नहीं रोकेगा।"

कुछ हँसती हुई इमोजियाँ इस पार से उस पार गईं, कुछ उधर से आईं।

और कुछ देर तक यह मीठी, बेफिक्र मसखरी चलती रही।

तभी, उस हल्की-फुल्की बातचीत के बीच मन ने अचानक एक गंभीर बात रख दी—

"देखो... मैं साधारण तरीके से तो शादी नहीं करूँगी।"

"मतलब?"

"मतलब बिल्कुल सामान्य शादी की तरह ही करेंगे। पूरे चाव के साथ। जैसे सबकी होती है।"

माही ने अपनी व्यावहारिक चिंताओं के चलते एक आखिरी बार उसे टटोलना चाहा—

"एक बार फिर सोच लो।"

बिना एक क्षण गँवाए, उधर से पूर्ण दृढ़ता के साथ उत्तर आया—

"नहीं। सोच लिया है।"

"तुम फिक्र मत करो।"

"मैं सबको तैयार करूँगी।"

"और हम सबके प्यार और आशीर्वाद से एक-दूसरे के होंगे।"

ये चंद वाक्य माही को हौसला दे गए।

न जाने क्यों... आज उसे मन के इन शब्दों में कोई बचकानी ज़िद नहीं, बल्कि एक पहाड़ जैसा विश्वास दिखाई दे रहा था।

मन के साहस को उसने एक बार फिर भीतर ही भीतर से सराहा

“मन”—

"बस आप अपने परिवार को संभाल लेना।"

"ठीक है।" माही ने लिखा, "जैसी आपकी इच्छा। मुझे तो वैसे भी सारी उम्र आपकी इच्छाओं का ही खयाल रखना है।"

"हाँ जी। बिल्कुल। पापी पेट का सवाल है।"

साथ में एक खिलखिलाता हुआ इमोजी।

माही फिर मुस्कुरा दिया।

यह 'मन' की सबसे खूबसूरत आदत थी। जब भी बातें ज़रूरत से ज़्यादा भावुक होने लगतीं, वह अपनी किसी न किसी मासूम सी शरारत से उस भारीपन को हवा में उड़ा देती थी।

कुछ देर बाद माही वापस असल मुद्दे पर लौटा—

"तो फिर आप मेरे पापा से किसी बड़े और जिम्मेदार व्यक्ति को मिलवाने की कोशिश करो। मैं भी यही चाहता हूँ कि तुम्हें पूरी इज़्ज़त के साथ अपने घर लाऊँ। सभी की खुशी के साथ। मैंने तुम्हारी खुशी के लिए अपना विचार बदला है, अब तुम भी थोड़ा-सा इस तरफ प्रयास करो।"

"हाँ ठीक है बाबा।"

"विश्वास रखो 'अपने मन' पर।"

"मैं तुम्हारे लिए कुछ भी करूँगी।"

"आखिर मेरी मन्नत हो तुम।"

"मन्नत?" माही ने अचंभित भाव से पूछा

"कैसे? Please explain."

"और क्या... कितने सोमवार रखे थे?"

यह पढ़ना था कि माही की आँखों के सामने अतीत के कई धुंधले दृश्य एकदम साफ हो गए।

उसे याद आया— कितनी ही बार उसने मन को यह कहते सुना था, "आज फास्ट है मेरा।"

और हर बार उस नादान ने यही समझा था कि शायद यह उसकी कोई धार्मिक आस्था होगी।

आज... आज पहली बार उसे उन भूखे पेट रखे गए व्रतों का असली अर्थ समझ आ रहा था।

काफी देर बाद उसके हाथों ने बस इतना लिखा—

"अच्छा..."

शब्द सिर्फ एक था, लेकिन उस एक शब्द के पीछे न जाने कितनी स्मृतियों का पहाड़ खड़ा था।

"कहाँ खो गए?" मन ने पूछा।

"कहीं नहीं। बस... थोड़ा पीछे चला गया था।"

"अच्छा..." मन ने बात आगे बढ़ाई, "और सुनो।"

"हाँ?"

"याद है मेरी उँगली में वो सफेद अंगूठी? जिसे देखकर तुम कहते थे कि आप भी किन बातों में विश्वास करने लगी हो?"

"हाँ, याद है।"

"वो भी तुम्हारे लिए ही थी। किसी ने बताया था कि इसे पहनोगी तो जो चाहोगी वो मिलेगा। और देखो... तुम मिल गए।"

दोनों ओर अब एक अस्थाई नीरवता थी।

लेकिन माही के मस्तिष्क में अतीत की खिड़की खुल गई थी।

वह सफेद अंगूठी... उस पर किया गया उसका अपना मज़ाक... और हर बार 'मन' का मुस्कुरा कर उस बात को टाल देना।

मन की इस मासूमियत ने माही की आँखें भिगो दीं।

थोड़ा खुद को संभाल कर—

"और तुम्हारा वो स्टेटस? तुम हो तो फिर मुझे और क्या चाहिए।" वो किसके लिए था?"

उतर जानते हुए भी वह उतर का आकांक्षी था। क्योंकि... आज वह बार-बार उसके मुँह से "तुम्हारे लिए" सुनना चाहता था।

लेकिन मन शायद उसकी इस मीठी नीयत को समझ चुकी थी।

"अब छोड़ो," उसने लिखा। "तुम हो तो अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए। ना किसी को कुछ बताना है... ना किसी से कुछ छुपाना है।"

"वैसे भी प्यार अंधा होता है... लेकिन बहरा नहीं होता। हर जज़्बात को धड़कनों के रास्ते कानों तक पहुँचा देता है।"

माही स्क्रीन को मंत्रमुग्ध सा देखता रह गया।

उसका मन कर रहा था कि आज प्रेम के अनुशासन का हर नियम तोड़ दे। प्रीत की महफ़िल में शब्दों का ऐसा समां बाँध दे कि रात भी छोटी पड़ जाए। अपने मन को आज वो सब बता दे... कि उसने कितनी रातों तक उसे याद किया है। कितनी बार खुद से लड़ा है। कितनी बार उसे खोने के डर से काँपते हुए, उसे किसी और का बनाने निकल पड़ा था।

वह चाहता था कि आज अपनी इस मोहब्बत को इबादत से भी ऊँची कहानी बना दे।

लेकिन... उसके भीतर अब भी दो माही बसते थे।

एक, जो इस प्रवाह में पूरी तरह बह जाना चाहता था।

और दूसरा, जो उस तेज़ बहाव के बीच भी किनारों की मर्यादा की रक्षा करना चाहता था।

और हमेशा की तरह... आज भी जीत उसी दूसरे माही की हुई।

अपनी भावनाओं को समेटते हुए उसने लिखा—

"जाओ अब पढ़ लो।"

"क्या?"

"अपनी किताबों।"

"नहीं..." "अब तुम कोई इश्क की किताब लिखो। मैं वही पढ़ूंगी।"

वो मुस्करा उठा। उँगलियाँ कीपैड पर ठहरीं। कुछ शब्द टाइप हुए, फिर मिट गए।

अंततः उसने लिखा—

"किताब क्या... मैंने तो तुम्हें ही लिख दिया है...

“क्या..”

“कुछ नहीं।” Bye."

उधर से भी—

"Bye..."

मन्नत...

आज जाते-जाते इस एक शब्द ने फिर से उसकी पलकें भिगो दी थीं।

क्योंकि शायद...

मन भी किसी की मांगी हुई मन्नत ही थी।

थार के तपते रेगिस्तान में... 76 किलोमीटर साइकिल चलाकर... तनोट माता के दरबार में की गई इबादत से मुकम्मल हुई...

उसकी अपनी "मन्नत"।

अध्याय - 154

“मन की धूप”

(लाज का दुपट्टा)

आंगन में फैली धूप अब मद्धम होने लगी थी। माही अभी-अभी सोकर उठा था। चाय का कप हाथ में था और मन कहीं बिना वजह हल्का-हल्का प्रसन्न था। तभी फोन के दृश्य पटल पर सफेद खरगोश उभरा। लेकिन आज कुछ अलग था। कॉल रिसीव करते ही...

"क्या कर रहे हो?"

"मैं... अभी सोकर उठा हूँ।

आप बताओ?"

"मैं...

मैं... आज बहुत ज्यादा खुश हूँ। इतनी कि शायद इससे पहले कभी नहीं हुई।"

"अच्छा? क्या मिल गया ऐसा?"

"अरे... सब कुछ मिल गया। ये धरती... ये आसमान... ये सूरज... ये धूप... ये छांव... ये मैं... ये तुम..

." माही हँस पड़ा। "अरे बस... बस... अब बताओ भी। क्यों इतरा रही हो इतना?"

"क्यों ना इतराऊँ?"

"देखो अब बता भी दो।"

"हाँ... हाँ... बताऊँगी। पहले पानी पी लूँ।"

"पी लिया?"

"हाँ।"

"तो अब शुरू करो।"

"आज मैं...

आज मैं ना...

“अब बता भी दो”

मैं आज ताऊ जी से मिली थी।" "अच्छा... और पता है... मुझे बहुत डर लग रहा था कि कैसे कहूँ लेकिन जब मैंने हिम्मत करके बताया ना... तो... उन्होंने मुझे धमकाया...

माही एकदम सीधा बैठ गया।

“धमकाया”?

और आप खुश हो रही हो?" उसने माथे पर हाथ मार लिया।

उधर कुछ देर चुप रहने के बाद फिर बोली— "पहले पूरा तो सुन लेते। उन्होंने मुझे धमकाया नहीं... बल्कि वो खुश हो गए। कुछ भी नहीं कहा। बस बोले कि ये तो अच्छी बात है कि तुम अपनी मर्जी से अपना साथी चुन रही हो। मैं तुम्हारे फैसले के साथ हूँ।"

माही की आंखों का विस्तार बता रहा था कि यह उत्तर उसकी कल्पना से बाहर था। वह जानता था कि सहमति मिलना आसान नहीं होगा। लेकिन इतनी सहजता... उसने सोचा भी नहीं था।

"सच?"

"हाँ। बिल्कुल सच। इसलिए बता नहीं सकती कि मैं कितनी खुश हूँ।"

इस बार वो भी पल्लवित हो उठा।

उसके मुँह से निकला

"मैं भी..."

कुछ बातें पूरी नहीं बोली जातीं। बस समझ ली जाती हैं।

"और सुनो..."

" "हाँ?" "ताऊ जी ने तुम्हारी फोटो माँगी है। इसलिए जल्दी से एक अच्छी-सी फोटो भेज दो।"

"क्यों नहीं। अभी भेजता हूँ।"

"और सुनो..." "हाँ?" "ताऊ जी खुद आपके घर आएंगे... तुम्हें मेरे लिए देखने और रोका करने..." और फिर... वह रुक गई।

शब्द जैसे अचानक किसी घुमाव पर खड़े हो गए। जैसे उसके आगे वह कुछ नहीं बोल पाई। माही रोमांचित हो उठा। उसे महसूस हुआ कि खुशी जब हद से ज्यादा बढ़ जाती है तो स्त्रियां बोलना कम कर देती हैं और उनकी चुप्पियाँ बोलने लगती हैं। उसने भी आगे कुछ नहीं पूछा। कुछ भाव ऐसे होते हैं जिन्हें बचाकर रखना चाहिए। जैसे हथेली पर गिरी ओसा। जैसे किसी फूल पर ठहरी पहली बूंद। उन्हें छू लेने की जल्दी में उनका सौंदर्य टूट जाता है। नारी-सुलभ हया के दुपट्टे ने "मन" को ढक लिया था। और माही ने भी आबरू के इस दुपट्टे को ओढ़ने में उसकी सहायता करी और फोन काट दिया।

अभी कुछ देर पहले जो लड़की धरती, आसमान, धूप और छांव को अपनी खुशी में गिन रही थी... वही एक वाक्य पर आकर शरमा गई थी। उसे लगा कि संसार में सुंदरता के अनेक रूप हैं। रूप की सुंदरता, वाणी की सुंदरता, व्यवहार की सुंदरता। लेकिन कुछ सौंदर्य ऐसे होते हैं जो किसी श्रृंगार के मोहताज नहीं होते लाज भी शायद ऐसा ही एक सौंदर्य है। वह किसी चेहरे को नहीं बदलती... लेकिन उसे यादगार बना देती है। माही ने आसमान की ओर देखा। धूप अब पीछे हट रही थी। क्षितिज पर सुनहरापन उतर आया था। और उसके मन में यह अनुभूति स्पष्ट हुई कि शायद समय अब सचमुच बदल रहा है। और उस दिन... मन की खुशी से ज्यादा सुखद उसके लिए यह जानना था कि उस खुशी में अब पूरा परिवार शामिल होने लगा था।

अध्याय - 155

“समय का चक्र”

अगली रात को मन ने बताया— "कल ताऊ जी आ रहे हैं आपके घर, साथ में उनके बेटे। हम सबको भी उनका इंतजार रहेगा, माही ने कहा।

अच्छा सुनो, वियान (उसका भाई) भी आ जाएगा?" "हां, मैं भी सोच तो रही थी।" "और क्या, देख जाएगा अपनी बहन की झोपड़ी।" मन की चिरपरिचित घुड़की— "happ,

चलो ठीक है, बाकी बातें कल करेंगे। मुझे भी इंटरव्यू की तैयारी करनी है। Bye,

Good night." बात समाप्त हो गई। लेकिन रात अभी बाकी थी। माही छत पर टहलता रहा। तभी भीतर से विचार आया— कल तक वह जिस लड़की के लिए लड़के देखने जाया करता था, आज उसी लड़की के घर वाले उसे देखने आने वाले थे। कितनी बार ऐसा हुआ था कि कोई रिश्ता पसंद आने पर वह घर आकर मन को विस्तार से सब बताता था—और अब... कल चर्चा का विषय स्वयं वह होने वाला था। वियान का ख्याल आते ही मुस्कान और गहरी हो गई। उसे याद आया कि कितनी बार वह उसी लड़के को अपनी बहन के संभावित वरों से मिलवाया करता था। और अब... समय ने पूरी बिसात ही पलट दी थी। कल वियान स्वयं उसे देखने आने वाला था, एक बहन के भावी जीवनसाथी के रूप में।

फिर अचानक उसे अपनी ही स्थिति पर हँसी आ गई। कल मन शरमा रही थी, आज वियान के आने का विचार मात्र उसे स्वयं संकोच से भर रहा था। जैसे समय ने एक दिन के लिए दोनों की भूमिकाएँ बदल दी हों। होंठों पर मुस्कान लिए वह बिस्तर पर लेट गया। रात की हवा अब थोड़ी ठंडी हो चली थी। उसने करवट बदली। लेकिन आज उसके भीतर उठे आश्चर्य के रास्ते में आने से नींद भी डर रही थी। "कल ताऊ जी आएंगे। मम्मी उनसे मिलेंगी। पापा बात करेंगे। दीक्षा भी आई हुई है इसलिए वो तो शायद सुबह से ही घर सिर पर उठा लेगी।

और वियान...

वियान उसे देखेगा। यही विचार आते ही वह फिर शरमा गया। एक संकोच भीतर उत्पन्न हो रहा था। वैसा ही संकोच जो शायद किसी लड़की को तब होता होगा जब पहली बार कोई उसे देखने आता है।

"अरे..."

वह खुद ही हंस पड़ा।

कल क्या होगा? ताऊ जी क्या कहेंगे? पापा कैसे प्रतिक्रिया देंगे? वियान क्या सोचेगा? इन सब प्रश्नों का उत्तर अगली सुबह के पास था। और वह कल की आहट को लिए नींद की शरण में चला गया, इस आखिरी ख्याल के साथ— "कल तक जो रिश्ता वह खोज रहा था.. आज वही रिश्ता उसे खोजते हुए उसके दरवाजे तक आ रहा था।"

"दहलीज"

अगली सुबह

मम्मी सुबह से ही घर की साफ-सफाई और आने वाले मेहमानों के स्वागत की तैयारियों में लगी हुई थीं। दीक्षा कभी बैठक में जाती, कभी रसोई में। उसके चेहरे पर उत्साह साफ दिखाई दे रहा था। वहीं माही के पापा बाहर से शांत दिखाई दे रहे थे, लेकिन भीतर चल रही उथल-पुथल को माही समझ रहा था।

माही के चेहरे पर सामान्यता थी, लेकिन भीतर भावनाओं की बाढ़।

इस से पहले भी बहुत से लोग उसको देखने आए थे....लेकिन आज बात कुछ अलग थी।

दोपहर होते-होते घर के बाहर एक गाड़ी आकर रुकी।

माही का हृदय अनायास ही तेज़ हो गया।

गाड़ी से सबसे पहले ताऊ जी उतरे। उनके पीछे उनका बेटा और फिर वियान।

सभी ने मुस्कराते हुए एक-दूसरे का अभिवादन किया।

घर वालों ने भी पूरे आत्मीय भाव से उनका स्वागत किया। बैठक में चाय-पानी और औपचारिक बातचीत का दौर शुरू हो गया।

ताऊ जी का व्यक्तित्व प्रभावशाली था।

उनके व्यवहार में अपनापन भी था और आत्मविश्वास भी।

कुछ ही देर में माहौल सहज होने लगा।

माही, वियान और ताऊ जी का बेटा भी आपस में बात करने लगे।

माही और वियान दोनों ही एक असहजता सी महसूस कर रहे थे।

लेकिन दोनों ने ही उसे अपने चेहरे तक नहीं आने दिया।

दोनों मुस्करा रहे थे।

बातें कर रहे थे।

लेकिन दोनों जानते थे कि समय ने आज उन्हें एक नए रिश्ते की चौखट पर लाकर खड़ा कर दिया है।

कुछ देर बाद बातचीत का रुख उस विषय की ओर मुड़ा जिसके लिए सभी वहां उपस्थित थे।

माही के पापा ने बिना किसी लाग-लपेट के अपनी चिंता सामने रखी।

उन्होंने कहा कि उन्हें लड़का-लड़की या उनके निर्णय पर कोई आपत्ति नहीं है।

लेकिन समाज...

समाज की प्रतिक्रिया को लेकर मन में आशंकाएं हैं।

अंतर्जातीय विवाह को आज भी बहुत सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता।

रिश्तेदारों की बातें, सामाजिक दबाव, अनावश्यक विरोध...

यही सब उन्हें चिंतित कर रहा था।

ताऊ जी पूरे धैर्य से उनकी बातें सुनते रहे।

फिर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—

"भाई साहब, अगर हम अपनी ही संतानों की खुशी के लिए खड़े नहीं होंगे तो फिर कौन होगा?"

उन्होंने आगे कहा—

"समाज कल भी कुछ कहता था, आज भी कहता है और आगे भी कहेगा। लेकिन जीवन समाज को नहीं जीना, बच्चों को जीना है।"

"जब लड़की और लड़का दोनों अपने निर्णय पर स्पष्ट हैं, दोनों परिवार साथ हैं, तो फिर शेष दुनिया की चिंता हम पर छोड़ दीजिए।"

उनकी आवाज़ में ऐसा विश्वास था कि वहां उपस्थित सभी लोग ध्यान से सुन रहे थे।

"विरोध होगा तो उसका सामना भी हम करेंगे।"

"जो लोग समझाने से समझेंगे उन्हें समझाएंगे।"

"जो नहीं समझेंगे, उन्हें समय समझा देगा।"

"लेकिन बच्चों की खुशी को किसी भय के कारण बलि नहीं चढ़ने देंगे।"

लेकिन हमारी चिंता लड़की पक्ष को तरफ से होने वाले संभावित विरोध को ले कर है, पापा ने कहा

इसके बाद ताऊ जी ने इसकी भी समस्त जिम्मेदारी खुद पर लेते हुए कहा...की मेरी कोशिश रहेगी कि किसी भी तरह का विरोधी स्वर जन्म ही ना ले।

उनके इन शब्दों ने जैसे बैठक में फैली हुई शंकाओं को एक झटके में निर्मूल कर दिया।

माही के पापा के चेहरे पर भी पहली बार संतोष के भाव दिखाई दिए।

इसके बाद बातचीत और अधिक सकारात्मक दिशा में बढ़ी।

दोनों परिवारों ने भविष्य की संभावनाओं, व्यवस्थाओं और आगे की प्रक्रिया पर चर्चा की।

कुछ पारंपरिक रस्मों का प्रतीकात्मक निर्वहन भी किया गया।

कोई बड़ा आयोजन नहीं था।

लेकिन उस छोटे-से क्षण का महत्व किसी बड़े समारोह से कम भी नहीं था।

आज कोई रिश्ता केवल कागज़ों या शब्दों में तय नहीं हो रहा था।

आज दो परिवार अपनी स्वीकृति से एक नई कहानी की नींव रख रहे थे।

माही चुपचाप सब देख रहा था।

उसे बार-बार विश्वास नहीं हो रहा था कि जिन परिस्थितियों को वह कुछ समय पहले तक असंभव मान रहा था, वे आज उसकी आंखों के सामने वास्तविकता बन रही हैं।

उधर उसके माता-पिता के मन में जो भय और संकोच अब तक बने हुए थे, वे भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगे थे।

उनकी जगह अब नई तैयारियों और नई जिम्मेदारियों ने लेनी शुरू कर दी थी।

समय कब बीत गया, किसी को पता ही नहीं चला।

शाम होने लगी।

विदा का समय आ गया।

ताऊ जी उठे।

उन्होंने स्नेहपूर्वक माही के कंधे पर हाथ रखा।

उस एक स्पर्श में औपचारिकता कम और अपनापन अधिक था।

मानो विवाह की औपचारिकता से पहले ही उन्होंने उसे अपना लिया हो।

कुछ देर बाद गाड़ी फिर घर से बाहर निकल गई।

धूल धीरे-धीरे बैठ गई।

मेहमान तो विदा हो गए थे।

आज दो परिवारों के बीच की नजदीकी ने पहला कदम रख दिया था।

और उसी के साथ...

एक नए रिश्ते की यात्रा ने अपना पहला सार्वजनिक कदम रख दिया था।

अध्याय - 157

आने वाला कल

(मन के साथ)

रात के लगभग नौ बजे थे।

माही अपने कमरे में बैठा था। सामने खुली किताबें थीं। मेज पर रखी चाय ठंडी हो चुकी थी। पढ़ने का प्रयास वह कर रहा था, लेकिन आज शब्दों में उसे बांध लेने की शक्ति नहीं थी।

कमरे में हल्की-सी इत्र की खुशबू तैर रही थी। शाम को अलमारी से कपड़े निकालते समय शायद कुछ बूंदें गिर गई थीं। अब वही खुशबू कमरे के कोनों में चुपचाप ठहरी हुई थी।

आज घर भी अलग लग रहा था।

सुबह जो लोग मेहमान बनकर आए थे, शाम तक अपने बनकर लौटे थे।

इन्हीं विचारों के बीच उसका फोन बजा।

उधर से आवाज आई—

"Congratulations Mr. Astitva Awana... a.k.a. Mahi..."

"On your engagement."

उसने बिना देर किए जवाब दिया—

"Thank you Manvi Sharma a.k.a. Mann... and congratulations on becoming Mrs. Mahi."

फिर दोनो हँस पड़े।

"बताओ, कैसे हो?"

मन ने पूछा।

"मैं ठीक हूँ।"

"आज आपके ताऊ जी के आने के बाद से तो बहुत ज्यादा खुश हूँ।"

"अच्छा..."

माही खुशी से चहका।

"मेरे ताऊ जी?"

"हां।"

"आपके क्या हैं?"

"ताऊ जी।"

"तो फिर Sorry बोलो।"

"Sorry"

"Sorry से कुछ नहीं होगा।"

"इस गलती का प्रायश्चित करना पड़ेगा।"

"अच्छा जी?"

"हां जी।"

"कैसे?"

"मेरे को lunch और movie दिखाकर।"

"ओह..."

"हां..."

"इतने दिनों से बचते फिर रहे हो।"

"अब नहीं छोड़ूंगी।"

"और फिर हमारी सगाई की खुशी का जश्न भी तो है।"

"Okay।"

"तो बताओ...कब लेकर चलोगे?"

"शादी के बाद।"

उत्तर इतना तत्काल आया कि मन पल भर के लिए चुप रह गई।

फिर बोली—

"सगाई का जश्न..." "शादी के बाद?"

"अभी क्यों नहीं?"

"क्योंकि अभी शादी नहीं हुई है।"

"और उससे पहले ये सब निषिद्ध है।"

"अच्छा..." "कहाँ से लाते हो ये नियम?" "कौन-सी किताब में लिखा है?" "अपने भीतर से।" "मन की किताब में।"

"जाओ..."

"सचमुच कितने बोरिंग हो तुम।"

"कैसे?"

"और क्या?"

"बताओ..."

"कभी lunch पर लेकर गए हो?"

"नहीं।"

"Movie?"

"नहीं।"

"Coffee shop?"

"नहीं।"

"कभी साथ बैठकर चाय पी है?"

"नहीं।"

"और सब तो छोड़ो आज तक वीडियो कॉल तक नहीं की है।"

चलो इसको भी छोड़ो...

कोई एक फोटो ही दिखा दो हम दोनों की एक साथ...?

नहीं है...

तो है क्या तुम्हारे पास...

“मेरा मन....”

अच्छा!

"हां.....

जब “मेरा मन” हर समय मेरे भीतर है तो मुझे उसे साथ ले कर बाहर भटकने की क्या जरूरत है

ओह

बस, बस अब रुको, अरस्तू के अनुयाई

ठीक है...

रुक गया....

"तो फिर?"

"इच्छा नहीं होती तुम्हारी?"

ये सब करने की ?

"बहुत होती है, लेकिन अब तक कोई हक नहीं था।

कुछ देर रुकने के बाद मन की धीमी आवाज आई—

"लेकिन अब तो है।"

"नहीं।"

"अभी भी नहीं।"

"मेरे कुछ अपने नियम और कायदे हैं मैडम जी।"

"लेकिन जैसे ही तुम मेरी बनकर घर आओगी..."

"मैं अपनी सारी हसरतें पूरी करूंगा।"

"अंडमान का नील द्वीप..."

"मालदीव के वो खूबसूरत समुद्री किनारे..." "दुबई मरीना वॉक की जगमगाती रातें..."

"हवाई के माउई में समुद्र तट पर डिनर..." "इटली के अमाल्फी कोस्ट की घुमावदार सड़कों पर लंबी ड्राइव..."

मन अब चुपचाप सुन रही थी।

इसके अलावा भी बहुत कुछ सोचा है मैंने..जो अभी नहीं बताऊंगा, बस अब इंतजार है उस दिन का..."

जिस दिन तुम्हारे ताऊ जी तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में देंगे।"

"अरे-अरे..."

"पूरा ग्लोब घुमा दिया।"

"वापस आओ।"

"कश्मीर नहीं लेकर चलोगे?"

मन ने मुंह बनाते हुए कहा।

"नहीं।"

"क्यों?"

"क्योंकि..."

माही रुक गया।

"मेरे मन की खूबसूरती देखकर..."

"क्या?"

"कुछ नहीं।"

"नहीं, बताओ।"

"कुछ नहीं।"

"चलेंगे।"

"कश्मीर भी।"

उधर से खिलखिलाहट सुनाई दी।

"अच्छा सुनो..."

"हां?"

"मैं मजाक कर रही थी।"

"सच में..."

"जो भी होगा..."

"शादी के बाद ही होगा।"

"आपकी इसी समझदारी का तो मुरीद हूँ मैं।"

"और तारु जी बहुत प्रशंसा कर रहे थे आपकी।"

"अच्छा?"

"हां।"

"खैर..."

"मैं इस लायक तो नहीं हूँ।"

"फिर भी उनके इस बड़प्पन का आभारी हूँ।"

कुछ देर बाद बात फिर शादी की तरफ मुड़ गई।

"अच्छा अब सब ठीक है..."

"तो शादी की date fix कर लेते हैं।"

"हां..."

"लेकिन तारु जी अभी भी छोटे कार्यक्रम की बात कर रहे थे।"

"हां..."

"उन्होंने जिक्र किया था।"

लेकिन मैं पूरी शादी करूंगी, जैसे अनु की हुई थी।

सब आएंगे, नाच गाना होगा, फोटो होंगी, जश्न होगा।

माही सुन रहा था।

"और होना भी चाहिए।"

मन चुप रही।

शायद उसे इस उत्तर की उम्मीद नहीं थी।

"सच?"

"हां।"

"शुरुआत में परिस्थितियां अलग थीं।"

"लेकिन अब जब दोनों परिवार साथ हैं..."

"तो मैं भी चाहता हूँ कि इस दिन की कोई इच्छा अधूरी ना रहे।"

उधर से कोई उत्तर नहीं आया,लेकिन उसकी खामोशी में जो खुशी थी, वह किसी भी शब्द से बड़ी थी।

" अब जाओ...।

" पढ़ लो।"

"क्यों?"

"क्योंकि आपको Assistant कमांडेंट बनना है।"

दोनों तरफ से हँसी के साथ

"Good Night."

"Good Night."

फोन कट गया।

उस रात...

कमरे में इत्र कम महक रहा था।

मन की खुशी ज्यादा।

“एक अनजान कॉल”

“चार-पाँच दिन ऐसे ही बीत गए। फिर एक रात, मन से बात करके उसने अभी फोन रखा ही था कि...” दोनों ने अगली योजनाओं पर चर्चा करी, मेज पर खुली किताबें थीं, लेकिन अब पढ़ाई से ज्यादा उसका मन भविष्य की योजनाओं में भटक रहा था। कभी शादी की तारीख का विचार, कभी मेहमानों की सूची, कभी मन की जिद्दी मांगें, और कभी उसके अपने अधूरे सपने। रात के लगभग साढ़े दस बजे होंगे। तभी मेज पर रखा फोन कंपन करने लगा। उसने फोन उठाया। स्क्रीन पर कोई नाम नहीं था, एक अनजान नंबर। “इस टाइम किसका होगा?” उसने सोचा शायद किसी परिचित का नया नंबर होगा। उसने कॉल रिसीव कर ली। “हेलो...” कोई आवाज नहीं आई।

“हेलो...” उसने फिर कहा। इस बार दूसरी तरफ से एक धीमी स्त्री-आवाज सुनाई दी। आवाज में घबराहट थी, मानो कई बार सोचने के बाद यह कॉल की गई हो। “क्या...” थोड़ा रुककर आवाज फिर उभरी— “क्या मैं अस्तित्व... नहीं... माही भैया से बात कर रही हूँ?”

माही थोड़ा चौंका। “जी... कौन?” आवाज फिर से रुक गई, मानो सामने वाला व्यक्ति अब भी तय नहीं कर पा रहा था कि आगे बोले या नहीं। फिर बहुत धीमे स्वर में उत्तर आया— “भईया... सुहाना बोल रही हु।” और तभी... कॉल कट गई। माही ठुड्डी पर अंगुली लगाए सोचता रहा। नाम कुछ जाना-पहचाना लग रहा था, लेकिन अच्छे से याद नहीं आ रहा था। उसने दोबारा कॉल मिलाने की कोशिश की, लेकिन उधर से कोई उत्तर नहीं मिला। अभी कुछ देर पहले तक जो रात भविष्य के सपनों से भरी हुई थी... उसमें अब एक अनजाना प्रश्न भी शामिल हो चुका था। माही ने फोन मेज पर रख दिया। “उस प्रश्न को वहीं छोड़कर वह कुछ देर बाद मीठे सपनों में खो गया।”

अध्याय - 159

“तैयारियां”

आज की बातचीत कुछ विशेष होने वाली थी। सुबह ही मन के आदेश पर माही पंडित जी से बात करके आया था। कई तारीखों पर चर्चा हुई थी और अब उसके पास विवाह के लिए कुछ संभावित मुहूर्त थे। रात को उसने मन को कॉल किया। "Hello..." अब वह केवल माही नहीं रह गया था, वह किसी का Sweet  भी हो चुका था।

— "बोलो Sweet..." "आज क्या खास है?" "व्हाट्सएप खोलकर देखो।"

"एक मिनट..." अचानक खुशी भरी आवाज आई— "Waaaa..." माही के भीतर भी हर्षित भाव जगा जो होंठों पर स्पष्ट उभर रहा था। उसने विवाह की कुछ संभावित तारीखें भेजी थीं। मन एक-एक तारीख देख रही थी। और फिर उसी समय दोनों ने मिलकर एक तारीख तय कर ली। अब विवाह केवल एक सपना नहीं था, उसका दिन भी तय हो चुका था। मन की खुशी उसके शब्दों में साफ सुनाई दे रही थी। फिर अचानक उसने कहा— "Sweet..." "हां?" "तुम्हें एक और good news दूं?"

"ये भी कोई पूछने की बात है? जल्दी बताओ।" "ताऊ जी ने सभी को मना लिया है।"

माही कुछ समझ ही नहीं पाया। "मतलब?"

"बड़े ताऊ... बुआ-फूफा... मामा... सबको। सब आएंगे हमारी शादी में।" छोटे-छोटे वाक्यों में कही गई यह बात माही के लिए बहुत बड़ी थी। शायद उतनी बड़ी जितनी मन समझ भी नहीं सकती थी। ग्रामीण परिवेश, मध्यवर्गीय परिवार, अंतरजातीय विवाह और ऐसे में लड़की पक्ष का लगभग पूरा परिवार साथ खड़ा हो जाना... यह साधारण बात नहीं थी।

"सच?" "हां हां... बिल्कुल सच।" माही के चेहरे पर पहले से मौजूद हर्षित भाव ने और विस्तार लिया। "ये तो बहुत अच्छी बात है। पापा-मम्मी को बताऊंगा तो वो कितने खुश होंगे।"

— "सचमुच ताऊ जी हमारे लिए फरिश्ते हैं।"

"हां..." मन ने भी सहमति जताई।

"अच्छा सुनो..."

"हां?"

"अब आप ही बताओ... कल से booking शुरू करें? बस डेढ़ महीना ही तो बचा है।" अब बातचीत सपनों से निकलकर व्यवस्थाओं में प्रवेश कर चुकी थी। "कोई अच्छा-सा garden देख लो।"

"मिलन गार्डन" ही कर लूं? अगर सब आ रहे हैं तो...माही ने पूछा।

"हां... वही कर लो। जहां अनु की शादी हुई थी।" "और halwai?" "200 लोगों का खाना बनवाना।" "ठीक है।" मन की आवाज में अब एक दुल्हन की व्यस्तता उतरने लगी थी। स

— "अरे... ताऊ जी का फोन आ रहा है। मैं रखती हूं।" "ठीक है।" "Bye." "Sweet Dream."

"Same to you."

माही अब विवाह को होते देख रहा था। अब केवल कल्पनाएं नहीं थीं। तारीख तय हो चुकी थी। परिवार साथ खड़े थे। मेहमानों की संख्या तय हो रही थी। गार्डन की चर्चा शुरू हो चुकी थी। यात्रा अब मंजिल की दिशा में स्पष्ट रूप से बढ़ रही थी। उसने मन ही मन ताऊ जी का धन्यवाद किया। वह अच्छी तरह जानता था कि ग्रामीण परिवेश में मध्यवर्गीय अंतरजातीय विवाह के लिए लड़की पक्ष के दो सौ लोगों का एक साथ खड़ा हो जाना कितना बड़ा आश्वासन होता है। "सब आएंगे..." यह वाक्य बार-बार उसके मन में गूंज रहा था और हर बार उसे पहले से ज्यादा खुशी दे रहा था। कल से booking शुरू करनी थी। कई काम थे, बहुत सारी तैयारियां बाकी थीं। इसलिए अब सो जाना चाहिए। वह बिस्तर पर लेट गया, कमरे की बत्ती बंद की और आंखें मूंद लीं। लेकिन आंख बंद करते ही उसे अचानक पिछली रात की वह रहस्यमयी कॉल याद आ गई— एक अनजान नंबर, एक घबराई हुई आवाज और फिर अचानक से कॉल डिस्कनेक्ट हो जाना

"शायद कोई गलतफहमी रही होगी..." यह सोचकर उसने उस विचार को वहीं छोड़ दिया।

अध्याय - 160

“रंग और रस”

(तैयारियों का खुमार)

दो दिन और बीत गए। विवाह की तैयारियाँ अब पूरी तरह से रफ्तार पकड़ चुकी थीं। रात के लगभग ग्यारह बज रहे थे। दिन भर की भागदौड़ के बाद माही अभी बिस्तर पर लेटा ही था कि फोन का पटल रोशन हुआ। सामने वही नाम था जो अब उसकी दुनिया बन चुका था।

"हेलो..."

"थक गए क्या Sweet?" उधर से मन की चहकती हुई आवाज़ आई।

माही के होंठों पर अपने आप एक सुकून भरी मुस्कान आ गई। "तुम्हारी आवाज़ सुनने के बाद सारी थकान उतर जाती है।"

"मक्खन मत लगाओ... मुझे पता है आज तुम दिन भर धूप में घूमे हो।"

"हाँ, लेकिन वो धूप भी आज मुझे छाँव जैसी लग रही थी।"

"अच्छा जी?"

तो फिर आज का रिपोर्ट कार्ड सुनाओ।" माही ने एक

गहरी साँस ली और बताना शुरू किया— "तो मैडम जी, मिलन गार्डन बुक हो गया है।"

"सच?"

"हाँ। और हलवाई भी फाइनल कर दिया है। 200 लोगों का पूरा मेन्यू तय हो गया है।"

"बेरी गुड..."

और हाँ, मिठाई में तुम्हारी वो फेवरेट रसमलाई भी लिखवा दी है।" उधर से एक प्यारी-सी खिलखिलाहट सुनाई दी। "तुम सच में बहुत अच्छे हो।"

"और सुनो..." माही ने बात आगे बढ़ाई। "आज मैं विवाह के परिधान (कपड़े) देखने भी गया था।"

"क्या देखा?"

"अपने लिए शेरवानी... और तुम्हारे लिए..."

"मेरे लिए क्या?"

मन की आवाज़ में उत्सुकता थी। "लाल रंग का एक बेहद खूबसूरत लहंगा... जिसे देखकर मुझे लगा कि जब तुम इसे पहनोगी, तो शायद चाँद भी लज्जावश बादलों की ओट में चला जाएगा।" उस तरफ कुछ पल के लिए लज्जा जनित खामोशी पसर गई। शायद वह उस लाल जोड़े में खुद की कल्पना कर रही थी। "लेकिन सुनो..." मन ने अचानक कहा।

"हाँ?"

"फोटोग्राफर की बुकिंग तुम मत करना।"

"क्यों?"

"वो मैं करूँगी। अनु की शादी में जिसने फोटो खींचे थे ना... मैं उसी को बुलाऊँगी। उसके कैंडिड शॉट्स बहुत शानदार होते हैं।"

"ठीक है बाबा, जैसा मेरा मन चाहे।" फोन के दोनों तरफ साँसों की गर्माहट महसूस की जा सकती थी। अब व्यवस्थाओं की बातें खत्म हो चुकी थीं और उनकी जगह एक मीठे, अंतरंग अधिकार ने ले ली थी।

"अच्छा एक बात बताओ..." मन ने पूछा

"क्या?"

"जब उस दिन फोटोग्राफर मेरी फोटो खींच रहा होगा... उस लाल जोड़े में..."

हम्म...

तो तुम क्या करोगे?"

"मैं?"

प्रश्न सुन कर एकदम से माही रोमांचित हो उठा, "मैं शायद अपनी पलकें ही ना झपका पाऊँ। बस तुम्हें देखता रहूँगा।"

"और अगर मैं तुम्हारी उन नज़रों से शरमा गई तो?" "तो मैं तुम्हारी उस हया को अपनी आँखों में कैद कर लूँगा... बिना किसी कैमरे के।"

"पागल..." मन हँस पड़ी, लेकिन उस हँसी में एक कशिश थी।

कुछ देर बाद उसने बहुत धीमे स्वर में कहा— "पता है... अब मुझे और इंतज़ार नहीं हो रहा। मन करता है बस उड़कर तुम्हारे पास आ जाऊँ।" माही ने करवट ली। फोन को कान से और सटा लिया।

"मैं भी अब उस दिन के लिए बेताब हो रहा हूँ। जब तुम्हें सबके सामने, पूरे हक्क के साथ अपनी बाँहों में छुपा लूँगा।"

"छुपा लोगे?"

"हाँ..." माही की आवाज़ में एक नशा था। "दुनिया की हर बुरी नज़र से।" फोन पर फिर कुछ पलों का ठहराव आ गया। यह वो खामोशी थी जो किसी भी संवाद से ज़्यादा मुखर होती है। जिसमें दो धड़कनें एक-दूसरे को सुन रही होती हैं। "चलो..." मन ने उस खुमार को तोड़ते हुए कहा। "अब सो जाओ। कल और भी काम करने हैं तुम्हें।"

"हम्म... तुम भी सो जाओ। Good Night Sweet." "Good Night..."

माही ने मोबाइल सीने पर रख लिया। उसकी आँखें बंद थीं। दिन भर की थकान अब एक असीम सुकून में बदल चुकी थी। लाल जोड़े में लिपटी मन की छवि उसकी बंद आँखों के सामने तैर रही थी। सब कुछ कितना मुकम्मल लग रहा था। उन दोनों का प्रेम अपने सबसे खूबसूरत और पवित्र मुकाम पर था। लेकिन... मनुष्य जब अपनी खुशियों के सबसे ऊँचे शिखर पर होता है, तब वह भूल जाता है कि तूफ़ान हमेशा शांत आसमान से ही जन्म लेते हैं। और माही भी भूल चुका था... उस अनजान नंबर से आई उस घबराई हुई आवाज़ को, जिसकी दस्तक अब बस दरवाज़े पर ही थी।

अध्याय - 161

“दो राहों के बीच”

शादी की तिथि हर दिन नजदीक आ रही थी। साथ ही मन और माही की निकटता भी। मन दिन-प्रतिदिन अधिक चंचल होती जा रही थी। उसकी बातों में अब पहले से अधिक अधिकार, अधिक अपनापन और भविष्य के रंग घुलने लगे थे। माही अब भी पहले जैसा ही था— संयमित, संतुलित। मन की चंचलता कई बार उसे अपने साथ बहा ले जाना चाहती, लेकिन हर बार माही मुस्कुराते हुए उसे उसी सीमा पर थाम लेता जहाँ प्रेम मर्यादा का हाथ पकड़ लेता है। फिर भी दोनों एक अलग ही दुनिया में जी रहे थे। शायद इसलिए कि भारतीय परंपरा में सगाई और विवाह के बीच का समय प्रेम का सबसे सुंदर समय माना जाता है। इस दौरान दो लोग केवल एक-दूसरे को नहीं चाहते... वे अपने आने वाले जीवन की कल्पना भी साथ-साथ करने लगते हैं। भविष्य को अपने सपनों के अनुसार सजाते हैं। उसमें रंग भरते हैं। और फिर उन्हीं कल्पनाओं में खोकर मुस्कुरा देते हैं। इन दिनों दोनों के साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। दो मन अपने भविष्य को प्रेम के धागों से बुन रहे थे। कभी किसी आने वाले त्योहार का रंग उसमें जोड़ते, कभी किसी अधूरे सपने की कढ़ाई कर देते। धीरे-धीरे उन्हीं धागों से एक ऐसी दुनिया बन रही थी जिसमें दोनों साथ रहते थे। और आज भी उसी धागे से बने बिछौने पर, प्रीत बिखेरने और दिन भर की छोटी-बड़ी घटनाओं की चर्चा के बाद, वे नींद की शरण में जाने की तैयारी कर रहे थे।

अगली सुबह माही की आँख हमेशा की तरह अलार्म बजने से पहले ही खुल गई। उसने आदतन सबसे पहले अपना मोबाइल उठाया। स्क्रीन पर दो लंबे संदेश उसका इंतजार कर रहे थे। नंबर अनजान था। उसने संदेश खोला— "भाई, मैं सुहाना। याद है? M.A. में हम साथ थे। मुझे नर्क में जाने से बचा लो। हाथ जोड़ती हूँ भाई... कोई नहीं है मेरा। जब कोई नहीं दिखा तब आपको याद किया। Ignore मत करना। तुम्हें किसी अपने की कसमा।" संदेश यहीं समाप्त नहीं हुआ था। नीचे एक और पंक्ति लिखी थी— "इस नंबर पर दोबारा कॉल या मैसेज मत करना।" और उसके नीचे एक लोकेशन। माही ने चिंतित और अचरज भाव से स्मृति को खंगाला। उसे सुहाना याद थी। शांत स्वभाव की लड़की, पढ़ाई में ठीक और परिस्थितियों से लड़ती हुई। लेकिन ऐसा क्या हो गया कि उसे इस तरह मदद

माँगनी पड़ रही थी? वह कुछ देर तक बिस्तर पर बैठा रहा। फिर मोबाइल एक तरफ रख दिया। लेकिन बात वहीं समाप्त नहीं हुई।

दिन भर जहाँ भी गया, वह संदेश उसके साथ गया। बार-बार वही शब्द उसके भीतर लौट आते— "मुझे नर्क में जाने से बचा लो..." और फिर— "कोई नहीं है मेरा..." उसने कई बार खुद को समझाया। अब उसकी अपनी जिंदगी थी। अपने पारिवारिक कर्तव्य थे। कुछ दिन बाद "पत्नी" की जिम्मेदारी होगी उस पर। शादी में मुश्किल से कुछ ही सप्ताह शेष थे। इस समय किसी अनजान परेशानी में पड़ना समझदारी नहीं थी। दुनिया में हजारों लोग परेशान हैं। हर किसी की समस्या का समाधान वह नहीं बन सकता। लेकिन हर बार तर्क जीतते-जीतते हार जाता और सामने एक बेबस लड़की का चेहरा उभर आता। शाम हुई, रात हुई। मन से बात भी हुई। वह हँसा भी, बातें भी हुईं। लेकिन आज उसकी आवाज़ में वह निश्चितता नहीं थी जो पिछले कुछ दिनों से चली आ रही थी। आज उसकी आँखों के सामने मीठे सपने नहीं थे। एक पुकार थी, एक दुविधा थी, एक ऐसा निर्णय था जो या तो उसे चैन से सोने देगा... या फिर कई रातों की नींद छीन लेगा। इन्हीं विचारों के बीच आधी-अधूरी नींद ने उसे अपने भीतर लपेट लिया।

“एक पुकार की दिशा में”

सुबह माही एक नए निर्णय के साथ उठा। रात भर की उधेड़बुन ने उसे किसी निष्कर्ष तक तो नहीं पहुँचाया था, लेकिन इतना अवश्य तय हो गया था कि केवल सोचते रहने से कुछ नहीं बदलेगा। उसे सत्य जानना होगा। नहा-धोकर वह चुपचाप घर से निकल गया। किसी को कुछ विशेष नहीं बताया। उसने अपनी शादी की तैयारियों और उस अनजान पुकार के बीच संतुलन बनाने की कोशिश की थी। लेकिन अंततः भीतर की बेचैनी इतनी बढ़ गई कि उसने एक त्वरित निर्णय ले लिया। कुछ ही देर बाद वह शहर के बस स्टैंड पर था। पहली उपलब्ध बस पकड़कर वह गुरुग्राम की ओर निकल पड़ा। सफर के दौरान भी वह बार-बार वही संदेश पढ़ता रहा। हर बार शब्द वही थे, लेकिन उनका भार बढ़ता जा रहा था। 10 बजे तक वह गुरुग्राम पहुँच चुका था। लोकेशन उसे शहर के एक प्रतिष्ठित इलाके की ओर ले जा रही थी— गोल्फ कोर्स क्षेत्र। चौड़ी सड़कें, सुव्यवस्थित हरियाली, ऊँची दीवारों के पीछे छिपे आलीशान घर।

माही धीरे-धीरे उस स्थान की ओर बढ़ता गया। वह किसी से अधिक पूछताछ नहीं करना चाहता था; एक तो सुरक्षा का मामला था, दूसरा वह स्वयं भी अभी तक नहीं जानता था कि वह किस चीज़ की तलाश कर रहा है। कुछ देर बाद वह उस मकान के सामने खड़ा था जिसकी लोकेशन उसे भेजी गई थी। उसने ध्यान से चारों ओर देखा। सब कुछ व्यवस्थित दिखाई दे रहा था। न कोई शोर, न कोई विवाद, न कोई ऐसी बात जो किसी को मदद के लिए इस प्रकार संदेश भेजने पर मजबूर करे। करीब एक घंटे तक वह आसपास ही बना रहा। तभी मुख्य द्वार खुला। एक युवती बाहर निकली। उसका पहनावा आधुनिक था, और जीवनशैली संपन्ना। माही ने उसे ध्यान से देखा। “एक पल के लिए उसके मन में विचार आया— क्या यह सुहाना हो सकती है? लेकिन अगले ही क्षण उसने उस संभावना को लगभग खारिज कर दिया। उसके चेहरे में उसे सुहाना होने का कोई संकेत नहीं मिला, यह कोई और थी।” उसने मुख्य द्वार को लॉक किया और फिर वह अपनी महंगी कार में बैठ कर वहाँ से निकल गई। माही कुछ देर और रुका रहा। फिर उसने पूरे मकान का बाहरी निरीक्षण किया। उसे कुछ भी असामान्य नहीं दिखा। धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि वह व्यर्थ ही यहाँ तक चला आया है।

वह लौटने का विचार कर ही रहा था कि तभी... ऊपर की मंजिल की दिशा से किसी के छींकने की आवाज़ सुनाई दी। वो थोड़ा ठिठका। आवाज़ बहुत क्षीण थी, इतनी कि कोई दूसरा व्यक्ति शायद उस पर ध्यान भी न देता। लेकिन अभी उसके सामने केवल दो संभावनाएँ थीं। या तो उसने गलत सुना था, या फिर उस घर में कोई और भी मौजूद था। उसने कुछ देर वहीं खड़े होकर प्रतीक्षा की। फिर अपने मन में निष्कर्ष निकाला— आवाज़ वास्तविक थी, और यदि भीतर कोई था, तो फिर मुख्य द्वार पर ताला क्यों था? यही प्रश्न उसके भीतर संदेह को जीवित रखने के लिए पर्याप्त था। अब उसने निर्णय लिया कि वह उस युवती के लौटने तक आसपास ही रहेगा। बाकी दिन वह उसी क्षेत्र में इधर-उधर घूमता रहा। कभी किसी चाय की दुकान पर, कभी सड़क किनारे, कभी पार्क के पास। शाम ठीक सात बजे वह युवती वापस लौटी। इस बार उसके कपड़े ही नहीं, कार भी अलग थी। माही ने सुबह वाली कार को याद किया। दोनों गाड़ियों के बीच कोई समानता नहीं थी। उसके मन में सवाल और बढ़ गणये कई बातें थीं जो एक-दूसरे से मेल नहीं खा रही थीं। लेकिन अभी उसके पास उत्तर नहीं थे, केवल प्रश्न थे। और प्रश्नों के आधार पर किसी निष्कर्ष तक पहुँचना जल्दबाजी होती।

इसलिए उसने वापस लौटने का निर्णय लिया। पहले ही काफी समय निकल चुका था, और सच कहे तो पूरे दिन में पहली बार उसे मन का ख्याल तीव्रता से आया। शादी की तारीख, तैयारियाँ, परिवार और फिर यह सब। रात लगभग ग्यारह बजे वह घर पहुँचा। मन से बात हुई। वह उससे झूठ नहीं बोलना चाहता था, इसलिए उसने इतना भर कहा कि वह किसी काम से गुरुग्राम गया था। लेकिन किस काम से गया था... यह नहीं बताया। अभी वह स्वयं भी पूरी सच्चाई नहीं जानता था, और अधूरी बातों को अधूरा ही रहने देना कई बार समझदारी होती है। रात को बिस्तर पर लेटते समय उसे अचानक एहसास हुआ— पिछले कुछ महीनों में वह कई बार देर से घर लौटा था, लेकिन कारण हर बार अलग था। पहले... किसी अपने के लिए, और आज... किसी की पुकार सुनकर।

अध्याय - 163

“एक सही कदम”

कल का पूरा दिन आज उसके मन में बार-बार घूम रहा था— गुरुग्राम का वह मकान, ऊपर से आई छींक की आवाज़, बाहर लगा ताला और वह संदेश— "मुझे नर्क में जाने से बचा लो..." नाश्ता करने के बाद उसने अपना फोन उठाया। एक नंबर खोजा, फिर एक परिचित नाम पर उसकी उंगली रुक गई— वही इंस्पेक्टर, जिसकी सहायता से उसने कुछ समय पहले मन के साथ हुए आर्थिक धोखाधड़ी के मामले में मदद ली थी। फोन मिलाया, कुछ अपनी बातों के बाद माही सीधे मुद्दे पर आ गया। उसने पूरा घटनाक्रम विस्तार से बताया— संदेश, लोकेशन, कल का निरीक्षण और अपने संदेह। इंस्पेक्टर ने पूरी बात ध्यान से सुनी। "देखो अस्तित्व... हो सकता है मामला वैसा हो जैसा तुम सोच रहे हो। और ये भी हो सकता है कि कोई गलतफहमी हो। लेकिन अगर किसी लड़की ने मदद माँगी है तो बात को नजरअंदाज भी नहीं किया जा सकता।" कुछ देर की चर्चा के बाद इंस्पेक्टर ने संबंधित थाना क्षेत्र से संपर्क करने का आश्वासन दिया। माही ने फोन रख दिया। अब मामला उसके हाथ से निकल चुका था। उसे लगा उसने एक नागरिक के तौर पर जो करना चाहिए था, वह कर दिया है।

लेकिन मन फिर भी बेचैन था। पूरा दिन वह बार-बार फोन की तरफ देखता रहा। और फिर लगभग सात बजे उसके फोन की घंटी बजी। उधर वही इंस्पेक्टर थे। "तुम्हारा संदेह सही था।" माही एकदम सीधा बैठ गया। "क्या हुआ भाई?" "स्थानीय पुलिस ने वहाँ जाकर जांच की और घर के भीतर से एक लड़की बरामद हुई है।"

"सुहाना?"

"हाँ।" उत्तर छोटा था, लेकिन उसका प्रभाव बहुत बड़ा। इसके बाद इंस्पेक्टर ने प्रथमिक जांच में जो दिखा वो उसे बताया, जिसे सुनकर माही का मन भारी हो गया। "सुहाना पिछले कई महीनों से उस घर में काम कर रही थी। बाहर की दुनिया के लिए वह घरेलू सहायिका थी, लेकिन पुलिस को जो स्थिति मिली, वह उससे कहीं भयावह थी। उसे घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं थी। दिन भर उससे काम कराया जाता और रात होते ही उसे ऊपर के एक छोटे स्टोर रूम में बंद कर दिया जाता था। वहाँ से निकलने का कोई रास्ता नहीं था।"

बाकी बातें पुलिस अपनी विस्तृत जाँच में सामने लाएगी—लेकिन इतना स्पष्ट था कि सुहाना वहाँ अपनी इच्छा से नहीं रह रही थी।”फोन समाप्त होने के बाद माही काफी देर तक चुप बैठा रहा। उसे संतोष था कि उसने सही समय पर सही कदम उठाया। कम से कम एक लड़की अब उस कैद से बाहर थी।

लेकिन उसके भीतर एक सवाल अब भी बाकी था— अगर सुहाना ने उसे याद करके मदद माँगी थी... तो आखिर ऐसा क्या था, जो उसे इस हालत तक ले आया था?

“भाई”

अगले दिन माही अपने उसी पुलिस मित्र की सहायता से सुहाना से मिलने पहुँचा। फिलहाल उसे महिला थाने की निगरानी में रखा गया था। उसी दिन उसे अदालत में प्रारंभिक बयान और गवाही के लिए भी प्रस्तुत किया गया था। शाम को वापस लौटने के बाद कुछ सीमित लोगों को उससे मिलने की अनुमति दी गई। माही को उसके भाई के रूप में मिलने दिया गया। कमरे में प्रवेश करते ही सुहाना की नजर उस पर पड़ी। एक उतावली निगाह से वो उसे देखे जा रही थी, मानो विश्वास कर रही हो कि सामने खड़ा व्यक्ति सचमुच वही है। फिर उसकी आँखें भर आईं। "भाई... आप आ गए... मुझे विश्वास था कि आप आओगे।" इतना कहते ही वह रो पड़ी। उसने उसे शांत होने को कहा— "अब सब ठीक है। पहले खुद को संभालो।" काफी देर बाद जब वह सामान्य हुई तो माही ने धीरे से पूछा— "आखिर हुआ क्या था?", अब धीरे-धीरे उसने अपनी कहानी सुनानी शुरू की। जिस लड़की के खिलाफ उसने बयान दिया था, वह कभी उसके साथ कोचिंग में पढ़ती थी। पढ़ाई में अच्छी थी, समझदार भी। लेकिन बाद में उसने सफलता का दूसरा रास्ता चुन लिया— जल्दी अमीर बनने का रास्ता। पहले संपर्क कम हुआ, फिर एक दिन अचानक उसने नौकरी का प्रस्ताव दिया।

"अच्छी नौकरी है। रहने की व्यवस्था भी है। पैसों की चिंता नहीं करनी पड़ेगी।" सुहाना उस समय संघर्ष के दौर से गुजर रही थी। "कोरोना महामारी में मेरे माता-पिता दोनों दुनिया छोड़ चुके थे।" इतना कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई। उसने कुछ क्षणों के लिए अपनी आँखें पोंछीं, फिर बोली— "छोटा भाई है मेरा। उसे हॉस्टल में रखा हुआ है। उसकी पढ़ाई की जिम्मेदारी भी मेरी ही है। इसलिए मैंने बिना ज्यादा सोचे उसकी बात मान ली।" शुरूआती कुछ दिन सब ठीक रहा, धीरे-धीरे उसे समझ आने लगा कि मामला वैसा नहीं था जैसा बताया गया था। घर में अजीब तरह के लोग आने-जाने लगे थे। कुछ बातचीत उससे छिपाकर की जाती और कई बार उसे ऐसे कामों के लिए कहा जाता, जिनका उस नौकरी से कोई संबंध नहीं था। फिर एक दिन उसे पता चला कि उस घर में मानव तस्करी और दूसरे गैर-कानूनी कामों का पूरा नेटवर्क चल रहा था। जब उसने विरोध करना शुरू किया तो व्यवहार भी बदल गया। "वो मेरे साथ मारपीट करती थी। कई-कई बार समय

पर खाना भी नहीं देती थी। और रात को... रात को स्टोर रूम में सोने भेज देती थी, जहाँ कबाड़ रखा था। मानो मैं इंसान नहीं हूँ। भाई... अगर आप नहीं बचाते तो शायद कुछ दिनों बाद मुझे किसी अरब देश में घरेलू नौकर बनाकर बेच दिया जाता। पता नहीं कितनी लड़कियों की जिंदगी उसने बर्बाद की होगी।

माही शांत बैठा सुनता रहा। अब उसे समझ आने लगा था कि संदेश में इतनी घबराहट क्यों थी। "लेकिन तुम्हारे पास मेरा नंबर कैसे था?" उसने पूछा। अपने आंसु पोंछते हुए उसने बताया "फोन तो मेरे पास था नहीं, लेकिन आपका नंबर मुझे जुबानी याद था। जब भी मौका मिलता... इसी के दूसरे फोन से आपको कॉल या मैसेज कर देती थी। फिर तुरंत डिलीट कर देती। डर लगता था कहीं पकड़ ना ली जाऊँ।" वह फिर से गंभीर हो गई। "भाई... छोटे भाई को मुसीबत में नहीं डाल सकती थी। और सच कहूँ... जितने लोग मेरे अपने कहलाते हैं, उन पर भी उतना विश्वास नहीं था जितना आप पर था। इसलिए आपको परेशान किया।" "आपका ये एहसास न कभी भूल पाऊंगी... न चुका पाऊंगी।" माही कुछ बोल पाता, उससे पहले एक महिला पुलिसकर्मी अंदर आ गई। मुलाकात का समय समाप्त हो चुका था। सुहाना को वापस ले जाया गया। वह जाते-जाते एक बार फिर मुड़ी और धीमे से बोली— "थैंक यू, भाई।" दरवाजा बंद हो गया। माही कुछ देर वहीं बैठा रहा। उसके मन में बार-बार एक ही विचार आ रहा था— दुनिया कितनी अजब गजब है। एक तरफ लोग अपनी बेटियों के लिए अच्छे घर खोजते हैं, और दूसरी तरफ कुछ लोग किसी की मजबूरी को व्यापार बना लेते हैं। कुछ देर बाद वह वहाँ से निकल पड़ा। लेकिन अब उसे सुहाना की सुरक्षा की उतनी चिंता नहीं थी। फिलहाल वह पुलिस संरक्षण में सुरक्षित थी। अब चिंता किसी और बात की थी— जब यह मामला समाप्त होगा, तब वह जाएगी कहाँ? उसके पास अपना कहने के लिए था ही कौन? इन्हीं विचारों के साथ वह अपनी परछाइयों के साथ घर के लिए चल दिया।

अध्याय - 165

“छोटे-छोटे सपने”

इतने दिनों की भागदौड़ और मानसिक थकान के बाद आज माही और मन को फुर्सत से बात करने का अवसर मिला था।

"देखो..."

मन ने एक तस्वीर भेजते हुए कहा। "अभी आपके पास जो pic भेजी है ना... वैसा वाला लहंगा लेना है मुझे।" माही ने तस्वीर खोली।

"अच्छा है।"

"अच्छा है नहीं..." मन ने तुरंत टोका। "50 हजार का है। और वो लड़के वालों की तरफ से होता है। अब बताओ।"

माही ने पूछा:

“आपको पसंद है?”

"हां।"

"आप पर जंचेगा?"

"हां।"

"तो फिर इससे आगे कुछ मायने नहीं रखता।"

"सच?"

"हां।"

और हमारी सांझा खुशी के बीच पैसों को मत लाया करो। जिस दिन मुझे लगेगा कि बात हमारी क्षमता से बाहर जा रही है, मैं खुद कह दूंगा।"

कुछ देर कहना-सुनना थमने के फिर एक बहुत धीमी आवाज आई—

"Sweet..."

"हां?"

"एक बात पूछूं?"

"पूछो।"

"क्यों हो इतने अच्छे?"

एक भिन्न अनुभूति के साथ वो बोला।

"मैं बिल्कुल भी अच्छा नहीं हूं।

मैं तो बस..."

"क्या?"

"कुछ नहीं।"

"मेरे लिए अच्छे हो।

तुम ये अच्छा और बुरा छोड़ो।

जो पसंद है वो करो।"

"सच्ची?"

"हां।"

"तो मेकअप भी अच्छे वाला लूंगी। वो भी आपको..." "फिर वही बात।"

"अच्छा... Sorry." "आपको जो लेना है, जैसा लेना है लो। माही ने दोहराया

और बस बिल आपको दे दूँ?" "मन" ने शरारती लहजे में कहा।

"हां।"

हाय....

तुम ना मिलते तो मैं आज ऐसी ना होती..

कैसी...

इतनी खर्चीली...

तभी तो मिला हु मैं तुम्हे..

हा...इसलिए अब मैं सब के सामने चिल्लाऊंगी

क्या...?

"अरे... देखो कितने अच्छे पापा मिले हैं मेरे होने वाले चुन्नु-मुन्नु को।"

"Haaapp..." माही के पास शर्मिने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

"शरारती बच्चे।

मारोगे?" "अगर हां... तो मैं चली मायके।"

अबकी बार दोनों तरफ हंसी छूट गई।

कई दिनों बाद यह ऐसी बातचीत थी जिसमें भविष्य की चिंता नहीं... भविष्य का आनंद था। कुछ देर बाद माही ने जम्हाई लेते हुए कहा— "चल अब रखा मुझे नींद आ रही है।"

"Okay. Good Night." "Sweet..." "Good Night."

लेकिन आज नींद आने से पहले माही के चेहरे पर जो मुस्कान थी... उसकी वजह कोई लहंगा नहीं था। कोई मेकअप नहीं था। वजह थी... उन छोटे-छोटे सपनों की दुनिया... जो धीरे-धीरे उनके होने वाले घर में उतर रही थी।

अध्याय - 166

“मेरे हो”

अगली रात जब मन का खरगोश स्क्रीन पर प्रकट हुआ, तब माही घर की छत पर बैठा था। हाथ में चाय का कप था, और दूर खेतों की दिशा से किसी ट्रैक्टर पर बजते 90 के दशक के गीत और उन पर थिरकती निशा। "Sweet...heart"

"जी।"

"क्या कर रहे हो?"

"प्रेम को महसूस कर रहा हूँ।"

उधर से भी प्रीत की बूंदें स्क्रीन पर गिरीं— "Hayyye..."

कैसे?"

"90's Hits के साथ।"

"वैसे मेरे को पसंद नहीं हैं 90's वाले गाने।"

"तुम नए दौर के बच्चे हो। Gen Z वाले।"

"अच्छा?"

"हां।"

"और तुम Senior Citizen।"

"और क्या।"

अबकी बार मन खिलखिला उठी। "हां तो... मेरी सहेलियां मुझसे पूछेंगी ना तुम्हारे बारे में।"

"तो?"

"मैं कह दिया करूंगी— मुझे बुढ़ा मिल गया।" उसकी हँसी जैसे फोन से निकलकर सीधे छत तक पहुँच गई। "हां, क्यों नहीं। बिल्कुल कहिएगा। वैसे भी तुमसे तो बड़ा हूँ।"

और बातों में तो अठारहवीं सदी के।" मन ने व्यंग्य किया।

"ये भी कहोगी?"

"हां, कहूँगी।" "क्योंकि..." वह रुक गई।

"क्योंकि?"

"मेरे हो।"

"क्या हूँ?"

"वो..."

"वो क्या?"

"बताओ।"

"मेरा मना।"

"अच्छा।"

और इतने में उसने बात बदल दी। "अच्छा सुनो..." "हां?" "मैं कह रही थी..."

"क्या?" "वो..."

"बताओ भी।"

"आप गुस्सा तो नहीं होगे?"

"नहीं होऊंगा।"

"पक्का?"

"हां।"

"देखो... हम शादी के बाद नई गाड़ी तो लेंगे ना?" "हां।"

"तो मैं सोच रही थी कि अभी ले लेते हैं।" माही ने चाय का कप नीचे रख दिया। "अभी?"

"हां।"

"देखो, वियान की भी इच्छा है। आज हम देखने गए थे।"

"कौन-सी?"

"Maruti Fronx Delta, दस लाख की।" माही सुन रहा था। "पहले शादी कर लेते है..फिर ले लेंगे।" "नहीं..अभी ले लो ना।" "देखो... मुझे ना तो गाड़ियों की ज्यादा

जानकारी है और ना चलानी आती है। तुम दोनों भाई-बहन जानो। जैसा ठीक लगे वैसा करो।"

"मतलब ले लें?"

"हां, ले लो।" और तभी

— "लेकिन अपने नाम से लेना।"

"क्यों?"

"क्योंकि मेरी इच्छा है तुम्हें गिफ्ट करने की।" कुछ सेकंड तक कोई उत्तर नहीं आया, पर आया तो सीधा रूह को सहला गया— "So Sweet... इतना बड़ा गिफ्ट भी कोई देता है?"

"मैं दूंगा। और तुमसे बढ़कर कुछ नहीं है।"

"सच में?"

"हां। हर बार मत पूछा करो।" उधर शायद हर्ष और हया एक साथ उतर आए थे। "ठीक है। तो हम कल जाकर कागज तैयार करा लेते हैं।"

"हां, मुझे बता देना।"

"ठीक है।"

कुछ कुछ लम्हे सांसों के नाम रहे, फिर माही बोला— "अब सो जाओ।"

"नहीं, मुझे बातें करनी हैं।"

"करो।"

"नहीं करनी।"

"तो भागो।"

एक चिढ़ाने वाली इमोजी स्क्रीन पर उभरी, और उसके बाद— "Good Night Sweet



"Good Night." चैट बंद हो गई। माही ने फोन एक तरफ रख दिया। दूर कहीं वही पुराना गीत अब भी बज रहा था और चाय तो कब की खत्म हो चुकी थी, लेकिन उसके होंठों पर एक हर्ष की लकीर अब भी बाकी थी। जिस पर लिखा था— "मेरे हो।"

अध्याय - 167

“प्रथम प्रश्न?”

अब हड़ताल भी अपने अंतिम पड़ाव की ओर बढ़ रही थी। सरकार और पदाधिकारियों के बीच बातचीत का दौर शुरू हो चुका था। लग रहा था कि लंबे समय से चली आ रही रस्साकशी अब किसी निष्कर्ष तक पहुँच जाएगी। माही की इस सब में शुरू से ही रुचि नहीं थी।

अब तो होने का कोई कारण ही नहीं था, सच तो यह था कि वह अपनी ही दुनिया में इतना व्यस्त हो चुका था कि हड़ताल में उसकी भागीदारी लगभग औपचारिक रह गई थी। कभी-कभार चला जाता, हाजरी लगाता, कुछ देर साथियों के बीच बैठता और फिर किसी बहाने वापस लौट आता। ऐसे ही एक दिन वह हड़ताल स्थल से लौट रहा था, तभी फोन पर मन का संदेश आया— "Sweet... पापा के एक दोस्त आपसे बात करेंगे।" "ठीक है।"

कुछ देर बाद एक अनजान नंबर से कॉल आया। "हेलो।" "मैं मानवी के पापा का दोस्त बोल रहा हूँ।" दोनों तरफ से अभिवादन के पश्चात

कुछ साधारण बातें हुईं, उसके बाद उस व्यक्ति ने पूछा— "आप और मानवी खुश हो ना एक-दूसरे से?"

माही को प्रश्न थोड़ा अजीब लगा। "जी, बिल्कुल। तभी तो बात आगे बढ़ी है।"

— "आपके घरवालों को तो कोई आपत्ति नहीं है ना?" "जी नहीं।" "एक बार फिर से विचार कर लीजिए। आखिर अंतर्जातीय विवाह का मामला है। दोनों परिवारों की इज्जत का प्रश्न है। आपके पिताजी भी शिक्षक रहे हैं, इसलिए थोड़ा देख लीजिए।" माही अब खुद को कुछ उलझा महसूस कर रहा था। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि सामने वाला व्यक्ति आखिर कहना क्या चाहता है। यदि कोई समस्या थी तो सीधे क्यों नहीं कह रहा? और यदि कोई समस्या नहीं थी तो यह बातचीत क्यों हो रही थी? सबसे बड़ी बात— जब स्वयं ताऊ जी आकर सारी बातें तय कर चुके थे, तो अब इस प्रश्न का औचित्य क्या था? फोन कटने के बाद भी माही काफी देर तक उसी विषय पर सोचता रहा। वह उन अंकल की बातों का अर्थ निकालने का प्रयास करता रहा। क्या वह सचमुच शुभचिंतक थे? या

फिर किसी और का संदेश लेकर आया थे? केवल अनावश्यक सलाह दे रहे थे? जवाब उसके पास नहीं था, सिर्फ अनुमान थे।

रात को मन का फोन आया। माही ने पूरी बात उसे बता दी। मन ने बात सुनकर सहज स्वर में कहा— "आप ज्यादा मत सोचो। उन्होंने वैसे ही पूछ लिया होगा और सलाह दे दी होगी। इस बात को ज्यादा महत्व देने की जरूरत नहीं है।" एक पल सोचने के बाद उसने भी यही उचित समझा। आखिर हर बात का अर्थ निकालना भी कहाँ तक उचित था। इसलिए उसने उस फोन को नजरअंदाज करने का निर्णय ले लिया। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जो उत्तर न मिलने पर भी मन में बने रहते हैं। यह प्रश्न भी उन्हीं में से एक था। कौन था वह व्यक्ति? और उससे भी बड़ा प्रश्न— उसे यह सब पूछने की आवश्यकता क्यों पड़ी? फिलहाल इन दोनों प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था।

अध्याय - 168

“दर्पण के सामने”

(एक रंगीन अधूरी ख्वाहिश)

कैलेंडर की तारीखें मानो रोज एक कदम शादी की ओर बढ़ रही थीं। इन्हीं तैयारियों के सिलसिले में आज माही गुरुग्राम के एक बड़े शॉपिंग मॉल में आया हुआ था। घरवालों ने कुछ सामान की जिम्मेदारी उसके हिस्से भी छोड़ी थी— मॉल में भीड़ ज्यादा थी। चारों ओर रोशनी, संगीत और लोगों की चहल-पहल थी। कहीं परिवार खरीदारी में व्यस्त थे, और कहीं युवा जोड़े हाथों में बैग लिए एक दुकान से दूसरी दुकान तक घूम रहे थे। माही एक शोरूम में खड़ा कपड़ों की कतार देख रहा था। उसकी नजर एक गहरे लाल रंग के लहंगे पर जाकर ठहर गई। “मन” की महक होंठों पर फैल गई। उसे “वो” याद आ गई। उसकी आदत थी— किसी भी चीज को देखते ही पहले उसका उपयोग नहीं, उसमें ‘मन’ कैसी लगेगी, यही विचार आता था। वह उस परिधान को देखता रहा। फिर उसके अंतर्मन ने अपने आप एक दृश्य रच दिया। उस लाल जोड़े के भीतर उसे ‘मन’ का चेहरा उभरता हुआ महसूस हुआ— सिर्फ चेहरा नहीं, उसके अस्तित्व की वह निश्छल चमक। वहीं मोहक मुस्कान और हथेली पर रची हुई मेहंदी की महक। उसके भीतर से एक गहरी आह निकली— एक बेसब्री जो कई महीनों से दबाकर रखी गई थी, आज शायद वो पिघलने लगी थी। उसे लगा कि वो उस लाल जोड़े को छू ले, उसे अपनी आँखों में बसा ले और उसी पल उड़कर अपने ‘मन’ के पास पहुँच जाए। इंतज़ार अब एक पहाड़ जैसा प्रतीत हो रहा था। हर पल जैसे किसी युग की तरह बीत रहा था। मन में बस एक ही सवाल— “कब आएगा वो दिन....”

वो थोड़ा आगे बढ़ा तो फिर से एक दूसरा लाल रंग, वही मुस्कान, वही आँखें और माथे पर उतरती हुई हल्की-सी लाजा। एक पल के लिए उसे लगा जैसे वह सचमुच उसके सामने खड़ी हो— कुछ पूछ रही हो, कुछ कह रही हो और फिर बिना वजह हँस रही हो। अभी वह केवल एक कल्पना थी और कुछ ही समय बाद वास्तविकता बनने वाली थी। उसने महसूस किया कि कितना मुश्किल होता है खुद को संभालना। मिनट पहले ही समझाया उसका मन फिर से बहकने चल पड़ा। “अभी नहीं...” उसने जैसे अपने भीतर उठती बेसब्री को फिर से थाम लिया।

दूसरी दुकान में कुछ जोड़े विवाह की खरीदारी कर रहे थे। एक युवक अपनी होने वाली पत्नी को अलग-अलग रंग दिखा रहा था। वह हर बार किसी न किसी बात पर मना कर देती और फिर दोनों बनावटी झगड़ा करते। उसे एहसास हुआ कि वह भी अब उसी दुनिया के दरवाजे पर खड़ा है। अभी तक उसकी और 'मन' की सारी मुलाकातें फोन के भीतर सिमटी हुई थीं, और अब... अब वह उस समय की प्रतीक्षा कर रहा था जब किसी दुकान में खड़े होकर उसे भी कहना होगा— "तुम्हें जो पसंद है, वही ले लो।" विचार आते ही भीतर के भाव फिर से चेहरे पर तैर गए। वह एक अन्य सेक्शन की ओर बढ़ा। वहाँ पुरुषों के परिधान रखे थे। उसने कुछ शेरवानियाँ देखीं, कुछ कुर्ते, कुछ जैकेट। लेकिन सच तो यह था कि आज उसे अपने कपड़ों में कोई विशेष रुचि नहीं थी। उसकी सारी उत्सुकता उस व्यक्ति के लिए थी जो अभी यहाँ मौजूद नहीं थी। वह 'मन' को किसी महंगे परिधान में नहीं देख रहा था, वह उसे उस खुशी में देख रहा था जिसका इंतजार उसने वर्षों से किया था। यही कारण था कि उसे हर सुंदर वस्तु में 'मन' दिखाई दे रही थी— किसी रंग में, किसी आभूषण में, किसी चुनरी में, किसी मुस्कान में। लेकिन उसके विचारों में आकर्षण से अधिक अपनापन था। वह सौंदर्य को देख रहा था— भोगने के लिए नहीं, सहेजने के लिए। जैसे कोई माली फूल को देखकर प्रसन्न होता है— उसे तोड़ने के लिए नहीं, उसे खिलता देखने के लिए। प्रेम का सबसे सुंदर सौंदर्य वह नहीं होता, जिसे आँखें देख लें।

सबसे उत्कृष्ट सौंदर्य वह होता है, जिसे देखने से पहले ही मन उसे श्रेष्ठ मान चुका हो। और शायद प्रेम का असली अर्थ ही वो होता है, जहाँ प्रतीक्षा अधीर कर देती है.. कुछ देर बाद माही ने आवश्यक सामान खरीदा और बाहर निकल आया। मॉल की चमक पीछे छूट रही थी, — और ज़ेहन में आई ये पंक्तियाँ, जो उसकी अधीरता को कुछ यूँ बयां कर रही थी:

“तुम्हें देखा तो था...
 पर उतना नहीं,
 जितना प्रेम देखना चाहता था।
 दफ़्तर की चंद मुलाकातें
 मन की प्यास कहाँ बुझा पाती हैं।
 इसलिए यहाँ के हर दर्पण में
 मैं तुम्हें नहीं,
 अपने अधूरे दीदार को पूरा होते देख रहा था”

“एक लिफाफा, पचास लाख और एक प्रश्न”

आज माही फुर्सत में था। ऐसी फुर्सत जो उसे बहुत कम नसीब होती थी। दोपहर का समय था। कमरे में अकेला बैठा वह मोबाइल पर अपनी पसंद के कुछ वीडियो देख रहा था— वे वीडियो जिन्हें वह केवल तब देखता था जब उसके पास समय ही नहीं, मन भी होता था। जब वह दुनिया से नहीं, खुद से मिलने बैठता था। मोबाइल की स्क्रीन पर पल पल बदलते दृश्य। तभी बाहर से गेट खटखटाने की आवाज आई। “कोई है?” आवाज दोबारा सुनाई दी। माही की तंद्रा टूटी, वह उठकर बाहर आया और गेट खोला। सामने एक अपरिचित व्यक्ति खड़ा था, हाथ में कुछ कागज थे। “आप ही अस्तित्व अवाना हैं?” “जी।” उस व्यक्ति ने अपना परिचय दिया। वह जिला न्यायालय के एक अधिवक्ता का सहायक था और एक कानूनी नोटिस सुपुर्द करने आया था। “नोटिस”। यह शब्द ही उसके लिए किसी अचरज से कम नहीं था। उसका और नोटिस का क्या संबंध? उसने तो ऐसा कुछ किया भी नहीं था। फिर भी उसने कागज ले लिए, औपचारिकताएँ पूरी हुईं। माही ने पानी के लिए पूछा, लेकिन उस व्यक्ति ने विनम्रता से मना कर दिया।

उसने कमरे में आ कर लिफाफा खोला। भीतर एक विधिक नोटिस था। भेजने वाली— “रिया मल्होत्रा”। नाम पढ़ते ही उसे समझते देर नहीं लगी कि मामला किससे जुड़ा हुआ है। उसने आगे पढ़ना शुरू किया। आरोप थे— आपने मेरे घर की रेकी की, मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाया, आपने मेरी कर्मचारी को बहकाया, पुलिस को झूठी सूचना दी, और साजिश में मुझे बदनाम किया। और अंत में— ₹50,00,000 का मानहानि दावा। माही की पकड़ कागज पर थोड़ी कस गई। “पचास लाख।” उसने मन ही मन दोहराया। यह राशि केवल एक संख्या नहीं थी; यह एक सामान्य परिवार के व्यक्ति की कई वर्षों की कमाई से भी बड़ी थी। कहाँ वह और घर वाले शादी की तैयारियों में लगे हुए थे, वहीं मन लहंगों और मेकअप की बातें कर रही थी, और यहां यह नया तूफान।

वह कुर्सी पर बैठ गया। नोटिस को फिर से पढ़ा। आरोप वही थे, शब्द वही थे, बस हर नजर के साथ अपना भार बढ़ा जाते, उसे एहसास हुआ कि किसी की मदद करना और

किसी की लड़ाई अपने सिर ले लेना... दो अलग बातें होती हैं। लेकिन अब पछताने से क्या होना था? घटना हो चुकी थी, नोटिस उसके हाथ में था, और रिया मल्होत्रा स्पष्ट कर चुकी थी कि वह पीछे हटने वालों में से नहीं है। कुछ देर बाद माही ने नोटिस मोड़ा, सावधानी से वापस लिफाफे में रखा और मोबाइल उठा लिया।

अब घबराने का नहीं... सब कुछ समझने का समय था।

उसने सबसे पहले एक नंबर खोजा।

“दो मोर्चे”

करीब आधे घंटे तक किसी से बात करने के बाद उसने फोन रखा ही था कि मारुति के शोरूम से वियान का कॉल आ गया। "जी, मैंने सभी जरूरी औपचारिकताएँ पूरी कर दी हैं। आप पच्चीस प्रतिशत राशि जमा कर दीजिए, बाकी फाइनेंस हो जाएगा।" "ठीक है।" माही ने संक्षिप्त उत्तर दिया। "और हाँ... गाड़ी किसी शुभ दिन ही ले जाइएगा।" "ओके।" फोन कान से हट चुका था, लेकिन सच यह था कि इस समय माही का ध्यान गाड़ी पर था ही नहीं, उसने एक क्षण के लिए मन का मुस्कराता चेहरा याद आया और फिर एक विचार उसके भीतर उठा— "क्या उसे बता देना चाहिए?" तभी दूसरा विचार आया— "नहीं।" अगर मन को पता चला तो वह चिंता करेगी, और अगर बात उसके घर तक पहुँच गई तो? उसने उस संभावना की कल्पना भर की। अंतरजातीय विवाह, वैसे ही समझा के बड़े हिस्से को सहज स्वीकार नहीं होता। ऊपर से किसी लड़के के खिलाफ पचास लाख का कानूनी नोटिस— कितने लोग होंगे जो पूरी बात समझने की कोशिश करेंगे? ज्यादातर तो केवल निष्कर्ष निकालेंगे— "कुछ न कुछ किया होगा तभी नोटिस आया है।" यही सुनने को मिलेगा। नहीं, फिलहाल यह बात यहीं रुकनी चाहिए। कम से कम तब तक... जब तक उसे स्वयं स्थिति स्पष्ट न हो जाए।

अगले कुछ दिन उसने लगातार प्रयास किए। पहले उसने उस महिला तक पहुँचने की कोशिश की, फिर समझौते की संभावना तलाशने की, कुछ परिचितों के माध्यम से भी बात करवाने का प्रयास किया। लेकिन हर बार परिणाम एक ही रहा— इन्कार, रिया मल्होत्रा समझौता नहीं चाहती थी, वह पीछे हटने के मूड में नहीं थी। धीरे-धीरे माही को यह स्वीकार करना पड़ा कि अब केवल सद्भावना से काम नहीं चलने वाला। कुछ लड़ाइयाँ ऐसी होती हैं जहाँ सही होना पर्याप्त नहीं होता, अपने पक्ष को साबित करने की तैयारी भी करनी पड़ती है। अब उसके सामने केवल एक रास्ता बचा था— मजबूत कानूनी सहायता। और उसी दिशा में उसने कदम बढ़ाना शुरू कर दिया। लेकिन भीतर कहीं एक चिंता लगातार बनी हुई थी। उसे अपने पक्ष की मजबूती पर जितना भरोसा था... उतना ही अंदाज़ा सामने वाले की पहुँच का भी था। यही कारण था कि रात को जब वह सोने जाता... तो रिया मल्होत्रा का नोटिस और मन का मुस्कराता चेहरा अक्सर एक ही विचार में बदल जाते। और वह विचार था— "अगर यह मामला लंबा चला तो?"

अध्याय - 171

“अनकहे प्रश्न”

माही ने गाड़ी के लिए पच्चीस प्रतिशत राशि जमा कर दी थी। साथ ही उसे घर लाने की एक निश्चित तिथि भी तय हो चुकी थी। शादी की तैयारियाँ अपनी चाल से आगे बढ़ रही थी। इन सबके बीच माही और मन की बातचीत भी रोज़ होती थी, कभी फोन पर, कभी संदेशों में। " उनकी बातचीत चलती जरूर थी, मगर अब उसमें पहले वाली गर्माहट नहीं बची थी। वो सहज हँसी, वो बिना वजह की छेड़छाड़, वो आधी रात तक चलने वाली बेकार की बातें... जाने कहाँ खो गई थीं। कारण कम से कम माही को पता था— रिया मल्होत्रा का नोटिस उसके मन पर लगातार बोझ बनकर बैठा हुआ था। दिन में चाहे वह जितना व्यस्त रहता, रात होते ही वही प्रश्न सामने आकर खड़ा हो जाता— " अगर इसका असर शादी पर पड़ा तो?" इसी विचार ने उसकी सहजता छीन ली थी। अब कई बार मन कुछ कहती और वह आधा सुनता, उसे खुद महसूस होने लगा था कि वह पहले जैसा नहीं रहा।

लेकिन हैरानी की बात यह थी कि बदलाव केवल उसकी तरफ नहीं था। मन भी कुछ बदली-बदली सी लग रही थी। पहले वह छोटी-सी बात पर भी दस संदेश भेज देती थी, अब कई बार एक शब्द में उत्तर दे देती। पहले हर नई चीज़ सबसे पहले माही को दिखाती थी, अब कभी-कभी कई घंटों बाद याद आता कि उसे बताना भी था। माही यह सब देख रहा था, और जितना देख रहा था, उतना ही उलझता जा रहा था। एक पल को उसके मन में विचार आता— "क्या उसे किसी तरह इस नोटिस की जानकारी मिल गई है?" फिर वह खुद ही इस विचार को नकार देता। अगर ऐसा होता तो वह सीधे पूछती, या शायद नाराज़ होती, या चिंता व्यक्त करती। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं था। उधर मन भी अपने स्तर पर अनुमान लगा रही थी। उसे लगता कि शायद शादी की जिम्मेदारियाँ अचानक बढ़ गई हैं, शायद घर की तैयारियाँ, पैसों का दबाव, या फिर आने वाले जीवन की चिंताएँ। वह भी कारण खोजती रहती, लेकिन उसे भी कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता।

इस तरह दोनों एक-दूसरे में परिवर्तन तो देख रहे थे... लेकिन उसके पीछे छिपी वजह से अनजान थे। और कई बार रिश्तों में दूरी किसी झगड़े से नहीं आती, वह उन बातों से आती है जो कही नहीं जातीं। इन दिनों उनके बीच भी कुछ ऐसा ही था। लेकिन उस भविष्य तक पहुँचने वाली राह पर अब कुछ अनकहे प्रश्न भी साथ चलने लगे थे। दोनों को एक-दूसरे की मौजूदगी से ज्यादा एक-दूसरे की खामोशी महसूस होने लगी थी।

“अनचाही चैतावनी”

सरकार और कर्मचारी संगठनों के बीच कई दौर की बातचीत के बाद आखिरकार हड़ताल समाप्त हो चुकी थी। कुछ माँगें मान ली गई थीं, कुछ भविष्य के लिए छोड़ दी गई थीं, लेकिन इतना पर्याप्त था कि कर्मचारी वापस अपने कार्यस्थलों पर लौटने लगे। माही भी अब नियमित रूप से दफ्तर जाने लगा था। हालाँकि इस समय उसकी ड्यूटी एक विशेष केंद्रीय कार्यक्रम में लगी हुई थी, इसलिए पिछले कुछ दिनों से उसे अपने मूल कार्यालय के बजाय दूसरे कार्यालय में रिपोर्ट करना पड़ रहा था। उस दिन भी वह अपने सामने रखी रिपोर्टों और आँकड़ों का मिलान कर रहा था। ज्यादा शोर नहीं था, कभी-कभार कंप्यूटर के की-बोर्ड की आवाज़ सुनाई दे जाती। तभी कार्यालय का सेवादार भीतर आया—

"सर... आपको बाहर कोई बुला रहा है।" "कौन?" "पता नहीं सर, लेकिन आपके बारे में पूछ रहे थे।" "ठीक है, मैं देखता हूँ।" वह कुर्सी से उठा और बाहर आ गया। बाहर सड़क किनारे एक गाड़ी खड़ी थी, उसमें दो व्यक्ति बैठे थे, दोनों अपरिचित। उन्होंने माही को पास बुलाया— "आइए, बैठिए।" लेकिन माही ने गाड़ी की ओर बढ़ने के बजाय सामने बनी कॉफी शॉप की ओर इशारा किया— "वहाँ बैठकर बात कर लेते हैं।" दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा, फिर सहमति में सिर हिला दिया।

कुछ देर बाद तीनों कॉफी शॉप में बैठे थे। हाल-चाल जानने से बातें शुरू हुईं, फिर उनमें से एक व्यक्ति ने सीधे पूछा— "आपका रिश्ता हो रखा है ना?" "जी।" "कहाँ?" माही ने उसे देखा—

"सर, मैं पूछ सकता हूँ कि आप यह सब क्यों जानना चाह रहे हैं?" उस व्यक्ति ने कॉफी का कप मेज पर रखा। "वो हम आपको नहीं बताएँगे,

लेकिन इतना जरूर कहेंगे कि आप उस रिश्ते से पीछे हट जाइए।" माही को लगा जैसे उसने कुछ गलत सुन लिया हो।

"क्या?"

"जो आपने सुना।"

"लेकिन क्यों?"

"क्योंकि आप जो कर रहे हैं वो ठीक नहीं है। वो लड़की आपकी बिरादरी की नहीं है। ऐसे मामलों से दो बिरादरियों में वैमनस्य बढ़ता है। इसलिए आपसे कह रहे हैं... वहाँ से पीछे लौट जाइए। आप समझदार आदमी लगते हो, उम्मीद है बात समझोगे।" इतना कहकर दोनों उठने लगे। लेकिन इस बार माही भी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ— "एक मिनट! आप लोग हैं कौन? और इस मामले से आपका क्या संबंध है?" उनमें से एक व्यक्ति मुस्कराया— "वो आप छोड़िए। हमने जो कहा है... उस पर ध्यान दीजिए।" और फिर दोनों बाहर निकल गए।

गाड़ी सड़क पर दूर जा चुकी थी। माही वहीं खड़ा रह गया। कॉफी उसके सामने रखी थी, लेकिन अब उसका स्वाद लेने की इच्छा नहीं बची थी। वह धीरे से वापस अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

रिया मल्होत्रा का नोटिस, फिर मन का बदला हुआ व्यवहार और अब यह मुलाकात। क्या ये सब अलग-अलग घटनाएँ थीं? या सब एक ही धागे से जुड़ी हुई थीं?

वह समझ नहीं पा रहा था। लेकिन एक बात पहली बार उसे स्पष्ट महसूस हुई— अब मामला केवल उसका नहीं रह गया था। जो लोग उसके जीवन का हिस्सा तक नहीं थे... वे भी उसके निर्णयों में दखल देने लगे थे। और यह विचार उसे किसी भी कानूनी नोटिस से अधिक असहज कर रहा था।

शाम तक वह काम करता रहा, लेकिन उसका दिमाग उसी कॉफी शॉप में अटका रहा।

आखिर... कौन थे वो ?

“उलझनों का जाल”

अगली रात माही अपने कमरे में अकेला बैठा था। कमरे में मद्धम रोशनी थी, लेकिन उसके भीतर विचारों की आंधी तीव्र थी। उसने सिर दीवार से टिका लिया और आँखें बंद कर लीं। सुहाना... उसके बाद वह अजीब-सा फोन, फिर रिया मल्होत्रा का नोटिस और अब वे स्वयंभू शुभचिंतक। आखिर चल क्या रहा था? जितना वह समझने की कोशिश करता, उतना ही फंसता जाता। उसे लगने लगा था कि अलग-अलग दिख रही घटनाएँ शायद उतनी अलग थीं नहीं, जितनी दिखाई दे रही थीं। लेकिन उनके बीच संबंध क्या था? उसने मोबाइल उठाया, कुछ देर 'मन' का नाम देखता रहा। क्या उसे सब कुछ बता देना चाहिए? कम से कम वह उसके सबसे करीब तो थी। लेकिन अगले ही पल उसने यह विचार छोड़ दिया। नहीं, वह पहले ही कुछ बदली-बदली-सी लग रही थी। जाने क्यों, यही तो बात थी जो उसे सबसे ज्यादा परेशान कर रही थी। रिया का नोटिस उसे डराता था, अजनबी लोगों की चेतावनी उसे बेचैन करती थी, लेकिन 'मन' का बदला हुआ व्यवहार उसे भीतर तक विचलित कर देता था। वह खुद से पूछता— "आखिर हुआ क्या है? क्या सचमुच कुछ बदला है? या फिर यह केवल मेरे मन का भ्रम है?" प्रश्न ही प्रश्न थे, उत्तर कहीं नहीं। इन सबके बीच उसे महसूस होने लगा था कि वो धीरे-धीरे थक रहा है।

तभी मोबाइल की घंटी बजी। स्क्रीन पर उसके पुलिस विभाग वाले मित्र का नाम चमक रहा था। माही ने तुरंत कॉल उठा ली। फिर अचानक सामने वाले ने ऐसी जानकारी दी कि माही सीधा बैठ गया। उसका चेहरा गंभीर हो गया। वह उत्सुकता में केवल सुनता रहा, बीच-बीच में छोटे-छोटे उत्तर देता— "हां... अच्छा... फिर?" उसकी आंखें फैलती चली गईं। करीब पाँच मिनट बाद कॉल समाप्त हुई। "हां... ठीक है। मैं करता हूँ कुछ।" इतना कहकर उसने फोन रख दिया। लेकिन अब उसके माथे पर पहले से कहीं अधिक गहरी रेखाएँ उभर आई थीं। उसे अभी पता चला था कि रिया मल्होत्रा ने सुहाना की कॉल डिटेल्स निकलवा ली थीं।

और उन रिकॉर्ड्स में माही का नंबर कई बार मौजूद था।

यही संपर्क... जो माही के लिए एक बेबस लड़की की मदद की पुकार थे, अब उसके खिलाफ सबूत की तरह इस्तेमाल किए जा रहे थे।

रिया का पक्ष सीधा था— वह यह साबित करने की कोशिश कर रही थी कि सुहाना और माही पहले से एक-दूसरे के संपर्क में थे, कि दोनों ने मिलकर उसकी छवि खराब करने की साजिश रची और पुलिस को जानबूझकर गलत सूचना दी।

माही कुर्सी पर निढाल-सा बैठ गया। कुछ दिनों पहले तक वह अपनी शादी की तैयारियों में व्यस्त था, और अब हर सुबह कोई नई उलझन उसका इंतजार करती दिखाई देती थी। उसने दोनों हथेलियों से अपना चेहरा ढक लिया। एक लंबी साँस भीतर गई और उससे भी लंबी बाहर निकली। "उफ़..." धीमे स्वर में उसके होंठों से निकला। "ये हो क्या रहा है?" पहले एक समस्या आई थी, अब ऐसा लग रहा था मानो समस्याएँ कतार बनाकर खड़ी हों। एक खत्म होने से पहले दूसरी सामने आ जाती और हर नई परेशानी पिछली से थोड़ी बड़ी होती। कमरे में से "सुकून" स्थाई तौर पर बाहर जा चुका था, अब उसमें चिंता थी, अनिश्चितता थी, और सबसे बढ़कर... एक ऐसा भय था जिसका कोई स्पष्ट चेहरा नहीं था। माही खिड़की के बाहर देखने लगा। उसकी आँखें अंधेरे की गहराई को नाप रही थीं।
बाहर रात थी।

लेकिन उसके भीतर जो अंधेरा उतर आया था... उसकी गहराई का कोई अंदाज़ा नहीं था।

“घर की चौखट तक”

सुबह का समय था। माही दफ्तर जा चुका था। उसके पापा आँगन में कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे और पास ही चाय का कप रखा था। तभी उनके मोबाइल की घंटी बजी। उन्होंने चश्मा थोड़ा ऊपर किया और कॉल उठा ली। "हेलो।" "मास्टर जी, कैसे हो?" "अच्छा हूँ, आप बताओ।" फोन किसी पुराने जानकार का था। एक दूसरे की कुशलता जानने के बाद फिर उधर से आवाज़ आई— "मेरे पास एक सज्जन बैठे हैं, आप बात कर लो उनसे।" "जी।" फिर एक दूसरी आवाज़ सुनाई दी— "राम-राम जी।" "राम-राम।" "देखो जी, आपने अपने बेटे का रिश्ता अपने समाज से बाहर तय किया है।" माही के पापा थोड़ा सतर्क हो गए। "जी?" "हमारे समाज की लड़की का रिश्ता तय हुआ है।" "आप तो पढ़े-लिखे और समझदार परिवार से हैं। आपसे ऐसे फैसले की उम्मीद नहीं थी।" "आपको अपने बेटे को समझाना चाहिए था। इसलिए हम आपसे निवेदन करेंगे कि एक बार फिर से विचार करें।" फिर माही के पापा ने पूछा— "लेकिन आप हैं कौन? और लड़की वालों से आपका क्या संबंध है?" "हम रिश्तेदार हैं।"

"लेकिन लड़की के ताऊ कृष्णपाल जी तो स्वयं हमारे घर आकर रिश्ता तय कर गए थे।"

"वो सब ठीक है, हम उनसे भी बात करेंगे। लेकिन आप अपने बेटे को समझाइए। समाज की रीतियाँ यूँ नहीं तोड़ी जाती।" इतना कहकर सामने वाले ने फोन काट दिया।

फोन समाप्त हो गया, लेकिन बात समाप्त नहीं हुई। काफी देर तक माही के पापा उसी कुर्सी पर बैठे रहे। अखबार खुला था, पर अब उनका ध्यान उसमें नहीं था। धीरे-धीरे भीतर जमा हुई खीझ घर के वातावरण में उतरने लगी। माँ ने कारण पूछा और फिर दोनों के बीच चर्चा शुरू हुई। चर्चा से बहस बनी और बहस से चिंता। शाम तक घर का माहौल बदल चुका था।

उधर माही दिनभर की ड्यूटी पूरी करके घर लौटा। उसे अंदाज़ा भी नहीं था कि आज उसका सामना किससे होने वाला है।

जैसे ही वह घर में दाखिल हुआ, पिता के गुस्से से उसका स्वागत हुआ। स्वर में वह कठोरता थी जिसे माही बचपन से पहचानता था। वह चुपचाप पास जाकर खड़ा हो गया।

"तू हमारी नाक कटवाएगा। एक लड़की के लिए पूरे खानदान में तमाशा बना दिया। दुनिया फोन करके बातें सुना रही है। रिश्तेदार मजाक उड़ा रहे हैं। अब तो मेरे जानकार भी फोन करने लगे हैं। तुझे कोई फर्क नहीं पड़ता होगा... लेकिन हमें पड़ता है।" माही चुप रहा। वह जानता था कि उसके पिता की बातों में गुस्सा कम और चिंता ज्यादा थी, लेकिन फिर भी हर शब्द तीर की तरह लग रहा था।

वह चुपचाप अपने कमरे में चला गया, दरवाजा बंद किया और बिस्तर पर बैठ गया। उसे अपनी आँखों में नमी महसूस हुई। रोना वह नहीं चाहता था, लेकिन भीतर से कुछ बाहर आने को आतुर था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि

आखिर उसका अपराध क्या था?

क्या किसी से प्रेम करना?

या किसी असहाय लड़की की मदद करना?

या फिर दोनों?

खिड़की के बाहर अँधेरा उतर रहा था और भीतर प्रश्न— बहुत सारे प्रश्न। उसे किसी से शिकायत नहीं थी— न अपने पिता से, न समाज से, न परिस्थितियों से। उसे केवल एक उत्तर चाहिए था— जो हो रहा था उसका ? और यह सब उसे ही क्यों भुगतना पड़ रहा है?

अध्याय - 175

“टूटन की दहलीज़”

माही ने अपने वकील के माध्यम से नोटिस का जवाब भिजवा दिया था। उसे उम्मीद थी कि शायद बात यहीं रुक जाएगी, शायद सामने वाला पक्ष भी अपनी सीमाएँ समझेगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। रिया मल्होत्रा ने जवाब से असंतोष जताते हुए अपने कथित साक्ष्यों और दस्तावेजों के साथ मामला न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया, और इसी के साथ समस्या ने एक नया रूप ले लिया। आज पहली बार माही को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना पड़ा। वह सुबह से ही मानसिक रूप से थका हुआ था। अच्छी बात केवल इतनी रही कि प्रारंभिक कार्यवाही के बाद अगली तारीख लगभग दो महीने बाद की दे दी गई। इससे उसे कुछ राहत मिली, कम से कम अब उसके पास समय था— मामले को समझने का, सही कानूनी सलाह लेने का और अपने पक्ष को मजबूत करने का। वह न्यायालय परिसर से बाहर निकला उसे लगा कि दिन का सबसे कठिन हिस्सा शायद समाप्त हो चुका है, लेकिन वह गलत था। तभी उसका फोन बजा, एक अपरिचित नंबर। "हेलो।" "मिस्टर अस्तित्व बोल रहे हो?" "जी।" "मैं मानवी का जीजा बोल रहा हूँ।"— "जी कहिए।" उधर से आवाज़ आई— "भाई, एक सलाह है। अगर मानो तो।" "जी बताइए।" "आप अच्छा नहीं कर रहे। देखो, शादी-ब्याह अपनी जाति में ही होते आए हैं। समाज का जो ताना-बाना सदियों से चला आ रहा है, उसे मत बिगाड़ो। किसी बिना बाप की बेटी को अपने स्वार्थ के लिए बरगलाना अच्छी बात नहीं है।"

इस बार उसका चेहरा लाल हो गया, लेकिन वह चुप रहा। उधर आवाज़ चलती रही— "और ऐसे मामलों का परिणाम कई बार खूनी रंजिश में भी बदल जाता है। इसलिए मेरी सलाह है कि कोई ऐसा काम मत करो जिससे दोनों परिवारों की इज्जत खराब हो। बाकी आपकी मर्जी।" फोन कटने के बाद माही वहीं खड़ा रह गया, काफी देर तक उसे समझ ही नहीं आया कि अभी हुआ क्या है। आज तक किसी ने उससे असहमति जताई थी, कुछ लोगों ने सलाह भी दी थी, कुछ ने समाज की बात भी की थी, लेकिन आज पहली बार किसी ने सीधे उसके चरित्र पर प्रश्नचिह्न लगाया था। उसे एक लड़की को बहकाने वाला कहा था और साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से धमकी भी दे दी थी। रिया मल्होत्रा का मुकदमा एक कानूनी लड़ाई थी, लेकिन यह... यह सीधा उसके सम्मान पर वार था। उसने

वहीं खड़े-खड़े पिछले कुछ दिनों की सारी घटनाएँ लिखकर दीक्षा को संदेश भेज दिया। फिर फोन जेब में रखा और घर की ओर चल पड़ा। उसे गुस्सा आ रहा था, बहुत गुस्सा। और सबसे विचित्र बात यह थी कि इस समय उसे रिया पर सबसे ज्यादा क्रोध नहीं था, उसे क्रोध आ रहा था 'मन' और उसके ताऊ जी पर। वही ताऊ जी जिन्होंने पूरे विश्वास के साथ कहा था— "सबको मना लेंगे, सब साथ होंगे, कोई समस्या नहीं आएगी।"

और उधर 'मन'... जो दो सौ लोगों के खाने की योजना बना रही थी, धूमधाम की बातें कर रही थी, भविष्य के सपने सजा रही थी। अगर सब सचमुच खुश थे, तो फिर ये फोन करने वाले लोग कौन थे?

एक के बाद एक चेतावनियाँ कहा से आ रही थीं?

और सबसे बड़ी बात— असलियत क्या थी?

क्या उसे सब कुछ बताया नहीं गया?

या फिर किसी ने वास्तविक स्थिति को समझने की कोशिश ही नहीं की?

उसे लगा कि उस धूमधड़ाके के सपने ने, जिसे 'मन' इतनी शिद्दत से जी रही थी... उसके सम्मान और शांति का जनाज़ा निकाल दिया था। जहाँ वह विवाह का उत्सव देख रही थी, वहाँ माही अब केवल विवाद देख रहा था। जहाँ वह मेहमानों की सूची बना रही थी, वहाँ वह उन लोगों की गिनती कर रहा था जो उसे फोन करके समझा रहे थे। उसे लग रहा था कि शायद सादगी में हो जाने वाला विवाह... इस सारे बवंडर से कहीं बेहतर था। आज वह सचमुच थक चुका था। सुबह अदालत, और शाम को चरित्र पर आरोप। उसे एक क्षण के लिए लगा कि अभी फोन मिलाए— ताऊ जी को, और सब कुछ कह डाले। 'मन' को भी। पूछे कि आखिर क्या होने लग रहा है ?लेकिन अगले ही पल उसने स्वयं को रोक लिया। गुस्से में बोले गए शब्द अक्सर समस्या का समाधान नहीं करते, उसे और उलझा देते हैं। इसलिए उसने चुप्पी चुनी। घर पहुँचकर फोन बंद किया, कमरे की बत्ती बुझाई और बिस्तर पर लेट गया। नींद उसे उस रात भी नहीं आई, लेकिन अब उसे यह एहसास जरूर हुआ कि अब वह केवल परिस्थितियों से नहीं लड़ रहा... धीरे-धीरे अपनों से भी खफा होने लगा था।

अध्याय - 176

“एक और सच”

आज सुबह दफ्तर पहुँचते ही माही ने दीक्षा को फोन कर लिया। अब तक जो कुछ वह अपने भीतर दबाए बैठा था, सब कुछ उसे बता दिया— रिया मल्होत्रा का मुकदमा, कोर्ट की कार्यवाही, अजनबी लोगों के फोन, धमकियाँ, समाज के नाम पर दी जा रही सलाहें और वह बेचैनी जो पिछले कई दिनों से उसकी नींद और शांति दोनों छीन चुकी थी। दीक्षा कुछ देर तक सब सुनती रही, लेकिन सच तो यह था कि उसे भी कुछ समझ नहीं आया। उसे केवल इतना समझ आया कि मामला अब सीधा नहीं रहा। फोन रखने के बाद उसने घर वालों को भी सारी बातें बता दीं— वो बातें भी जो अब तक माही ने उनसे छिपा रखी थीं। इतना सब जानने के बाद घर में बवंडर उठना तय था। अब चिंता केवल इज्जत की नहीं रह गई थी; माँ और पापा को उसकी सुरक्षा की भी चिंता होने लगी थी— कि कल को कोई सिरफिरा शादी में कुछ उल-जुलूल हरकत न कर दे, कहीं कोई आवेश में आकर कोई गलत कदम न उठा ले, कहीं मामला और न बिगड़ जाए। लेकिन उन्होंने तत्काल किसी से बात करने के बजाय माही के घर आने का इंतजार करने का निर्णय लिया। रात को जब माही घर पहुँचा तो उसके सामने एक-एक बात रखी गई— दीक्षा ने क्या बताया, घर वाले क्या सोच रहे हैं और आगे क्या किया जाना चाहिए। बातों-बातों में मन के ताऊ जी से संपर्क करने का विषय भी आया, लेकिन माही ने उन्हें रोक दिया। "अभी नहीं।"

रात को जब मन का फोन आया तो माही ने तय किया कि आज वह पहले उसकी बात सुनेगा, अपनी नहीं। कुछ अन्य बातों के बाद उसने पूछा— "आप पिछले कुछ दिनों से ठीक नहीं लग रही। क्या बात है?"

"कुछ नहीं।" मन ने सहज बनने की कोशिश की।

"कुछ तो है।"

"नहीं।" इस बार माही का स्वर थोड़ा गंभीर था। "बताओ।" उस तरफ की चुप्पी लंबी हो रही थी, फिर जैसे किसी ने भीतर का बाँध खोल दिया हो—

"हर रोज ताने सुनने पड़ रहे हैं। कभी कोई कुछ कह जाता है, कभी कोई। कोई मेरे चरित्र पर सवाल उठाता है, कोई मम्मी की परवरिश में कमी निकाल जाता है। आज छोटे ताऊ

और बुआ भी झगड़ कर गए हैं। दादी भी बहुत नाराज़ हैं, मामा जी भी नाता तोड़ने की धमकी दे रहे हैं। बस इतना समझ लो कि बड़ी मुश्किल से दिन निकल रहे हैं।"

माही के पास कोई शब्द नहीं बचे। उसे लगा जैसे किसी ने उसके भीतर की सारी शिकायतें एक ही पल में खत्म कर दी हों। वह कुछ देर तक केवल सुनता रहा, फिर धीरे से बोला— "लेकिन तुम तो कह रही थीं कि सब खुश हैं।"

"थे..." मन की आवाज़ धीमी पड़ गई। "पता नहीं अब अचानक सबको क्या हो गया।"

"ताऊ जी?" यह सुनते ही मानो उसकी आवाज़ थम-सी गई। मन ने कोई उत्तर नहीं दिया और उसी मौन ने बहुत कुछ कह दिया। अब माही को अपनी परेशानी बताना उचित नहीं लगा, क्योंकि वह जिस समस्या से जूझ रहा था... 'मन' भी लगभग उसी से लड़ रही थी। बस रणभूमि अलग थी।

अब उसे समझ आ गया था कि पिछले कुछ दिनों से 'मन' बदली-बदली क्यों लग रही थी। वह उससे दूर नहीं हुई थी, वह भी लड़ रही थी। अपने हिस्से की लड़ाई, हर रोज, हर ताने के साथ, हर आरोप के साथ, हर उस व्यक्ति के साथ जो उसके जीवन का फैसला स्वयं करना चाहता था। माही ने आँखें बंद कर लीं। रिया का मुकदमा, कोर्ट, धमकियाँ— सब कुछ अचानक छोटा लगने लगा। क्योंकि वहाँ एक लड़की थी जो केवल उससे प्रेम करने की कीमत चुका रही थी। उसे अचानक अपने सारे उत्तर मिल गए— यही कारण था कि वह 'मन' के हर आमंत्रण पर मौन रहता था, उसे पहले से ही समाज रूपी बाधा का आभास था, यही कारण था कि वो उसकी खुशी के लिए सड़कों की धूल फांकता था और यही कारण था कि वह उसके साथ घूमने, मिलने और समय बिताने की जगह उसके भविष्य की चिंता करता था। क्योंकि वह प्रेम को जीने से पहले उसे सुरक्षित करना चाहता था। रात काफी हो चुकी थी। फोन कट चुका था, वह कई बार उठकर रसोई तक गया, हर बार एक गिलास पानी पीकर लौट आता। मानो भीतर जल रही बेचैनी को बुझाने की कोशिश कर रहा हो। उस रात चाय नहीं बनी, चाय तो अब किस्सा हो चुकी थी।

“एक कठिन निर्णय की तरफ”

अगले दिन जब 'मन' और माही की बात हुई तो विषय फिर वही निकल आया— समाज, परिवार और उनका रिश्ता। आज 'मन' पहले से अधिक थकी हुई लग रही थी। उसने बताया कि उसके एक कजिन फिर घर आ गए थे। उन्होंने परिवार की परम्पराओं के साथ खिलवाड़ करने का आरोप लगाया, कहा कि ऐसे निर्णय पूरे खानदान की प्रतिष्ठा को प्रभावित करते हैं, यहाँ तक कि परिवार को सामाजिक रूप से अलग-थलग कर देने की बात भी कह गए। 'मन' एक-एक करके सारी बातें बताती रही, माही शांत होकर सुनता रहा। फिर उसने भी बताया कि विरोध उसकी तरफ भी है, फोन वहाँ भी आ रहे हैं, लोग बातें वहाँ भी बना रहे हैं, लेकिन अभी स्थिति उतनी जटिल नहीं हुई जितनी 'मन' के घर पर दिखाई दे रही थी। कुछ देर की बातचीत के बाद 'मन' ने अचानक ऐसी बात कही जिसके अर्थ बहुत दूर तक जाने वाले थे— "देखो... शादी में किसी को नहीं बुलाएँगे। ऑफिस वालों को भी नहीं। क्योंकि परिस्थितियाँ ठीक नहीं हैं। बस आपकी फैमिली और मेरी फैमिली। इसके अलावा कोई नहीं।"

माही ने जो सुना वो उसे समझने की कोशिश करने लगा। यह वही 'मन' थी जो कुछ समय पहले दो सौ लोगों के भोजन की योजना बना रही थी, जो हर रस्म को पूरे उत्साह से मनाना चाहती थी, जो अपनी शादी को एक उत्सव की तरह देख रही थी। और आज... वह स्वयं लोगों की सूची काट रही थी, सपनों को छोटा कर रही थी, अपने हिस्से की खुशियों में कटौती कर रही थी। माही ने उसे अधिक चिंता न करने की सलाह दी, हौसला देने की कोशिश करी और फिर फोन रख दिया। लेकिन उसके बाद वह सीधे छत पर चला गया। आज की रात उसने स्वयं से बात करने के लिए चुनी थी। चारों ओर खामोशी का घेरा था, आकाश धुंधला था— उसकी जिंदगी की तरह। और उसके भीतर प्रश्नों का तूफान क्या अब ऐसे में शादी करना उचित रहेगा? 'मन' स्वयं दो सौ लोगों से तीन लोगों तक आ गई थी, इसका अर्थ साफ था कि परिस्थितियाँ सामान्य नहीं थीं। क्या ऐसे में कोई समारोह स्थल सुरक्षित रहेगा? क्या ऐसे माहौल में विवाह वास्तव में उत्सव बन जाएगा? और सबसे बड़ा प्रश्न— क्या वह स्वयं विवाह के लिए तैयार था? उसके खिलाफ मुकदमा चल रहा था, जिसके परिणाम का उसे स्वयं भी कोई अनुमान नहीं था।

यदि भविष्य में कुछ प्रतिकूल हुआ तो?

यदि वह मुकदमा हार गया तो? 'मन' का क्या होगा? क्या वह उसे एक ऐसे भविष्य में धकेल देगा जिसकी निश्चितता स्वयं उसके पास नहीं है?

वह देर तक इन्हीं विचारों में डूबा रहा। फिर धीरे-धीरे उसके भीतर एक निर्णय आकार लेने लगा। उसे अब अनुमान नहीं चाहिए थे, उसे स्पष्टता चाहिए थी। कल वह सबसे पहले ताऊ जी से मिलेगा और उसके बाद 'मन' को मुकदमे की पूरी सच्चाई बताएगा। फिर जो निर्णय होगा... वह दोनों का होगा। क्योंकि यह समय एक-दूसरे को कठघरे में खड़ा करने का नहीं था, साथ खड़े होने का था।

अध्याय - 178

“आखिरी उम्मीद”

(जो टूट गई बिना आवाज़ किए)

अगले दिन सुबह माही ताऊ जी के घर पहुँचा। दोनों आमने-सामने बैठे थे, चाय आ चुकी थी, लेकिन किसी ने कप को हाथ नहीं लगाया। नज़दीक होते हुए भी एक लंबी दूरी जैसा माहौल लग रहा था। आखिरकार माही ने ही शुरुआत की—

"मन से बात हुई?"

"हां।" ताऊ जी का छोटा-सा उत्तर आया।

"क्या कह रही थी?"

ताऊ जी फिर चुप हो गए। माही ने कुछ क्षण प्रतीक्षा की, फिर विषय बदल दिया—

"कल पापा जी से बात हुई थी आपकी? मेरे घर में डर का माहौल है।"

इस बार ताऊ जी ने उत्तर देने से पहले लंबी साँस ली, फिर कुर्सी की पीठ से टिक गए।

"देखो बेटा... मैंने बहुत प्रयास किए। सबको समझाया, झगड़ा भी किया। लेकिन कोई सुनने को तैयार नहीं है। सबने अड़ियल रवैया अपना लिया है। यंग जेनरेशन को छोड़ दो तो कोई भी इस शादी के पक्ष में नहीं है। और ऐसे फैसले... बच्चों के नहीं होते।"

माही ध्यान से सुनता रहा, फिर उसने सीधा प्रश्न किया—

"लेकिन आप तो साथ हो ना?"

ताऊ जी ने सिर झुका लिया, कोई उत्तर नहीं आया। माही बेचैनी हुई— "ताऊ जी... आप अपना रुख स्पष्ट करिए। बस एक बार कह दीजिए कि आप हमारे साथ हो। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। आपका साथ ही हमारा संबल है। आप ही उम्मीद थे... और अब भी हो। कोई आए ना आए... बस आप खड़े हो जाना। या फिर एक बार और सबको समझाने का प्रयास कर लो।" माही लगातार बोलता रहा, ताऊ जी सुनते रहे लेकिन बोले नहीं। और यही मौन सबसे ज्यादा भयावह था।

आखिरकार काफी देर बाद ताऊ जी ने सिर उठाया, उनकी आँखों में थकान थी, शायद पछतावा भी। "बेटा... मुझे माफ़ कर दो। मैं थक गया हूँ और हार गया हूँ। इस समाज से भी... और इस ज़माने से भी।"

ये शब्द कानो के रास्ते जा कर उसकी आत्मा के टुकड़े कर के शरीर के किसी कोने में समा गए। कुछ शब्द नहीं थे, ये उसकी आखिरी उम्मीद के टूटने की आवाज़ थी। जिस व्यक्ति ने उसके घर जाकर उसके सिर पर हाथ रखा था, आज वही व्यक्ति उससे क्षमा माँग रहा था। उसने सपने में भी यह दृश्य नहीं देखा था।

"ताऊ जी... ऐसा मत कहिए। आप अपने घर फेरे करवा दो, बाकी मैं देख लूँगा।"

"नहीं।"

शीघ्रता से और निर्णय रूप में उत्तर आया। "यह संभव नहीं है।"

"क्यों?"

"क्योंकि मेरा भाईचारा और समाज मुझे जीने नहीं देगा।"

माही की आँखों में अविश्वास उतर आया— "तो समाज बेटी की खुशी से बड़ा हो गया? याद है? आपने ही मेरे घर बैठकर पापा से कहा था— मास्टर जी, समाज की चिंता में बच्चों का भविष्य खराब मत करो। और आज... आज आप भी वही कर रहे हो।" ताऊ जी के निरुत्तर थे, वो केवल नज़रें झुकाकर बैठे रहे।

काफी देर बाद उन्होंने धीमे स्वर में कहा— "तुम दोनों कोर्ट मैरिज कर लो। लेकिन मैं... मैं मजबूर हूँ।" इतना कहकर वो उठ गए, और उसी क्षण माही समझ गया कि यहाँ से उम्मीदें समेटने का समय आ गया है।

कोर्ट मैरिज— यह शब्द उसके कानों में देर तक बजता रहा। क्योंकि बात केवल विवाह की नहीं थी, बात उस विश्वास की थी जो ताऊ जी ने उसे और उसके परिवार को दिया था। बात उस सपने की थी जिसे 'मन' ने वर्षों से सजाया था— धूमधाम, परिवार, रस्में, अपनों का साथ। और आज... सब कुछ एक हस्ताक्षर तक सिमटता दिखाई दे रहा था। माही भी धीरे से उठ खड़ा हुआ। अब वहाँ बैठे रहने का कोई अर्थ नहीं था। वह बाहर निकल आया, लेकिन आज उसके कदम पहले जैसे नहीं थे। बस स्टैंड तक जाने की भी ताकत नहीं लग रही थी। उसे लग रहा था जैसे कोई भीतर से खाली कर गया हो। आज उसकी उम्मीद नहीं विश्वास टूटा था। "वक्त की मार से बदलता मंजर देखा था" आज वो

सचमुच खुद को अकेला और असहाय पा रहा था। माँ-पापा डरे हुए थे, और जिस व्यक्ति पर उसने सबसे अधिक भरोसा किया था... वह भी समाज के सामने हथियार डाल चुका था। सड़क पर चलते हुए उसने सिर उठाकर आसमान की ओर देखा, शायद किसी उत्तर की उम्मीद में, लेकिन वहाँ भी खालीपन था। ठीक वैसा ही... जैसा अभी उसके भीतर था।

अध्याय - 179

“बेचैन दोपहर”

दोपहर का समय था। आज दफ्तर से छुट्टी ली हुई थी। शरीर घर में था, लेकिन मन न जाने कहाँ भटक रहा था। बार-बार ताऊ जी के वे शब्द उसे व्यथित कर रहे थे— "मुझे माफ कर दो।" वह कभी कमरे में जाता, कुछ देर कुर्सी पर बैठता, फिर उठकर बाहर आ जाता। कभी आँगन में टहलता, तो कभी बिना किसी कारण वापस कमरे में लौट आता। माँ सुबह से उसे देख रही थीं, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि आखिर बेटा दूँड क्या रहा है। वह किसी काम में मन नहीं लगा पा रहा था; कभी मोबाइल उठाता, फिर वापस रख देता, कभी किसी कागज़ को उठाता और दो मिनट बाद भूल जाता कि उसे देखा किसलिए था। मानो उसके भीतर एक साथ बहुत सारे विचार चल रहे हों और कोई भी विचार पूरा नहीं हो पा रहा हो। दोपहर बाद माँ उसके कमरे में आईं। माही बिस्तर के किनारे बैठा हुआ था, दोनों कोहनियाँ घुटनों पर टिकी थीं और दोनों हाथों से उसने अपना माथा पकड़ रखा था। "क्या हुआ बेटा?" माही ने सिर उठाया— "कुछ नहीं।" मम्मी हल्का सा मुस्कराई— "माँ से भी झूठ बोलोगे?" माही चुप हो गया।

माँ उसके पास बैठ गई।

"मुझे अच्छा नहीं लग रहा ये सब।"

"कौन सा सब?" "यही फोन, यही धमकियाँ, यही मुकदमा, यही रोज-रोज की नई बाता।" माँ की आवाज़ में चिंता साफ महसूस कि जा सकती थी। "अब तो मुझे डर लगने लगा है। कल को कोई कुछ उल्टा-सीधा कर दे तो? शादी बाद में भी हो सकती है, लेकिन बेटा दोबारा नहीं मिलेगा।" माही ने माँ की ओर देखा। माँ की बातें एहसास करवा रही थीं कि उनकी आँखों में अब खुशी से ज्यादा चिंता रहने लगी थी। "मम्मी... ऐसा कुछ नहीं होगा। आप चिंता मत करो।"

"कैसे चिंता ना करूँ? हर दूसरे दिन कोई नया आदमी फोन कर रहा है, कोई धमकी देता है, कोई समझाता है, कोई ताना मारता है। और तुम कहते हो चिंता मत करो।" कमरे का मौन माँ के पक्ष में खड़ा था, माँ सही कह रही थीं, लेकिन 'मन' भी तो गलत नहीं थी। यही समस्या थी। माही को लग रहा था कि वह दो दिशाओं में खड़ा है— एक तरफ उसका

परिवार, दूसरी तरफ 'मन'। और दोनों ही उससे कुछ खोने को कह रहे थे। अगर वह पीछे हटता है, तो 'मन' हार जाएगी; अगर वह आगे बढ़ता है, तो घर वालों का डर और बढ़ जाएगा। अब उसे समझ आ रहा था कि जीवन के कुछ प्रश्नों का उत्तर सही और गलत में नहीं मिलता; कई बार केवल दो पीड़ाओं में से एक को चुनना पड़ता है।

मम्मी उठकर जाने लगीं, फिर दरवाजे पर रुक गईं। "एक बात पूछूँ?" "हां।" "अगर यही सब हमारी बेटी के साथ हो रहा होता... तो क्या तुम उसकी शादी ऐसे माहौल में होने देते?" माही के पास उत्तर नहीं था। पहली बार नहीं, लेकिन इस बार मौन किसी तर्क की वजह से नहीं था, बल्कि इसलिए था क्योंकि माँ का प्रश्न सीधा उसके विवेक तक पहुँच गया था। माँ चली गईं और माही वहीं बैठा रहा... अपने भीतर के शोर के साथ।

अध्याय - 180
“साथ रहना...”

रात काफी हो चुकी थी। मम्मी-पापा सो चुके थे। माही अपने कमरे में बैठा था। 'मन' की कॉल आ रही थी।

"हेलो..."

'मन' —

"आज फिर घर में बहुत कुछ हुआ।"

माही चुप रहा।

"बुआ आई थीं।"

"फिर?"

"वही सब। मम्मी को सुनाया, मुझे सुनाया। दादी ने तो घर सर पर उठा रखा है।" फिर अचानक 'मन' की आवाज़ बदल गई। अब उसमें वह पहले वाली चंचलता नहीं थी।

"एक बात कहूँ?"

"हां।"

"तुम मेरे साथ रहना।"

माही कुछ नहीं बोला।

'मन' फिर बोली— "सब साथ छोड़ दें तो भी। रिश्तेदार छोड़ दें तो भी। ताऊ जी भी..."

वाक्य पूरा नहीं हुआ। शायद वो खुद भी उसे पूरा नहीं करना चाहती थी। "बस तुम मत छोड़ना।"

माही की उंगलियाँ मोबाइल पर कस गईं।

उधर 'मन' बोलती रही— "बाकी सब मैं सह लूँगी— ताने भी, लोग भी, समाज भी। लेकिन तुम... तुम साथ रहना।" उसकी आवाज़ भर्रा गई। माही की आँखें बंद हो गईं। काफी देर तक दोनों तरफ कोई नहीं बोला। फिर उसने धीरे से कहा—

"Hmmm."

बस इतना,

फोन कटने के बाद माही छत पर चला आया। रात भी उसे रोती हुई प्रतीति हो रही थी, थोड़ी दूर किसी मंदिर में "चेतावनी शब्द" बज रहे थे, उसके सामने फिर से पिछले दिनों की सारी घटनाएँ घूमने लगीं— और फिर उन सबके बीच एक चेहरा— 'मन'। वो 'मन' जो कुछ समय पहले सब को साथ देख रही थी... आज सिर्फ एक बात कह रही थी— "तुम मेरे साथ रहना।" माही ने सिर झुका लिया। आज उसे एक बार फिर से महसूस हुआ कि वह लगातार परिस्थितियों को बचाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन शायद उस लड़की को भूल रहा था जिसके लिए ये सारी लड़ाई थी। अगर दुनिया साथ नहीं है... तो ना सही। अगर रिश्तेदार नहीं आते... तो ना आएँ। अगर समाज नाराज़ है... तो रहे। लेकिन वह.. उसका हाथ नहीं छोड़ेगा। उसने भविष्य के सारे गणित एक तरफ रख दिए। मुकदमा बाद में देखा जाएगा, समाज बाद में देखा जाएगा, जो होगा देखा जाएगा।

लेकिन वह अब 'मन' को अकेला खड़ा नहीं रहने देगा। चाहे विवाह में एक व्यक्ति भी साथ न खड़ा हो, चाहे मंडप में कुर्सियाँ खाली रह जाएँ, चाहे दुनिया उसे गलत कहे, वह उसका साथ देगा— हर हाल में। क्योंकि कुछ निर्णय तर्क से नहीं लिए जाते, वे आँसुओं से लिए जाते हैं। और आज... उसे यह स्पष्ट दिख रहा था कि 'मन' की आँखों में आए आँसू... उसकी सारी दलीलों, सारे डर और सारी सावधानियों से अधिक शक्तिशाली थे।

अध्याय - 181

“माँ की पुकार”

वो कार्यालय में अपनी सीट पर बैठा था, लेकिन उसका ध्यान काम में कम और पिछले कुछ दिनों से उलझी हुई जिंदगी में ज्यादा था। हालांकि कल रात को वो फैसला कर चुका था “मन का फैसला, मन के साथ खड़े रहने का फैसला, तभी उसकी जेब में रखा मोबाइल कंपन करने लगा। उसने अनमने भाव से फोन निकाला, स्क्रीन पर लिखा था— "Mann Home"।

उसकी नजरे आश्चर्य से उस कॉन्टैक्ट पर टिक गई, उसे याद नहीं आया कि पिछली बार इस नंबर से कब बात हुई थी। फिर उसने कॉल रिसीव कर ली।

"हेलो..." उधर से एक महिला का स्वर सुनाई दिया—

"बेटा, मैं मन की मम्मी बोल रही हूँ।"

"नमस्ते माँ जी।"

"नमस्ते बेटा।"

इसके बाद कुछ देर तक बस फोन की तरंगें थीं शब्द दोनों तरफ से रुके हुए थे, कुछ समय बाद उन्होंने धीमे स्वर में कहा—

"आज आपसे एक माँ कुछ माँगने के लिए फोन कर रही है।

दोगे मुझे?"

माही को बात समझ नहीं आई—

"पहले बताइए तो सही।"

"जो माँगूँगी, दोगे?"

"अगर मेरे वश में हुआ तो जरूर।" एक बार के लिए उधर से फिर स्वर थम गया,

फिर उन्होंने कहा— "बेटा... आप मन को शादी के लिए मना कर दो।"

यह सुनते ही माही के कानों में किसी धमाके का शोर नहीं हुआ, बल्कि एक ऐसा तीखा शुन्य पसरा कि उसे अपने ही दिल के धड़कने की आवाज़ आनी बंद हो गई।

सांसों की अवस्था अपरिवर्तनीय हो गई, जैसे किसी ने आसपास की सारी हवा सोख ली हो

कांपती अंगुलियों में फोन ने बड़ी मशक्कत से स्वयं को गिरने से बचाया। और ऐसे में मुंह से सिर्फ...

"क्या...?"

"आपको ये शादी नहीं करनी। और मैं मना कर रही हूँ। मैं नहीं करूँगी उसकी शादी आपसे।"

माही के होंठ खुले रह गए, लेकिन शब्द बाहर नहीं आए।

"माँ जी..."

"मुझे इस गाँव में रहना है, इस समाज में जीना है। लोगों ने ताने मार-मार कर मुझे पत्थर बना दिया है। मेरी सास, मेरी ननद, मेरे जेठ, मेरा भाई, मेरी बहन... कोई मुझे जीने नहीं दे रहा।" अब उनकी आवाज काँपने लगी थी— "मेरी बेटी है, मरेगी तो मर जाएगी। कम से कम मैं तो इज्जत से जी लूँगी।"

"माँ जी... ऐसा मत कहिए।" लेकिन वो रुकी नहीं— "वो अपने स्वार्थ के लिए पूरे खानदान की बदनामी करवाने पर तुली है।"

"लेकिन आप तो इस रिश्ते से खुश थीं..."

माही के मुँह से मुश्किल से शब्द निकले।

"नहीं। एक दिन भी खुश नहीं थी। बस बेटी की खुशी के लिए झुक गई थी।" यह सुनकर माही का सिर झुक गया। "तो मुझे पहले ही मना कर देतीं। अब इस समय क्यों?"

उधर उस समय केवल सिसकियाँ सुनाई दीं, फिर एक टूटी हुई आवाज आई— "बेटा... मैं पहले ही अपने पति को खो चुकी हूँ। अब अपने बेटे और भाई को नहीं खो सकती। क्या करूँ मैं?" अब वह खुलकर रो रही थीं— "तुम नहीं जानते मेरे घर की हालत क्या हो गई है। इसलिए हाथ जोड़ती हूँ, एक माँ को उसका बेटा और एक बहन को उसका भाई बख्श दो।" माही की आँखें बंद हो गईं। उसने जीवन में बहुत प्रकार के दुख देखे थे, लेकिन फोन पर रोती हुई माँ... उसके लिए यह बिल्कुल नया अनुभव था। एक तरफ 'मन' थी, दूसरी तरफ उसकी माँ, और दोनों की दुनिया एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ी हो चुकी थी।

"माँ जी... पहले आप शांत हो जाइए, रोइए मत।" "पहले वचन दो कि ये शादी नहीं करोगे।" माही बिल्कुल चुप था।

इस समय कोई भी निर्णय देना उसके लिए संभव नहीं था। वो खुद नहीं जानता था कि आगे क्या होने वाला है। लेकिन सामने एक माँ थी जो अपने आँसुओं में डूबी हुई उससे जवाब माँग रही थी। "देखिए... मैं अभी कोई फैसला नहीं दे सकता। लेकिन इतना वचन देता हूँ कि फिलहाल ऐसा कोई कदम नहीं उठाऊँगा जिससे आपकी इज्जत... या आपके बेटे और भाई को कोई नुकसान पहुँचे।" उधर से लगातार सिसकियों की आवाज आती रही, फिर उन्होंने धीमे स्वर में कहा— "बेटा... मैं तुम्हारा ये एहसान कभी नहीं भूलूँगी। बस एक माँ का ख्याल रखना।"

माही काफी देर तक मोबाइल को कान के लगाए बाहर बरामदे में खड़ा रहा। लेकिन उस तरफ से आवाज बंद हो चुकी थी, "एक माँ को उसका बेटा बख्श दो... एक बहन से उसका भाई मत छीनो।" दो वाक्य उस पर बार बार हमला कर रहे थे।

उसे गुस्सा भी आ रहा था, दर्द भी हो रहा था और सबसे ज्यादा बेचैनी इस बात की थी कि वह किसी को गलत साबित नहीं कर पा रहा था। 'मन' गलत नहीं थी, उसकी माँ भी गलत नहीं लग रही थीं। लेकिन फिर ऐसी कौन सी शक्ति थी जिन्होंने सबको एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया था। उसने पानी की बोतल उठाई और लगातार कई घूँट पी गया, लेकिन गले का सूखापन कम नहीं हुआ। उसका मन कर रहा था कि अभी इसी वक्त 'मन' को फोन लगाए, सब कुछ बता दे— जैसा हुआ वैसा, बिना कुछ छिपाए। लेकिन फिर उसने यह विचार त्याग दिया। वो जानता था कि दूसरी तरफ पहले से ही बहुत कुछ टूट रहा है, और यह बात सुनकर शायद 'मन' खुद को दोष देने लगे। घर लौटते समय भी वही आवाज उसके साथ थी। कमरे में पहुँचकर उसने बत्ती नहीं जलाई, अंधेरे में ही बिस्तर पर बैठ गया। उसके सामने इस बार एक ऐसा प्रश्न खड़ा था जिसका उत्तर किसी किताब, किसी कानून और किसी तर्क के पास नहीं था। क्या प्रेम केवल दो लोगों का निर्णय होता है? अगर होता... तो शायद यह कहानी बहुत आसान होती। लेकिन यहाँ प्रेम के साथ परिवार जुड़े थे, रिश्ते जुड़े थे, भय जुड़ा था, सम्मान जुड़ा था। नींद मानो कमरे से बाहर रात से बाते कर रही हो, वह बस अंधेरे में बैठा रहा और सोचता रहा— दोपहर तक वो मन के साथ था, लेकिन अब एक पुकार उसे खींच रही थी, अब तक वह इस रिश्ते को बचाने का रास्ता खोज रहा था, लेकिन अब समझ आ रहा था कि इस रिश्ते की कीमत आखिर कौन-कौन चुका रहा है?

पिछले दस दिन माही के जीवन के शायद सबसे अव्यवस्थित दिन थे। बाहरी तौर पर सब कुछ ठीक-ठाक दिखाई देता था— वह रोज की तरह दफ्तर जाता, लोगों से मिलता, घर लौटता और 'मन' से बात भी करता। लेकिन भीतर सब कुछ चकनाचूर हो चुका था और सबसे बड़ी समस्या यह थी कि वह स्वयं भी नहीं समझ पा रहा था कि आखिर हो क्या रहा है। अब उसे रातों में नींद बिल्कुल नहीं आती थी। कभी दो बजे आँख खुल जाती, कभी तीन बजे, तो कभी पूरी रात करवटें बदलते हुए निकल जाती। दफ्तर में भी अब उसका ध्यान पहले जैसा नहीं रहा था। एक दिन उसने एक रिपोर्ट में वही आंकड़ा दो बार दर्ज कर दिया, तो वरिष्ठ अधिकारी ने फाइल वापस करते हुए पूछा— “अस्तित्व जी, सब ठीक तो है? इसके बाद ऐसी हरकतें हर रोज होने लगीं— कभी किसी फाइल को गलत अनुभाग में भेज देता, तो कभी आधा काम करके भूल जाता कि वह कर क्या रहा था। एक दिन तो उसने एक ही पत्र पर दो अलग-अलग टिप्पणियाँ लिख दीं। अब सहकर्मी भी उसकी ओर अचरज से देखने लगे थे।

चाय से उसके सम्बन्ध पहले ही समाप्त हो चुके थे। धीरे-धीरे डर भी उसके भीतर घर बनाने लगा था। फोन की घंटी बजती तो दिल की धड़कन तेज हो जाती। अनजान नंबर देखकर उसे लगता कि कहीं कोई नई समस्या उसका इंतजार तो नहीं कर रही। दरवाजे पर दस्तक सुनकर एक पल के लिए मन में आशंका उठती— “अब कौन आ गया?” एक दिन दफ्तर से लौटते समय उसने सड़क पर एक गाड़ी देखी, जिसके पीछे एक जाति विशेष का बड़ा-सा नाम लिखा था। यह दृश्य आम था, रोज दिखाई देने वाला, लेकिन उस दिन उसे ऐसा लगा जैसे वह शब्द सीधे उसी की ओर देख रहे हों। उसने तुरंत अपनी नज़र दूसरी तरफ फेर ली और खुद को समझाया— “पागल हो रहे हो क्या?”

अब उसे भीड़ अच्छी नहीं लगती थी, उसे लगता था हर कोई उसी की बात कर रहा है, इन सबका असर परिवार पर भी दिखाई देने लगा था। “माही की बेचैनी अब केवल उसके भीतर नहीं रह गई थी; वह घर की दीवारों तक पहुँच चुकी थी।” माँ अब पहले से कहीं अधिक बेचैन रहने लगी थीं। जब तक वह दफ्तर से वापस नहीं आ जाता, उनका ध्यान किसी काम में नहीं लगता। एक दिन उसे आने में देर हो गई, तो माँ ने पहले फोन किया,

नहीं उठाने पर बार बार किए जब कोई उत्तर नहीं मिला तो वह पड़ोसियों से पूछती फिरने लगी। कुछ देर बाद तो उन्होंने गाँव के दो लड़कों को अलग-अलग दिशाओं में भेज दिया। शाम को जब माही घर पहुँचा तो माँ ने कुछ कहा नहीं, बस उसके चेहरे को देखती रहीं। माँ को हर समय किसी अप्रिय घटना का अंदेशा रहने लगा था।

माही के पास कोई उत्तर नहीं था। मानो हर सुबह कोई नई मुसीबत लेकर आने वाली हो—रिया का मुकदमा, समाज का विरोध, 'मन' का टूटता हुआ परिवार, अपने घर वालों का भय और अब 'मन' की माँ का वह रोता हुआ स्वर। सब कुछ मिलकर उसके भीतर एक ऐसा बोझ बन चुका था जिसे वह अकेले ढोते-ढोते थक गया था। कुछ दिन बाद उसने ऑफिस जाना भी कम कर दिया था—जाता तो हाज़िरी लगाकर सीधा बस स्टैंड आ जाता और किसी भी बस में बैठ लेता। परिचालक पूछता कहाँ जाना है, तो वो उलटा उसी से पूछता— "कहाँ जाएगी? जहाँ भी जाए आखिरी स्टॉप की टिकट काट दो।" ये हालात हो गए थे उसके। और ऐसे में उसे महसूस हुआ कि समस्या केवल परिस्थितियाँ नहीं हैं, समस्या यह भी है कि अब वह स्वयं वैसा नहीं रहा जैसा कुछ महीने पहले था। और यही विचार उसे सबसे ज्यादा डरा गया, क्योंकि परिस्थितियों से तो लड़ा जा सकता है, लेकिन अगर आदमी खुद से ही हारने लगे... तो लड़ाई बहुत कठिन हो जाती है।

अध्याय - 183

“निर्णय”

रात काफी हो चुकी थी।

लेकिन नींद अब उस के लिए नहीं थी।

वह अपने कमरे में रखी कुर्सी पर बैठा अंधेरे में कहीं खोया हुआ था।

कुर्सी लगातार आगे पीछे हिल रही थी।

पिछले कुछ दिनों की घटनाएँ जो अब उसकी स्थाई स्मृति बन चुकी थी

उसमें अब उसमें एक नया दृश्य जुड़ गया था

मन की माँ का रोता हुआ स्वर।

जिसमें वो अपनी इज्जत की दुहाई दे कर बेटे और भाई को जिंदगी मांग रही थी।

और फिर मन...

जो हर दिन टूटती परिस्थितियों के बीच भी उससे बस इतना कह रही थी—

"तुम मेरे साथ रहना।"

माही ने गहरी साँस खींची।

उसने कभी प्रेम को पाने की वस्तु नहीं समझा था।

उसके लिए प्रेम हमेशा जिम्मेदारी से कम नहीं रहा था।

यही कारण था कि आज भी वह अपने बारे में नहीं सोच रहा था।

उसके मन में केवल एक प्रश्न था—

क्या वर्तमान परिस्थितियाँ विवाह के अनुकूल हैं?

उत्तर बार-बार एक ही आ रहा था—

नहीं।

विवाह दो व्यक्तियों का मिलन होता है।

लेकिन यह विवाह अब केवल दो व्यक्तियों तक सीमित नहीं रह गया था।

इसके साथ दो परिवार जुड़ गए थे।

विवाद जुड़ गए थे।

मुकदमा जुड़ गया था।

और सबसे बढ़कर...

भय जुड़ गया था।

माही ने सिर पीछे टिकाकर छत की ओर देखा।

अगर वह चाहता तो जिद कर सकता था।

कोर्ट मैरिज कर सकता था।

समाज को चुनौती दे सकता था।

लेकिन फिर वही प्रश्न उसके सामने खड़ा हो जाता—

क्या मैं मन को उस जीवन में ले जाने का अधिकार रखता हूँ जिसकी स्थिरता पर मुझे स्वयं विश्वास नहीं है?

उसने आँखें बंद कर लीं।

उसे मन की माँ की आवाज फिर सुनाई दी।

उसे मन की सिसकियाँ याद आईं।

उसे अपने पिता की चिंता याद आई।

और उसे स्वयं का वह चेहरा याद आया जो पिछले कई दिनों से आईने में भी थका हुआ दिखाई देता था।

उसकी अंतरात्मा उसे बार बार कह रही थी कि स्वार्थी मत बन।

"अगर आज मैं सिर्फ अपनी खुशी देखूँ...

तो क्या मैं उन लोगों से अलग रह जाऊंगा जिनकी जिद पर मैं खुद नाराज़ हूँ?"

कुछ देर बाद उसने एक निर्णय लिया।

कठिन।

कड़वा।

लेकिन आवश्यक।

विवाह टूटेगा नहीं।

रिश्ता समाप्त नहीं होगा।

प्रेम भी वहीं रहेगा जहाँ आज है।

लेकिन...

विवाह अभी नहीं होगा।

कम से कम तब तक नहीं जब तक परिस्थितियाँ थोड़ी स्पष्ट न हो जाएँ।

जब तक मुकदमे की दिशा समझ न आ जाए।

जब तक विरोध की वास्तविकता सामने न आ जाए।

और जब तक वह स्वयं यह विश्वास न कर ले कि वह मन को एक सुरक्षित भविष्य दे सकता है।

निर्णय लेने के बाद भी उसे कोई राहत नहीं मिली।

लेकिन भीतर चल रही अराजकता में पहली बार एक दिशा अवश्य दिखाई दी।

अब उसे मन से बात करनी थी।

और शायद यही उसके जीवन की सबसे कठिन बातचीत होने वाली थी।

अध्याय - 184

“सपने का संदेश”

शहर का एक पार्क,शाम का समय था।

डूबते सूरज की लालिमा पेड़ों की पत्तियों पर बिखरी हुई थी,माही और मन एक बेंच पर बैठे थे।

लेकिन आज दोनों के बीच एक अनचाही खामोशी थी,वो खामोशी जो शब्दों के खत्म होने से नहीं, मन के भारी होने से पैदा होती है।

काफी देर तक माही सामने घास पर खेलते बच्चों को देखता रहा,फिर उसने मन की तरफ देखा।

“आज तुमसे कुछ कहने और पहली बार कुछ मांगने आया हूँ”

मन ने उसकी ओर देखा।

“क्या?”

“मेरी बात पूरी सुनना... बीच में मत रोकना।”

मन चुप रही।

माही बोलने लगा।

“सबसे पहले एक बात साफ कर दूँ...मैं तुमसे दूर नहीं जा रहा,न ही रिश्ता तोड़ रहा हूँ,और न ही मेरा मन बदला है,लेकिन मैं इस समय विवाह की स्थिति में नहीं हूँ,मन के चेहरे पर हैरानी उभरी।

“क्यों?”

“क्योंकि पिछले कुछ समय से मुझे खुद पर भरोसा नहीं रहा।”वो थोड़ा रुका,मुझे नींद नहीं आती।

दिमाग हर समय किसी न किसी बात में उलझा रहता है,छोटी-छोटी बातें भूलने लगा हूँ,ऑफिस में गलतियाँ कर रहा हूँ,सच कहूँ तो मैं खुद को पहचान नहीं पा रहा।”

मन चुपचाप सुनती रही, और ऐसे में अगर मैं आज शादी कर भी लूँ...तो क्या मैं तुम्हारे साथ न्याय कर पाऊँगा?"

माही आगे बोला—

मैं कुछ समय चाहता हूँ, भागने के लिए नहीं, सब कुछ ठीक करने के लिए
क्या करोगे समय ले कर?"

मन ने पूछा।

माही ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा—

"सबसे पहले तुम्हारे परिवार और अपने परिवार के उन लोगों को एक जगह बैठाऊँगा जो इस रिश्ते के विरोध में हैं, एक आखिरी बार, मैं उनसे बात करूँगा।

उन्हें समझाने की कोशिश करूँगा।

कम से कम बाद में ये अफसोस नहीं रहेगा कि हमने प्रयास ही नहीं किया।"

मन कुछ नहीं बोली।

"दूसरा..."

मैं अपना स्थानांतरण चंडीगढ़ मुख्यालय में करवाने की कोशिश करूँगा, ताकि शादी के बाद हमारी जिंदगी हर रोज इन झगड़ों और सामाजिक खींचतान के बीच न फँसी रहे। फिर वो ठिठका

"और शायद..."

मुझे खुद की भी मदद लेनी पड़े।

क्योंकि मैं थक चुका हूँ।

बहुत ज्यादा।"

मेरी अपनी कुछ समस्याएँ हैं जिनसे मैं अभी तक ठीक तरह से निपट नहीं पाया हूँ। मैं तुम्हें अपने जीवन में सम्मान के साथ लाना चाहता हूँ, बोझ की तरह नहीं। और सच कहूँ तो इस समय मेरी मानसिक स्थिति वैसी नहीं है कि मैं विवाह जैसी बड़ी जिम्मेदारी उठा सकूँ।

इतना बोलते ही उसकी आवाज़ बदल गई।

"लेकिन एक बात का वादा करता हूँ..."

उसने धीमे स्वर में कहा।

"मैं भागकर शादी नहीं करूँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि ऐसी स्थिति में हम अपना सम्मान खो चुके होंगे।

मैं नहीं चाहता कि पूरी जिंदगी कोई ये कहे कि हम परिस्थितियों से डरकर भाग गए थे।"

उसने मुस्कुराने का प्रयास किया।

"मुझे आज भी वही शादी चाहिए, वही लहंगा, वही गाड़ी, वही मंडप, वही शोर, वही मुस्कान।

और वही तुम।"

मन की आँखें भरने लगीं।

"बस...

मुझे तीन महीने दे दो।

सिर्फ तीन महीने।

अगर तीन महीने बाद भी कुछ नहीं बदला...

तो फिर मैं किसी भी परिस्थिति में तुम्हारा हाथ छोड़ने वाला नहीं हूँ।"

अब मन की आँखों से आँसू बहने लगे थे, वो लगातार उसे देखे जा रही थी, इतनी देर तक कि माही असहज हो गया।

"कुछ बोलोगी नहीं?"

मन ने काँपती हुई आवाज़ में पूछा—

"ये तुम ही बोल रहे हो?"

"हाँ।"

"मुझे यकीन नहीं हो रहा।"

"क्यों?"

"क्योंकि मुझे लगता था कि चाहे पूरी दुनिया बदल जाए...लेकिन तुम नहीं बदलोगे।"

"मन..."

"नहीं।"

उसने सिर हिला दिया।

"पहले सबको समझाने की बात करते थे...आज मुझे समझा रहे हो।

"ऐसा नहीं है।"

"ऐसा ही है।"

अब उसकी आवाज़ टूट रही थी, जब पूरी दुनिया मेरे खिलाफ खड़ी थी...तब मुझे लगा था कि कम से कम तुम मेरे साथ खड़े रहोगे, माही ने कुछ कहना चाहा, लेकिन कह नहीं पाया, मन खड़ी हो गई।

"तुम्हें तीन महीने चाहिए ना?"

"हाँ..."

"ठीक है।"

मैंने तुम्हे पूरी जिंदगी दी

जाओ....

"लेकिन शायद मैं वहीं नहीं रहूँगी जहाँ आज हूँ।"

माही का दिल धक से रह गया।

"क्या मतलब?"

"कुछ नहीं।"

वो मुड़ी और चलने लगी।

"मन..."

माही भी उठ खड़ा हुआ।

"रुको।"

लेकिन वो नहीं रुकी।

"मन, मेरी बात सुनो।"

"मेरे पीछे मत आना।"

"क्यों?"

वो पलटी।

उसकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं, क्योंकि आज पहली बार लगा है...कि तुम मेरा हाथ पकड़ने नहीं...

उसे छोड़ने की तैयारी कर रहे हो, और फिर वो तेजी से आगे बढ़ गई।

माही उसके पीछे भागा।

"नहीं!"

"मन, रुक जाओ!"

"मैं तुम्हें छोड़ नहीं रहा!"

लेकिन वो लगातार दूर होती गई।

दूर...

और दूर...

फिर धुंधली होने लगी।

और कुछ ही क्षणों में उसकी आँखों से ओझल हो गई।

"नहीं!"

माही एकदम से उठ बैठा।

उसकी साँसें बुरी तरह चल रही थीं।

सीना तेजी से धड़क रहा था।

पूरा शरीर पसीने से भीग चुका था।

कुछ देर तक उसे समझ ही नहीं आया कि वह कहाँ है।

फिर धीरे-धीरे उसकी नज़र कमरे में घूमी।

अंधेरा।

पंखे की आवाज़। दीवार पर टंगी घड़ी। सब कुछ अपनी जगह था।

उसने काँपते हाथों से पानी की बोतल उठाई, दो घूँट पानी पिया, फिर घड़ी की ओर देखा।

रात के दो बज रहे थे, उसे समझ आ चुका था।

वो पार्क नहीं था, कोई बातचीत नहीं हुई थी।

और मन कहीं नहीं गई थी, ये सब एक सपना था।

लेकिन उस सपने ने उसके भीतर छिपे सबसे बड़े डर को सामने ला दिया था।

उसे लगा जैसे इस अधूरी नींद ने उसको सारा भविष्य दिखा दिया हो।

वह कुछ देर तक खुद को देखता रहा।

फिर करवट बदलकर लेट गया।

लेकिन अब नींद वापस आने वाली नहीं थी।

इसलिए उसने आँखें बंद कर लीं...

और सुबह होने का इंतज़ार करने लगा।

अध्याय - 185

“कत्ल की रात”

(और विश्वास की आस)

उस सपने के बाद माही की हालत और भी खराब हो गई थी। अब उसके भीतर मन तक अपना निर्णय पहुंचाने की हिम्मत ही नहीं बची थी। जब भी वह ऐसा करने का विचार करता... सपने वाली वह आवाज़ उसके कानों में विस्फोट करने लगती— "मैं जा रही हूँ..." और उसे हमेशा के लिए खो देने का डर उसे भीतर तक कंपा देता। इसी कशमकश में दो-तीन दिन और निकल गए। आज रात के एक बज रहे थे और वह अभी भी उसी उधेड़बुन में था— क्या उसे अपनी समस्याओं, समाज के विरोध, माता-पिता की हालत, एक बेबस माँ की पुकार और अपनी टूटती मानसिक स्थिति... इन सब से ऊपर अपने प्यार को रखना चाहिए? इस प्रश्न का कोई सीधा उत्तर नहीं था और यही उत्तरहीनता उसे और अधिक मानसिक रूप से बीमार कर रही थी। वह इन सबको दरकिनार भी तो नहीं कर सकता था। आज वह वास्तव में समझदारी और पागलपन के बीच का रास्ता खोज रहा था, लेकिन वह रास्ता उसे कहीं मिल नहीं रहा था। उसके भीतर एक तर्क उभरा— अगर प्यार के लिए वह आज इन सब दिक्कतों को नज़रअंदाज़ कर देता है, तो शायद वह प्यार को पा लेगा। लेकिन क्या वह उसे सहेज पाएगा? नहीं, शायद "प्यार को पाकर भी वह उसे खो देगा।" घुट-घुट कर जीने वाले माहौल में प्रेम ज्यादा दिन साँस नहीं ले पाता। तो फिर क्या करे? उसे 'मन' को अपने निर्णय के बारे में बता देना चाहिए, लेकिन कड़वा सच यह था कि सौ बार हिम्मत जुटाने के बाद भी वह ऐसा कर नहीं पा रहा था। फिर भी, आज उसने एक अंतिम फैसला किया। आज की रात वह इस निर्णय को 'मन' तक पहुँचाकर ही रहेगा, क्योंकि वह उसे बिना हासिल किए तो खो सकता था... पर वह उसे पाकर खोना नहीं चाहता था।

उसने निर्जीव प्राय हाथों से मोबाइल उठाया, व्हाट्सएप खोला और चैट बॉक्स में टाइप करना शुरू किया— "आज तुम्हारे लिए, तुमसे ही पहली बार कुछ माँग रहा हूँ। मैं ठीक नहीं हूँ। कई दिक्कतों ने एक साथ घेर लिया है। सीधी बात यह है कि मैं अभी विवाह करने की स्थिति में नहीं हूँ। न मैं ठीक हूँ, और न ही परिस्थितियाँ। लेकिन इतना विश्वास रखो कि मैं कहीं नहीं जा रहा। मुझे खुद को और स्थिति को ठीक करने के लिए तीन महीने

चाहिए। बस वो मुझे दे दो। मैं तुम्हारी हर हसरत पूरी करूँगा। मुझे पता है कि यह सुनना और इस पर विश्वास करना तुम्हारे लिए आसान नहीं होगा, लेकिन मैं तुम्हारे आगे हाथ ही जोड़ सकता हूँ। हाथ फैलाकर तीन महीने माँग रहा हूँ... बस वो दे दो। अगर तीन महीने में कुछ सही नहीं हुआ, तो हर प्रतिकूल स्थिति में मैं तुम्हारा हाथ थामूँगा। इसलिए आज भरोसा करो। इस समय मुझे तुम्हारे विश्वास की सबसे ज्यादा ज़रूरत है। इसलिए समय नहीं... अपना विश्वास दे दो। 

मैसेज टाइप हो चुका था। उसके हाथ बुरी तरह हिल रहे थे, एक गहरा डर उसके रोम-रोम में बस गया था। बाहर से आती कुत्तों के रोने की आवाज़ और कभी-कभार गूँजती उल्लू की डरावनी पुकार... उस रात के खौफ को और भी वीभत्स कर रही थी। लेकिन आखिरकार, शब्दों की कलम अपना काम कर चुकी थी। अब बारी अंगूठे की थी। वह उठता... आगे बढ़ता... और फिर पीछे हट जाता। ऐसा कई बार हुआ। और फिर आखिर में... आँखें बंद करके उसने अपना अँगूठा 'Send' पर टिका दिया। मैसेज चला गया और उसके दोनों हाथ सीने पर एक भारी पत्थर की तरह आ गिरे। आँखों से बूंदें छलक पड़ीं। उसने अक्सर फिल्मों में सुना था— "कत्ल की रात।" लेकिन आज की रात... उसके लिए सचमुच कत्ल की रात थी। प्यार का कत्ल, सपनों का कत्ल, इच्छाओं का कत्ल, और यह कत्ल सिर्फ उसी का नहीं हुआ था... कुछ और भी मर गया था।

अध्याय - 186

“फोन का मौन”

आज पूरे दिन माही की हिम्मत नहीं हुई कि इंटरनेट ऑन करे। कई बार फोन हाथ में उठाया, अंगूठा डेटा वाले बटन तक गया, फिर वापस आ गया। हर बार उसे लगता— अगर जवाब आ गया तो? और अगर जवाब नहीं आया तो? उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह किससे ज्यादा डर रहा है। पूरा दिन इसी बेचैनी में निकल गया, फिर शाम, रात और फिर वही समय... रात का लगभग एक बजा था। ठीक चौबीस घंटे पहले इसी समय उसने वह संदेश भेजा था, मानो आज उसी फैसले का परिणाम जानने की घड़ी आ गई हो। उसने गहरी सांस ली और काँपते हाथों से इंटरनेट ऑन किया। अगले ही पल फोन कंपन से भर गया। व्हाट्सएप पर संदेशों की बाढ़ आ गई— ऑफिस के, विभिन्न ग्रुप, दोस्तों के मैसेज, सैकड़ों नोटिफिकेशन। लेकिन माही की नज़र किसी और को खोज रही थी। वह सिर्फ एक नाम तलाश रहा था— "मेरा मन "। व्हाट्सएप शांत हुआ, मैसेज आना रुके। उसने ऊपर से नीचे तक देखा, लेकिन वह चैट ऊपर नहीं आई।

अब उसने खुद स्कॉल करना शुरू किया। दिल की धड़कनें तेज हो चुकी थीं और फिर... वह चैट सामने थी। उसने उसे खोला। चैट बॉक्स बिल्कुल शांत था। न कोई जवाब, न कोई प्रतिक्रिया, न कोई नया संदेश। सिर्फ उसके कल रात भेजे गए संदेश पर दो नीले टिका बस। मतलब... 'मन' ने संदेश पढ़ लिया था, लेकिन कुछ कहा नहीं था। माही कई मिनट तक स्क्रीन को देखता रहा जैसे शायद कोई नया संदेश अचानक प्रकट हो जाएगा, लेकिन कुछ नहीं हुआ। फिर उसका मन वही करने लगा जो पिछले कई दिनों से करता आ रहा था— कल्पनाएँ, आशंकाएँ, डरा। शायद वह नाराज़ है, शायद रोई होगी, शायद परिवार ने फोन ले लिया होगा, शायद... शायद अब सब खत्म हो गया है। रात किसी तरह बीती। सुबह का उजाला हुआ तो वह बिस्तर से निकलकर आँगन में चक्कर काटने लगा। माँ ने काफी देर तक उसे देखा— "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

"फिर ऐसे क्यों घूम रहा है?"

उसने बस सिर हिला दिया।

उसने फिर फोन उठा लिया। इस बार उसने इंतजार नहीं किया, सीधे मैसेज भेज दिया— "Hello." कुछ सेकंड बाद दूसरा— "Hello." फिर तीसरा— "Please reply." लेकिन इस बार संदेश एक टिक पर ही रुक गए। उसने तुरंत कॉल मिलाई, कोई जवाब नहीं। दुबारा, फिर नहीं। तीसरी बार, फिर भी नहीं। अब उसका धैर्य जवाब देने लगा था। वह बिना नहाए, बिना कुछ खाए घर से निकल गया। शहर की तरफ। दफ्तर गया, नहीं मिली। लाइब्रेरी गया, नहीं मिली। पार्क गया, नहीं मिली। जहाँ-जहाँ उसके मिलने की संभावना थी, उसने लगभग सब जगह देख लिया, लेकिन 'मन' कहीं नहीं थी। उसने उसके घर पर फोन किया, कोई जवाब नहीं। उसकी माँ का नंबर मिलाया, वहाँ भी नहीं। शाम तक वह थककर घर लौट आया, लेकिन बेचैनी वहीं की वहीं थी। हर दो मिनट बाद फोन देखता, फिर रख देता, फिर उठा लेता। और तभी... उसकी नज़र प्रोफाइल फोटो पर गई। वह खाली थी, सफेद, बिल्कुल खाली। माही उसे देखता रह गया। इतने वर्षों में उसने पहली बार ऐसा देखा था। अब उसके भीतर बची हुई थोड़ी-सी शांति भी टूट गई। रात को वह बिना खाना खाए बिस्तर पर लेट गया। आंसु गिरा - गिराकर आंखे भी थक गई थी, माँ-बाप उसे देखते रहे, पूछते रहे, लेकिन वह कुछ नहीं बोला। बार-बार व्हाट्सएप खोलता, बार-बार वही चैट देखता, लेकिन कुछ नहीं बदला। संदेश अब भी एक टिक पर थे, कॉल अब भी अनुत्तरित थीं, प्रोफाइल फोटो अब भी गायब थी। और नींद... नींद तो जैसे उससे कई दिन पहले ही रिश्ता तोड़ चुकी थी। उस रात उसे एक बात समझ आई— किसी का "ना" सुन लेना उतना कठिन नहीं होता... जितना कठिन होता है किसी की खामोशी को सुनना।

अध्याय - 187

“मौन जारी. .”

उस रात के बाद एक दिन बीता, फिर दूसरा, फिर तीसरा, लेकिन 'मन' की तरफ से कुछ नहीं आया। न कोई संदेश, न कोई कॉल, न कोई शिकायत, न कोई गुस्सा। बस मौन। एक ऐसा मौन जो हर बीतते दिन के साथ और भारी होता जा रहा था। किसी अनहोनी की आशंका के बीच उसने ताऊ जी के माध्यम से परिवार की खैरियत पता की, सब ठीक था— ये जानकर उसने थोड़ी राहत की सांस ली। शुरुआत में माही को लगा था कि शायद वो नाराज़ है, लेकिन चौथे दिन तक आते-आते उसके सारे अनुमान खत्म हो गए। अब उसके पास सिर्फ इंतज़ार बचा था। वो सुबह उठते ही सबसे पहले फोन देखता, फिर खुद को समझाता कि हर पाँच मिनट में देखने से कुछ नहीं होगा, और फिर दस मिनट बाद दोबारा फोन खोल लेता। दफ्तर जाना लगभग औपचारिकता बन चुका था। अब वो फिर से अपने पैतृक दफ्तर में आ चुका था, लेकिन वहाँ भी हाज़िरी लगाता, कुछ देर कुर्सी पर बैठता, फाइल खोलता लेकिन पढ़ता कुछ नहीं, फिर उठकर बाहर निकल जाता।

कई बार वो बस स्टैंड पर जाकर बैठ जाता और आती-जाती बसों को देखता रहता। उसे खुद नहीं पता था कि वो वहाँ क्यों बैठा है, शायद इसलिए कि जिंदगी भी इस समय उसे किसी बस की तरह लग रही थी, जिसकी मंज़िल का उसे पता नहीं था। घर में भी उसकी हालत छिपी नहीं रह गई थी। माँ अब पहले से ज्यादा चुप रहने लगी थीं, उसे देख-देखकर माँ की हालत भी खराब होने लगी थी। वो जानती थीं कि बेटा किसी ऐसी लड़ाई में फँसा है जिसमें वो उसकी मदद नहीं कर सकतीं, इसलिए बस उसे देखती रहतीं और भगवान से प्रार्थना करतीं। पाँचवें दिन शाम को जब वो लौट रहा था, सामने से दो लड़कियाँ आ रही थीं। उनमें से एक की चाल बिल्कुल 'मन' जैसी थी। उसका दिल एकदम से धड़क उठा, उसने कदम तेज़ कर दिए, लेकिन पास पहुँचने पर पता चला कि वो कोई और थी। छठे दिन भी कुछ नहीं बदला। चैट बॉक्स में उसने एक नया संदेश टाइप किया, फिर मिटा दिया, दुबारा लिखा, फिर मिटा दिया। आखिर में फोन वापस जेब में रख लिया।

सातवें दिन तक आते-आते उसकी बेचैनी अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। गुस्सा अब उसे खुद पर आ रहा था, शिकायत भी खुद से ही थी, डर भी जैसे थक चुका था। बस एक खालीपन था जिसमें हर दिन 'मन' की अनुपस्थिति और स्पष्ट होती जा रही थी। उस शाम

वो घर की छत पर बैठा था। सूरज डूब चुका था, गाँव की बत्तियाँ एक-एक कर जलने लगी थीं और हर बत्ती के साथ उसको अपनी उम्मीद बुझती प्रतीत होती। वो लगातार सातवें दिन फोन की खामोशी देख रहा था। सात दिना पूरे सात दिना और 'मन' की तरफ से एक शब्द नहीं। तभी उसकी जेब में रखा फोन कंपन करने लगा। पहले उसने ध्यान नहीं दिया, लेकिन कंपन लगातार जारी रहा। उसने फोन निकाला, स्क्रीन की ओर देखा और अगले ही पल मानो समय वहीं ठहर गया। स्क्रीन पर सिर्फ दो शब्द लिखे थे— "Man Home"। वो लगातार फोन को देखे ही जा रहा था, जैसे यकीन ही नहीं हो रहा हो कि सचमुच कॉल आई है। घंटी अब भी बज रही थी, लेकिन उसे समझ नहीं आ रहा था... फोन उठाए... या पहले खुद को संभालो।

अध्याय - 188
“विश्वास या जिद”

(Disturbed, Not Diverted)

सुन्न पड़ चुकी उँगलियों ने उम्मीद को थामा और फिर रिसीव बटन दब गया।

"हैलो... हैलो

कोई आवाज नहीं आई

फिर से... हैलो...

इस बार भी साय... साय..

हैलो..., हैलो..., हैलो...

" इस बार एक धीमी आवाज़ आई—

"हाँ..." सिर्फ एक शब्द।

लेकिन सात दिनों की खामोशी के बाद वही शब्द उसके लिए बहुत था।

"कहाँ थी तुम? क्यों नहीं बात कर रही थी? क्यों नाराज़ हो?"

"नहीं हूँ नाराज़।"

"तो फिर ये सब क्या है?"

"और मान ली मैंने आपकी बाता।" माही कुछ समझ नहीं पाया— "क्या मतलब?"

"मतलब जो आप चाहते हो वही होगा, तीन महीने बाद। और ज्यादा परेशान मत होवो, अपना ख्याल रखना। जो किस्मत में लिखा है वो हो जाएगा।"

"मन..."

लेकिन फोन कट चुका था। माही ने दोबारा कॉल की, फिर की, कोशिश के बाद कोशिश, कोई जवाब नहीं। अब उसने व्हाट्सएप खोला, लगातार संदेश भेजने लगा। काफी देर बाद जवाब आया—

"मैसेज मत करो"।

यहाँ तक साथ देने के लिए शुक्रिया।

आप अच्छे इंसान हो।"

माही पूरा हिल रहा था— "ऐसा मत कहो।

मैं कहीं नहीं जा रहा।

बस थोड़ा समय माँग रहा हूँ हम फिर साथ होंगे, हमेशा के लिए।"—

"समय?"

मुझे नहीं चाहिए ये समया।"

"मेरी बात समझो।"

"मैं सब समझ रही हूँ।"

"नहीं समझ रही।

मैं टूट चुका हूँ मैं ठीक नहीं हूँ मेरी मानसिक स्थिति अच्छी नहीं है।"

"और मैं बहुत खुश हूँ? मैं भी सब झेल रही हूँ रोज़ झेल रही हूँ।"

"तो फिर मेरी हालत क्यों नहीं देख रही?"

"क्योंकि मैं पीछे नहीं हट रही।"

"मैं भी पीछे नहीं हट रहा। मैं डिस्टर्ब हूँ... डाइवर्ट नहीं। बस तीन महीने माँग रहा हूँ।"

"तीन महीने। तीन महीने। बस यही सुन रही हूँ मैं पिछले कई दिनों से।"

"क्योंकि अभी यही सही है।"

"किसके लिए सही है? तुम्हारे लिए?"

"हम दोनों के लिए।"

"नहीं।

अपने लिए।"

"मैं तुम्हें छोड़ नहीं रहा।"

"लेकिन साथ भी नहीं दे रहे।"

"अरे मैं तुम्हारा भविष्य बचाने की कोशिश कर रहा हूँ।"

"मुझे भविष्य नहीं चाहिए। मुझे तुम चाहिए। अभी।" "और अगर आज मैं शादी कर लूँ और कल सब कुछ बिखर जाए? तुम मेरी होकर भी मेरी नहीं रह पाओगी, मैं तुम्हें पाकर भी खो दूंगा।"

"तो बिखरने दो। खो देना।"

"क्या?"

"कम से कम ये तो नहीं लगेगा कि तुम डरे गए, भाग रहे थे।"

यह पढ़कर माही सन्न रह गया।

"तुम सच में यही सोचती हो?"

"और क्या सोचूँ?"

"मैं तो 10 दिन के भीतर कर रहा था। यहाँ तक कौन लेकर आया? जब सब खुश थे तो अब ये इतने नाराज़ कहाँ से आ गए?" इन सब का उत्तर 'मन' से नहीं बन रहा था।

"देखो, मुझे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं कि पीछे किस ने क्या कहा। बस मुझे एक बार समझने की कोशिश करो।"

"कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बताई नहीं जा सकती।" "तो जो बताई जा सकती हैं वो बता दो।"

यहीं उससे गलती हो गई। उसने 'मन' की माँ वाले फोन का जिक्र कर दिया

"तो अब तुम मम्मी की बातों में आ गए।"

"बातों में नहीं आया। रो रही थीं वो, हाथ जोड़ रही थीं।"

"और मेरी परवाह किसने की?"

"मैं कर रहा हूँ।"

"नहीं। अगर करते तो अभी साथ खड़े होते।"

अब माही के पास उसे समझाने के लिए शब्द हर सेकंड के साथ कम हो रहे थे।

"मन... बस तीन महीने।"

"नहीं।"

"सिर्फ तीन महीने।"

"नहीं।"

"क्यों?"

इस बार जवाब देरी से आया

फिर स्क्रीन पर सिर्फ एक पंक्ति उभरी— "क्योंकि मुझे अब समय नहीं... तुम्हारा निर्णय दिख रहा है।" उसके बाद कोई संदेश नहीं आया, फोन की बत्ती बुझ चुकी थी। लेकिन माही अब भी बात करना चाहता था। उसे अब लग रहा था कि शायद समस्या यह नहीं थी कि 'मन' उसकी बात नहीं समझ रही। समस्या यह थी कि अब वह समझना ही नहीं चाहती थी। और यही बात उसे सबसे ज्यादा डरा रही थी।

अध्याय - 189

अपराधबोध

(और बिखरते अक्स)

मन अपनी बात कह चुकी थी।

और माही अपनी कोशिश कर चुका था।

प्यार और समझदारी के रास्ते में 'ज़िद' नाम का एक ठहराव आ चुका था, और शायद यह ठहराव 'मन' के प्यार की आहत इमारत से ही गिरा एक पत्थर था।

जब माही के सारे रास्ते बंद हो गए, तो उसने दीक्षा को सब कुछ बताया।

उसने दीक्षा से गुज़ारिश की कि वह एक बार मन को समझाए, दीक्षा ने भी सारी स्थिति को फिर से मन के सामने रखा।

उसने मन को समझाया—

"दोनों की भलाई के लिए कुछ दिन रुकना, भविष्य में रिश्ते के टिकाऊपन के लिए बहुत ज़रूरी है। तुम दोनों की इज़्जत एक-दूसरे से जुड़ी है। जब इज़्जत ही एक है, तो शादी थोड़ी आगे बढ़ने से बेइज़्जती होने जैसी बातें बेमानी हैं। प्रेम विपरीत परिस्थितियों में एक-दूसरे का सहारा बनने का नाम है... न कि अपनी ज़िद को ऊपर रखने का।"

दीक्षा ने उसे यह भी वचन दिया कि तीन महीने बाद वह खुद आगे खड़े होकर पूरी ज़िम्मेदारी के साथ यह शादी करवाएगी। और हर हाल में "मन" के साथ रहेगी।

लेकिन इन सारी दलीलों, समझाइशों और वचनों के बाद...

मन ने सिर्फ एक वाक्य कहा—

"समय बताएगा।"

और बिना किसी निष्कर्ष के इस बातचीत को वहीं विराम दे दिया।

अब दिन बीतने लगे।

माही ने सब कुछ जल्दी-जल्दी ठीक करने का प्रयास शुरू कर दिया।
लेकिन उसकी गिरती हुई मानसिक हालत उसके हर कदम पर आड़े आ रही थी।
मन की ज़िद उसे भीतर ही भीतर और ज़्यादा तोड़ रही थी।
मन उसकी मां समेत किसी भी रिश्तेदार, नातेदार से उसके मिलने के पक्ष में नहीं थी।
ये बात माही को बहुत ज्यादा
आहत कर रही थी।
जिस काम के लिए उसे समय चाहिए था...उसे उसके लिए भी रोका जा रहा था।
कभी उसका जी करता कि वह सब कुछ छोड़कर मन की बात मान ले।
"जो होगा देखा जाएगा।"
उसे मन को खो देने का डर हर पल सताता था।
लेकिन जैसे ही वह इसके लिए खुद को तैयार करता...
एक दूसरी आवाज़ उसे रोक देती—उसके पिता का डर, उस विधवा माँ के आँसू।
और फिर वह आवाज़ उसके पहले विचार पर हावी हो जाती।
इस तरह वह एक खतरनाक 'ओवरथिंकिंग' (Overthinking) के चक्रव्यूह में फँस चुका था।
इन सबके बीच एकमात्र सकारात्मक बात यह रही कि अपने उस पुलिस वाले दोस्त की मदद से उसने अपना झूठा मुकदमा एक अच्छे और प्रसिद्ध वकील के हवाले कर दिया।
बेशक इसके लिए उसे दो लाख रुपये (₹2,00,000) का भारी भुगतान करना पड़ा...
लेकिन उसके लिए तीन महीने के भीतर इस मुकदमे को निपटाना सबसे ज़रूरी था।
क्योंकि... मामला 'मन' का था।
वह कोशिश करता कि मन से बातों का क्रम ना टूटे
इसलिए वो
बीच-बीच में मन को मैसेज कर देता।

कभी गाड़ी की किश्त का बहाना बनाकर...

कभी पुरानी यादों

के साथ, तो कभी किसी और काम की आड़ लेकर।

कभी-कभार मन उससे हल्की-फुल्की बात कर लेती।

तो कभी अचानक झिड़क देती—

"मुझे दोबारा कॉल या मैसेज मत करना!"

और चैट बंद कर देती।

उसका यह बदलता हुआ रवैया माही को और भी तोड़ देता था।

भीतर ही भीतर वह खुद को मन का गुनहगार मानने लगा था।

वह इस पूरी परिस्थिति के लिए सिर्फ और सिर्फ खुद को जिम्मेदार ठहरा रहा था।

ये सब बातें उसकी दिमागी हालत को बद से बदतर कर रही थीं।

अब तो घर पर भी वह अकारण ही अपने माता-पिता से उलझने लगा था। वह हर बात में अपने परिवार को और खुद को दोषी ठहराने लगा था।

इन सबका असर यह हुआ कि उसकी मम्मी भी धीरे-धीरे अवसाद (Depression) में चली गई।

वह बेवजह रोने लगती।

अकेले में खुद से बातें करती।

घर का जो माहौल कुछ समय पहले तक खुशियों से भरा था, वह अब पूरी तरह से बदल चुका था।

दफ्तर का हाल भी कुछ अलग नहीं था।

वह आता। हाजिरी लगाता। लेकिन कोई काम नहीं करता।

बाहर खुले में जाकर एक बेंच पर चुपचाप बैठा रहता। शून्यता में घूरता हुआ।

मन भी दफ्तर आती थी।

चूँकि अब फिर से वो अपने मूल कार्यालय में आ गया था इसलिए...

वह उसे हर रोज़ इस हालत में देखती।

पर सिर्फ देखती... कुछ कहती नहीं।

उस के भीतर क्या था

ये बस वो ही जानती थी।

माही को बड़ी हुई दाढ़ी...बेतरतीब बाल उसके आत्मविनाश की गवाही दे रहे थे... लेकिन इन दलीलों को सुनने वाले दिल ने अपने दरवाजे पर ताला लगाकर चाबी को शून्यता में फेंक दिया था।

शुरुआत में कुछ दिन मन की हालत भी खराब रही थी, लेकिन शायद उसने अब खुद को व्यवस्थित कर लिया था।

एक रात माही मन से..

यार, मुझे नींद नहीं आती, मेरी जिंदगी से रुचि खत्म होती जा रही है..हर समय कुछ डराता रहता है।

मुझे किसी अच्छे psychiatrist के पास ले चलो।

मन...

क्यों.. तुम खुद चले जाओ।

“मन” ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था।

ये जवाब उसके लिए किसी सदमे जैसा था,जिसने उसकी पहले की खराब स्थिति को और बदतर कर दिया, माही अब चाह कर भी खुद को नहीं सँभाल पा रहा था।

उसकी दाढ़ी और बाल बढ़कर भद्देपन की हद तक आ चुके थे।

उसे खुद से ज़्यादा अब भी मन की चिंता रहती।

न जाने क्यों, एक अपराधबोध (Guilt) ने उसे जकड़ लिया था।

उसके भीतर से बार-बार एक ही आवाज़ आती कि उसने मन के साथ बहुत गलत किया है।

परिस्थितियों में दोष दिखना उसे अब बंद हो चुका था। उसे लगता कि हर बुरी परिस्थिति की जड़ केवल वही है।

उसकी बहन और माँ उसकी इस खस्ता हालत को देखकर सबसे ज्यादा दुखी थे।

माँ खुद अवसाद में जा चुकी थी।

लेकिन कर कोई भी कुछ नहीं सकता था।

और अंततः... माही ने खुद से ही नफरत करनी शुरू कर दी।

धीरे-धीरे वह परिस्थितियों से नहीं...

खुद से लड़ने लगा था, और इस लड़ाई में कोई अदालत नहीं थी, कोई वकील नहीं था, कोई फैसला सुनाने वाला भी नहीं, सिर्फ वह था।

और उसका "अपना मन"

जो अब उसके खिलाफ गवाही देने लगा था।

“आधा रास्ता”

धीरे-धीरे समय बीतता गया। दिन, हफ्ते और देखते ही देखते डेढ़ महीना गुजर गया। माही ने तीन महीने मांगे थे, लेकिन सच यह था कि उन तीन महीनों का आधा हिस्सा बीत जाने के बाद भी वह वहाँ नहीं पहुँच पाया था जहाँ पहुँचने की उम्मीद की थी। उसने सोचा था कि वह परिस्थितियाँ, मुकदमे को संभाल लेगा, रिश्ते के विरोधियों से बात करेगा और अपने मन को स्थिर कर लेगा। लेकिन हुआ उल्टा। एक तो वो 'मन' के सभी घर वालों और रिश्तेदारों को, जो विरोध में थे, उनको एक जगह बैठकर अपना पक्ष रखना चाह रहा था, लेकिन इसमें सबसे बड़ी रुकावट खुद 'मन' ही थी। वह विरोधियों से नहीं हार रहा था, विडंबना यह थी कि, उन्हीं तक पहुँचने का रास्ता बंद था। उस रास्ते की सबसे बड़ी चौकीदार स्वयं 'मन' बन चुकी थी। वो नहीं चाहती थी कि वो किसी से मिले, बल्कि उसने किसी से भी मिलने के लिए स्पष्ट मना कर रखा था।

हालाँकि “स्थानांतरण” की प्रक्रिया उसने शुरू करवा दी थी, लेकिन सच ये था कि जिन समस्याओं को सुलझाने के लिए उसने समय माँगा था, अब वही समस्याएँ उसे सुलझाने नहीं दे रही थीं। अब उसे जुदाई का असली अर्थ समझ आने लगा था। पहले 'मन' उसकी आदत थी, अब आवश्यकता बन चुकी थी। उसकी सुबह 'मन' से शुरू होती थी, अब उसकी सुबह भी 'मन' पर खत्म होती थी। मम्मी की खराब मानसिक हालत के कारण घरेलू कामों के लिए अन्य व्यवस्था करनी पड़ी, खाना सामने रखा रहता, घंटों रखा रहता... फिर ठंडा हो जाता। कई बार बिना खाए ही दिन निकल जाता। नहाना, कपड़े बदलना, दाढ़ी बनाना... ये सब अब उसके लिए जरूरी काम नहीं रह गए थे। दफ्तर में लोग उसे देखकर चौंकने लगे थे, कुछ उसका मजाक उड़ाते। जिस व्यक्ति की पहचान कभी उसकी सादगी और व्यवस्थित जीवन थी, अब वही बिखरा हुआ दिखाई देता था। उसका एक मित्र कई दिनों से यह सब देख रहा था, एक दिन उसने लगभग जबरदस्ती उसे अपने साथ ले जाकर मनोचिकित्सक से मिलवाया। दवाइयाँ शुरू हुईं, बाल कटे, दाढ़ी ठीक हुई, लेकिन भीतर की उलझन वहीं रही। हाँ, एक बदलाव जरूर आया— जो नींद महीनों से उससे रूठी हुई थी, अब वही हर समय उसके आसपास रहने लगी। कई बार कुर्सी पर बैठे-बैठे, कई बार बस में, कई बार दफ्तर में उसे अचानक नींद घेर लेती। और हर बार

जागने पर उसे लगता कि शायद कुछ बदल गया होगा। लेकिन नहीं, जागते ही वही विचार, वही खालीपन, वही 'मन'।

धीरे-धीरे उसे एहसास होने लगा कि फिलहाल उसे समाज से लड़ने की नहीं, खुद को संभालने की जरूरत है। उसने अपने जीवन में कई सिद्धांत बनाए थे, कई उसूलों पर चला था, लेकिन इस समय उसे कुछ भी याद नहीं रहता था। अगर कुछ याद रहता था, तो सिर्फ 'मन'। और शायद यही उसकी सबसे बड़ी समस्या भी थी। एक शाम उसकी बेचैनी अपने चरम पर पहुँच गई। बहुत देर तक वह फोन को देखता रहा, अपने आप से लड़ता रहा, फिर आखिरकार हार गया। उसने व्हाट्सएप खोला और लिखा— "मैंने तुम्हें तकलीफ दी है। मैं खुद से नज़रें नहीं मिला पा रहा। और सच कहूँ तो मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पा रहा। एक-एक पल भारी लग रहा है। अगर तुम्हें लगता है कि मैं गलत था... तो मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार हूँ।" संदेश भेजने के बाद वह देर तक संदेश को देखता रहा। अंगूठा "Delete for everyone" पर जाकर रुक गया और अगले ही क्षण पूरा संदेश गायब हो गया। शायद प्रेम उसे भेज देना चाहता था, लेकिन प्रतिबद्धता ने उसे रोक लिया। शायद परिस्थितियों पर विजय की वचनबद्धता ने उसे रोक लिया। और तभी उसने अपने वकील से बात की, उसे हर हाल में जल्दी तारीख लेकर केस खत्म करवाने के लिए कहा, स्थानांतरण प्रक्रिया की भी जानकारी ली और एक व्यक्ति से भी बात की जो 'मन' के सभी घर वालों और रिश्तेदारों को एक जगह इकट्ठा कर दे। इसी बीच कई बार 'मन' उस पर बरस पड़ती, उसे व उसके परिवार को कठघरे में खड़ा करती, समाज और उसकी मम्मी से सिर पर ताज बंधवाने का कटाक्ष करती। एक दिन उसने कह दिया— "अगर तुम्हें लगता है कि मैं तुम्हारी इस हालत के लिए जिम्मेदार हूँ, और सच्चाई ये है कि हूँ भी जिम्मेदार, तो तुम कर लो जैसा चाहती हो। मैं तैयार हूँ। अगर तुम मुझे इस हालत में स्वीकार करने की हिम्मत रखती हो तो... नहीं तो एहसान करके मुझे माँगा गया समय दे दो, मैं अपने वादे से नहीं हटूंगा।" इस तरह से हर मोर्चे पर जूझता हुआ वो आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था।

अध्याय - 191

“धुंध का छटना”

समय के साथ दिन बीतते गए और देखते ही देखते तीन महीनों का अंतिम चरण भी आ पहुँचा। जिस दिन उसने 'मन' से समय माँगा था, उस दिन उसके चारों ओर केवल धुंध थी, लेकिन अब धीरे-धीरे हटने लगी थी। उसकी मानसिक स्थिति में कुछ सुधार होते ही सबसे पहले उसने मुकदमे पर ध्यान दिया। पुलिस विभाग में कार्यरत अपने उसी मित्र और वकील की सलाह पर उसने न्यायालय में शीघ्र सुनवाई की प्रार्थना की, जिसे न्यायालय ने स्वीकार कर लिया और दस दिन बाद सुनवाई की तिथि निर्धारित कर दी। पहली सुनवाई हुई, बयान हुए, साक्ष्य प्रस्तुत किए गए और फिर एक महीने बाद अगली तारीख दी गई। उस दिन अदालत में लंबी बहस चली, अगले दिन भी, लगातार दो दिन तक दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात रखते रहे। और फिर... न्यायालय ने अपना निर्णय सुनाया— अस्तित्व अवाना पर लगाए गए सभी आरोप निराधार पाए गए। न्यायालय ने माना कि प्रस्तुत तथ्यों और साक्ष्यों के आधार पर आरोप सिद्ध नहीं होते, बल्कि उपलब्ध परिस्थितियाँ यह संकेत देती हैं कि पूरा प्रकरण एक व्यक्ति विशेष को लक्षित करने के उद्देश्य से खड़ा किया गया था। फैसला सुनते समय माही स्वयं अदालत में मौजूद था। कई महीनों बाद उसके चेहरे पर राहत दिखाई दी। “उसने मन ही मन ईश्वर का धन्यवाद किया— और उन दोनों लोगों का भी, जिन्होंने इस कठिन समय में उसका साथ दिया था।” एक बड़ी बाधा समाप्त हो चुकी थी, लेकिन माही जानता था कि उसकी लड़ाई सिर्फ अदालत तक सीमित नहीं थी।

इन महीनों में उसने 'मन' के परिवार और रिश्तेदारों तक पहुँचने का प्रयास भी जारी रखा। वह उन लोगों से मिला जो इस रिश्ते का विरोध कर रहे थे, उनसे बात की, उनके प्रश्न सुने और अपना पक्ष रखा। आश्चर्य की बात यह थी कि जिन लोगों को वह सबसे बड़ा विरोधी समझता था, उनमें से अधिकांश के पास कोई स्पष्ट उत्तर ही नहीं था— न समर्थन, न विरोध, सिर्फ झुकी हुई निगाहें और तटस्थता। माही ने अपने प्रयासों से इतना सुनिश्चित कर दिया कि वो साथ भले ही न आएँ, लेकिन लड़की और उसके परिवार को पेशान नहीं करेंगे और न ही उन्हें बदनाम करेंगे। यह एक बड़ा बदलाव था। हाँ, कुछ लोग ऐसे अवश्य थे जो समाज और परंपरा के दिखावटी रक्षक बने हुए थे, उनका विरोध आज भी वैसा ही था, लेकिन अब माही समझ चुका था कि हर व्यक्ति को मनाना संभव नहीं होता

और आवश्यक भी नहीं। जो लोग वास्तव में समस्या उत्पन्न कर सकते थे, उनसे अलग तरीके से बात की गई ताकि भविष्य में कोई अनावश्यक टकराव उत्पन्न न हो। इस पूरी यात्रा में सुहाना और एक ऐसे व्यक्ति ने उसका विशेष साथ दिया जिसकी पहुँच और विश्वसनीयता दोनों ही असाधारण थीं। सच तो यह था कि उनके सहयोग के बाद ही माही को पहली बार महसूस हुआ कि वह अकेला नहीं है।

दूसरी तरफ उसका इलाज भी जारी था— दवाइयाँ, परामर्श और लंबी बातचीत। सब कुछ धीरे-धीरे असर दिखाने लगा। जिस 'मन' ने कुछ महीने पहले उसके खिलाफ गवाही देना शुरू कर दिया था, वही अब धीरे-धीरे उसके साथ बैठकर बात करने लगा था। वह अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था, लेकिन अब टूट भी नहीं रहा था। सबसे बड़ा परिवर्तन तब आया जब उसने कुछ ऐसी बातें जानीं जिनसे उसका अपराधबोध कमजोर पड़ने लगा। धीरे-धीरे उसे समझ आने लगा कि उस दिन सुनी गई हर पुकार उतनी असहाय नहीं थी जितनी उस दिन उसे प्रतीत हुई थी। जिस पुकार को उसने एक बेबस माँ की पुकार समझा था, उसमें सामाजिक प्रतिष्ठा का भय भी उतना ही शामिल था। उसे पता चला कि 'मन' की माँ का सबसे बड़ा डर अपनी बेटी का भविष्य नहीं, बल्कि समाज के सामने अपनी स्थिति थी— लोग क्या कहेंगे, रिश्तेदार क्या सोचेंगे, बिरादरी में क्या चर्चा होगी? यह जानकर माही को खुशी नहीं हुई, बल्कि निराशा हुई। उसने परिस्थितियों को भावनाओं से अलग होकर देखना शुरू किया, और तभी उसे एहसास हुआ कि तीन महीने पहले लिया गया निर्णय शायद उतना गलत नहीं था जितना वह स्वयं को समझाने लगा था। अब उसके सामने अधिकांश समस्याओं की दिशा स्पष्ट थी— कुछ समाप्त हो चुकी थीं, कुछ नियंत्रण में थीं और कुछ का समाधान दिखाई देने लगा था। लेकिन एक प्रश्न अब भी वैसा ही खड़ा था, जैसा उस रात खड़ा था जब उसने काँपते हाथों से वह संदेश भेजा था— 'मन'। मुकदमा आसान था, समाज भी आसान था, रिश्तेदार भी आसान थे, क्योंकि वहाँ तर्क काम करते थे। लेकिन अब उसे उस लड़की के सामने जाना था जिसका दोष उसने खुद के सिर पर ले रखा था। और शायद यही उसकी सबसे कठिन लड़ाई होने वाली थी।

अध्याय - 192

रेत का महल

(और एक निर्णायक संदेश)

बाहरी दुनिया की जंग जीतने के बाद भी, माही दो-तीन दिन तक इसी उधेड़बुन में रहा कि वह 'मन' से बात कैसे शुरू करे।

पहला शब्द क्या हो?

शुरुआत कहाँ से करे?

लेकिन उसके भीतर भारी बेचैनी थी। वह अब और इंतज़ार नहीं कर सकता था।

इसलिए, ज़्यादा समय न खराब करते हुए, उसने तीन महीने पूरे होने से ठीक एक दिन पहले ही फोन उठाया।

रात के अंधेरे में, सुबह के ठीक 4 बजे, उसने अपना दिल निकालकर उस कीपैड पर रख दिया:

"तुम्हारे प्यार और विश्वास की शक्ति से मैं बहुत हद तक परिस्थितियों को नियंत्रित कर चुका हूँ। अब मुझे तुम्हारा साथ चाहिए... उम्र भर के लिए। इसलिए समय निकाल कर बात करना मेरे से"

यह सिर्फ एक संदेश नहीं था, यह उन 89 दिनों के नरक का निचोड़ था।

संदेश सुबह 7 बजे डिलीवर हुआ।

लेकिन... 'सीन' (Seen) सुबह 10 बजे हुआ।

माही के लिए यह तीन घंटे का अंतराल १ सदी से कम नहीं था। आज से पहले, उनके बीच संदेश डिलीवर होने और पढ़े जाने का अंतर कुछ 'सेकंड्स' से ज़्यादा का कभी नहीं रहा था। आज उन सेकंड्स की जगह घंटों ने ले ली थी।

और फिर... रिप्लाई आया।

बेहद ठंडा।

"वैसे तो कोई बात है नहीं। फिर भी आपको करनी है तो यहीं टाइप कर दें... कॉल की कोई ज़रूरत नहीं है।"

माही ने इस रूखे जवाब को ज़्यादा अप्रत्याशित नहीं समझा। उसे लगा कि इतने दिनों की दूरी के बाद यह महज़ एक क्षणिक नाराज़गी है। रूठना-मनाना तो प्यार का हिस्सा है।

इसलिए, उसने बात को बिगड़ने से बचाने के लिए दीक्षा को मध्यस्थ (Mediator) की भूमिका सौंपी। उसने दीक्षा से कहा कि वह एक बार मन से बात करे और उनके बीच संवाद का कोई रास्ता खोले।

दीक्षा ने कोशिश की।

शुरू में मन ने दीक्षा का भी फोन नहीं उठाया।

लेकिन कुछ प्रयासों के बाद, आखिरकार उसने बात की।

कुछ ही देर बाद, दीक्षा का संदेश माही के फोन पर आया।

दीक्षा ने पूरी बातचीत की कहानी नहीं लिखी। उसने सिर्फ उस बातचीत का वह क्रूर निष्कर्ष दो पंक्तियों में माही को भेज दिया, जो मन ने उसे कहा था:

"मैंने अब अपना विचार बदल लिया है। इसलिए अब मुझे माफ करें। और कॉल या मैसेज करके ज़्यादा परेशान ना करें।"

“शून्यता का प्रहार”

संदेश पढ़ने के बाद... कमरे और दिमाग में अंधेरा छाना लाजमी था।

लेकिन,

इस बार माही के हाथ नहीं काँपे। उसकी आँखों से कोई आँसू नहीं गिरा। उसकी साँसें तेज़ नहीं हुईं।

इसके विपरीत, वह बिल्कुल स्थिर हो गया। पत्थर की तरह।

यह कोई शोर करता हुआ धमाका नहीं था; यह एक ऐसा मौन था जो माही के भीतर सब कुछ बहरा कर चुका था।

"विचार बदल लिया है?"

माही का दिमाग इस वाक्य के अर्थ को प्रोसेस करने से इंकार कर रहा था।

कोई अपना 'विचार' कैसे बदल सकता है? विचार तो बाज़ार से कपड़े खरीदते समय बदला जाता है। किसी रेस्तरां में खाना ऑर्डर करते समय बदला जाता है।

इंसान अपनी जिंदगी, अपना प्यार, अपना वजूद... ऐसे कैसे बदल सकता है, जैसे कोई पुरानी कमीज़ उतार कर फेंक रहा हो?

वह एक ऐसे लड़ाके की तरह महसूस कर रहा था जो महीनों तक खून-पसीना बहाकर, दुश्मनों को हराकर, अपने सीने पर घाव खाकर किले में विजयी होकर लौटा हो... सिर्फ यह देखने के लिए कि जिस राजकुमारी के लिए वह लड़ रहा था, वह राजकुमारी खुद ही महल छोड़ कर चली गई थी।

उन तीन महीनों में माही ने खुद को समाज से लड़ते हुए, अदालत के चक्कर काटते हुए, मनोचिकित्सक की गोलियाँ खाते हुए, परिस्थितियों को थोड़ा पक्ष में झुकाया था।

और इस सारे संघर्ष, इस सारे बलिदान की कीमत क्या निकली?

"मुझे माफ करें और परेशान न करें।"

जिस 'मन' के बिना वह एक पल साँस नहीं ले पा रहा है, उस मन के लिए यह पूरा रिश्ता केवल एक 'विचार' था।

अचानक माही को अपने आसपास की सारी दीवारें अपने ऊपर गिरती हुई महसूस होने लगीं।

अपराधबोध (Guilt) का वह बोझ जो उसने अपने कंधों पर उठाया हुआ था, उसका वास्तविक अहसास वो अपने भीतर उतारने की कोशिश कर रहा था।

उसने एक पहाड़ काटकर रास्ता बनाया था, और जब रास्ता बनकर तैयार हुआ... तो पता चला कि उस पार... कोई था ही नहीं।

फोन की वो स्क्रीन बार बार आंखों के सामने आ रही थी, जहाँ 'विचार बदलने' की बात लिखी थी।

प्यार, वादे समझदारी और विश्वास उसे राख होते प्रतीत होने लगे, लेकिन इन सब के बीच उम्मीद की हल्की अग्नि अब भी किसी कोने में जली हुई थी।

अध्याय - 193

"शायद" (एक मृगतृष्णा)

मन अपना अंतिम फैसला सुना चुकी थी।

एक ऐसा फैसला जो किसी पत्थर पर खींची गई लकीर की तरह कठोर और स्पष्ट था।

लेकिन माही का अंतर्मन उसे स्वीकार करने से साफ इनकार कर रहा था।

शायद इंसान का दिल उस कांच की तरह होता है, जो टूटने से पहले यह मानने को तैयार ही नहीं होता कि पत्थर उसी की तरफ फेंका गया है। माही को बार-बार यही लगता कि मन महज उसकी कोई परीक्षा ले रही है।

यह उसका भ्रम था, लेकिन यही भ्रम उसकी साँसों को चला रहा था।

उसका तर्क सीधा था— सारी दुनिया पलट सकती है, नदियाँ अपना रास्ता भूल सकती हैं, ऋतुएं बदल सकती हैं लेकिन उसका "मन" कैसे बदल सकता है? इसी खोखली उम्मीद के धागे को पकड़कर उसने फिर एक मैसेज भेजा।

लेकिन इस बार वह संदेश एक ऐसे अंधे कुएँ में गिरा जहाँ से कोई गूँज वापस नहीं आई। 'दो नीले निशान' (Blue Ticks) का तो सवाल ही नहीं था; संदेश बस एक सलेटी निशान (Single Tick) पर अटक कर रह गया।

अक्सर कहा जाता है कि 'प्रेम' और 'आत्मसम्मान' एक ही म्यान में रखी दो तलवारों की तरह होते हैं— जहाँ एक होता है, वहाँ दूसरे के लिए कोई जगह नहीं बचती।

माही ने अपने आत्मसम्मान की तलवार को म्यान से निकालकर बहुत पहले ही फेंक दिया था। वह हार मानने को तैयार नहीं था।

उसने एक बार फिर अपनी आखिरी उम्मीद, दीक्षा का दरवाजा खटखटाया।

उसने दीक्षा से गुजारिश की कि वह किसी तरह मन से बात करे।

दीक्षा ने फिर से मध्यस्थता की। लेकिन इस बार मन ने उस पार से 'हाँ' या 'ना' का कोई सीधा तीर नहीं चलाया।

सीधा जवाब देने के बजाय, मन ने अपनी किसी प्रतियोगी परीक्षा (Competitive Exam) की तैयारी में व्यस्त होने का हवाला दिया। उसने कहा— "मैं अभी पढ़ाई में व्यस्त हूँ। इस विषय पर 10 दिन बाद बात करेंगे।" उसने अपना रुख स्पष्ट कर दिया था कि फिलहाल उसके लिए यह विषय ज़रूरी नहीं है।

दीक्षा ने जब यह बात माही को बताई, तो रेगिस्तान में प्यास से घुटते माही को यह '10 दिन की मोहलत' किसी मृगतृष्णा (Mirage) जैसी लगी।

यह एक क्षणिक और बहुत मामूली-सी राहत थी, लेकिन उस घने अंधेरे में यह आशा की एक बारीक किरण बनकर आई।

इसी विश्वास ने उसके भीतर उम्मीद की एक छोटी-सी लौ बचाकर रखी थी।

बेशक वो लौ आँधियों से घिरी हुई थी...

लेकिन बुझी नहीं थी।

इन दस दिनों में माही ने उस उम्मीद को सींचकर अपने भीतर एक पूरा दरख्त बना लिया।

डूबता हुआ व्यक्ति तिनके को सहारा नहीं मानता।

वह तिनके में किनारा देखने लगता है।

उसे पूरा विश्वास था कि परीक्षा खत्म होते ही उसका मन पिघल जाएगा, वह वापस लौट आएगी।

माही का यह विश्वास बेबुनियाद नहीं था। भले ही उसने उस 'कत्ल की रात' को परिस्थितियों का सारा दोष अपने सिर ले लिया था, लेकिन वह जानता था कि इस कहानी में वो अकेला अपराधी नहीं था, दोनों के हाथ हालात की कालिख से सने थे। और यह आधा सच मन भी भली-भाँति जानती थी।

यही सच्चाई उसके भीतर हर दिन एक नई उम्मीद का सृजन कर रही थी।

एक... दो... पाँच... आठ...

एक-एक दिन गिनकर माही ने वे 10 दिन काटे।

ग्यारहवाँ दिन आया। दीक्षा ने मन को फोन मिलाया।

फोन की घंटी पूरी गई...किसी ने फोन नहीं उठाया।

बारहवाँ दिन आया। दीक्षा ने फिर कोशिश की।

इस बार भी परिणाम वही रहा।

इसके बाद एक, दो और कोशिशें हुईं।

लेकिन हर बार फोन की घंटी बजती रहती... और अंत में खामोशी में विलीन हो जाती।

मन ने कोई ब्लॉक नहीं किया था, कोई नया कड़वा मैसेज नहीं भेजा था।

उसने बस खामोशी की एक ऐसी दीवार खींच दी थी, जिससे टकराकर वे फोन की घंटियाँ लौट रही थीं। वह '10 दिन की मोहलत' भी एक "छिपा जवाब" था,

और माही... उस मृगतृष्णा के पीछे चलता रहा, जिसे वह अब भी मंजिल समझ रहा था।

अध्याय - 194

अचल पहाड़, विकल पुकार

(वीरान फलक की सदा)

इस बात को दस दिन और बीत गए।

इन दस दिनों में माही अपने अस्तित्व से लड़ता, अपना ही खोया हुआ वजूद खोज रहा था।

पिछले कुछ दिनों में जो कुछ भी घटित हुआ था, उस पर उसे अब भी यकीन नहीं हो रहा था।

लेकिन किसी तरह, उसने खुद को पूरी तरह से बिखरने से बचा कर रखा हुआ था।

शायद घने अंधेरे में उसे अब भी कहीं से किसी धुंधली किरण का आभास हो रहा था।

एक रात... अचानक उसके फोन की घंटी बजी।

स्क्रीन पर जो नाम उभरा, उसे देखकर सहसा एक अचरज और उससे उत्पन्न हुई आशा ने उसकी सूखी आँखों में एक चमक पैदा कर दी।

उसने तुरंत फोन उठाया। यह फोन वियान का था।

बिना किसी औपचारिक अभिवादन के, उस और से सीधे दो वाक्य माही के कानों में पड़े—

"आप गाड़ी को खुद के नाम करवा लीजिए, जिससे भविष्य में कोई दिक्कत ना हो।"

वियान की आवाज़ में एक, बर्फीला रूखापन था। एक ऐसा परायापन जो माही ने पहली बार महसूस किया था।

उसे शायद किसी और ही बात की उम्मीद थी। उसे लगा था कि शायद कोई सुलह का रास्ता निकलेगा। लेकिन यहाँ तो उम्मीद के टूटे हुए काँच में से एक टुकड़ा और टूट कर ज़मीन पर गिर गया था।

लेकिन... जैसा कि अक्सर होता है, हर नाउम्मीद व्यक्ति किसी विपरीत घटना में भी एक 'अवसर' खोज लेता है। माही ने इस 'गाड़ी के कागजात' वाले मुद्दे को मन से बात शुरू करने का एक बहाना बना लिया।

उसने बिना एक पल गँवाए मन का नंबर डायल कर दिया।

इसे किस्मत कहें या सामने वाले का रहम... कई हफ्तों की निस्बधता के बाद, आज मन ने फोन उठा लिया।

"हाँ, बोलो।"

यह आवाज़... माही के लिए जैसे बरसों की प्यास बुझाने वाले किसी मीठे झरने जैसी थी। सात समुद्र पार बैठे किसी सख्ख को मानो मुद्दत बाद अपने किसी प्रिय की आवाज़ का रसपान हुआ हो

कुछ देर तक तो वह बस काँपते होंठों से कुछ बुदबुदाता रहा, शब्द भीतर ही थम गए थे। फिर उसने थोड़ी-सी हिम्मत जुटाई।

"वो... वियान का फोन आया था।"

"हाँ, मैंने ही करवाया था।" मन की आवाज़ में कोई भाव नहीं था। "वो गाड़ी की आर.सी. (R.C.) आप खुद के नाम करवा लो। ताकि भविष्य में कोई कानूनी झंझट ना पड़े... और मेरी निजता व आगामी रिश्ते पर कोई असर ना पड़े।"

'आगामी रिश्ता...'

ये दो शब्द माही के कानों में पिघले हुए सीसे की तरह उतरे, उसने कुछ सेकंड तक खुद को सँभाला। और फिर, अपने बचे-खुचे आत्मसम्मान को पूरी तरह से किनारे रखकर वह बोला—

"मुझे गाड़ी नहीं... गाड़ी की मालकिन चाहिए।"

एक निर्मम जवाब शांत भाव से आया—

"नहीं। उसे तुम अब खो चुके हो।"

"नहीं! ऐसा मत कहो मन!" माही की आवाज़ अब रुलाई में बदल चुकी थी। "मानता हूँ मैं कसूरवार हूँ। मानता हूँ मैंने इस धारणा को बदलने की कोशिश की कि 'प्यार समझदार लोगों का काम नहीं है'। मैंने तुम्हें तकलीफ दी। मेरी वजह से तुमने बहुत कुछ सहा।"

वह एक साँस में बोलता जा रहा था, जैसे अगर वह रुका तो फोन कट जाएगा।

"लेकिन मेरा यकीन करो, ये सब मैंने हम दोनों की खुशी के लिए किया था। उस समय मुझे वही सही लगा। और आज... आज मैं लगभग सब कुछ ठीक करके तुम्हारे पास आया हूँ। अगर तीन महीने से एक भी दिन ऊपर किया हो तो बताओ।"

दूसरी तरफ मानो बर्फ जम चुकी थी। माही बोलता रहा।

"इन दिनों में मुझे एहसास हो गया कि तुम्हारे बिना ज़िंदगी कितनी नामुमकिन है। हर दिन तुम्हारी कमी को जिया है मैंने। मैंने जिन बातों, जिन लोगों की चिंता की थी... वो सब भ्रम थे। असली और अंतिम सच सिर्फ तुम हो। कभी भी... ज़िंदगी में तुम्हें शिकायत का मौका नहीं दूँगा। बस मुझे यूँ तड़पने के लिए मत छोड़ो।"

याद करो तुमने क्या कहा था कि

"मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ूँगी

मेरी वर्षों की मन्नत हो तुम

देखो वो तुम्ही ने कहा था"

और फिर वो फोन पर ही रो पड़ा।

माही अब उस सीमा से नीचे उतर चुका था, जहाँ इंसान नहीं, आत्मसम्मान झुक जाता है।

"मैं तुम्हें बिल्कुल दोषमुक्त करता हूँ। सारा दोष खुद के ऊपर लेता हूँ। बस एक मौका दे दो... मुझे अपने कर्मों का प्रायश्चित्त करने का। अपनी बेवफाई से वफ़ा करने का। आज भी मैं उतना ही वफादार हूँ। बताओ, इन महीनों में तुम्हारे अलावा मेरे मन या ज़ुबान पर किसी का नाम आया हो तो? मैं आज भी तुम्हारा उतना ही सम्मान करता हूँ। बल्कि तुम्हारी कमी ने तुम्हारे एहसास को कई गुना बढ़ा दिया है।"

वह गिड़गिड़ा रहा था।

"बहुत कुछ किया है मैंने अपने रिश्ते को बचाने के लिए... अगर तुम ऐसे ही ज़िद करोगी... तो मैं सच में बर्बाद हो जाऊँगा। मेरी रूह के साथ और मत खेलो। मुझे अपना अपराधी समझ कर अपने मन की कैद में डाल दो उम्र भर के लिए... पर मुझे ऐसे बेसहारा मत छोड़ो। प्लीज़... प्लीज़ मना।"

मगर उसके शब्दों की तपिश मन के भीतर जमी बर्फ के सामने कम पड़ गई।

माही हाँफ रहा था। उसने अपने दिल का हर कतरा निकाल कर उस फोन की लाइन पर बिछा दिया था। उसे लगा शायद मन रो पड़ेगी, शायद उसकी यह तड़प उस बर्फ को पिघला देगी, लेकिन उसे आभास नहीं था कि

“जिस हृदय में कभी प्रीत की अविरल नदी बहती थी, वहाँ अब बर्फ का एक अचल पहाड़ खड़ा था। माही की पुकार उस पहाड़ से टकराकर लौट रही थी। उस नदी में अब आत्मीय भावनाओं के हिलोरे नहीं उठते थे, बल्कि केवल “जिद्” का एक बर्फीला तूफान गर्जना कर रहा था।”

और “फिर उसी गर्जना की एक गूँज ने उसके अंतर्मन को पूरी तरह बेजान कर दिया।”

“आप गाड़ी अपने नाम करा लीजिए।”

उसने माही की तड़प, उसकी पुकार, उसके गिड़गिड़ाने को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया था।

और फिर... फोन कटने से ठीक एक सेकंड पहले उसने कहा—

“और हाँ... एक बार फिर से... Sorry. हो सके तो मुझे माफ़ कर देना।”

फोन कट चुका था।

और इस बार... शायद माही की आखिरी उम्मीद की डोर भी।

अध्याय - 195

अंतिम 'हाँ'

(और एक अनकही विदाई)

उस बर्फ़ीले तूफान को थमे दो, तीन हो गए थे, लेकिन माही के भीतर का बवंडर अभी भी रह - २ कर उठ रहा था। रात के दो बज रहे थे। अँधेरे कमरे में फोन की स्क्रीन की नीली रोशनी उसके थके हुए चेहरे पर पड़ रही थी।

उसने व्हाट्सएप खोला। मन का चैट बॉक्स सामने था।

और फिर उसने अपने बचे-खुचे सारे उसूल, सारी समझदारी एक तरफ रखी और बस एक आखिरी, वाक्य टाइप कर दिया—

"मान जाओ plz 🙏"

टाइप करते समय फोन हाथ में हिल रहा था, और फिर ऐसा लग रहा था मानो वो वाक्य भी कांप उठा हो।

यह कोई मैसेज नहीं था, यह एक हारे हुए इंसान की आखिरी भीख थी।

इस संदेश का जवाब रात के अँधेरे में नहीं, बल्कि सुबह की चुभती हुई रोशनी के साथ 7 बजे आया।

यह जवाब भावनाओं से नहीं, एक ठंडी और सटीक तार्किकता (Logic) से लिखा गया था:

"देखो, मुझे पता है कि आप अकेले कसूरवार नहीं हो... अधिक दोष परिस्थितियों, समाज और अन्य बहुत से कारकों का है। लेकिन फिर भी मैं यही कहूँगी कि अब आप ही मान जाओ। खुद को दोष देना बंद करो। मुझे आप या किसी से कोई शिकायत नहीं है। हम दोनों ने एक कोशिश की, लेकिन ऊपर वाले को शायद कुछ और ही मंजूर था।"

और फिर कुछ सेकंड बाद.....

"चार रिश्ते इससे पहले मेरे लिए आ चुके थे, ये पाँचवाँ है और सब कुछ ठीक है। मेरे ताऊ जी की इज्जत का सवाल है, मैं उनको नीचा नहीं दिखाऊँगी। इसलिए... मैं 'हाँ' भर देती हूँ। आपसे कहूँगी कि खुद को सँभालो। और हाँ... कोई ठीक-सी लड़की देखकर तुम भी जल्दी ही कर लेना।"

संदेश के कुछ ही देर बाद, मन की कॉल आ गई।

उसकी आवाज़ में अब प्रेमिका की वो पुरानी खनक नहीं थी, बल्कि एक अजनबी-सी हमदर्दी थी।

"मानवता का नाता हमारे बीच हमेशा बना रहेगा। इसलिए मैं कहूँगी कि खुद के साथ अन्याय मत करो। जल्दी ही तुम भी आगे बढ़ जाना।"

बस... इतनी ही बात थी। और फोन कट गया।

माही ने आज कुछ नहीं कहा। ना कोई बहस की, ना ही उसे रोकने की कोई नाकाम कोशिश की। वह बस एक जड़ पत्थर की तरह जड़ बना सुनता रहा।

"मैं 'हाँ' भर देती हूँ..." — इस वाक्य के बाद माही के पास बोलने के लिए कोई शब्द बचा ही नहीं था।

"उस संदेश ने यह निश्चित कर दिया कि अब शब्द और भावनाएं अपने प्रयासों की उस अंतिम अंधेरी सीमा पर आ खड़े हैं, जहाँ उम्मीद का कोई भी उजाला हमेशा के लिए अभिशप्त हो चुका था।"

जिसके आगे उम्मीद का कोई सूरज कभी नहीं उगता और "...जहाँ आशाएं मरतीं नहीं; उन्हें हमेशा के लिए निर्वासित कर दिया जाता है...ताउम्र तड़पने के लिए।"

लेकिन उसी संदेश का एक हिस्सा उसे भीतर तक चीर रहा था— "आप भी कर लेना जल्दी ही।"

माही अपने भीतर के शून्य में घूरता हुआ सोच रहा था— "जितना तुम्हारे लिए आसान था किसी और का हो जाना... मेरे लिए उससे कई गुना मुश्किल है 'मन'।"

विडंबना का प्रहार

वह पूरा दिन माही ने अपनी जड़ स्थिति के साथ घर पर ही गुज़ारा।

अगले दिन वह एक रोबोट की तरह दफ्तर गया और वापस आ गया। चेहरे पर कोई अतिरेक नहीं था। घर लौटा तो माँ ने उसकी उतरी हुई सूत देखकर ज़बरदस्ती चाय बना कर पकड़ा दी।

उसने चाय का पहला घूँट भरा ही था कि फोन की स्क्रीन रोशन हो उठी।

स्क्रीन पर वो ही 'खरगोश'  (मन का प्रतीक) का उदय हुआ, जो कभी माही के लिए दुनिया का सबसे मनोहारी और सुकून देने वाला दृश्य हुआ करता था।

और शायद आज भी....

उसने फोन उठाया।

उधर से मन का वही जाना पहचाना लहजा

"आ गए दफ्तर से? चाय पी ली?"

इन दो बेहद साधारण और घरेलू वाक्यों ने माही के भीतर जमे हुए आँसुओं के बाँध को झकझोर दिया। वह भावुक हो उठा, लेकिन उसने पूरी ताकत से अपने काँपते लहजे को नियंत्रित किया।

"हाँ।"

उसके बाद मन ने वह बात कही जिसने माही के अस्तित्व को रूह से अलग कर दिया:

"आज मैं उस लड़के से मिलकर आई हूँ। जिसे तुम और वियान देखकर आए थे। याद करो... अलवर के पास किसी गाँव का था ना? जब तुम और वियान भानगढ़ घूमने गए थे..."

"Hmmm..." माही के मुँह से भारी आवाज़ में सिर्फ इतना ही निकला।

मन: "लड़का ठीक लगा मुझे। कमाता भी ठीक है।"

ये शब्द नहीं थे उसकी आत्मा पर पड़ते घाव थे

माही को 'मन' का अपनी ज़िंदगी में आगे बढ़ जाना शायद उतनी तकलीफ नहीं दे रहा था, जितनी गहरी तकलीफ उसे इस नंगे सच से हो रही थी।

वही लड़का! जिसे लगभग डेढ़ साल पहले माही और मन ने मिलकर 'रिजेक्ट' (Reject) किया था। आज उसी लड़के के साथ वह अपनी पूरी ज़िंदगी का रिश्ता जोड़ने जा रही थी।

एक चीख उस के भीतर घुट कर रह गई।

"कितना क्रूर मज़ाक है ये नियति का! किसी ऐसे इंसान को पूरे डेढ़ साल बाद भी जीवन-साथी के रूप में आमंत्रण दे दिया गया, जिसे तुमने खुद ठुकराया था... और जिसने तुम्हारे लिए अपनी जान, अपना आत्मसम्मान सब कुछ दाँव पर लगा दिया, उसे महज़ 'तीन महीने' का इंतज़ार माँगने की इतनी खौफनाक सज़ा? क्या यही तुम्हारा इंसाफ है,?"

लेकिन माही के मुँह से कोई शिकायत, कोई ताना नहीं निकला। उसने अपने होंठ हिलाए और एक भारी आवाज़ में पूछा— "तुम हाँ कर आई?"

जवाब मन के लिए भी आसान नहीं था.. और फिर कुछ सेकंड के मौन के बाद आए, एक छोटे-से शब्द ने उस की पूरी दुनिया को उस से अलग कर लिया

— "हाँ।"

यह सुनते ही माही का गला पूरी तरह से भर आया। आँखों की कोर से गरम बूँदें छलक कर उसकी कमीज़ पर गिरने लगीं।

लेकिन कोई हिदायत नहीं।

बस एक हारे हुए प्रेमी की आखिरी ख्वाहिश—

"बधाई! खुश रहना अपनी दुनिया में।"

और फिर माही फोन से अलग हो गया।

यादों का जनाज़ा

उस रात... माही सोया नहीं।

वह पूरी रात फूट-फूट कर रोता रहा। कभी भीतर ही भीतर सिसकता, तो कभी उसके आँसू उसकी कमीज़ को भिगोते रहे। उस अँधेरे कमरे की दीवारों और उसकी वह भीगी कमीज़ ही आज उसके दर्द की इकलौती साझेदार थीं।

आज सब कुछ किसी फिल्म की तरह उसकी बंद आँखों के सामने घूम रहा था।

उसके वो अथक प्रयास... एक-दूसरे की वो फिक्र... मन का वो प्रतीकों के ज़रिए आमंत्रण... रेगिस्तान की उस चांदनी से भीगी रेत पर किया गया इज़हार... वो सुकून भरी जादुई बातें... और उसका वो बिना छुए, महज़ रूह से किया गया पवित्र लगावा।

सब कुछ... आज एक झटके में राख हो चुका था।

यह अंत किसी भी रूह से जुड़े प्रेमी को उम्र भर रुलाने के लिए काफी था।

लेकिन माही अब समझ चुका था कि अब उसे सिर्फ अपनी यादों में ही रोने का हक्क था, उन यादों को 'मन' के साथ साझा करने का नहीं।

इसलिए... उसने तय कर लिया।

आज के बाद ना कोई संदेश जाएगा।

ना कोई कॉल।

ना कोई आखिरी पुकार।

कुछ रिश्ते खुद नहीं मरते...

लेकिन वो हमें जीने से ज्यादा मरना सिखा देते हैं।

“कहानी जो एक दिन प्यार की मीठी चाशनी में पक कर क्रूरता के कड़ाहे में तली जाएगी।”

“Beyond Love... Before Cruelty”

अध्याय - 196

"एक पत्थर से पुकार"

"सुबह की धूप हमेशा की तरह दुनिया के झरोखों पर उतरी, मानो कुछ हुआ ही न हो। बाहर का ढर्रा जस का तस था, पर माही के सीने में महीनों से सुलगती मोहब्बत रातों-रात एक शांत श्मशान में तब्दील हो चुकी थी।"

अब कोई छटपटाहट नहीं थी। कोई आस नहीं थी। उसने सब्र की वह चादर ओढ़ ली थी, जो कि असल में संगमरमर की ठंडी और भारी शीला जैसी थी। जुदाई को अब उसने अपनी नियति मान लिया था। उन कुछ महीनों के खूबसूरत एहसास को उसने महज 'गर्मियों की लू में आए एक ठंडे हवा के झोंके' की तरह मानकर अपनी स्मृतियों के किसी गहरे तहखाने में दफन कर दिया था।

माही ने अपनी खुशी की परिभाषा ही बदल दी थी।

प्यार चला गया, लेकिन उसके(मन) परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा बच गई—इसी को उसने अपनी जिंदगी का सबसे बड़ा संतोष मान लिया। उसने खुद को अपने घर के एक कमरे तक सीमित कर लिया था। उसके अपने आँसू अब ऐसी

बेनामी धरोहर थे जिन्हें वो पल पल लुटा रहा था।

मानो वो जल्दी से इस खजाने को खाली कर देना चाहता हो

जहाँ कभी प्यार का सागर था, वहाँ अब सिर्फ एक सूखी और बंजर ज़मीन बची थी।

लेकिन... जब एक इंसान दर्द से हारकर खामोशी की मंजिल के सफर में होता है, तो उसके अपनों की तड़प शोर करने लगती है।

कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें माही की यह जिंदा लाश जैसी दुर्दशा खून के आँसू रुला रही थी। उनका सब्र अभी टूटा नहीं था। उन्हें अब भी कोई चमत्कार होने या किसी का हृदय परिवर्तन होने की धुंधली-सी उम्मीद थी।

दीक्षा का संघर्ष और याचना

उनमें से एक थी उसकी बहन, दीक्षा।

दीक्षा ने हर संभव प्रयास किया। सबसे पहले उसने अपने पिता से 'मन' के भाई को फोन करवाया, शुरू में वो राजी नहीं हुए लेकिन बेटे की दशा और बेटी के दबाव के सामने उन्होंने अपना आत्मसम्मान किनारे करना पड़ा, लेकिन वहाँ से एक और कठोर "ना" का जवाब मिला।

जब बड़ों की बात नहीं बनी, तो एक शाम दीक्षा ने भी 'मन' के सामने वही किया, जो कभी माही ने किया था।

एक छोटी बहन का आत्मसम्मान आज एक लड़की के सामने टूट कर बिखर गया। वह रोई, गिड़गिड़ाई और अपने भाई की ज़िंदगी की याचना की।

लेकिन 'मन' ने शायद अब खुद को इन सबके लिए बहुत पहले ही तैयार कर लिया था। उसने 'मजबूरी' और 'परिस्थितियों' का एक ऐसा अभेद्य आवरण ओढ़ लिया था कि दीक्षा की हर पुकार, हर प्रार्थना उस आवरण से टकराकर वापस लौट आई।

एक बहन इससे ज्यादा कर भी क्या सकती थी? अपनी सारी कोशिशें हारने के बाद, दीक्षा भी उस बंद दरवाज़े के सामने से खामोशी से लौट आई।

सुहाना का प्रहार (सत्य का आईना)

दूसरी तरफ थी सुहाना। उसका तरीका दीक्षा से बिल्कुल अलग था।

सुहाना ने पहले प्रार्थना की, लेकिन जब उसकी बात अनसुनी कर दी गई, तो उसने याचना की जगह एक सीधा और तीखा 'भावनात्मक हमला' किया। सुहाना मन के सामने एक ऐसा आईना लेकर खड़ी हो गई, जिसमें मन की ज़िद का सबसे क्रूर चेहरा नज़र आ रहा था।

सुहाना के शब्द किसी नंगी तलवार की तरह मन पर बरसने लगे:

"तुमने उस इंसान को छोड़ दिया, जिसके पास तुम्हारे सिवा अब इस दुनिया में कुछ नहीं बचा था! अरे, जब वो इंसान महज़ मेरी खातिर अपनी खुशियों की कुर्बानी दे सकता है, तो ज़रा सोचो तुम्हारे लिए क्या कुछ नहीं कर गुज़रता? क्या परिस्थितियों को सँभालने के लिए तीन महीने का समय माँगकर उसने कोई गुनाह कर दिया था? क्या वो तीन महीने बाद वापस लौटकर तुम्हारे दरवाज़े पर नहीं आया? क्या इससे पहले वो तुम्हारी हर आवाज़ पर अपना सब कुछ छोड़कर तैयार नहीं मिला?"

सुहाना की आँखें गुस्से और दर्द से सुलग रही थीं।

"क्या करेगा वो उस महँगी गाड़ी का? जिसे सिर्फ तुम्हारे एक बार कहने पर उसने तुम्हारे नाम से तुम्हारी खुशियों के लिए लिया था।

... जबकि वास्तविकता तो ये है कि उसे खुद स्टीयरिंग पकड़ना तक नहीं आता! तुम्हारे लिए उस इंसान ने अपने बेदाग चरित्र पर सवाल उठवा लिए। अपनों और गैरों, हर किसी की नज़रों में वो खराब हो गया... बदनाम हो गया। आर्थिक तौर पर वो पूरी तरह टूट चुका है।"

सुहाना की आवाज़ अब भारी हो गई थी।

"लेकिन इन सबसे ऊपर... 'तुम चली गई'। यह वो दर्द है जो वो किसी को दिखा नहीं सकता और खुद से छुपा भी नहीं सकता। एक इंसान तुमको तुम्ही से माँग रहा था, तुम्हारे सामने गिड़गिड़ा रहा था। रिश्ते को बचाने के लिए उसने वो हर गलती अपने सिर ले ली, जो वास्तव में उसकी थी ही नहीं। लेकिन तुम्हारे ऊपर कोई असर नहीं हुआ? कैसा प्यार था तुम्हारा?"

इसके बाद सुहाना ने जो कहा, वह इस पूरी कहानी का सबसे बड़ा और कड़वा सत्य था:

अरे एक मौका तो ईश्वर भी दे देता है

तुम्हारा कानून भगवान से भी ऊपर हो गया क्या ?

"माही ने प्रेम में सिर्फ तकलीफें उठाई हैं मन। प्रेम का सुख क्या होता है, ये तो उसे पता ही नहीं है। उसने प्रेम को सिर्फ जिया है, उसे सिर्फ निभाया है... उसने प्रेम को पूजा है; छुआ नहीं, प्रेम उसके लिए आत्मा का अहसास था स्पर्श का नहीं, उसने कभी प्रेम का भोग नहीं किया। बल्कि सच तो ये है कि 'प्रेम ने उसको भोग लिया'।"

"अगर अंत में उसे इसी तन्हाई में छोड़ना था, तो क्यों लाई थी उसे रेगिस्तान की उस तपती धूप से निकालकर अपने प्रेम की ठंडी छाँव में? उस के साथ जो हुआ वो 'क्रूरता नहीं.... उस से आगे की कहानी है' और उस कहानी की पटकथा तुमने लिखी है, अगर पार्वती ने प्रेम के लिए तपस्या की थी... तो शिव ने भी इंतज़ार किया था। लेकिन तुम्हारे यहाँ... तुम्हारे यहाँ तो 'इंतज़ार' ही वो खंजर बन गया जिसने इस प्यार की गर्दन रेत दी!"

और फिर एक अंतिम "करुण पुकार"

माही के दर्द से कोई सरोकार नहीं— मत रखो।

लेकिन उस माँ की व्यथा को तो देखो, जो अपने बेटे की पीड़ा में प्रतिदिन स्वयं को तिल-तिल जलाकर राख कर रही है; जिसकी आँखें इतना रो चुकी हैं कि अब आँसू भी उनका साथ छोड़ चुके हैं।

उस बहन के बिखराव को तो समझो, जिसने अपने भाई के दुःख में अपने ही घर-संसार से मुँह मोड़ लिया है।

यदि माही के प्रेम पर तुम्हारा विश्वास नहीं, तो मत करो...

पर कम-से-कम अपने भीतर जीवित उस करुणा पर तो विश्वास करो, जो हर स्त्री के हृदय को माँ बना देती है।

“अपने भीतर की उस कोमलता से तो दगा मत करो, जो तुम्हारे नारी होने का अर्थ है।”

एक रहस्यमयी पत्थर

सुहाना के ये शब्द किसी भी ज़िंदा इंसान की रूह को चीरने के लिए काफी थे।

लेकिन मन... उसने शायद खुद को एक ऐसे पत्थर में तब्दील कर लिया था, जिस पर अब किसी भी चोट का, किसी भी सच्चाई का कोई असर नहीं होना था। सुहाना के इतने बड़े प्रहार के बाद भी मन की खामोशी नहीं टूटी।

वह इतनी निष्ठुर क्यों हो गई? क्यों उसने एक समर्पित इंसान को इस कदर बर्बाद हो जाने दिया?

सुहाना इसका जवाब चाहती थी..लेकिन फोन के उस तरफ अब कोई नहीं था।

अध्याय - 197

“आखिरी किश्त”

हर कोई अपनी नाकाम कोशिश कर चुका था। दीक्षा के आँसू, सुहाना के तीखे प्रहार, और खुद माही का अपना आत्मसम्मान—सब कुछ उस एक ज़िद के आगे घुटने टेक चुका था।

और अंततः... वही होना था, जो नियति की उस क्रूर पटकथा में लिखा जा चुका था।

एक दिन शाम का समय था।

माही अपने घर की उस अँधेरी कोठरी में घायल की तरह पड़ा था। उस कमरे में न कोई आवाज़ थी, न रोशनी, और न ही कल की कोई उम्मीद। बस एक भारी, दमघोंटू नीरवता थी।

उसके हाथ में एक सिम कार्ड का आवरण था।

वह उस पर लिखे नंबर को एकटक देख रहा था।

उसकी स्मृति उसे उस दिन में वापस ले गई,

जब वह अपने एक दोस्त के साथ मोबाइल की दुकान पर गया था।

वहीं उसकी नज़र इस नंबर पर पड़ी थी।

नंबर देखते ही उसे लगा था जैसे उसकी आँखें उसके साथ कोई मज़ाक कर रही हों।

यह कोई साधारण नंबर नहीं था—

उसके और मन के नंबर के आखिरी सात अंक एक जैसे थे।

यह संयोग इतना असाधारण था कि उसने बिना कुछ सोचे वह नंबर तुरंत खरीद लिया था।

Google ने बताया था कि ऐसे संयोग की संभावना लगभग लाखों में एक होती है।

उसने उस नंबर को संभालकर रखा था—

मन को विस्मित करने के लिए।

कभी यही संयोग उसे इस बात का एहसास कराता था

कि शायद वे दोनों सचमुच एक-दूसरे के लिए बने हैं।

लेकिन आज...

वही संयोग भी शायद

उससे माफ़ी की गुहार लगा रहा था।

तभी ...सांसों की सरसराहट को चीरते हुए मोबाइल की संदेश-ध्वनि गूँज उठी। बंद पलकें झटके से खुलीं और शून्य में तैरती निगाहें आकर स्क्रीन पर जम गईं।

व्हाट्सएप पर एक मैसेज था। — 'मन' का।

मन: "कैसे हो?"

कई दिनों की उस खामोशी और बेरुखी के बाद, इस 'कैसे हो' में कोई फिक्र नहीं थी। यह एक खोखली औपचारिकता थी, जिसे माही भी समझ रहा था।

माही: "ठीक हूँ।"

मन: "अच्छा... सुनो।"

माही: "हाँ।"

मन: "आर.सी. (R.C.) चेंज का प्रोसेस शुरू किया कि नहीं?"

माही ने एक गहरी साँस ली। उसका शरीर और दिमाग इस वक्त किसी भी चीज़ के लिए तैयार नहीं था।

माही: "अभी नहीं।"

मन: "कर लो तो।"

माही: "अभी मेरा मूड ठीक नहीं है।"

मन: "ठीक है, अपना ध्यान करो। एक्सरसाइज़ वगैरह करके थोड़ा मूड ठीक करो।"

एक क्लिनिकल डिप्रेशन से जूझ रहे इंसान को दी गई यह सलाह माही को किसी क्रूर मज़ाक से कम नहीं लग रही थी—

पर वो कुछ नहीं बोला

माही: "ठीक है।"

नाम का प्रहार

दो-तीन दिन और बीत गए।

एक दिन फिर से स्क्रीन में उजाला हुआ।

मन: "कैसा है अब?"

माही: "ठीक हूँ।"

मन: "अच्छा... कर लो वो काम आर.सी. वाला।"

माही के भीतर का वह इंसान जो अब तक शांत था, थोड़ा तिलमिलाया।

माही: "आप इतनी जल्दी क्यों कर रहे हो? बता दिया कि अभी मैं व्यवस्थित नहीं हूँ।" वैसे भी हर महीने आपके अकाउंट में किस्त के पैसे डाल ही रहा हु।

और तब... मन ने वह सच उगल दिया, जिसके आगे दुनिया की हर क्रूरता छोटी पड़ गई।

मन: "देखो, अभी गाड़ी की किश्त मेरे अकाउंट से कटती है। इसलिए कल को 'जीत पांडे' देखेगा, तो उसे हमारी कहानी का पता चल जाएगा। इसलिए कह रही हूँ।"

'जीत पांडे'...

जिस लड़के के साथ उसकी सगाई हुई थी, उसका नाम आज पहली बार मन की तरफ से माही की स्क्रीन पर किसी ज़हरीले तीर की तरह आकर धँसा था।

माही को दर्द भरा ख्याल आया

इस को मेरी अवस्था की फिक्र नहीं है। इस बात की चिंता नहीं है कि जो इंसान बिस्तर से उठ नहीं पा रहा, वह आर.टी.ओ. (RTO) और बैंकों के चक्कर कैसे काटेगा। उसे सिर्फ एक बात का खौफ है— कि 'जीत पांडे' को उसके उस अतीत का पता न चल जाए, जिसे वह बड़ी सफाई से दफन कर चुकी है। वह माही के वजूद का हर एक सुबूत अपनी ज़िंदगी से मिटा देना चाहती थी।

ये सब सोचते हुए, माही ने उस संदेश को कई बार पढ़ा।

माही: "ठीक है। मैं करता हूँ।"

“एक और कुर्बानी”

फोन रखने के बाद माही ने इस प्रक्रिया के बारे में सोचा।

गाड़ी का नाम बदलवाने के लिए सबसे पहले पूरा लोन (Loan) एकमुश्त चुकाना होगा। और माही? 50 लाख के झूठे मुकदमे की फीस, वकील के खर्चे, शादी की तैयारियों के लिए एडवांस बुकिंग के नाम पर बेवजह का खर्च और अपनी बर्बाद मानसिक स्थिति के कारण वह आर्थिक रूप से पहले ही टूट चुका था। उसकी जेब में अब कुछ नहीं बचा था। लेकिन फिर उसके दिमाग में एक विचार आया—

"अगर मैंने ये आर.सी. चेंज नहीं करवाई, तो इसे दिक्कत आएगी। इसके अतीत का सच सामने आ जाएगा, और इसकी नई गृहस्थी में शुरुआत से ही आग लग जाएगी।"

और फिर माही ने इंसानियत के नाम पर उसके 'नए आशियाने' को आग से बचाने का फैसला कर लिया।

उसने दीक्षा के पास फोन किया और सारी बातें बताईं... फिर खुद की खराब हालत का हवाला दे कर उसे से ये काम करने कि विनती करी...लेकिन दीक्षा इस जिम्मेदारी को लेने की बजाए अपना आपा खो बैठी।

उसने मन के पास संदेश भेज दिया।

“उसके लिए वो गाड़ी बिना जरूरत की चीज है

क्योंकि ना तो उस को चलानी आती और ना ही अभी उसकी स्थिति ठीक...इसलिए उस गाड़ी को तुम ले जाओ वैसे भी तुम्हारे लिए ही ली थी...साथ ही उस पर एक एहसान भी हो जाएगा

तुम्हारी यादों से मुक्त होने का एहसान

क्योंकि वो गाड़ी हर पल उसे तुम्हारी याद दिलाती है

इस लिए कर दो उस पर ये आखिरी रहम”

लेकिन मन ने अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति का हवाला दे कर गाड़ी लेने में असमर्थता जताई और पुनः

माफी मांग ली

दीक्षा की तरफ से कोई सकारात्मक संकेत ना मिलता देख

दो दिन बाद, वह शून्यता की कोठरी से बाहर निकला। अपने लिए नहीं, उसके लिए।

उसने पैसों का जुगाड़ बैठाने की कोशिश की। दोस्तों से बात की, लेकिन इतनी बड़ी रकम के लिए कहीं से बात नहीं बनी।

फिर उसने बैंकों के चक्कर काटने शुरू किए। उसी बिखरी हुई हालत में, दो-तीन दिन की कड़ी मशक्कत और जलालत के बाद, आखिरकार लोन पास हो गया।

हाँ... 'एक पर्सनल लोन'।

गाड़ी का लोन चुकाने के लिए एक ऐसा पर्सनल लोन, जिसका ब्याज उसे आने वाले कई सालों तक अपनी हड्डियों को गला कर चुकाना था। उसके पास और कोई रास्ता भी नहीं था।

उसने बैंक से मिले पैसों से गाड़ी का सारा कर्ज एकमुश्त चुका दिया। आर.सी. ट्रांसफर की प्रक्रिया पूरी कर दी गई।

सुरक्षित 'मन', तबाह 'माही'

अब गाड़ी के कागजात पर 'जीत पांडे' को शक करने की कोई गुंजाइश नहीं बची थी।

मन का डर हमेशा के लिए खत्म हो गया। वह अब इस मोर्चे से पूरी तरह सुरक्षित थी। उसकी नई जिंदगी का रास्ता अब साफ और बेदाग था।

और माही?

माही अपनी उसी अँधेरी कोठरी में वापस लौट आया था। लेकिन इस बार, उसके कंधों पर सिर्फ टूटे हुए प्यार का बोझ नहीं था... बल्कि उस भारी 'कर्ज' का बोझ भी था, जो उसने "वफ़ा" शब्द को बचाने के लिए लिया था।

प्रेम की वेदी पर यह माही की एक और आहुति थी, जिसके बाद सिर्फ धुँआ और राख ही शेष थे।

अध्याय - 198

“सुहाना प्रयास”

उस अँधेरी कोठरी में पसर चुका डरावना सन्नाटा अब वजूद को निगलने ही वाला था कि अचानक बंद दरवाजे पर एक मद्धम सी दस्तक हुई। लकड़ी के उस पुराने पट के खुलते ही बाहर की बेतरतीब रोशनी भीतर दाखिल हुई, उस चौखट पर सुहाना खड़ी थी—

सुहाना, जिसने माही की सहायता से उस 'नर्क' से खुद को बाहर निकाल लिया था और अब एक निजी स्कूल में नौकरी कर रही थी। इत्तेफ़ाक से वह अब पास के ही “बहल” कस्बे में रहने लगी थी जहाँ माही का दफ़्तर था, जो माही के गाँव से बहुत ज्यादा दूर नहीं था।

कमरे में दाखिल होते ही सुहाना की नज़र माही पर पड़ी। उसकी आँखों के नीचे पड़े गहरे काले घेरे, बिखरे हुए बाल और चेहरे का उड़ा तेज देखकर सुहाना का दिल भर आया।

सुहाना उसके पास रखी एक कुर्सी पर बैठ गई और गहरी साँस लेते हुए बोली—

"भाई... जो इंसान दूसरों को डूबने से बचाता था, जो दूसरों को हर दलदल से बाहर खींच लाता था... आज वो खुद अपने ही हाथों ही दिमाग से दिल को नोच रहा है?"

माही ने कोई जवाब नहीं दिया। उसकी नज़रें ज़मीन पर ही टिकी रहीं।

सुहाना ने अपनी आवाज़ में थोड़ी सख्ती और हमदर्दी मिलाते हुए कहा—

"आपको इस अँधेरे से बाहर आना होगा। एक नया सफ़र शुरू करो। जो बीत गया, उसे उस पुरानी डायरी की तरह बंद कर दो जिसका कोई पन्ना अब तुम्हारे काम का नहीं है। और उस लड़की को... उस लड़की को बस एक 'बुरा सपना' समझ कर भूल जाओ।"

"बुरा सपना...?"

माही ने अचानक अपनी नज़रें उठाईं। उसकी बुझी हुई आँखों में एक हल्की-सी तड़प उभर आई।

"नहीं बहन जी। उसे बुरा सपना मत कहो। वो मेरा सबसे खूबसूरत सच थी। इस कहानी में अगर कोई खलनायक है, तो वो मैं हूँ। ये मेरी सज़ा है, क्योंकि मैं ही दोषी हूँ।"

सुहाना झल्ला उठी।

"दोषी? किस बात के दोषी हो आप ? इस बात के कि आपने उस लड़की और अपने परिवार की इज्जत बचाने के लिए तीन महीने का वक्त माँगा? इस बात के कि आपने खुद को नीलाम करके उसके लिए गाड़ी का कर्ज चुकाया?"

माही ने एक, दर्दभरी मुस्कान के साथ सुहाना की बात काटी।

"मेरा दोष मेरा वो 'वक्त' माँगना ही था सुहाना। किसी ने सच ही कहा है— 'प्रेम समझदार लोगों का काम नहीं है।'"

कुछ देर तक दोनों तरफ से शब्द प्रवाह रुके रहे मानो मौका पा कर चारों ओर फैला वह सघन मौन दोबारा उस बंद कमरे पर राज करने लगा।

। माही के शब्द किसी गहरे कुँ से आ रहे थे।

"मुझे उस रात पागलपन दिखाना चाहिए था। मुझे सिर्फ उसके बारे में सोचना चाहिए था। लेकिन मैंने 'समझदारी' दिखाई। मैंने कानून, समाज, परिवार, भविष्य... सब कुछ मापना-तौलना चाहा। मैंने हिसाब लगाया... और मेरी उसी समझदारी ने मेरे प्रेम की बलि ले ली। मेरे संस्कारों ने मेरे प्रेम, मेरी इच्छाओं का अंतिम संस्कार कर दिया, प्यार में तर्क नहीं चलता सुहाना, और मैंने तर्क का सहारा लिया।"

सुहाना ने माही के इस 'अपराधबोध' को बीच में ही काट दिया। उसकी आँखों में अब उस 'ज़िंदी लड़की' के लिए साफ गुस्सा था।

"फिर तो मैं भी दोषी हु क्योंकि आप के 3 महीने मांगने के वजहों में एक वजह मैं भी हु... फिर तो आप से ज्यादा दोषी मैं हु।

नहीं...

तुम ऐसा मत कहो... सच ये है कि असली गुनहगार मैं ही हु... मेरे मन की किताब में उसके हिस्से का पन्ना हमेशा सफेद रहेगा... सदियों तक।

शायद मेरा ही प्रेम अपने आप में संपूर्ण नहीं था, कहीं कोई बहुत बड़ी रिक्तता रह गई थी, जिन्हें साधारण धड़कने महसूस नहीं कर सकी।

"सुहाना: अच्छा!"

साधारण धड़कने ?

इन धड़कनों ने अपना आखिरी स्पंदन

भी उसके नाम कर दिया...और फिर भी साधारण ही रह गई। तन,आत्मा,पैसा सब झोंक दिया प्रेम की आग में,लड़के लड़कियों पर पैसे क्यों खर्च करते है ये एक लड़की होने की वजह से में अच्छे से जानती हु,लेकिन यहां तो वो परंपरा भी टूटी है।

और फिर भी कसूर आपका ही है।

वाह:

सुहाना ने कटाक्ष किया...

“लेकिन माही...”प्रेम की पराकाष्ठा सिर्फ

किसी का हाथ थाम लेना नहीं है।

वो तो सौभाग्य से प्राप्त एक खूबसूरत उपहार होता है

प्रेम की पराकाष्ठा तो तब होती है,जब बिछड़ने के बाद भी तुम अपने ही हाथों,उसके जीवन से

अपने अस्तित्व का अंतिम प्रमाण भी मिटा दो।

माही ने शब्दों को विराम दिया

और दो दिन पहले उस कागज से उसका नाम हटवा कर आप ये प्रमाण दे चुके हो..सुहाना ने उसकी बात को व्यंग्य रूप में आगे बढ़ाया।

लेकिन...

"आप अब भी उसे बचाने के लिए अपने ही सीने में खंजर उतार रहे हो भाई! नहीं... आपकी समझदारी ने इस रिश्ते की जान नहीं ली है।"

सुहाना अपनी कुर्सी से उठी और माही के कंधे पर हाथ रखते हुए बेहद स्पष्ट और धारदार शब्दों में बोली—

"इस रिश्ते को आपकी समझदारी ने नहीं, बल्कि एक व्यक्ति की 'ज़िद' ने मारा है। अगर आपने हालात सँभालने की समझदारी दिखाई थी, तो उसे भी एक साथी की तरह आपका इंतज़ार करने की समझदारी दिखानी चाहिए थी। आपकी समझदारी तो रिश्ते को बचाने की एक कोशिश थी, लेकिन उसकी ज़िद सिर्फ और सिर्फ एक अहंकार था।"

“माही:- उसकी कोई मजबूरी होगी।”

नहीं भाई!

ये आपका भ्रम है

जो कि प्यार में डूबे व्यक्ति को अक्सर हो जाया करता है।

सुहाना जा चुकी थी....लेकिन माही के जहन में कुछ आ रहा था जिसे सुहाना के प्रतिवाद के उपरांत भी वो स्वीकार रूप में ले रहा था।

शिकवे सारे फूलों के, काँटों के हक में जाते हैं,

जख्म जो हमने खुद को दिए, वो अब तक हमें रुलाते हैं।

गैरों की दीवारों पर क्या इल्जाम लगाना अब,

हमारे अपने ही साए, हमें अंधेरों में छोड़ जाते हैं।

दोष सारा ज़माने की बेरुखी को क्यों दें भला,

हम खुद ही अपनी कश्ती को तूफ़ानों में ले जाते हैं।

क्या हुआ अगर वो भी अपनी वफ़ा का भ्रम आखिर रख न सके,

हम भी कहाँ हर मोड़ पर अपना फ़र्ज निभा पाते हैं।

मुफ़लिसी-ए-दिल में बहकर बस कोरा हक़ जताते रहे,

इश्क़ के कर्ज चुकाने से पहले ही हिसाब बनाते हैं।

ज़माने से रुसवाई तो महज़ एक बहाना है,

कुछ किस्से किसी की बेवफ़ाई से ज़्यादा, अपनी कम-वफ़ाई के लिए लिखे जाते हैं।

अध्याय - 199

पहचान पर परत

(और लौटती हुई काली घटा)

मन की सगाई को दो महीने बीत चुके थे, वह अपनी नई शुरुआत, नए रिश्तों और अपनी नई दुनिया में पूर्णतया रम चुकी थी, माही ने भी गाड़ी उसके नाम उतरवाकर

अपने अस्तित्व का अंतिम निशान

उसकी ज़िंदगी से मिटा दिया था या कहे कि उस दिन अपनी ही कहानी का

आखिरी पन्ना फाड़कर

उसकी नई ज़िंदगी की किताब में

सफेद पन्ना जोड़ दिया था। लेकिन अतीत कभी-कभी अपनी राख झाड़ने वापस आ ही जाता है। बीच-बीच में मन के मैसेज माही के फोन पर आ धमकते। वह उसका 'हाल-चाल' पूछती और बड़ी आसानी से उसे 'पीछे का सब भूलकर आगे बढ़ने' की सलाह दे डालती।

कभी ये 'हमदर्दी' भरे शब्द माही को ठीक लगते, तो कभी उसके ज़ख्मों को बुरी तरह छील देते। एक दिन माही ने तंग आकर उसे सख्त हिदायत दे दी— "सगाई होने के बाद अब हमें बात करने का कोई सामाजिक या नैतिक हक नहीं है। मुझे मैसेज मत किया करो।"

“एक शाम का निर्मम यथार्थ”

अब माही ने भी दफ्तर में जाना शुरू कर दिया था एक शाम को घर जाने के लिए दफ्तर के गेट की तरफ जा ही रहा था कि सामने एक कार आकर रुकी।

वह 'जीत पाण्डेय' की गाड़ी थी।

गाड़ी का दरवाज़ा खुला और मन बाहर उतरी। उसने एक क्षण के लिए माही की तरफ देखा और चुपचाप दफ्तर के भीतर चली गई।

माही के कदम एक पल के लिए ठिठके, लेकिन फिर वह बिना कुछ कहे वहाँ से निकल गया। अपनी बची-खुची मानसिक शांति को बचाने के लिए,

“बारिश और सुकून का एक झूठा भ्रम “

घर पहुँचकर वह थकान से अपने बिस्तर पर लेट गया।

तभी बाहर मौसम ने करवट ली और तेज़ भारी बारिश शुरू हो गई। आसमान में उमड़ती-घुमड़ती काली घटाएँ छा गईं।

आमतौर पर साहित्य और माही की अपनी ज़िंदगी में 'काली घटा' हमेशा दिक्कतों, निराशा और घुटन का प्रतीक होती थी। लेकिन आज... कई महीनों बाद, माही उस रूपक को बदलने की कोशिश कर रहा था। वह उस काली घटा में एक आनंदित दृश्य खोजने का प्रयास कर रहा था। ठंडी हवाएँ कमरे की दीवारों से टकराकर एक अजीब-सी रवानियत और सुकून पैदा कर रही थीं। उसे लगा जैसे प्रकृति भी उसके तपते हुए दिमाग को शांत करने आई है।

सुहाना और अन्य की की दी हुई प्रेरणा शायद असर कर रही थी। वह संभलने की कोशिश कर रहा था।

बिजली का गिरना

उस सुकून भरे पल में, उसने अपना फोन उठाया और डाटा ऑन किया।....आजकल दफ्तर में उसने फोन ले जाना छोड़ रखा था

व्हाट्सएप पर 'मन' का मैसेज था।

माही ने मैसेज खोला, और जो पढ़ा उसने उस बारिश की ठंडी बूंदों को एक पल में खौलते हुए सीसे में बदल दिया:

"आप ऑफिस से निकलते समय अपने मुँह पर मास्क या रुमाल और सिर पर तौलिया डाल कर निकला करो। क्योंकि “जीत”आपको अच्छे से जानता है। किसी दिन उसने आपको देख लिया तो मुझे बहुत दिक्कत होगी... क्योंकि मैंने उसको बोल रखा है कि हम दोनों एक ही दफ्तर में काम नहीं करते।"

और आप ट्रांसफर करवाने वाले थे?

हो सके तो करवा लो please

ये थे तो महज़ कुछ शब्द ही; ये माही को अपने स्वाभिमान पर आघात जैसे लग रहे थे।

जिस इंसान ने किसी के लिए खुद की ये हालत कर ली, आज उसे ही एक चोर, एक मुजरिम की तरह मुँह पर तौलिया डालकर निकलने को कहा जा रहा था? सिर्फ इसलिए ताकि उसका उसका होने वाला जीवनसाथी एक झूठ न पकड़ ले?

माही की वह आनंदित कल्पना, वह बारिश का सुकून... सब कुछ एक झटके में उसी पुराने, सड़े हुए निराशावादी यथार्थ में तब्दील हो गया। 'काली घटा' फिर से उसकी ज़िंदगी का अँधेरा बन गई।

माही के हाथ काँप रहे थे। उसका पोर-पोर अपमान से जल रहा था। लेकिन उसने अपने उस उबलते हुए लावे को पूरी ताकत से नियंत्रित किया और एक बेहद सधा हुआ, तार्किक जवाब टाड़ दिया:

"ठीक है। जितना मेरे से होगा, मैं ध्यान रखूँगा।"

और फिर,

"लेकिन शादी से पहले इस तरह किसी के साथ इतना खुलापन ठीक नहीं है।"

यह कोई ताना नहीं था, यह एक ऐसे इंसान की तार्किक सलाह थी जो देख रहा था कि कैसे 'सामाजिक प्रतिष्ठा' का रोना रोने वाले इज्जतदार परिवार की लड़की आज समाज की परवाह किए बिना उस लड़के की गाड़ी में घूम रही है।

पराजय

उस मैसेज के बाद फोन की स्क्रीन बुझ गई, साथ ही माही के भीतर जल रही सुधार की वह आखिरी लौ भी।

उस एक शब्द, उस एक हिदायत ने उसे वापस उसी अँधेरी खाई में धकेल दिया जहाँ से उस के फिक्र करने वाले उसे खींच कर लाए थे। सुहाना की सारी सलाहें, मां, बाप बहन की सारी प्रेरणाएँ इस अपमान के आगे कमज़ोर पड़ गईं।

अगले दिन से माही ने दुबारा से दफ्तर जाना ही कम कर दिया।

वह अपनी पहचान छिपाकर, मुँह पर रुमाल बाँधकर चलने के पक्ष में नहीं था... लेकिन वह मन की नई ज़िंदगी में कोई 'दिक्कत' भी नहीं बनना चाहता था। इसलिए, उसने उस दफ्तर से, और उस दुनिया से ही अपने कदम पीछे खींच लिए।

अध्याय - 200

“दो चेहरे”

(और बारिश की रात का प्रश्न)

उस रात फिर बारिश हो रही थी, वैसी ही बारिश जैसी शाम के समय हुई थी जब उसने पहली बार खुद को संभालने की कोशिश की थी। लेकिन अब बारिश में सुकून नहीं था, इस बारिश में सवाल थे। माही खिड़की के पास बैठा अँधेरे आसमान को देख रहा था। बारिश की बूँदें छत पर गिर रही थीं और उसके भीतर विचारों की बूँदें। एक प्रश्न कई दिनों से उसका पीछा कर रहा था— 'मन' इतनी बदल कैसे गई? वह लड़की... जो कभी उसकी एक छोटी-सी परेशानी पर बेचैन हो जाती थी, जो उसकी आवाज़ सुनकर उसके मन का हाल पहचान लेती थी, जो उसके देर से आने पर नाराज़ हो जाती थी, जो उसके बिना अपने भविष्य की कल्पना तक नहीं करती थी... वही लड़की आज उसके वजूद को अपने जीवन से मिटाने में लगी हुई थी। आखिर क्यों? उसने आँखें बंद कर लीं और पहली संभावना उसके सामने खड़ी हो गई— शायद वो सचमुच ऐसी ही थी। शायद उसने कभी प्रेम किया ही नहीं, या फिर उसका प्रेम उतना गहरा था ही नहीं जितना माही समझ बैठा था। शायद उसके पास आने में कोई छिपा हुआ स्वार्थ, कोई भावनात्मक आवश्यकता, कोई अकेलापन या कोई सुविधा थी, और जब वह आवश्यकता समाप्त हो गई... तो माही भी समाप्त हो गया। क्या पता वास्तविक 'मन' वही हो जिसे वह आज देख रहा है और जो 'मन' उससे प्रेम करती थी, वो सिर्फ एक सुंदर मुखौटा रही हो। कई लोग जीवन भर लोगों को पहचान नहीं पाते, तो क्या पता माही भी उन्हीं में से एक हो? अगर यह सच था... तो फिर पूरी कहानी एक भ्रम थी, रेगिस्तान में दिखाई देने वाले पानी जैसी, एक आंखों का धोखा।

प्रेम का सबसे निर्मम क्षण वह नहीं होता, जब कोई तुम्हें छोड़ देता है।

सबसे निर्मम क्षण वह होता है,

जब तुम्हें यह तय करना पड़े कि

जिसे तुमने जिया था...

वह झूठ था,

या जिसे तुम आज जी रहे हो...

वही सच है।

और ऐसे में तुम्हारी चेतना ये निर्णय ना कर पाए

कि

तुम्हारी स्मृतियाँ झूठ थीं...

या तुम्हारा वर्तमान।

यहीं पर वक्त अपना सब से निष्ठुर रूप दिखाता है।

लेकिन अगले ही क्षण उसके भीतर से दूसरी आवाज़ उठी— नहीं, जिस लड़की को उसने जाना था, वो इतनी कठोर नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति जो कभी प्रेम करता था, इतनी आसानी से पत्थर कैसे बन सकता है? माही को विश्वास नहीं हुआ। उसे लगा कि कहानी में कोई पन्ना गायब है। कोई ऐसा कारण जो दिखाई नहीं दे रहा, कोई ऐसा भय जो बोला नहीं गया, कोई ऐसा दबाव जो समझाया नहीं गया, या फिर कोई ऐसा सत्य जिस तक अभी किसी की पहुँच नहीं हुई। क्योंकि उसके अनुभव उसे एक बात सिखा चुके थे— लोग बेवफा हो सकते हैं, लेकिन हर बेवफाई का एक कारण होता है। और कई बार, कारण दिखाई देने वाली घटना से कहीं ज्यादा गहरा होता है।

बारिश लगातार गिरती रही। माही देर तक खिड़की के पास बैठा रहा। उसके सामने दो 'मन' थीं— एक, जो स्वार्थी थी, जिसने प्रेम का उपयोग किया और फिर उसे छोड़ दिया; और दूसरी, जो कहीं खो गई थी, जिस तक पहुँचने वाला रास्ता अभी भी किसी अँधेरे में छिपा हुआ था। वह नहीं जानता था कि इनमें से कौन-सी 'मन' सच थी, लेकिन इतना जरूर जानता था कि उसकी कहानी अभी समाप्त नहीं हुई थी। परंतु इस विश्वास के मध्य एक शाश्वत सत्य यह भी था कि आत्मा का संबंध इतनी सहजता से समाप्त नहीं हो सकता। “लेकिन विषय जब हृदय का हो, तो बुद्धि तर्कों से थककर भी उन रिश्तों को पूरी तरह नकार नहीं पाती, जिन्हें आत्मा कभी सच मान चुकी हो।”

"चलती बस और एक रुका हुआ सच"

कुछ दिन और बीत गए। माही अब भी अपनी यादों की कैद उस कमरे में काट रहा था, लेकिन इसे नौकरी की मजबूरी कहे या फिर मां-बाप की हालत पर तरस उस ने अनिच्छा से ही सही लेकिन अपनी दिनचर्या शुरू करी लेकिन अब उस ने खुद को दफ्तर की उन घुटन भरी दीवारों से आजाद कर लिया था, जिसे कभी वो “इबादतगाह” मान बैठा था, उसने जानबूझकर एक ऐसा 'फील्ड वर्क' (Field Work) चुन लिया था, जिसके सिलसिले में उसे अक्सर शहर से बाहर, कभी गुरुग्राम, पंचकूला तो कभी आस-पास के इलाकों में जाना पड़ता था।

इसके दो कारण थे। पहला— वह एक जगह स्थिर बैठकर अपने अवचेतन (Subconscious) को अतीत के दलदल में डूबने नहीं देना चाहता था। उसे लगता था कि शायद शरीर की गति उसके मन के उस भयंकर शोर को शांत कर सके।

और दूसरा, सबसे दर्दनाक कारण— 'मन' का वह फरमान। मन ने उसे जीत पाण्डेय से अपनी पहचान छिपाने को कहा था। अपने ही दफ्तर में एक मुजरिम या अजनबी की तरह मुँह पर तौलिया डालकर जाने से कहीं बेहतर, माही ने उस रास्ते को ही छोड़ देना उचित समझा था।

आज वह इसी काम के सिलसिले में गुरुग्राम जाने के लिए बस में बैठा था।

खिड़की के पास बैठा वह बाहर भागते हुए पेड़ों को देख रहा था, कि तभी एक परिचित आवाज़ ने उसका ध्यान तोड़ा। एक बुजुर्ग अंकल, जो उसके पुराने परिचित थे, आकर उसके बगल वाली सीट पर बैठ गए।

"अरे बेटा! कैसे हो? बहुत दिन बाद मिले!"

माही ने एक दिखावटी मुस्कान के साथ खुद को सहेजा, "ठीक हूँ अंकल जी। आप कैसे हैं?"

"मैं भी ठीक हूँ..." अंकल की नज़रें माही के चेहरे पर ठहर गईं, "और ये दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है जवान तूने इतनी? कोई मन्नत है क्या?"

माही ने नज़रें चुरा लीं, "बस ऐसे ही अंकल जी..."

बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ा। कुछ देर बाद अंकल के फोन की घंटी बजी।

अंकल फोन पर किसी से रिश्ते की बात कर रहे थे— "हाँ, ठीक है... लड़की वाले रविवार (Sunday) को आएं घर... हाँ, मैंने बता दिया है।"

फोन कटने के बाद, बस एक बड़ी-सी कांच की इमारत के पास से गुज़री।

अंकल ने अचानक बाहर इशारा करते हुए कहा, "बेटा, वो लड़का जीत है ना... जीत पाण्डेय... उसका ऑफिस इसी इमारत में है।"

माही के कानों में 'जीत पाण्डेय' नाम सीधा उसे अपनी आत्मा पर वार करता प्रतीत होता था।

अंकल अपनी रौ में बोलते जा रहे थे— "अभी उसके पापा से ही बात हो रही थी फोन पर। उसी का रिश्ता करवाना है। कई दिनों से कोई अच्छी लड़की और परिवार मिल ही नहीं रहा है।"

"जलजला"

ये कोई साधारण शब्द नहीं थे, ये माही की सोचने-समझने की शक्ति पर वज्रपात की तरह गिरे। माही का चेहरा एक पल में कई भाव बदल गया।

जो उसने अभी सुना, वह सच था या झूठ... लेकिन यह उसके जीवन का अब तक का सबसे बड़ा और खौफनाक यथार्थ था।

उसके मुँह से बेसाख्ता एक काँपती हुई आवाज़ निकली— "क्या?"

अंकल उसकी इस अजीब और तेज़ प्रतिक्रिया पर चौंके— "अरे! इतने क्यों चौंक गए बेटा?"

माही ने सांस भरते हुए खुद को संतुलित करने का प्रयास किया, "नहीं... कुछ नहीं। आप कह रहे थे ना कि उसका रिश्ता..."

"हाँ," अंकल ने बिल्कुल नैसर्गिक भाव से कहा।

माही का दिमाग शून्य के गोले में जा चुका था, उसे अपने कानों पर यकीन नहीं हो रहा था। उसने हिम्मत जुटाकर जिज्ञासा से पूछा— "लेकिन... इसका तो रिश्ता हो चुका है ना?"

अंकल ने तुरंत सिर हिला दिया— "अरे नहीं भाई! मेरी तो रोज़ बात होती है उसके पापा से। अभी दस दिन पहले ही किसी लड़की वालों को उनके घर भेजा था, लेकिन बात नहीं बनी। अभी फिर से एक परिवार वाले इस इतवार को उसे देखने आ रहे हैं।"

कुछ क्षण के लिए उसे अपनी बौद्धिकता किसी गड़ढे में जाती प्रतीत हुई।

अगर जीत पाण्डेय के लिए आज भी लड़कियाँ देखी जा रही हैं, तो फिर 'मन' कौन थी? मन की वो सगाई क्या थी? क्या मन को एक बहुत बड़ा धोखा दिया जा रहा था, या मन खुद किसी गहरे फरेब का हिस्सा थी?

इतने बड़े सदमे और धोखे के बीच उसकी उत्सुकता चरम पर थी, लेकिन मन की निजता (Privacy) और उसकी इज़्जत की खातिर वो अंकल को उस रिश्ते के बारे में ज्यादा कुछ बता भी नहीं सकता था। अब इस मुद्दे पर आगे बात ना करना ही समझदारी थी।

उसने वो ही किया जो उसका कर्तव्य था।

तभी बस धीमी हुई। अंकल का स्टैंड आ चुका था।

"ठीक है बेटा, मैं चलता हूँ" कहकर अंकल बस से उतर गए।

एक खौफनाक त्रासदी

अंकल चले गए, लेकिन जाते - 2 माही को एक भँवर में छोड़ गए।

वह खाली सीट को देखता हुआ सोच रहा था— ये कौन-सी कहानी चल रही है मेरी ज़िंदगी में? जो मैंने अभी सुना, अगर वो सच है... तो ये कोई साधारण बात नहीं है। ये एक खौफनाक त्रासदी है।

जीत पाण्डेय एक साथ कई मुखौटे पहनकर जी रहा था, और 'मन' अपनी सारी समझदारी, सारी तार्किकता का दंभ भरते हुए एक ऐसे दलदल में उतर चुकी थी जहाँ उसका विनाश निश्चित था।

इतनी ही देर में माही का स्टैंड भी आ गया।

जब वह बस से नीचे उतरा, तो वह सुबह वाला माही नहीं था। अब वह सिर्फ एक हारा हुआ प्रेमी नहीं था... बल्कि एक ऐसी खौफनाक बर्बादी का मूक गवाह बन चुका था, जो उसकी आँखों के सामने मन की ओर तेज़ी से बढ़ती दिखाई दे रही थी।"

अध्याय - 202

अँधेरे का पहरेदार

(और एक खौफनाक सच)

गुरुग्राम से लौटते हुए उस बस में माही ने जो सुना था, उसका ज़हरीला 'हैंगओवर' (Hangover) रात भर उसके दिमाग में सक्रिय रहा।

एक करवट से दूसरी करवट लेते हुए सुबह हो गई।

जेहन में बस एक ही सवाल—

क्या यह सच है? अगर सच है, तो यह बहुत भयानक है। लेकिन जब तक इंसान खुद अपनी आँखों से न देख ले या कानों से न सुन ले, तब तक किसी भी बात पर विश्वास एक जोखिम जैसा होता है, लेकिन सच का पता कैसे लगाया जाए?

"लंबे समय तक वैचारिक कशमकश में डूबे रहने के बाद, उसके अवचेतन के किसी गहरे कोने से एक युक्ति (तरकीब) अचानक इस तरह अंकुरित हुई मानो उसे कोई नया मार्ग मिल गया हो।" उसने उसी जाति के अपने एक परिचित को कॉल किया, जो इन दिनों अपनी बेटी के लिए एक अच्छे रिश्ते की तलाश में थे। माही ने बिना कोई दृश्य गधे उन्हें अपना असली उद्देश्य बता दिया— "अंकल, मुझे बस इतनी सच्चाई जाननी है कि उस लड़के (जीत पाण्डेय) का रिश्ता हुआ है या नहीं।"

परिचित ने हामी भर दी। कुछ ही घंटों बाद, माही के फोन पर एक ऑडियो रिकॉर्डिंग आई।

माही ने बेहद तनाव में वह रिकॉर्डिंग 'प्ले' (Play) की।

ऑडियो में उस लड़के (जीत) का पिता साफ शब्दों में कह रहा था— "नहीं भाई साहब, हमने अभी कोई रिश्ता तय नहीं किया है। हम तो खुद किसी अच्छे परिवार और अच्छी लड़की के इंतज़ार में हैं।"

रिकॉर्डिंग का रुकना था कि माही ने अपना सिर थाम लिया। उस कड़वे सच का बोझ इतना भारी था कि उसके मस्तिष्क का कोना-कोना उस असह्य खिंचाव से कराह उठा। "अगर रिश्ता नहीं हुआ है... तो मन रोज उसके साथ गाड़ी में क्यों घूम रही है?"

तभी एक अज्ञात आशंका अंतर्पटल में जन्मी और उसके माथे पर पसीने की बूंदें उभर आईं।— कहीं मन उस लड़के के साथ सिर्फ टाइम-पास तो नहीं कर रही? कहीं माही से हमेशा के लिए पीछा छुड़ाने के लिए उसने सगाई का यह पूरा नाटक तो नहीं रचा था?

लेकिन अगले ही पल उसके भीतर के इंसान ने इस विचार को खारिज कर दिया। नहीं... मन निष्ठुर हो सकती है, स्वार्थी हो सकती है, लेकिन वह ऐसा गिरा हुआ खेल नहीं खेल सकती।

“शाम का संदेश और एक 'कड़वा' अधिकार”

इसी भयानक मानसिक मंथन में शाम घिर आई। और संयोग देखिए, "अंतर्पटल पर मची उस उथल-पुथल के मध्य, डिजिटल पटल (स्क्रीन) पर मन का संदेश अचानक प्रकट हुआ मानो नियति ने स्वयं कोई संकेत दिया हो।”

"कल अगर कोई काम हो तो मेरे पास कॉल या मैसेज मत करना। कल मेरा एजाम है और वो (जीत) पूरे दिन मेरे साथ रहेगा।"

यह मैसेज पढ़कर माही को उसकी सोच पर तरस भी आया और एक हल्का-सा आक्रोश भी।

"नवीन स्मृतियों के कोहरे को धकेल कर कुछ शाब्दिक आकृतियाँ अचानक उसकी आंखों के सामने सजीव हो उठीं; 'अगर कोई बात हो तो शाम को मैसेज करना, दिन में नहीं... क्योंकि शहर के एक नामी रेस्टोरेंट में आज जीत के साथ मेरा बर्थडे सेलिब्रेशन है।' आज स्क्रीन पर चमक रहा संदेश, महज कुछ ही दिन पहले आए उस संदेश का एक क्रूर नवीनीकरण लग रहा था।”

मैं क्यों मैसेज करूँगा तुम्हारे पास? मेरा अब तुमसे वास्ता ही क्या रह गया है?

लेकिन फिर माही के भीतर से एक विचार आया। मन ने खुद मैसेज किया है, तो क्यों न इसी धागे को पकड़कर पूरी सच्चाई बाहर खींची जाए? उसने सीधे सवाल दागा:

"तुम्हारी सगाई की फोटो है?"

मन: "हाँ, है।"

माही: "भेजो।"

मन (हैरानी से): "क्यों? आप क्यों माँग रहे हो? क्या करोगे फोटो का?"

माही: "देखो, हर सवाल का जवाब तुरंत नहीं मिलता। विश्वास है आज भी मुझ पर... कि मैं तुम्हारे साथ कुछ गलत नहीं करूँगा?"

मन: "हाँ।"

माही: "तो भेजो।"

जल्द ही स्क्रीन पर एक तस्वीर आई।

तस्वीर कुछ बोल रही थी और बहुत कुछ समझा रही थी।

सगाई तो हुई थी! मन झूठ नहीं बोल रही थी।

अगर सगाई हुई थी, तो लड़के का बाप रिश्ते से मुकर क्यों रहा था?

माही के दिमाग में अब जो संभावनाएँ बन रही थीं, वे किसी डरावने सपने से भी ज्यादा खौफनाक थीं:

क्या सगाई टूट चुकी है, लेकिन मन फिर भी उस लड़के के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई है?

क्या लड़के के परिवार ने मन को सिर्फ एक 'बैकअप' (Backup) के तौर पर रखा हुआ है?

या फिर सबसे खौफनाक सच— क्या लड़के ने अपने घर वालों को अँधेरे में रखा है कि उसने यह रिश्ता छोड़ दिया है (ताकि वे कोई और लड़की ढूँढ़ें), और यहाँ वह मन को सगाई के झूठे भ्रम में रखकर उसके साथ मौज-मस्ती कर रहा है?

“अगर तीसरी संभावना सच थी, तो वह केवल छल नहीं था; वह मनुष्यता के चेहरे पर सबसे भयावह मुखौटा था।”

"हे भगवान!" माही ने अपने मुँह पर हाथ रख लिया।

दुनिया में कैसे-कैसे लोग हैं? किसी की बेटी के साथ कोई ऐसा खौफनाक खेल कैसे खेल सकता है? मन के साथ जो होने वाला था, वह माही की बर्दाश्त से बाहर था।

अभिभावक का जागरण

रात गहरी हो चुकी थी।

जिस प्रेमी को मन ने अपने हाथों से मार डाला था, वह तो कब का दफन हो चुका था। लेकिन आज रात... उस प्रेमी की कब्र से एक 'अभिभावक' (Guardian) उठ खड़ा हुआ। जो रात के अँधेरे में अपनी ही कातिल की पहरेदारी करने के लिए जाग रहा था।

माही के भीतर एक गहरी सोच-श्रृंखला शुरू हुई।

क्या मुझे मन से इसका जिक्र करना चाहिए? लेकिन किस हैसियत से करूँ? उसने तो मुझे मुँह पर तौलिया डालकर चलने को कहा है।

लेकिन... अगर मैं चुप रहा, तो यह मेरी अपनी नैसर्गिकता (Nature), मेरे अपने उसूलों के साथ अन्याय होगा। मैं सब कुछ जानकर भी उसे भेड़ियों के आगे कैसे फिंकने दूँ? ऐसा करके मैं खुद अपनी ही नज़रों में मुजरिम बन जाऊँगा।

उसे याद आया कि कल मन पूरे दिन उस लफंगे के साथ अकेले रहने वाली है।

घड़ी की सुइयों ने जैसे ही रात के ठीक 12 बजाए, माही ने कीपैड पर अपनी उंगलियाँ रख दीं। उसने एक ऐसा मैसेज टाइप किया जिसमें दर्द, फिक्र और एक खौफनाक चेतावनी छिपी थी:

"देखो, मुझे कोई हक़ तो नहीं है। लेकिन बस इतना कहूँगा कि किसी के भी साथ आओ-जाओ... लेकिन अपने परिवार की प्रतिष्ठा और खुद की इज्जत से कभी समझौता मत करना। क्यों कह रहा हूँ, ये फिर कभी बताऊँगा। आज के लिए इतना ही। Take care."

मैसेज सेंड हो गया।

“उस रात वो प्रेम नहीं निभा रहा था।

वह अपना स्वभाव निभा रहा था।

क्योंकि सच्चे चरित्र का अंत,

किसी रिश्ते के अंत के साथ नहीं होता।

रिश्ते समाप्त हो सकते हैं।

अधिकार भी समाप्त हो सकते हैं।

पर किसी की सलामती के लिए उठी हुई दुआ...

कभी अधिकार नहीं माँगती।”

अध्याय - 203

रात का रखवाला

(और एक अनचाहा फ़र्ज़)

इन दिनों गाँव में ठीकरी पहरा चल रहा था।

कुछ सप्ताह पहले आसपास के क्षेत्रों में चोरी की घटनाएं एकाएक बढ़ने से चौकसी बढ़ा दी गई थी। रात के गहरे अंधियारे में गाँव को महफूज़ रखने की एक अलिखित रवायत बरसों से चली आ रही थी, जहाँ हर रात किसी एक को जागना होता है। गाँव की रात्रि-चौकसी (रात्रि पहरे) के लिए ग्रामीणों का एक व्यवस्थित चक्र (रोस्टर) तय था, जिसके तहत हर घर से बारी-बारी पहरा दिया जाना था। आज पलकों में नींद का दरिया छुपाए, उस वीरान रात का पहरेदार बनने की बारी माही की भी थी।

रात के लगभग ग्यारह बजे वह अपने साथियों के साथ गाँव की गलियों का दो बार चक्कर लगा चुका था। इसके बाद उनकी टोली गाँव के बाहर बने पुराने मंदिर में आकर बैठ गई। कोई चाय पी रहा था। कोई खेती-किसानी की बातें कर रहा था, तो कोई राजनीति की चर्चा में व्यस्त था। कभी-कभी किसी बात पर हँसी का झरना बह निकलता और फिर रात का सन्नाटा उसे अपने भीतर समेट लेता।

लेकिन माही का मन वहाँ नहीं था। लोगों की व्यर्थ चर्चाओं में भाग लेना उसे शुरू से ही पसंद नहीं था। और अब...? अब तो उसके भीतर ही इतना शोर था कि बाहरी आवाज़ों के लिए कोई जगह ही नहीं बची थी।

कुछ देर तक वह वहाँ बैठा रहा। फिर चुपचाप उठकर मंदिर से थोड़ी दूर बहती नहर की ओर चला गया।

प्रकृति का मौन पहरा

रात अपने पूरे विस्तार पर थी।

आकाश में आधा चाँद बादलों के टुकड़ों के बीच छिपता-उभरता आगे बढ़ रहा था। दूर-दूर तक फैले खेत अँधेरे में किसी अनजाने रहस्य की तरह शांत पड़े थे। नहर का पानी बिना रुके अपनी दिशा में बह रहा था।

सरकंडों के झुरमुटों से झींगुरों की लगातार आती आवाजें कालेपन को और गहरा बना रही थीं। कभी-कभी किसी जलपक्षी के पंख फड़फड़ाने की ध्वनि अँधेरे को चीर जाती। दूर कहीं से किसी प्रवासी पक्षी की मद्धिम पुकार सुनाई देती और फिर सब कुछ पुनः शांत हो जाता।

मानो पूरी प्रकृति किसी अदृश्य पहेरे पर तैनात हो।

माही नहर किनारे बनी पुलिया पर बैठ गया।

ठहरे हुए प्रश्न और द्वंद्व

गुरुग्राम से लौटते समय बस में सुनी हुई बातें अब भी उसके दिमाग में घूम रही थीं। फिर वह रिकॉर्डिंग... जिसमें लड़के का पिता स्पष्ट शब्दों में कह रहा था कि कोई रिश्ता तय नहीं हुआ। और फिर... मन द्वारा भेजी गई सगाई की तस्वीर।

दोनों बातें एक साथ सच नहीं हो सकती थीं।

उसने आँखें बंद कर लीं। कुछ क्षणों के लिए उसके भीतर एक कठोर विचार उठा। उसने नहर के पानी को देखा। पानी बहता जा रहा था, लेकिन उसके प्रश्न वहीं के वहीं खड़े थे। और तभी उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न आकर खड़ा हो गया—

क्या उसे मन को बताना चाहिए?

किस अधिकार से? और उससे भी बढ़कर... क्यों?

जिस लड़की ने स्पष्ट शब्दों में उसे अपनी जिंदगी से बाहर कर दिया था... उसकी जिंदगी में हस्तक्षेप करने का अधिकार अब उसके पास कहाँ था?

लेकिन दूसरी आवाज़ ने तुरंत विरोध किया:

और अगर कल को सचमुच कुछ गलत हुआ तो ?

तुम सच्चाई के इतने करीब पहुँच चुके थे... फिर भी तुम चुप रहे... तो क्या तुम खुद को माफ़ कर पाओगे?"

माही उस प्रश्न का उत्तर खोज रहा था।

अधिकार नहीं, फ़र्ज

अब प्रश्न अधिकार का नहीं था। अब प्रश्न फ़र्ज का था।

मन ने उसके प्रेम को अस्वीकार कर दिया था। लेकिन उसके सम्मान, उसकी सुरक्षा और उसकी प्रतिष्ठा के प्रति माही की चिंता अभी भी जीवित थी। भले ही उसके भीतर सब कुछ मर गया हो, लेकिन उसके भीतर की इंसानियत अभी बची हुई थी... और हमेशा रहेगी।

शायद यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी भी थी। या शायद... यही उसका चरित्र था।

किसी के भी साथ गलत होते देखना उसकी आँखों का नैसर्गिक दृश्य कभी रहा ही नहीं। उसे अचानक महसूस हुआ कि वह अब मन को बचाने की कोशिश किसी 'प्रेमी' की तरह नहीं कर रहा था, बल्कि उस व्यक्ति की तरह कर रहा था जो किसी को खाई की ओर बढ़ते देखकर चुप नहीं रह सकता।

अगर वह चुप रहता... तो संभव था कि वह अपनी ज़िद में सही साबित हो जाता। लेकिन वह स्वयं की नज़रों में बहुत छोटा पड़ जाता।

उस रात नहर के किनारे बैठे-बैठे माही ने एक अंतिम निर्णय ले लिया।

वह मन को सब कुछ बताएगा। उसके बाद विश्वास करना या न करना उसका अधिकार होगा। लेकिन चेतावनी देना... यह उसका फ़र्ज था।

सुबह का इंतज़ार

तभी मंदिर की दिशा से किसी ने आवाज़ लगाई। शायद पहरा का अगला फेरा शुरू होने वाला था।

वो धीरे से पुलिया से उठा। उसने एक बार फिर बहते पानी की ओर देखा और वापस गाँव की तरफ चल पड़ा।

उस रात गाँव में सिर्फ ठीकरी पहरा नहीं चल रहा था। एक टूटा हुआ इंसान भी अपनी आखिरी बची हुई इंसानियत की पहरादारी कर रहा था।

और अब... उसे सिर्फ सुबह का इंतज़ार था।

अध्याय - 204

“मन की आहुति”

आज छुट्टी का दिन था। सुबह के 10 बज रहे थे।

माही के भीतर का वह “इंसान” जो रात भर से पहरेदारी कर रहा था, अब भी उसे उसके फ़र्ज़ की याद दिला रहा था। लेकिन साथ ही एक संकोच उसके भीतर उत्पन्न हो रहा था। उसका अंतर्मन उसे सच बताने के लिए प्रेरित तो कर रहा था, लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि शुरुआत कैसे करे?

वह इसी उधेड़बुन में था कि उसकी इस दुविधा को स्वयं 'मन' ने ही समाप्त कर दिया।

कुछ ही देर में उसकी कॉल आ गई।

कॉल उठते ही एक ठंडी और सधी हुई आवाज़ आई:

"कैसे हो? उस रात आप कुछ बताने की कह रहे थे... क्या है ऐसा?"

माही ने एक पानी की घूंट भरी और अपने सारे आत्मसम्मान को एक तरफ रखकर बेहद संयत स्वर में कहा,

"हाँ... लेकिन आप मेरी बात का कोई दूसरा मतलब मत निकालना। मेरा उद्देश्य सिर्फ आपको आगाह करना है, ताकि आपके साथ कुछ गलत ना हो जाए।"

मन: "ठीक है, अब बताओ।"

इसके बाद माही ने उसे वह सारी बात बता दी। गुरुग्राम की बस का वह सफ़र, वह रिकॉर्डिंग, उस लड़के के बाप के बोल—सब कुछ। माही बोलता रहा और मन बेहद इत्मीनान से, बिना किसी रुकावट के सुनती रही।

“अंधा विश्वास और एक तमाचा”

बातों का दौर थमते ही, कमरे का वजूद फिर से खामोशी की चादर में लिपट गया।

और फिर... उस चादर को हटाती हुई मन की आवाज़ आई:

"अच्छा... तो आप इस बात से परेशान थे?"

माही: "हाँ, इसलिए मैंने बताना ठीक समझा। ताकि आप इस तरह की विकृत सोच वाले गिरे हुए इंसानों की स्वार्थपूर्ति का साधन ना बन जाओ।

में बस इतना कहूंगा कि मुझे उस लड़के और उसके परिवार की नियत पर संशय है।

आप समझदार हो इसलिए ज्यादा व्याख्या की जरूरत मेरे को नहीं लगती।

इतना सुनते फोन पर एक हँसी गूँजी।

मन (हँसते हुए): "इनमें से कुछ भी सही या सच नहीं है। जीत मुझ से बेहद प्यार करता है... और उस समय से करता है जब तुमने पहली बार उसको मेरी फोटो दिखाई थी। इसलिए मुझे लगता है कि तुम्हें कोई गलतफहमी हुई है।"

"नहीं, मुझे कोई गलतफहमी नहीं हुई है। मैंने बहुत गहराई से पता किया है। देखो, अगर कोई परिवार एक रिश्ते से निकले बिना दूसरे रिश्ते देखने लगे, तो उस परिवार की नियत कभी सही नहीं कही जा सकती। और वो जीत पाण्डेय तुम्हें पूरी तरह अँधेरे में रख रहा है। मुझे व्यक्तिगत तौर पर ऐसे लोगों पर घिन आती है।"

माही ने एक आखिरी कोशिश करते हुए कहा: "देखो, या तो तुम उन लोगों से खुलकर बात करो, या फिर मेरी सलाह यही है कि उस रिश्ते से बाहर निकल लो। वो इंसान किसी भी लिहाज से तुम्हारे लिए ठीक नहीं है।"

अहंकार का प्रहार

इस बार मन की आवाज़ में कोई हँसी नहीं थी, बल्कि एक चुभता हुआ रूखापन था:

"देखो... मेरे लिए क्या ठीक है और क्या नहीं, वो तय करना अब तुम्हारा काम नहीं है। मैं खुद देख लूँगी। तुम्हें मेरे लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। तुम बस अपना ध्यान रखो।"

यह जवाब सुनते ही माही को महसूस हुआ जैसे उसके शरीर का सारा खून खौलकर उसके दिमाग की नसों में उतर आया हो।

विडंबना की चरम सीमा

इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती थी?

एक इंसान जो खुद अपनी रातों की नींद, अपनी शांति और अपने जले हुए आत्मसम्मान की राख समेटकर किसी को उसके खौफनाक भविष्य के लिए आगाह कर रहा है... और सामने वाला? सामने वाला इस नाज़ुक मोड़ पर भी उसे बेइज़्जत करने और नीचा दिखाने का कोई अवसर नहीं छोड़ रहा था।

जिन पर उसे गुस्सा करना चाहिए था, वह उन पर अपना अंधा विश्वास जता रही थी; और जो इंसान उसे उस दलदल से बाहर खींच रहा था, उसे वह झूठा और 'दखलअंदाज़' साबित कर रही थी।

"तुम्हारा काम नहीं है..." ये शब्द माही के कानों में पिघले हुए सीसे की तरह गूँज रहे थे।

"प्रेम की एक बड़ी परीक्षा विरह जरूर है;

लेकिन प्रेम की सबसे बड़ी परीक्षा वह क्षण है,

जब तुम्हें अपने ही प्रिय की आँखों में

अपने चरित्र का साक्षी बनकर खड़ा होना पड़े।"

आज माही को मन पर नहीं, बल्कि खुद पर शर्म आ रही थी। उसे अपने वजूद पर गुस्सा आ रहा था कि उसने खुद को किस हद तक गिरा लिया है। एक ऐसी लड़की के लिए जो विनाश की तरफ भाग रही है और रोकने वाले को ही अपना दुश्मन समझ रही है।

इसी घुटन भरे और ज़हरीले माहौल के बीच, माही की काँपती हुई उँगलियों ने फोन के लाल बटन को दबाकर कॉल काट दी...

वक्त के सितम और एक पुराना गीत

दिन के उजाले में भी कमरे में अंधेरा था।

माही निढाल होकर बिस्तर पर गिर पड़ा। नियति के इस क्रूर मज़ाक और वक्त के इस बर्बर व्यवहार ने उसे भीतर तक झकझोर दिया था।

तभी उसके खामोश दिमाग में, किसी पुराने ग्रामोफोन पर बजते हुए एक दर्द भरे फिल्मी गीत की वे पंक्तियाँ गूँजने लगीं, जो आज मानो उसी की ज़िंदगी पर लिखी गई थीं—

"वक्त ने जिस तरह दिल पे ढाए सितम...

आप भी मुस्कुरा के बहुआ दीजिए।

आजकल दर्द से दोस्ती है मेरी...

प्यार में भी ज़रा ग़म मिला दीजिए।"

अध्याय - 205

लौटता हुआ अँधेरा

(विश्वास का कल्ल)

कुछ अँधेरे रास्तों पर नहीं होते, वे मनुष्य के भीतर होते हैं।

उनसे बाहर निकल आने के बाद भी वे मरते नहीं—

बस किसी ऐसी चोट की प्रतीक्षा करते हैं,

जो भीतर बुझी हुई रात को फिर जगा दे।

और जब वह चोट लगती है,

मनुष्य वर्तमान से नहीं टूटता...

वह अपने ही अतीत में फिर से गिर पड़ता है।

माही के साथ भी ऐसा ही हुआ था। मन से बिछड़ने के बाद वह धीरे-धीरे अपने टूटे हुए जीवन के मलबे में से जीने की कुछ वजहें चुनने लगा था।

जब 'मन' की सगाई हुई थी, तब भी वह टूटा था। बहुत बुरी तरह टूटा था। लेकिन उस टूटन में भी उसने अपने लिए कुछ दिलासे खोज लिए थे। उसे लगता था कि अगर मन इस निर्णय से खुश है, तो शायद यही ठीक है। अगर उसके परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा वापिस आ गई है, तो शायद उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। अगर उसकी अपनी तकलीफ़ किसी और की खुशियों की कीमत बन रही है, तो शायद उसे इसे खामोशी से स्वीकार कर लेना चाहिए।

इन्हीं विचारों से स्वयं को संभाल रहा था। जीना सीख रहा था। कम-से-कम कोशिश तो कर ही रहा था।

लेकिन आज... आज सब कुछ फिर से बिखर गया था।

“टूटता तारा और एक खामोश गुजारिश”

रात काफी हो चुकी थी। माही घर की छत पर अकेला बैठा था।

रात की हर साँस के साथ अँधेरा अपनी सरहदें थोड़ा और विस्तृत कर रहा था।

उसकी शीतल साँसों से उठती बयार ने आकाश को इस तरह धो दिया था कि नभ की निर्मल देह पर असंख्य तारे लिपट जाने को आतुर थे। और उन्हीं तारों के बीच अचानक एक तारा टूटकर क्षितिज के पीछे कहीं खो गया।

माही की निगाह उसकी ओर उठी। बचपन में लोग कहा करते थे कि टूटते तारे पर माँगी गई दुआ ज़रूर पूरी होती है। लेकिन माही अब दुआ माँगना भी भूल चुका था। और सच तो ये है कि अब माँगने के लिए कोई दुआ बची भी नहीं थी। कुछ इच्छाएँ इतनी बुरी तरह टूट जाती हैं कि इंसान फिर ईश्वर से भी माँगना छोड़ देता है।

उसी समय दूर कहीं से गुज़रती हुई रेलगाड़ी की भारी आवाज़ सुनाई दी। रात के शून्य शोर में वह आवाज़ और भी स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। कुछ क्षण बाद वह आवाज़ धीमी पड़ने लगी... फिर और दूर चली गई... और फिर हमेशा के लिए खो गई।

वो उसे सुनता रहा। उसे लगा जैसे उसकी ज़िंदगी की हर अच्छी चीज़ भी इसी तरह उससे दूर चली गई थी। धीरे-धीरे... बिना किसी शोर के... और हमेशा के लिए।

“वही कमरा... वही कैद”

तभी, उसकी आँखें नीचे चली गईं। छत से उसका अपना कमरा दिखाई दे रहा था।

वही कमरा... जिसने पिछले कई महीनों तक उसे अपनी चार दीवारों में कैद रखा था। वही कमरा जहाँ उसने अनगिनत रातें जागकर काटी थीं। वही कमरा... जो उसके प्रेम के पनपने से लेकर उसके बिखरने तक, सब कुछ चुपचाप देखता रहा था।

एक ज़हरीली गूँज

उसने आँखें बंद कर लीं,

"मेरे लिए क्या ठीक है और क्या नहीं, वो तय करना तुम्हारा काम नहीं है।"

वह एक वाक्य था, लेकिन माही के भीतर बार-बार पूरी आवाज़ में लौट रहा था—

इनमें कोई सीधा अपमान नहीं था। फिर भी एक चुभन थी। शायद इसलिए क्योंकि आज उसे लग रहा था कि उसके प्रेम का नहीं... उसके चरित्र का अपमान हुआ है। उसके विश्वास की हत्या हुई है।

वह उससे उसका प्रेम बहुत पहले छीन चुकी थी। लेकिन क्या वह अब उसकी नीयत पर भी संदेह करने लगी थी?

"मैं अपने हालातों से मजबूर था मन..." उसने अँधेरे में ही मन-ही-मन कहा। "मैं भागा नहीं था। मैंने धोखा नहीं दिया था। मैं सिर्फ समय माँग रहा था। तुमने मेरी मजबूरी को मेरी बेरुखी समझ लिया। मेरी विवशता को मेरी कमजोरी समझ लिया। और मेरी खामोशी को... मेरी गलती।"

उसने एक गहरी, काँपती हुई साँस ली।

"और अब... अब तुम खुद एक ऐसे रास्ते पर चल रही हो जिसमें मुझे गहरे गड्ढे दिखाई दे रहे हैं। लेकिन विडंबना देखो... जो तुम्हें सावधान कर रहा है, तुम उसी को अपना दुश्मन समझ रही हो। और जिस इंसान पर तुम्हें सबसे कम भरोसा करना चाहिए था, उसी पर तुम आँखें मूँदकर अंधविश्वास कर रही हो।"

"इस अंतर्मथन के क्षणों में, उसकी विवश आँखों के कोर धीरे-धीरे अश्रुपूरित (आँसुओं से भरे) होने लगे।"

और फिर रूह का एक-एक पोर उससे अलग होकर आँखों के रास्ते छत के फर्श पर बहने लगा। और फिर उसी पल पल बिखरती रूह से निकली ये....

“मन की आवाज”

कभी किसी तपती दुपहरी में
यदि किसी राह पर कोई बंजारा दिखाई दे,
तो उसके माथे का पसीना
और पैरों की धूल को
सिर्फ सफ़र की थकान मत समझना।
हो सकता है,
वह किसी ऐसे प्रेम की अंतिम यात्रा हो
जो कभी तुम्हारे लिए चला था।
उस दिन शायद तुम्हारे भीतर
प्रेम का पुनर्जन्म होगा।
वह बंजारा नहीं...
उसकी छाया तुम्हें
तुम्हारे ही अस्तित्व से मिलवाएगी।
पर शायद तब तक...
समय अपना अंतिम निर्णय लिख चुका होगा।

रात तारों की आभा में जैसे अपने शृंगार को मुकम्मल कर रही थी और पूरी दुनिया सपनों की मिठास में डूबी मुस्कुरा रही थी। ठीक उसी पल ठंडी हवा का एक तीव्र झोंका उसके आंसुओं से भीगे चेहरे को छू कर गुजरा, और भीतर जागती चेतना की आहट ने विस्मृति के उस अंतहीन सफर को वहीं थाम दिया।

विडंबना यह थी कि प्रकृति उस रात उत्सव मना रही थी, और एक पुरुष अपने ही विश्वास का शोक।

दूर कहीं रात में फिर एक रेलगाड़ी की आवाज़ उभरी। लेकिन इस बार माही ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। वह बस छत पर बैठा अपने कमरे की उस खाली खिड़की को देखता रहा। उसे महसूस हो रहा था कि वह फिर उसी अँधेरे की ओर लौट रहा है...

और इस बार... उस अँधेरे का कारण जुदाई नहीं थी।

इस बार उस अँधेरे का कारण था— विश्वास का कत्ल।

अध्याय - 206

“रूह का शोर”

(एक शून्य)

रात का आधा पहर बीत चुका था।

माही फिर उसी कमरे की कैद में लौट आया था, लेकिन नींद को जैसे छत पर ही छोड़ आया था। बिस्तर पर उसका शरीर पड़ा था; उसकी चेतना वहाँ थी ही नहीं।

वह बार-बार पीछे लौट रही थी—बहुत पीछे... उस मोड़ तक, जहाँ से यह कहानी शुरू हुई थी।

स्मृतियाँ एक-एक करके अँधेरे में उभरने लगीं। कभी कोई चेहरा, कभी कोई आवाज़, कभी कोई अधूरा संवाद...

जैसे उसकी पूरी जिंदगी किसी ने कमरे की उस खाली दीवार पर फिर से टाँग दी हो—आरंभ से लेकर आज तक।

माही आँखें खोले बिना सब देख रहा था।

इस बार वह अपनी कहानी जी नहीं रहा था...

वह अपनी ही कहानी का साक्षी बनकर उसे पहली बार समझने की कोशिश कर रहा था।

वह आज की अपनी इस अवस्था के लिए उत्तरदायी कारणों को खोज रहा था—कभी समाज में, कभी परिवार में, कभी परंपराओं में, कभी अज्ञानता और पाखंड में, कभी परिस्थितियों में... फिर मन में, और अंततः स्वयं में।

सूखी पलकों ने एक बार फिर अपनी प्यास बुझाई। आँसुओं की वह धारा बहती रही और उसके साथ माही की चेतना भी पीछे की ओर लौटती चली गई—उस आरंभ से, जहाँ प्रेम अभी प्रेम था और उसकी हत्या का कोई हत्यारा दिखाई नहीं देता था।

यहाँ माही बिस्तर पर लेटे-लेटे ही शून्य में ताकते हुए, अपने भीतर की हलचल को वैसी ही गहराई से महसूस कर रहा था, जैसे कोई पुरानी फिल्म चल रही हो—

प्रेम की हत्या कोई नई घटना नहीं है।

सभ्यता के उदय से लेकर आज तक इतिहास इसी त्रासद सत्य का साक्षी रहा है कि प्रेम का हत्यारा कोई पराया नहीं होता। वह तो प्रेम के उसी धागे का बिछुड़ा हुआ सिरा होता है—कभी माता, कभी पिता, कभी भाई... और कभी स्वयं वही प्रेमी, जो भय, स्वार्थ, अहंकार, मर्यादा अथवा परिस्थितियों के आगे अपने ही प्रेम का गला घोट देता है।

समाज, परम्पराएँ और रूढ़ियाँ तो केवल वे आवरण हैं, जिनकी ओट में असली हत्यारे सदियों से स्वयं को निर्दोष सिद्ध करते आए हैं।

माही अपनी कहानी को भी इसी कठघरे में खड़ा कर चुका था। तभी उसकी स्मृति की दीवार पर “एक सफेद खरगोश” उभरा...

जब सदियों से इतिहास इस रीत का गवाह रहा है तो उसके साथ क्या अलग हुआ था? नहीं...

और फिर, बिस्तर से उठकर उसने मोबाइल की टॉर्च की धीमी रोशनी जलाई। मेज पर पड़े कागज़ और कलम ने उसके भीतर चल रहे उस संवाद को शब्दों का आकार दे दिया।

इसीलिए उसके प्रेम की हत्या भी कोई विलक्षण घटना नहीं थी। पीड़ा इस बात की भी नहीं कि मेरा प्रेम मुझसे छिन गया; क्योंकि प्रेम बिछड़कर भी प्रिय की स्मृतियों के सहारे जीवित रहता है। मेरी पीड़ा तो इस बात की है कि तुमने विश्वास के दीप को अपने ही हाथों अविश्वास के खंजर में बदल दिया।

तुम्हारे उस एक प्रहार ने मेरी उस निष्कलुष रूह को मुझसे अलग कर दिया, जिसके कण-कण से तुम्हारे लिए केवल दुआएँ जन्म लेती थीं। उस दिन मेरे प्रेम की मृत्यु नहीं हुई थी... उस दिन विश्वास ने अपने ही प्रिय की आँखों में स्वयं को अनाथ पाया था।

और जिस दिन विश्वास अनाथ हो जाता है, उसी दिन प्रेम अपनी अंतिम साँस ले लेता है। पल भर में उस अश्रु-धारा ने अपने बहाव को और गहरा कर दिया।

अंतर बस इतना था कि—

एक पुरुष की सिसकियों का कंपन सिर्फ उसके अपने सीने तक सीमित रहता है, ज़माना तो आदिकाल से इस मूक वेदना को शक्ति समझने की भूल करता आया है।

और वह काल-रात्रि तो वैसे भी स्वयं में ही एक असीम शून्यता का पर्याय थी।

अध्याय - 207

“सच की महक”

(एक तलाश)

तीन महीने बीत चुके थे। इन तीन महीनों में अवैतनिक भुगतान पर रहकर माही ने स्वयं को लगभग पूरी तरह उस कमरे तक सीमित कर लिया था। चूंकि वो स्थानांतरण की प्रक्रिया चलवा चुका था इसलिए उसकी बदली भी “मुख्य कार्यालय” में हो चुकी थी, उधर 'मन' ने भी अपना नंबर बदल लिया था। दोनों के बीच पिछले तीन महीनों से कोई संपर्क नहीं था और न ही माही ने दोबारा कोई प्रयास किया था। उसने स्वयं को उसकी जिंदगी से पूरी तरह अलग कर लिया था। 'मन' के नंबर बदलने को भी उसने इसी रूप में स्वीकार कर लिया था कि अब वह अपने अतीत का हर निशान मिटा देना चाहती है। इस बार उसने स्वयं को केवल 'मन' से नहीं, बल्कि लगभग पूरी दुनिया से काट लिया था। न उसके पास खुद के लिए समय था न दूसरों के लिए। उसने अपने सपने “असिस्टेंट प्रोफेसर” को भी आहुत कर दिया था— मुख्य परीक्षा में अनुपस्थित रहकर।

फिर भी, पिछले कुछ दिनों से उसके व्यवहार में एक सूक्ष्म लेकिन स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा था। पहले वह दार्शनिक पुस्तकों में डूबा रहता था, या फिर घंटों खामोश बैठा किसी अज्ञात शून्य को निहारता रहता। मोबाइल से तो उसने लगभग दूरी ही बना ली थी, लेकिन अब स्थिति बदल चुकी थी। पिछले कुछ दिनों से मोबाइल उसकी हथेलियों से चिपका रहता। कभी वह देर तक स्क्रीन पर उंगलियाँ चलाता रहता, कभी अचानक किसी संदेश को पढ़कर उसके चेहरे पर आश्चर्य उभर आता। कभी वह कुछ खोजते-खोजते एकदम से उठकर लैपटॉप खोल लेता, फिर देर तक कुछ पढ़ता रहता, कुछ नोट करता, कुछ मिटा देता और फिर गहरी सोच में डूब जाता। कई बार तो ऐसा लगता जैसे वह किसी ऐसे धागे के पीछे भाग रहा हो जिसका दूसरा सिरा अभी उसकी पकड़ में नहीं आया था। कभी मोबाइल, कभी लैपटॉप, कभी कोई पुरानी डायरी... और फिर घंटों की खामोशी।

चूँकि बाहरी दुनिया से उसका लगभग कोई वास्ता नहीं रह गया था, इसलिए किसी को यह नहीं पता था कि वह आखिर कर क्या रहा है। लेकिन एक बात निश्चित थी— माही अब केवल अपने दुख में नहीं डूबा हुआ था। वह कुछ खोज रहा था। बहुत गहराई से, बहुत गंभीरता से और शायद... बहुत बेचैनी से। उस रात भी कमरे की बत्ती देर तक जलती

रही। मोबाइल की स्क्रीन बार-बार रोशन होती रही, लैपटॉप खुलता और बंद होता रहा और माही... वह किसी अदृश्य पहेली के बिखरे हुए टुकड़ों को जोड़ने की कोशिश करता रहा। उसे क्या मिला था? वह किसकी तलाश में था? और सबसे बड़ा प्रश्न— क्या वह सच की तरफ बढ़ रहा था, या किसी ऐसे रहस्य की तरफ, जो उसकी पूरी दुनिया को एक बार फिर बदल देने वाला था? कमरे के बाहर सब कुछ शांत था, लेकिन उस कमरे के भीतर... एक तूफ़ान जन्म ले चुका था।

अध्याय - 208

“मन की शादी”

"सूरज डूबने की ज़िद पर अड़ा था और कमरा धीरे-धीरे शाम के उदास साए में सिमट रहा था। खिड़की से आती रोशनी अब बुझते हुए दीए की तरह पीली पड़ चुकी थी। माही निस्पंद लेटा था; आँखें खुली तो थीं, मगर उनमें जागती चेतना कहीं बहुत दूर, किसी गहरे अतीत के वीराने में भटक रही थी। पिछले कुछ दिनों से वह किसी अनकहे सच की परछाई के पीछे चल रहा था। कई रातों की जाग, अनगिनत खोजें, बिखरे हुए सूत्र और कुछ अधूरे उत्तर... शायद इसी थकान ने उसके भीतर एक हल्का सा शोर बचा रखा था। तभी मोबाइल में हल्की-सी थरथराहट हुई। ऐसी थरथराहट तो दिन में कई बार होती थी, लेकिन आज... न जाने क्यों उसमें कुछ अलग था। कुछ कंपन केवल जेब में रखे फ़ोन को नहीं, नियति को भी हिला देते हैं। उसने फोन उठाया और स्क्रीन पर नज़र गई—

"सुहाना Calling..." कुछ देर देखा, फिर कॉल रिसीव की।

"हैलो..."

दूसरी तरफ से एक हड़बड़ाई हुई, और अधीर आवाज़ आई—

"भाई! आज मन की शादी है।"

बस इतना ही। "पल भर के लिए निस्तब्धता दोनों के बीच दीवार बनकर खड़ी रही।

"शायद सुहाना कुछ और कहना चाहती थी, शायद बहुत कुछ,

लेकिन उससे पहले ही माही की उँगली स्क्रीन पर बने लाल गोले तक पहुँच चुकी थी। कॉल समाप्त।

सुहाना ने कुछ कहा था, माही ने बहुत कुछ सुन लिया था, लेकिन महसूस... कुछ भी नहीं हुआ। न धरती हिली, न आसमान काँपा, न पैरों तले ज़मीन खिसकी, न कोई बिजली गिरी। बस एक गहरा मौन, जो कॉल आने से पहले भी था और अब भी था। मानो अभी-अभी उसने कोई ऐसी बात सुनी हो जो जीवन में हर रोज घटती हो।

और वैसे भी जब इंसान को सब्र आ जाए, तो वो एक जागती कब्र हो जाता है।

उसने आँखें बंद कर लीं, एक गहरी साँस भीतर गई।

दरवाजे पर हल्की-सी आहट हुई, दीक्षा जो मां की देखभाल के लिए आई हुई थी... चुपचाप चाय का कप रखकर वापस चली गई। कुछ देर बाद वह उसी पुरानी कुर्सी पर बैठा था, हाथ में "यारियाँ तन्हाइयाँ" वाली चाय और उससे उठता हुआ धुआँ। धुआँ लगातार ऊपर उठ रहा था और हर गुजरते पल के साथ चाय में थोड़ी-थोड़ी ठंडक घोलता जा रहा था।

माही ने पहली चुस्की ली, उसे लगा मानो कोई एहसास धीरे-धीरे दफन हो रहा है।

दूसरी चुस्की,

कुछ और...

तीसरी चुस्की

थोड़ा और...और जब कप में बची अंतिम चुस्की भी खत्म हो गई,

तो उसे लगा जैसे उन दफन एहसासों पर मिट्टी की आखिरी परत भी डाल दी गई हो।

तभी हवा के एक तेज झोंके ने टेबल पर खुली रखी किताब को एक क्रम पीछे सरका दिया।

और उसी के साथ ये पंक्तियाँ उसके सामने खुल गईं—

“मृत्यु का वियोग भी समय के साथ स्वीकार हो जाता है।

मौत का दर्द भी वक्त के मरहम से मिट-सा जाता है;

इंसान मान लेता है कि मिट्टी का पुतला खाक हुआ

और रूह अपने मालिक से जा मिली।

मगर मोहब्बत में रूहों का जुदा होना...

इस कायनात की सबसे बेरहम रीत है।

यहाँ जनाजा नहीं उठता,

फिर भी वजूद का कोई न कोई हिस्सा हर रोज़ दम तोड़ता है।

और यह रोज़-रोज़ का मरना सारे जज़्बातों को इस क़दर सुन्न कर देता है

कि रूह को फिर न कोई खुशी छू पाती है,

न कोई दर्द रुला पाता है।”

उसने सिर कुर्सी के पीछे टिका दिया

और आँखें बंद कर लीं।

क्या सचमुच सब समाप्त हो गया था?

क्या सारे एहसास आज मिट्टी में दफ़न हो चुके थे?

नहीं....

शायद अभी कुछ बचा था। बहुत थोड़ा, लेकिन उतना पर्याप्त था कि उसे चैन से बैठने न दे। 'मन' की शादी की खबर ने उसे नहीं तोड़ा था, वह बहुत पहले टूट चुका था। आज बस एक अध्याय - समाप्त हुआ था, लेकिन एक दूसरा अध्याय -... अपने उत्तर की प्रतीक्षा में अब भी खड़ा था।

उसकी नज़र टेबल पर रखे मोबाइल पर गई। आज बड़े इत्मीनान से उसे निहारा, फिर धीरे से फोन हाथ में उठा लिया। एक चैट विंडो खुली और मैसेज टाइप किया— "Hello."

उधर ध्वनि की तीव्रता से जवाब आया—

"Haa बोलो..."

माही ने कुछ देर उस संदेश को देखा, फिर उसके होंठों पर एक फीकी-सी रेखा उभरी।

"हाँ... आज शायद बहुत कुछ बोलना है।"

उसने खुद से कहा और अगले ही पल उसकी उँगलियाँ स्क्रीन पर दौड़ने लगीं—

"तुम्हें उन स्क्रीनशॉट और फोटोज़ की कीमत चाहिए ना?"

उधर से एक हँसती हुई इमोजी उभरी:

"Haa..."

फिर सामने वाले ने अगला संदेश लिखा— "और मुझे यकीन था कि एक दिन मुझे मेरी कीमत मिलेगी।" फिर एक हँसी स्क्रीन पर— "Haa... Haaa..."

बताओ कहाँ लोगे कीमत? कहाँ मिलोगे?" माही ने पूछने के लहजे में लिखा।

इस बार जवाब पहले से भी जल्दी आया।

सामने वाला लगातार लिखता गया, अपनी ही तबाही का रास्ता खोलता गया। माही बिना कोई भाव बदले सब पढ़ता रहा। कुछ देर बाद उसने केवल दो शब्द लिखे— "Send the Location."

"Sure"

और साथ ही भेजा— "अपने पाप कर्मों का ठिकाना।"

चैट अपना काम कर के चली गई। माही ने सामने रखा पानी का गिलास उठाया, एक घूंट भरा, फिर कुर्सी के पीछे सिर टिकाकर कुछ क्षण आँखें बंद किए बैठा रहा। अब उसके चेहरे पर न दुःख था, न क्रोध, न पछतावा। बस एक निर्णय— बहुत स्पष्ट।

थोड़ी देर बाद उसने फोन उठाया, कॉल हिस्ट्री खोली, उसकी उँगली सबसे ऊपर मौजूद नंबर पर आकर ठहर गई। डायल। फोन के स्पीकर में घनघनाहट गूँजने लगी। "हैलो?"

उधर से सुहाना की आवाज़ आई। "हाँ भाई?"

माही ने खिड़की के बाहर उतरती हुई शाम को देखा और शांत स्वर में कहा— "Reach me immediately."

सच का शोर

(और बंद होते रास्ते)

ठीक एक घंटे बाद सुहाना आ चुकी थी।

माही पहले से तैयार बैठा था।

"भाई, क्या हुआ? कहाँ जाना है?" उसने घबराए स्वर में पूछा।

माही ने बिना समय गंवाए कहा—

"गाड़ी निकालो।"

"लेकिन..."

"गाड़ी निकालो।"

उसके स्वर में ऐसी दृढ़ता थी कि सुहाना के पास अपनी जिज्ञासा दबाने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा।

“अंधेरे का सफर”

सूरज क्षितिज के पीछे ढल चुका था।

शाम का धुँधलका रात को पुकार रहा था।

सड़कें अँधेरे को अपने भीतर समेटने लगी थीं।

वाहनों की हेडलाइटें पूर्ण अंधकार के आने से पहले ही उसे चीरने के लिए जल उठी थीं।

ऐसे में एक सफेद रंग की मारुति प्रॉन्क्स गाँव की सड़कों को पीछे छोड़ती हुई शहर की तरफ बढ़ रही थी।

ड्राइविंग सीट पर सुहाना थी।

उसके चेहरे पर प्रश्न थे।

बगल वाली सीट पर माही बैठा था।

लेकिन उसके भीतर क्या चल रहा था इस का अहसास किसी को नहीं था।

रास्ते को समेटती हुई गाड़ी निरंतर आगे बढ़ती रही।

लोकेशन लगातार नज़दीक आती जा रही थी।

दो लोग एक-दूसरे का इंतज़ार कर रहे थे।

दोनों बेचैन थे।

और सबसे दिलचस्प बात—

दोनों एक-दूसरे की असलियत नहीं जानते थे।

यह एक अनोखी-सी मुलाक़ात होने वाली थी। दोनों पक्ष एक-दूसरे का कई दिनों से इंतज़ार कर रहे थे, माही को नहीं पता था कि उस लोकेशन के पार कौन सा 'ब्लैकमेलर' मिलेगा, और उस अनजान ब्लैकमेलर को यह नहीं पता था कि जिस शिकार के आने का वह इंतज़ार कर रहा था, उसकी जगह साक्षात् "तबाही" दरवाज़े पर दस्तक देगी।

गाड़ी शहर की भीड़भाड़ को पीछे छोड़ती हुई अब एक सुनसान रास्ते पर निकल चुकी थी।

सुहाना शुरू में घबराई हुई और सहमी-सी लग रही थी। लेकिन फिर उसने तिरछी नज़र से अपने बराबर में बैठे उस शख्स को देखा। वह उसका भाई था... वह भाई जिसने उसे कभी एक नर्क से निकालकर नई ज़िंदगी दी थी। ये विश्वास सुहाना के चेहरे पर निश्चितता बन कर मुस्कराया, और उसके भीतर से सारा डर गायब हो गया।

खंडहर का द्वार

कुछ ही देर में गाड़ी लोकेशन तक पहुँच चुकी थी।

रात के नौ बज रहे थे।

"चतुर्दिक (चारों ओर) एक ऐसा निष्प्राण शून्य पसरा हुआ था, जिसने वर्तमान के सारे कोलाहल को अपने भीतर लपेटकर विदा कर दिया था।"

उस वीराने के बीच एक दोमंजिला मकान खड़ा था।

मकान ठीक-ठाक था।

लेकिन उस सुनसान माहौल ने उसे किसी खंडहर जैसा बना दिया था।

गाड़ी उसके सामने आकर रुक गई।

सुनसान सड़क और आस-पास सब कुछ निर्जना। ये सब अंधकार में मकान को किसी भुतहा खंडहर की शक्त दे रहा था।

गाड़ी उस खंडहर के ठीक सामने रुकी।

वहाँ कुछ दूरी पर पहले से ही एक काले रंग की गाड़ी खड़ी थी। यह उसी दोस्त की गाड़ी थी जिसे माही एक बार 'मन' के एक नापसंद लड़के के रिश्ते को तुड़वाने के लिए अपने साथ लेकर गया था। गाड़ी के बाहर 2-3 हट्टे-कट्टे लड़के खड़े थे।

माही का उद्देश्य आज किसी से मारपीट करना नहीं था। लेकिन चूँकि साथ में उसकी बहन थी, तो वह सुरक्षा के मामले में कोई भी चूक नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने चौकसी के लिए यह बैकअप पहले ही तैयार कर रखा था।

माही ने फोन निकाला, उसी इंस्टाग्राम चैट को खोला और टाइप किया:

"बाहर हूँ"

रिप्लाई आया:

"दरवाज़ा खुला है... अंदर आ जाओ।"

माही ने सुहाना को गाड़ी में ही रहने का इशारा किया और अपने दोस्तों से कहा कि वे सुहाना का खयाल रखें और बाहर ही सतर्क रहें।

उसने एक योजना के तहत सभी को इतना पीछे खड़ा किया हुआ था कि किसी को इतने लोगों की मौजूदगी का अहसास ना होने पाए।

उसे अकेले उस खंडहर की तरफ बढ़ता देख सुहाना के मुँह से अचानक निकला, "भाई..."

माही पलटा, उसने अपने होठों पर उँगली रखकर उसे खामोश रहने का इशारा किया, और उस मकान के भीतर दाखिल हो गया।

एक खौफनाक भ्रम और एक भद्दा सच

गैलरी से होते हुए वह आगे बढ़ा। नीचे के कमरों में कोई नहीं था। "फिर वह सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गया। वहाँ एक कमरे से, जिसमें कोई खिड़की नहीं थी, कुछ भद्दी आवाज़ें

और अट्टहास गुँज रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे कुछ आवारा लड़के कोई जश्न मना रहे हों।

माही ने दरवाजे को हल्का सा धक्का दिया। वह खुला था।

"सामने तैरते उस दृश्य को देखकर उसकी विस्मय-विस्फारित आँखें पथरा सी गईं और वह पलकें झपकाना भी भूल गया।" कमरे में दारू की बोतलें बिखरी पड़ी थीं, धुएँ का गुबार था, और सामने...

कमरे में कुछ लड़के बैठे हुए थे।

और उनके बीच...

“जीत पाण्डेय”

एक पल के लिए माही की आँखों में अविश्वास तैर गया।

ये यहाँ पर ?

लेकिन कैसे? आज तो उसकी 'मन' के साथ शादी थी! कोई दूल्हा अपनी शादी की रात, बारात ले जाने के बजाय एक खंडहर में शराब की महफिल कैसे सजा सकता है?

उधर, माही को दरवाजे पर खड़ा देखकर जीत पाण्डेय के हाथ से शराब का गिलास छूटकर गिर पड़ा। उसकी हालत ऐसी हो गई मानो उसने कोई प्रेतात्मा देख ली हो। उसने किसी भी रूप में यहाँ माही के पहुँचने की उम्मीद नहीं की थी।

इंस्टाग्राम की पहेली

दरअसल, यह पूरा खेल एक 'डिजिटल भ्रम' का था।

मन की एक पुरानी इंस्टाग्राम आईडी थी, जिसका पासवर्ड सिर्फ माही के पास था। मन के दूर जाने के बाद वह आईडी निष्क्रिय पड़ी थी। दूसरी तरफ, मन ने अपना नंबर बदलने के साथ-साथ अपनी वह नई आईडी भी डिलीट कर दी थी जिसके बारे में जीत पाण्डेय जानता था।

इसलिए, जब जीत पाण्डेय को इंस्टाग्राम 'सजेसंशंस' (Suggestions) में 'मन' के नाम से वह पुरानी आईडी दिखी, तो वह उसे ही 'मन' समझ बैठा। अपनी नीचता और घमंड में अंधा होकर, वह पहचान छुपाकर (नकली id से) उस आईडी पर मन को डराने और धमकाने वाले ऊल-जुलूल मैसेज करने लगा।

उसे लगा वह मन को ब्लैकमेल कर रहा है... लेकिन वह नहीं जानता था कि दूसरी तरफ कोई सहमी हुई लड़की नहीं, “बल्कि एक शांत कोने में एक प्रेमी की रूह से जन्मा 'निष्ठावान साया' बैठा था, जो सारे कड़वे सच जानने के बाद भी अपनी वफ़ा से पीछे हटने को तैयार नहीं था।”

माही ने पहले तो ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब बात स्क्रीनशॉट्स, फोटोज और ब्लैकमेलिंग तक पहुँची, तो उसने होशियारी से बात को आगे बढ़ाया और आज उस दरिंदे को यहाँ तक खींच लाया।

रक्त और प्रतिशोध

माही को देखकर उसका वजूद थरथरा उठा, फिर बनावटी हिम्मत समेट कर उसके मुँह से बड़ी मुश्किल से शब्द निकले, "तू...

तू यहाँ?"

हाँ, मैं।"

माही ने स्वाभाविक स्वर में कहा।

"चलो... अब वो स्क्रीनशॉट और फोटो डिलीट कर दो।"

"क्यों करूँ?"

जीत ने स्वर नियंत्रित करने की कोशिश करी।

"क्योंकि ये सही नहीं है।"

"और तुम कौन होते हो तय करने वाले कि सही क्या है?"

"मैं झगड़ा नहीं चाहता।"

तुम बस वो सब डिलीट कर दो जो मैं चाहता हु

इसके बाद जो करना है कानून करेगा।

"मेरी ये ही सलाह है कि किसी की ज़िंदगी बर्बाद मत करो।"

अच्छा! तू साथ में कानून भी लाया है।

कमरे में बैठे कुछ लड़के हँस पड़े।

"अरे भाई..."

जीत व्यंग्य रूप में बोला—

"तू कोई साधु-महात्मा है क्या?"

"तू वही असफल आशिक है जिसे ठुकरा दिया गया था"

"मैं क्या हूँ और क्या नहीं..."

"ये तेरी समझ से बाहर की बात है।"

"बस आखिरी बार कह रहा हूँ..."

"फोन दो।"

"माही ने थोड़ा गंभीर होते हुए कहा"

"नहीं दूँगा।"

कुछ सेकंड तक दोनों एक-दूसरे को देखते रहे।

फिर अचानक माही आगे बढ़ा।

और जीत के हाथ से फोन झटक लिया।

और वो सारे फोटोज और स्क्रीनशॉट्स को डिलीट करने लगा।"

तभी जीत पाण्डेय और उसके दो नशेड़ी दोस्त माही पर टूट पड़े। माही खुद को और उस फोन को बचाते हुए निहत्थे ही उन तीनों से उलझ गया। लेकिन वे तीन थे।

माही किसी को मारने की कोशिश नहीं कर रहा था।

उसका पूरा ध्यान फोन को सुरक्षित रखने पर था।

एक हाथ में फोन था।

दूसरे हाथ से वह खुद को बचा रहा था।

तभी धक्का लगने से टेबल हिल गई।

उस पर रखी शराब की बोतलें और फल काटने का सामान नीचे गिर पड़ा।

एक तीखी जलन उसके पैर में दौड़ी।

"आह..."

उसके मुँह से दर्द भरी आवाज़ निकली।

वह एक पल के लिए लड़खड़ा गया।

नीचे देखा।

पेंट के भीतर से खून रिसना शुरू हो चुका था।

उसे समझ नहीं आया कि वार बोतल के टूटे हुए टुकड़े से हुआ था या फल काटने वाले चाकू से।

लेकिन इतना स्पष्ट था कि चोट गहरी थी।

"आह!" माही के मुँह से एक और दर्द भरी चीख निकली

इस बार

यह चीख नीचे तक पहुँच गई। बाहर खड़े माही के दोस्तों ने जैसे ही आवाज़ सुनी, उन्हें समझते देर न लगी कि कुछ गड़बड़ है। वे तुरंत सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर दौड़े। कमरे में घुसे और उन तीनों को माही से अलग कर काबू में किया, उनमें गुस्सा था लेकिन माही किसी भी तरह की मारपीट के विरुद्ध था।

और फिर उन्हें दूसरे कमरे में बंद कर दिया।

डिलीट होती यादें, दफ़न होता अतीत

इतनी ही देर में सुहाना भी हाँफती हुई ऊपर आ पहुँची।

माही के पैर से बहते हुए खून को देखकर वह ज़ोर से चिल्लाई, "भाई!"

लेकिन माही ने अपने दर्द को पीते हुए वो फोन ज़मीन पर से खिसका कर सुहाना की तरफ फेंक दिया।

"... इसे खोल... और इसमें से उस लड़की से जुड़ी सारी मेमोरी, सारे स्क्रीनशॉट्स अभी डिलीट कर!"

सुहाना रोने लगी, "भाई आपको खून बह रहा है, पहले अस्पताल चलते हैं..."

नहीं! माही चिल्लाया। "पहले वो कर जो मैं कह रहा हूँ!"

मोबाइल लॉक था, उन्होंने जीत पाण्डेय से अनलॉक करवाया।

सुहाना काँपते हाथों से उस फोन को खंगालने लगी। अगले कुछ मिनटों तक वह सिर्फ उस फोन की मेमोरी डिलीट करती रही। उसका एक दोस्त पैर पर तोलिया बांधने लगा। कुछ ही देर में उसने मन से जुड़ी हर एक तस्वीर, हर एक चैट और हर एक स्क्रीनशॉट हमेशा के लिए मिटा दिया। उसने सिर्फ वे चैट्स छोड़ीं जिनमें जीत पाण्डेय धमकी और ब्लैकमेलिंग कर रहा था—कानून के लिए एक सुबूत के तौर पर।

इसके बाद सुहाना ने तुरंत अपनी चुन्नी फाड़ी और सफेद कपड़े के ऊपर ही माही के पैर से कसकर बांध दी ताकि खून का बहाव रुक सके।

माही ने अपने दोस्तों से कहा, "पुलिस को इत्तला करो।"

उसके दोस्त घबरा गए, "बावला हो गया है क्या? पुलिस उल्टा तेरे ही ऊपर केस बना देगी।"

"मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। इन दरिंदों को कानून की सजा दिलवाना जरूरी है। बुलाओ उन्हें।"

एक आखिरी मंजिल

कुछ ही देर में पुलिस की सायरन गूँजने लगी।

पुलिस ने उन मुजरिमों को घसीटते हुए अपनी जीप में बैठा लिया। घटनास्थल की फोटो, वीडियो बनाई, अधिकारी ने माही की तरफ देखा और उसे भी गवाही और मारपीट में शामिल होने के आरोप में साथ चलने को कहा।

माही ने अधिकारी की तरफ हाथ जोड़कर बहुत ही संतुलित शब्दों में कहा—

“सर, मैं कहीं नहीं भागूंगा। बस मुझे दो घंटे की मोहलत दे दीजिए... मैं खुद थाने आकर समर्पण कर दूंगा। मेरी एक छोटी-सी जिम्मेदारी बाकी है।”

अधिकारी ने स्पष्ट स्वर में कहा—

“नहीं। नियम इसकी अनुमति नहीं देते।”

“सर, आप विश्वास कीजिए...”

“विश्वास अपनी जगह है,.... लेकिन कानून अपनी जगह।”

कुछ सोचने के बाद फिर उसने अपना मोबाइल निकाला।

“तो फिर नियम के भीतर ही एक रास्ता निकाल लीजिए, सर। मैं अपनी Live Location आपसे साझा कर रहा हूँ। आप चाहें तो निर्धारित समय के बाद वहीं आ जाइए। मैं आपका पूरा सहयोग करूँगा।

पुलिस अधिकारी ने उसकी आँखों में देखा। वहाँ उन्हें एक दृढ़ सच्चाई दिखाई दी—जो उन्हें उसमें यकीन दिला रही थी।

उन्होंने माही से उसकी Live Location ली और कहा—

“ठीक है। लेकिन समय पूरा होते ही सीधे थाने आना। और अगर आपने लोकेशन बंद की या बात से मुकर गए, तो मैं इसे सहयोग नहीं, फरारी मानूँगा।”

“मंजूर है, सर।”

माही ने अपने दोस्तों को सहयोग और मदद के लिए धन्यवाद दिया और उन्हें वहाँ से विदा किया।

सुहाना ने गाड़ी में रखे फर्स्ट-एड बॉक्स से माही के पैर की अच्छे से पट्टी की और उसे सहारा देकर बराबर वाली सीट पर बैठाया।

गाड़ी स्टार्ट हुई।

सुहाना ने डबडबाई आँखों से पूछा, अब तो रहस्य से पर्दा उठ चुका है। “अभी कहाँ जाना है भाई? सीधे अस्पताल या... घर ?”

माही ने खिड़की के बाहर उस अँधेरी रात को देखा। उसके चेहरे पर सुकून था... लेकिन आँखों में एक अथाह शून्यता।

नहीं,

अभी एक रहस्य और रहता है।

क्या,

सुहाना ने हैरत से पूछा

कुछ नहीं।

“फिर वह धीरे से बोला”,

"वहाँ ले चलो सुहाना..."

जहाँ किसी की नई दुनिया खुल रही है।"

"और किसी के रास्ते हमेशा के लिए बंद हो रहे हैं।"

सुहाना समझ गई।

बिछड़ना प्रेम का अंत नहीं होता।

अंत तो उस दिन होता है,

जब स्मृतियाँ भी दुआ देना छोड़ दें।

यदि बिछड़ने के बाद भी

किसी की खुशी तुम्हारी प्रार्थनाओं में जीवित रहे,

तो समझ लेना—

प्रेम अब भी साँस ले रहा है।

उसने गाड़ी कि चाभी घुमाई,और वह सफेद मारुति कार रात के उस वीराने को काटती हुई, उस आखिरी मंज़िल की तरफ बढ़ने लगी... जहाँ आज शहनाइयाँ बजनी थीं।

अध्याय - 210

"मन"

गाड़ी अब धीरे - २ " मिलन गार्डन" की तरफ बढ़ रही थी।

जो कि वहां से 45 किमी था।

11:30 का समय हो चुका था।

रात के अंधियारे में गाड़ी पूरी गति से चल रही थी

सभी दूसरे साधनों को पीछे छोड़ती हुई

एक रहस्य से तो पर्दा उठ गया था।

लेकिन रहस्य की उस किताब में अब भी एक प्रश्न अनुत्तरित था।

वह प्रश्न, जो अपने भीतर पूरी कहानी समेटे हुए था...

या यूँ कहें कि वही प्रश्न स्वयं पूरी कहानी था।

किताब का हर पृष्ठ, हर घटना, हर मोड़ मानो उसी एक प्रश्न की ओर बढ़ रहा था।

और वह प्रश्न था...

आज मन किस की होने वाली है?

(जीत पांडे तो सलाखों के पीछे जा चुका था)

आज का सब से बड़ा सवाल अब यही था।

ये सवाल माही और सुहाना दोनों के जहन में था।

ये बात अलग है कि दोनों इस समय खामोश थे।

इसी सवाल की तलाश में गाड़ी निरंतर गंतव्य की तरफ जा रही थी।

और जल्दी ही इस सवाल का जवाब मिल गया।

जब ठीक 12:15 मिनट पर गाड़ी मिलन गार्डन के गेट के सामने पहुंची

गेट के ठीक ऊपर

बड़ी सी स्क्रीन पर

Manvi Sharma wds Utsav Bhardwaj

अपनी संपूर्ण भव्यता के साथ जगमगा रहा था।

माही और सुहाना ने स्क्रीन को देखा

फिर एक दूसरे को

और फिर बिना कहे सब कुछ समझ गए

मन ने जीत पाण्डेय की सच्चाई जानकार

किसी और से रिश्ता तय कर लिया था।

खैर

विवाह समारोह अपने अंतिम चरण में था

विवाह का जश्न और उल्लास थम चुका था

चारों तरफ प्रकाश और सजावट का अद्भुत समागम बिखरा हुआ था, जिससे पूरा गार्डन मानो रोशनी से नहाया हुआ प्रतीत हो रहा था।

बहुत ज्यादा लोग अब गार्डन में नहीं थे।

ऐसे में एक बड़ी हुई दाढ़ी वाला युवक, सर पर तौलिया लपेटे, खून से सने कपड़ों के साथ गाड़ी से उतर कर गेट के सामने खड़ा था।

साथ में थी एक युवा लड़की

दोनों गार्डन के भीतर प्रविष्ट हुए।

माइक में फेरो से पहले की रस्मों का मंत्रोच्चारण चल रहा था

दूल्हा दुल्हन को सात वचनों में बांधने की तैयारी की जा रहा थी।

ऐसे में एक लड़का फटे कपड़ों पर लाल धब्बे लिए,

गिरता संभलता,

मंडप की तरफ बढ़ रहा था।

कभी गिरता तो फिर खुद को संभालता

दूर खड़ी एक लड़की जो उसको संभालने के लिए बढ़ती।

लेकिन फिर ठिठक जाती

कुछ और लोगों ने भी रोकने की कोशिश की, लेकिन वो हाथ जोड़े आगे बढ़ता रहा।

और फिर पंडित जी के मुंह से.....

"वधु का कन्यादान कीजिए"

ये वाक्य पूरे गार्डन में गूंजता है

तभी लड़की के ताऊ और ताई जी अपना हाथ आगे बढ़ाते हैं

और उसी वक्त कोई उनके हाथों को थाम लेता है

दिल के किसी गहरे कोने से एक मौन स्वर उभरता है—

"आपको हक नहीं है"

और फिर दूल्हा और दुल्हन का हाथ एक दूसरे के हाथ में थमा देता है

उसके मुंह से निकलता है

Always Be Happy

लड़की के कानों में अपना कहा वो वाक्य गूंजता है

"मेरा कन्यादान करने के लिए किसी जोड़े की जरूरत नहीं है

तुम अकेले काफी हो"

और फिर...

मन की पलकों पर ठहरे भाव आखिर छलक उठे।

यह केवल नमी नहीं थी; एक सम्पूर्ण कहानी अपने अंतिम सार के साथ उनमें तैर रही थी।

पक्ष और विपक्ष दोनों मौन थे।

पूरे गार्डन में निःस्तब्धता थी।

हर कोई निशब्द!

एक इंसान जो किसी की जिंदगी में अभिभावक बन कर आया...फिर प्रेमी बना...और आज फिर से अभिभावक बन कर ही विदा हो रहा था।

आज फिर आसमान में वो तीन तारे थे थोड़ी देर पहले तीनों नजदीक थे।

लेकिन अब एक चमकता बड़ा तारा दो छोटे तारों को नजदीक ला कर हमेशा के लिए दूर जा रहा था।

आज मिलन गार्डन के आसमान में कोई चांद नहीं था।

जाते जाते माही की नजर

गार्डन के कोने में एक कमरे में टंगी बंद घड़ी पर पड़ी

जिस पर समय था

08:37

उस ने एक पल के लिए उस बंद घड़ी पर दृष्टि टिकाई।

मानो वह उस ठहरे हुए समय और उस से जुड़ी स्मृतियों को भी विदाई दे रहा हो।

फिर वह आगे बढ़ गया।

गेट पर खड़ी सुहाना जोर जोर से रो रही थी।

गेट के बाहर ही

पुलिस की जिप्सी खड़ी थी।

माही चुपचाप उस में जा कर बैठ गया।

सुहाना रोते हुए नजदीक आई,

उसने सर पर हाथ रखा।

रो मत,

में जल्दी आऊंगा।

और फिर...

दो गाड़ियाँ एक साथ निकलीं।

एक, जिसमें कोई दुल्हन विदा हो रही थी।

और दूसरी, जिसमें प्रीत का कैदी अपनी नियति भोगने निकल रहा था।

आखिरी बार अपने 'मन' को निहारते हुए उसके अंतर्मन से निकली कुछ—

“दुआएँ...”

'मेरा मन' अपनी मंजिल की तरफ बढ़ गया।

और पीछे छूट गया...।

बस एक...

रिक्त,

एकाकी,

'मन'।

— इति —

“तेरी खुशी की दुआ देकर चल दिया हूँ आज,
अपने लहू से लिखी वफ़ा की इबारत लेकर।
जुग-जुग अगर मोहब्बत में माँगे कोई वफ़ा की मिसाल,
कह देना दुनिया से—
वो था कोई,
जो “रूह” को सज़ा सुनाकर,
“मन” को बरी कर आया था।”

